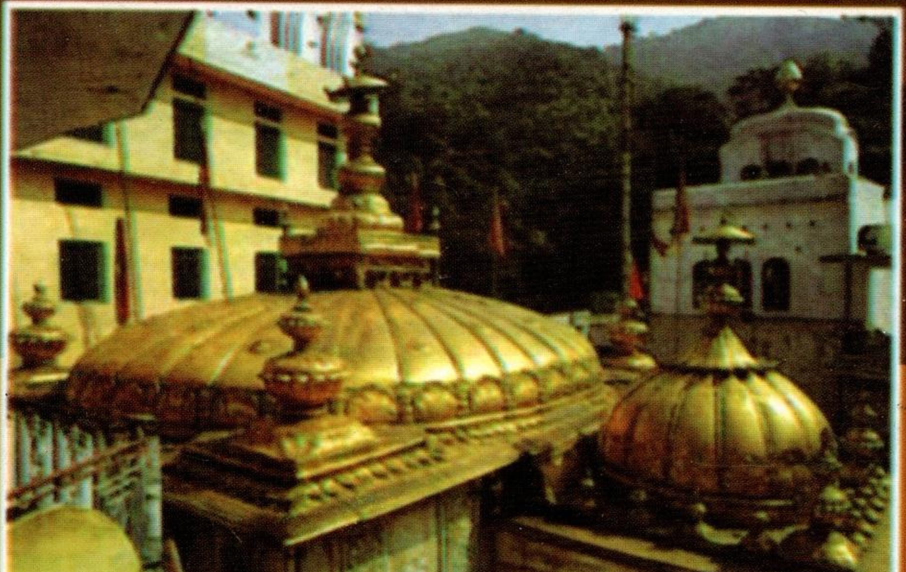
हिमालय गाथा - 3

जनजाति संस्कृति





सुदर्शन वशिष्ठ

हिमालय गाथा (तीन)

जनजाति संस्कृति

सुहानी बुक्स
गणेश नगर, दिल्ली

हिमालय गाथा (तीन)

जनजाति संस्कृति

सुदर्शन वशिष्ठ

ISBN—81-904232-2-3

प्रकाशक

सुहानी बुक्स

भूतल, 109, ब्लॉक बी, प्रीत विहार

दिल्ली-110092

संस्करण

2014

आवरण

निर्दोष त्यागी

मूल्य

पाँच सौ पचास रुपये

मुद्रक

बी०के० ऑफसेट

नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

HIMALAYA GAATHA (3) JANJATI SANSKRITI (Hindi)

by Sudarshan Vashisth

Price : Rs. 550.00

संस्कृति का सागर

बहुत गहरा है संस्कृति का सागर। जितना इसमें डूबते जाओ, गहराई उतनी ही बढ़ती जाती है। गहराई के भीतर जो सीप-मोती हैं, वे कभी हाथ लगते हैं, कभी नहीं। सतह के नीचे जो विचित्र संसार है, वह डूबकर, आँखें खुली रखने पर ही देखा जा सकता है। संस्कृति की खोज में 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ' वाली बात चरितार्थ होती है। जो सड़क के किनारे बैठ ऊपर के पहाड़ों को देखते हैं, वे दूरबीन लगाकर भले ही मनोहारी दृश्य देख लें, उस दृश्य के पीछे के जीवन को नहीं देख सकते।

संस्कृति का मूल श्रुत साहित्य है। सदियों से यह श्रुति के माध्यम से स्मृति में जाकर यात्रा करता रहा है। इस मौखिक साहित्य या लोकवार्ता का टेक्स्ट बीस कोस बाद बदलता है। एक कथा एक कोने से यात्रा करती हुई किसी दूरस्थ कोने तक पहुँचती है। लोकमानस अपनी संस्कृति और भौगोलिक परिस्थितियों व भावनाओं के अनुसार इसमें परिवर्तन कर लेते हैं। लोगों के देवता उनके अपने जैसे हैं। मंदिरों में मूर्तियों की आकृतियाँ उसी आकार में बनती हैं जैसे वहाँ के वासी हैं। कभी शिव को दाढ़ी-मूँछ लगाई जाती है तो देवी को गद्दी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया जाता है। देवताओं का अपने ढंग से मानवीकरण होता रहता है। देवता वैसा ही वार्तालाप करते हैं, वही पहनते हैं, वही खाते-पीते हैं, जो उस क्षेत्र में होता है।

हिमाचल प्रदेश में कई संस्कृतियों का संगम हुआ है। सदियों पहले यह भू-भाग देश के मैदानी भागों से कटा रहा है। यहाँ के पर्वतवासी अपनी तरह का जीवन जीते रहे, जिसके अवशेष आज भी पूजा-विधान, देव पर्व-उत्सवों में देखने को मिलते हैं। धीरे-धीरे जब मैदानों की संस्कृति ऊपर पहुँची तो एक संघर्ष के बाद आर्य लोग पर्वतों पर आधिपत्य जमाने में सफल हुए। इन क्षेत्रों को जीतकर उन्होंने यहीं के शासकों के हवाले किया, अतः संस्कृति सुरक्षित रही। पर्वतों के आदिदेव शिव मृगछाल पहने, शरीर पर भस्म रमाए घूमते रहे। हाँ, कालांतर में मैदानों से आए कुछ राजा अपने साथ वैष्णव संस्कृति लाए और यहाँ रघुनाथ जी की पूजा होने लगी। तथापि आदिदेव शिव का अस्तित्व भी बना रहा। यहाँ की मूल संस्कृति में नागरी सभ्यता के वस्त्राभूषण से सुरक्षित विष्णु का स्थान नहीं था, अपितु पर्वतशिखरों पर जटाधारी शिव और घाटियों में पिंडी के रूप में देवी स्थापित रही।

आज के युग में जब पहाड़ों के द्वार खुलने लगे, अलंघ्य पर्वत लाँघने सुगम हुए, मैदानी प्रभाव बढ़ने लगा। इससे पूर्व भी कई तरह की उथल-पुथल हुई। बाहरी

आक्रमण होते रहे। राजनीतिक और सांस्कृतिक लूटपाट हुई। इस उलटफेर के बाद यह स्थिति आई कि मंदिरों में पूजा किसी देवता की होती है, तो भीतर मूर्ति कोई और ही है। यदि पूजा परशुराम की होती है, तो भीतर मूर्तियाँ बुद्ध की निकलती हैं। शिव अवलोकितेश्वर के रूप में पूजे जाते हैं तो कहीं त्रिलोकीनाथ के रूप में। लोगों की मान्यता और आस्था ने अभी भी ऐसी भ्रांतियों से पर्दा नहीं उठने दिया है। कई जगह मूल मूर्तियाँ देखने, उनका चित्र लेने की मनाही है। कुछ ऐसी पोथियाँ हैं जो किसी को दिखाई नहीं जातीं, चाहे वे बिना संरक्षण के नष्ट हो जाएँ। अतः अभी भी बहुत कुछ अस्पष्ट और अबूझा, अजाना है।

यहाँ एक प्रसंग याद आता है। वेदव्यास ने महाभारत की रचना करने पर कहा था कि इस ग्रंथ में वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं। इसमें वेदांग सहित उपनिषद, वेदों का क्रिया-विस्तार, इतिहास, पुराण, भूत, भविष्य और वर्तमान वृत्तांत, बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि आदि के भाव-अभाव का निर्णय, आश्रम और वर्णों का धर्म, पुराणों का सार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और युगों का वर्णन किया है। महाभारत की रचना के बाद यह कहा जाने लगा कि इस ग्रंथ पर भविष्य में न जाने कितने ग्रंथ लिखे जाएँगे। इसी तरह हिमाचल की संस्कृति है। इस पर कितने ही ग्रंथ लिखे जाने की संभावना है। कितना ही लिखा जाए, यह पूर्ण नहीं लगता। तथापि कभी-कभी अपूर्णता में ही पूर्णता विद्यमान रहती है।

जनजाति या आदिवासी संस्कृति के नाम से प्रायः एक चित्र उभरता है। बीच में आग जली है और उसके चारों ओर मुँह पर तरह-तरह के रंग पोते, पत्तों के वस्त्र पहने, हाथ में भाले-बरछे लिए कुछ अधनंगे लोग हू-हू करते नाच रहे हैं। कुछ ऐसी ही छवि लिए हुए आते हैं देश के शोधकर्त्ता।

हिमाचल में ऐसा नहीं है। यहाँ के जनजातीय लोग समृद्ध, सभ्य और सुसंस्कृत हैं। इनके अपने संस्कार हैं, प्राचीन परंपरा है। दूसरी ओर जहाँ किन्नौर में सेब, बादाम, चिलगोजे की नकद फसल होती है, वहाँ लाहौल में आलू और जड़ी-बूटियों का भंडार है तो भरमौर में ऊन, पश्म की गर्माहट है। हाल ही में भारत का चीन से व्यापार खोला गया है किंतु कुल्लू दशहरा और रामपुर लवी मेले में सदियों पहले के रूस, चीन, तिब्बत, समरकंद, यारकंद से व्यापार होता था। लाहौल स्पिति की बौद्ध परंपरा और भरमौर के मंदिरों का इतिहास सीधा आठवीं शताब्दी से जुड़ता है। विकट और दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों और अत्यधिक शीतल जलवायु के बावजूद संपन्नता है। गहनता, गंभीरता और गर्माहट है विशिष्ट पुरातन संस्कृति की।

बुद्ध पूर्णिमा, 2008

—सुदर्शन वशिष्ठ

अनुक्रम

किंपुरुष वर्ष : किन्नौर

लाहौल स्पिति

भरमौर

पांगी

किंपुरुष वर्ष : किन्नौर

किन्नर प्रदेश

किन्नर प्रदेश एक अद्भुत प्रदेश है।

प्रदेश इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि यह पौराणिक है, ऐतिहासिक है और एक विशिष्ट भूखंड है। इसकी विलक्षणता है मधुर कंठ में, विशेष भाषा-वेशभूषा में, भरे-पूरे आभूषणों में, आकर्षक काष्ठकला व धातुशिल्प में। जहाँ यहाँ की शाल की बुनाई मनमोहक है, वहाँ नृत्य चित्ताकर्षक है। विचित्र है यहाँ की किन्नरी वीणा और मधुर शहनाई। चमकदार मीठा सेब, पौष्टिक बादाम, चिलगोज़ा अपने में अनोखा है।

यक्ष, गंधर्व और किन्नरों का जो उल्लेख बार-बार हमारे पौराणिक साहित्य में हुआ है, उसी के अनुसार किन्नर के साक्षात् दर्शन आज भी हो सकते हैं। अपनी विशिष्ट संस्कृति सँजोए हुए किन्नर लोग आज भी अपनी समृद्ध परंपरा से बँधे हैं। प्रकृति ने भी किन्नौर को अपना अनुपम सौंदर्य उपहार में दिया है। एक ओर रंग बदलता किन्नर कैलास, दूसरी ओर अनुपम साँगला घाटी, तीसरी ओर मठ-मंदिर, किले, उस अज्ञात अध्यात्म और पुरातन का स्मरण कराते हैं जो सदियों से यहाँ की शिखर घाटियों में विद्यमान रहा है।

तिब्बत, उत्तराखण्ड, कुल्लू तथा रामपुर बुशहर के बीच हिमाच्छादित चोटियों से घिरे किन्नौर के बीचों-बीच सतलुज नदी बहती है। शिपकी दर्रे की ओर से आने वाली सतलुज टशीगंग और नमग्या के बीच से होकर स्पिति में मिलती है। यहाँ से गहरा होता सतलुज का पानी किन्नौर को दो भागों में विभक्त करता है।

6,401 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले हिमाचल प्रदेश में ज़िला किन्नौर में इस समय कल्पा, निचार, पूह, तीन उपमंडल है। निचार, कल्पा, पूह, साँगला, मूरंग तहसीलें तथा हंगरंग उप तहसील है। 1931 में 29,270 की जनसंख्या के मुकाबले 1991 में 71,270 जनसंख्या है जिसमें 38,394 पुरुष और 32,876 महिलाएँ हैं। कुल 662 गाँवों में 228 आबाद और 434 गैर-आबाद हैं। शहरी जनसंख्या कोई नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र में 16,333 घर तथा परिवार है। 2001 की जनगणना के अनुसार अब जनसंख्या 78,334 है। सब से कम जनसंख्या 4,062 हंगरंग की है। 1500 से 3500 मीटर की ऊँचाई पर बसे गाँव हिमालय की ऊँची श्रृंखलाओं से घिरे हुए हैं।

किन्नौर का सर्वप्रथम नोटिस लेने वाला यूरोपीय यात्री सम्भवतः जे.बी. फ्रेज़र था, जो किन्नौर न जाकर सन् 1815 में सराहन में ठहरा। किन्नौर के भीतर प्रवेश करने वाला पहला यूरोपीय एलेक्ज़ेंडर गेरार्ड था जो 1817 में अपने भाइयों जेम्स और

पार्टिक सहित आया और इसके बाद भी वैज्ञानिक अभियान में आता रहा। इन भाइयों ने 1829 तक कई दौरे किए।

किन्नौर पर पहला कार्य कैप्टन हर्बर्ट और डॉ० डी० गेरार्ड ने किया। अपने 1819 के दौरे के बाद कैप्टन तथा गेरार्ड द्वारा "द एकाउंट ऑफ किन्नौर इन द हिमालया : लंदन 1841" लिखा गया। सन् 1939 में जर्मन विद्वान् आर०एच० डस्टर ने किन्नौर पर पुस्तक लिखी। इसके बाद सिलसिला जारी रहा।

पौराणिक संदर्भ

प्रथम मई 1960 को हिमाचल प्रदेश का एक ज़िला बनने से पूर्व किन्नौर ज़िला महासू के अंतर्गत रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व यह बुशहर राज्य का एक भाग था।

राहुल जी ने इसे किन्नर प्रदेश कहा है : "किन्नर के लिए किंपुरुष शब्द भी संस्कृत में प्रयुक्त हुआ है, अतः इसी का नाम किंपुरुष देश या किंपुरुष वर्ष भी था। किन्नर या किंपुरुष देवताओं की एक योनि मानी जाती थी, किंतु उससे इतिहास जानने में कोई सहायता नहीं मिलती।"

किन्नौर को 'कनावर' भी कहा है जो यूरोपीय यात्रियों का संबोधन है। रियासत के समय में बुशहर के ऊपरी भाग को 'कोची' कहते थे (हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स) और यहाँ के निवासियों को किन्नर या कन्नौरा। किन्नर अपनी बोली में अपने को 'कनौरिङ्', कहते हैं। तिब्बती किन्नौर को 'खूनू' पुकारते हैं, जिसका अर्थ पर्वत है। लेहवासी 'माउन' कहते हैं। कामरू का पुराना नाम भी 'मोने' था।

हमारे पौराणिक साहित्य में यक्ष, गंधर्व, किन्नर, किंपुरुष आदि का उल्लेख एक साथ हुआ है। ये जातियाँ हिमालयवासी थीं। वायु पुराण में किन्नरों को महानील पर्वत का वासी बताया गया है। कुछ पुराणों में किन्नरों को निशाचरों की श्रेणी में रखा गया है। मत्स्य पुराण में यक्ष, पिशाच, राक्षस, विद्याधर, किन्नर, गंधर्व को हिमवान पर्वत का वासी माना गया है। किन्नरों को अश्वमुख तथा किन्नरियों को मधुर कंठी कहा गया है।

महाभारत में किन्नरों का वास किंपुरुष वर्ष कहा गया है। यह प्रदेश धवलगिरि को लांघकर आता था। गंधर्व, किन्नर, अप्सराओं का वास मानसरोवर भी माना गया है। कुबेर को यक्षराज संबोधित किया गया है।

इन संपूर्ण संदर्भों से एक बात स्पष्ट होती है कि किन्नर हिमालय या पर्वत वासी थे। यह जाति यक्ष, गंधर्व या किरात से समीप तो थी किंतु भिन्न थी। ये अनार्य और आदिम या मूल वासी थे। नृत्य तथा गायन इनकी मूल परंपरा थी।

किन्नौर हिमाचल प्रदेश का सीमांत ज़िला है जिस की सीमा तिब्बत से लगती है। भारत और तिब्बत को जांस्कर पर्वत श्रृंखला विभाजित करती है। शिपकी-ला दर्रा भारत की ओर से अंतिम पड़ाव है जो खाब से ऊपर नमझा गाँव से लगभग पचास किलोमीटर है। नमझा गाँव ही चीन के साथ व्यापार का भारत की ओर प्रथम

केंद्र है।

भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र बर्फीली चोटियों से घिरा हुआ है। घाटियों के बीच सतलुज बहती है जो शिपकी-ला से खाब में स्पिति से आने वाली पिति नदी में मिलती है। यहीं से सतलुज पूरी किन्नौर घाटी को दो भागों में विभक्त करती है। पर्वत शिखरों की ऊंचाई पांच हजार मीटर से लेकर साढ़े छह हज़ार मीटर से अधिक है। पैंतीस सौ मीटर की ऊँचाई तक जन बस्तियाँ हैं।

सतलुज के अतिरिक्त साँगला घाटी से वस्पा आती है जो 72 किलोमीटर चल कर कड़छम में सतलुज में मिलती है। इस ओर की सीमा शिमला के रोहड़ू से मिलती है। किन्नौर के पश्चिम में स्पिति तथा कुल्लू का क्षेत्र पड़ता है। स्पिति भाबा घाटी को पार कर आती है। किन्नौर के ठीक मध्य में एक ओर जिला मुख्यालय कल्पा (रिकांग पियो) है तो दूसरी ओर किन्नर कैलास। यह उपजाऊ क्षेत्र है और लोकास्था के अनुसार देवी चंडिका ने इसे चुना था।

1960 से पहले किन्नौर रामपुर बुशहर की एक तहसील थी। यह महासु का एक हिस्सा था।

किन्नौर में तीन घाटियाँ हैं। सतलुज नदी किन्नौर के बीच में बहकर सबसे बड़ी घाटी निर्माण करती है जो लगभग 140 किलोमीटर है। स्पिति नदी की घाटी स्पिति घाटी है। तीसरी घाटी साँगला घाटी है जिसमें वस्पा नदी बहती है। लगभग 45 किलोमीटर फैली यह घाटी सब से खूबसूरत घाटी है। यह घाटी स्पिति की तरह जलवायु लिये हुए बर्फ के रेगिस्तान की भाँति है। जनसंख्या भी बहुत कम है। तिरुंग नदी की घाटी भी वन वनस्पति रहित है। इस में ठंगी कुन्नु, चारंग गाँव आते हैं। कुछेक गाँवों की एक छोटी-सी घाटी रोपा नदी की घाटी है। भावा की घाटी में भावानगर बड़ा गाँव है। भावानगर में जलविद्युत गृह है।

किन्नौर : भौगोलिक स्थिति

प्रथम मई 1960 को महासू जिला की चीनी तहसील के 63 गाँवों तथा रामपुर तहसील के 14 गाँवों को मिला कर कुल 77 गाँवों के साथ किन्नौर जिला का गठन हुआ। इस जिले को जनजातीय जिले का दर्जा भी दिया गया। जिला मुख्यालय कल्पा में था, जिसे अब नीचे रिकांग पियो में लाया गया है। मुख्यालय में जिलाधीश कार्यालय है। कल्पा, पूह तथा निचार तीन उपमंडलों के साथ जिले में छह तहसीलें हैं। ग्राम बस्तियों की संख्या अब 662 है।

किन्नौर के पूर्व में तिब्बत (जांसकर पर्वत श्रृंखला) दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में उत्तराखण्ड का उत्तरकाशी जिला, उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम में लाहुल स्पिति जिला, दक्षिण-पश्चिम में शिमला जिला तथा पश्चिम में कुल्लू का कुछ भाग है।

सतलुज नदी पूरे क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती है। सतलुज नदी यहाँ बहुत संकरी होकर बहती है और दोनों ओर ऊँचे पहाड़ हैं। पहाड़ों के बीच में दोनों ओर घाटियों में जनबस्तियाँ समाई हुई हैं। कुछ क्षेत्र पहाड़ों के ऊपरी भाग में भी हैं। कई जगह सतलुज के दोनों ओर नब्बे का कोण बनाते ऊँचे पर्वत शिखर हैं जैसे नदी ने अभी-अभी पर्वत को काटा हो।

हंगरंग, रोपा और बस्पा—ये तीन प्रमुख घाटियाँ हैं। स्पिति नदी की घाटी हंगरंग है, रोपा घाटी पूह से पहले आती है और बस्पा नदी की घाटी साँगला है। स्पिति नदी की हंगरंग घाटी वन वनस्पति रहित है और रूखी सूखी है। स्पिति नदी खाब नामक स्थान में सतलुज में मिलती है। खाब के अंदर की ओर स्पिति नदी के दोनों ओर मरूस्थल है। किन्नौर का यह भाग स्पिति की भाँति बर्फ का रेगिस्तान है जहाँ मात्र आठ गाँव हैं। रोपा घाटी में पाँच गाँव है। साँगला घाटी बहुत सुंदर और समृद्ध घाटी है। यह घाटी बहत्तर किलोमीटर लंबी है और सब से रमणीक है। बास्पा नदी कड़छम में सतलुज में मिलती है। इस घाटी का अंतिम गाँव छितकुल है जहाँ से एक ओर जिला शिमला, दूसरी ओर उत्तराखण्ड का बद्रीनारायण और तीसरी ओर तिब्बत है।

निचले क्षेत्र में नेसिंग, लेप्पा, कशांग के साथ भाभा घाटी महत्त्वपूर्ण है जहाँ भाभा नदी बहती है। इस घाटी में नौ गाँव हैं। यह घाटी चरागाहों के साथ-साथ भाभा नदी पर निर्मित संजय विद्युत परियोजना के लिए प्रसिद्ध है। भाभा के ऊपर निचार में सुंगरा महेश्वर तथा उषा देवी के मंदिर हैं। तिरुंग नदी की घाटी में ठांगी, कुनू और चारंग गाँव हैं। यह क्षेत्र ठोस चट्टानों से भरा मरूस्थल का क्षेत्र है।

मुख्य नदी सतलुज में सर्वप्रथम खाब में स्पिति तथा बाद में बस्पा, रोपा, भाभा

नदियाँ मिलती हैं। पौराणिक शतद्रु को तिब्बत में जंगती तथा मुकसङ और यूनान में जाराद्रास और हेसीद्रस कहा गया है। यह नदी हिमालय के मानसरोवर से निकलकर तिब्बत से बहती हुई जास्कर पर्वत श्रेणी पार कर शिपकी-ला से किन्नौर में निकलती है। किन्नौर के 140 किलोमीटर भू-भाग में बहती हुई यह मंडी से होती हुई बिलासपुर में आ निकलती है जहाँ अब भाखड़ा बाँध के कारण गोबिंद सागर झील बनी हुई है। सतलुज नदी किन्नौर तथा रामपुर में बहुत गहरे बहती है। इस में तैती, कशाङ, मुलगून, यूला, वांगर, शोरङ् रूपी, तिरुंग, ज्ञाङ, थिंङ दलिंङ, सोलडंग आदि छोटी नदियाँ-नाले भी मिलते हैं।

किन्नौर में दो प्रमुख झीलें हैं—एक स्पिति नदी के ऊपर बाईं ओर नाको गाँव से डेढ़ किलोमीटर दूर नाको झील और भाभा से ऊपर निचार में रमजी और जानी गाँवों से ऊपर 420 वर्गमीटर में फैली पंद्रह मीटर गहरी झील।

किन्नौर के ऊंचे शिखरों पर बारह महीने बर्फ रहती है। निचले क्षेत्रों में भी तीन-चार मास बर्फ पड़ी रहती है। ऊँचे शिखर 5,200 मीटर तक हैं और नीचे 2000 से 3050 मीटर। अत्यधिक ऊँचाइयों के कारण ऊँचे पर्वत शिखरों तक मानव नहीं पहुँचता किंतु निचले क्षेत्र वन-वनस्पति से भरे हैं। अब सेब, बादाम, चिलगोजे की भरपूर फसल होती है। किन्नौर का सेब जो शिमला के सेब के बाद निकलता है, अत्यधिक स्वादिष्ट और उच्चकोटि का है। गोल्डन सेब आकार में बहुत बड़ा है। जबकि रेड या रॉयल का छिलका सख्त होने से यह देर तक चलता है।

देवदार, कैल, चीड़ के वनों के अतिरिक्त यहाँ बड़ी-बड़ी चरागाहे हैं। किन्नौर के भेड़ पालक गर्मियों में इन चरागाहों में भेड़ बकरियाँ चराते हैं। यहां जौ, गेहूँ के अतिरिक्त अंगूर की खेती भी होती है। ताँबा, चीनी मिट्टी, पायराइट, ग्रेनाईट जैसे खनिजों के साथ चाँदी, शिलाजीत तथा नदियों की रेत से सोने के कण मिलते हैं, यद्यपि ये खनिज कम मात्रा में हैं।

जाति प्रथा

कैप्टेन हारकोट सन् 1869 में कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर बने। उन्होंने 'द हिमालयन हिस्ट्रिक्ट्स ऑफ कुल्लू, लाहुल एंड स्पिति, में लिखा है :

"स्पिति में सामान्य 'जाति' शब्द की मान्यता के अनुरूप जातियाँ नहीं हैं, क्योंकि सभी एक साथ खाते-पीते हैं, किंतु कनैत लोहारों से विवाह संबंध नहीं रखते और न ही लोहार बेडा से। कनैत वास्तव में विशुद्ध तिब्बती हैं, जिन का यहाँ के वासियों में बहुमत है, लोहार कुल 100 हैं, और बेडा 46, बेडा जो लाहुल के हेस्सी या वादकों की तरह हैं जिनके पास जमीन नहीं है। मि० लॉयल (सेटलमेंट ऑफिसर काँगड़ा) की उक्ति है : "बेडा के पास कोई जमीन नहीं, कोई भार नहीं। लोहार लोहे का काम करते हैं और उन सभी की थोड़ी-बहुत भूमि है।"

किन्नौर व स्पिति में जाति प्रथा नहीं है। जो विभिन्न जाति समुदाय प्रदेश के निचले भागों में विकसित हुए हैं, वे यहाँ नहीं हैं। राहुल जी ने अपनी किन्नौर यात्रा में लिखा है : "पहाड़ में न धोबी होता है न तेली, न हजाम, न कुम्हार। ये और दूसरे कामों

को ये लोग अपने आप ही कर लेते हैं। स्कूल के हेडमास्टर साहब ने 11 जुलाई (1948) को मेरे बाल काटे।" किन्नौर तथा स्पिति में मिस्त्री जाति अलग से नहीं हैं। ये लोग अद्भुत शिल्प के उदाहरण बौद्ध मठों को स्वयं ही बनाते हैं। कानम मठ के जीर्णोद्धार के समय (1933) मार्को पालिस ने लिखा है कि मठ के निर्माण में मिस्त्री कनिष्ठ लामा थे जो ग्रामीणों के साथ काम कर रहे थे।

किन्नौर का शिल्प अद्भुत है। धातु की बनी मूर्तियाँ उत्कृष्ट कला की प्रतीक हैं। काष्ठ कला अद्भुत है। अभी भी लोग मूर्ति निर्माण तथा काष्ठ कला में प्रवीण हैं। किन्नौर की ऊनी शाल का डिजाइन अत्यंत आकर्षक है और बनाने में बहुत कठिन माना जाता है। धातुकला, काष्ठकला के यहाँ अद्वितीय कलाकार हैं।

मोटे तौर पर किन्नौर में दो ही जातियाँ हैं–प्रथम राजपूत या कनैत या नेगी। दूसरे बेरुहन या बाहर के। काँगड़ा में भी निम्न वर्ग को 'बाहर-का' कहा जाता है। राहुल जी ने किन्नौर यात्रा में लिखा है : "इस का परिणाम यदि ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ने के रूप में न हुआ हो तो भी जात-पात, छुआछूत का प्रवेश तो जरूर हुआ होगा। कन्नौर में बाढी (बढ़ई-लौहार-सोनार- कसेरा) और कोली (चमार-कोरी) को अछूत समझा जाता है। इस काल (गूगे काल 10वीं से 13वीं सदी) में उपरोक्त पेशे इन्हीं लोगों के हाथ में थे, यह कहना मुश्किल है क्योंकि ये लोग कनौरों में पाँच या दस सैंकड़े की कम संख्या में रहते हुए भी अपनी हिंदी वंश की भाषा बोलते हैं, जो आजकल की राजस्थानी और आसपास की दूसरी भाषाओं के नजदीक है। इसलिए अपभ्रंश काल (8वीं से 13वीं सदी) में इनका पहाड़ में जाना मुश्किल-सा मालूम होता है।"

राहा ने दूसरे वर्ग की जातियों में लोहार, बाढ़ी, कोली, नंगालू गिनाए हैं। डोमङ् में लोहार, बाढ़ी तथा चातङ् में कोली एवं चनाल।

चनाल जो किन्नौर से लेकर लाहुल और पांगी तक हैं, चनाली बोलते हैं जिसे प्रो० डी०डी० शर्मा ने संस्कृत के बहुत निकट बताया है। राहुल जी ने यह बात बहुत पहले कह दी थी।

अतः भाषाई आधार पर किन्नौर का दूसरा वर्ग 'बाहर का' है और किन्नौर में इस वर्ग का प्रवेश बाद में हुआ।

किन्नौर की प्रथम जाति या वर्ग, जो एकमात्र जाति है, अपने को राजपूत मानती है। इस वर्ग के तीन भाग हैं जिन्हें खेल कहा जाता है। ओरङ्, मोरङ् तथा वाजा तीन उपभागों में ओरङ एक विशिष्ट खानदान है, मोरङ दूसरा तथा वाजा तीसरा। इन तीनों ही क्रमों में इन वर्गों की धन संपति, जमीन-जायदाद या सामाजिक दर्जा है। एक खानदान अपने में ही विवाह संबंध नहीं रखता अपितु एक खानदान का विवाह दूसरे खानदान से होता है।

इस प्रकार हर गाँव में अलग खानदान है। घर या परिवार को 'किंम' कहते हैं जो पौराणिक जाति 'किंपुरुष' का स्मरण करवाता है।

किन्नौर का इस समय क्षेत्रफल 6,401 वर्ग किलोमीटर है। 1981 की जनसंख्या के अनुसार जनसंख्या 59,547 तथा 1991 के अनुसार बढ़कर 71,270 हो गई।

तिब्बती प्रभाव से पूर्व किन्नौर

राहुल जी ने लिखा है–"कनौर की भाषा में तिब्बती शब्द और लोगों में तिब्बती रक्त भी सातवीं सदी के मध्य से सम्मिलित होने लगा। खसों और आर्यों की भाषा और रक्त का प्रभाव उनके प्रथम संपर्क ताम्रयुग अथवा ईसापूर्व द्वितीय सहस्राब्दी से आरंभ हुआ तो आगे बढ़ता ही गया और आज तो किन्नरों का ऐसा बहुत थोड़ा भाग रह गया जिसने अपनी आदिम किरात भाषा के कुछ अंश को सुरक्षित रखा है।"

आज भी किन्नौर में रामपुर से लेकर हर गाँव में एक ओर बौद्ध मंदिर है तो दूसरी ओर हिंदू मंदिर। कहीं-कहीं तीन-तीन मंदिर हैं–बौद्ध मठ, हिंदू मंदिर और स्थानीय या ग्राम देवता। यहाँ बौद्ध होने के साथ-साथ महेश्वर अर्थात् शिव और शक्ति उपासक भी विद्यमान हैं। पूह तक यह मिश्रित संस्कृति है। पूह से आगे नमग्या के इस ओर स्पिति में पूर्णतया बौद्ध लोग हैं।

समाधि काल

किन्नौर में मृतकों की समाधियाँ पाई जाती हैं। वहाँ के लोग इन समाधियों या कब्रों को खाचे-ले-खङ् या खछे रोक्खङ् कहते हैं। खाचे या खछे का अर्थ मुसलमान है, अतः खाचे रोम्खङ् मुसलमान की कब्र हुई। मुसलमानों का किन्नौर जाना और बसना असंभव है।

राहुल जी ने खाचे का अर्थ 'कश्मीरी' भी माना है। राहुल जी को जून 1948 में लिप्पा गाँव में गोम्पा के निर्माण के समय हड्डियाँ निकलने की बात पता चली। यह भी पता चला कि हड्डियों के साथ बर्तन भी निकलते थे। राहुल जी ने एक खेत में कब्र खुदवाई जो तीन हाथ लंबी, डेढ़ हाथ चौड़ी और हाथ भर ऊँची थी। कब्र में उन्हें एक दीर्घ कपाल आदमी की खोपड़ी मिली जिसका लंबाई का आधा घेरा 18 इंच और चौड़ाई का आधा घेरा 6 इंच था। स्थानीय निवासी पंजीराम के यहाँ उन्होंने एक कटोरा और कलात्मक मद्य कुतुप भी देखा जो उसे कब्र से मिला था। अतः राहुल जी ने निष्कर्ष निकाला कि लिप्पा के प्राचीन लोग आजकल की तरह गोलकपाल नहीं, दीर्घकपाल थे। वे मुर्दे गाड़ते थे। मुर्दों का सिर पश्चिम को होता था और मृतक के साथ खाद्य और पेय रखा जाता था। ये समाधियाँ उस युग की हैं जब यहाँ के लोगों का संपर्क गोलकपाल तिब्बती लोगों से नहीं हुआ था। किन्नर किरातों का पहला समागम खसों से हुआ।

नाग पूजा

पौराणिक 'नाग' लाहौल तथा चंबा की भाँति किन्नौर में भी विद्यमान हैं। किन्नरों के साथ नाग भी इस क्षेत्र में विद्यमान थे। किन्नौर में भी नागों की उत्पत्ति जल स्रोतों से हुई। वे झील या तालाबों से उत्पन्न हुए। नाग यहाँ भी जल स्रोतों के स्वामी थे।

पौंडा में नागों का जन्म हुआ। पौंडा से एक कन्या का विवाह सापनी में हुआ। उस कन्या द्वारा लाए साँपों के कारण ब्रुआ गाँव में भी पानी ही पानी हो गया। बरी गाँव का नाग मीरू भी एक तालाब से उत्पन्न हुआ। साँगला में तीन नाग पर्वत में स्थित झील से आए।

किन्नौर में भी नागों की उत्पत्ति की कथाएँ कुल्लू से मिलती-जुलती हैं। कुल्लू के एक गाँव में एक कन्या से नागों की उत्पत्ति हुई। अट्ठारह नाग और अट्ठारह नारायणों की कथाएँ वहाँ भी प्रचलित हैं। नारायण ने नागों पर विजय प्राप्त की जो नाग जाति पर आर्य जाति की विजय की प्रतीक है।

किन्नौर के उरनी में नाग देवता का एक गीत है। नाग एक पत्थर के नीचे अदृश्य रहता था। नाग ने प्रकट होने के लिये नारायण से प्रार्थना की। नारायण अपने दो देवता चगाँव के महेश्वर के पास भेजे। नारायण के अनुरोध पर महेश्वर ने नाग को बाहर आने की आज्ञा दी। इस कथा से भी पता चलता है कि नागों के ऊपर नारायण महेश आदि देवताओं का प्रभुत्व बन चुका था।

नाग, पानी के स्रोतों के देवता थे, इस विषय में एक कथा और भी प्रचलित है। वसेहरू नाग के विषय में कथा है कि एक महिला को घास काटते हुए एक सोने का मोहरा मिला। इसे वह घर ले आई और भेड़ बकरियों के कमरे में रखा। जब सुबह उठकर देखा तो वहाँ पानी ही पानी था जिस में भेड़ बकरियाँ डूब गई थीं। इस मोहरे को उसने उठाकर एक ब्राह्मण को दिया जिसने इसे अनाज में रखा। वहाँ भी पानी ही पानी हो गया। अंततः नाग का मंदिर बनाया गया। यह नाग बर्फ, पानी का देवता माना जाता है। नाग ने वहाँ एक झील बनवाई जो सिंचाई के काम आती है।

एक किंवदंती है पुराने समय में एक लामा ने तिब्बत से एक व्यक्ति के पास टोकरी में बहुत से नाग भेजे। जब वह 'यू मिग-ग्यलसा' में पहुँचा तो उसे टोकरी खोलकर देखने की इच्छा हुई। उस के टोकरी खोलते ही टोकरी में से नाग बाहर भाग गए। जहाँ-जहाँ वे नाग गए वहाँ झरना या पानी का स्रोत उत्पन्न हो गया। इस पानी के स्रोत को 'यू-मिग-ग्यलसा' कहा जाता है। उन नागों में से एक नाग अंधा था जो वहीं गिर गया। उसके झरने से कम पानी निकला। अतः इसे अंधा स्रोत कहा जाता है।

सापनी, ब्रुआ, पौंडा में उत्पन्न नागों की भी ऐसी ही कथा है। ब्रुआ में पानी की कमी थी। पौंडा गाँव की एक लड़की का विवाह ब्रुआ में हुआ। उन कन्या को प्रातः

पानी लेने जाना पड़ता और शाम तक घर लौटती। एक बार वह मायके आई तो पिता के सिर में जूएँ देखने लगी। पिता को नींद आ गई थी कि मुँह पर पानी की बूँद गिरने से वह जाग गया। वह बेटी का आँसू था। बेटी ने गाँव में पानी की कमी का उल्लेख किया। प्रातः जब वह ससुराल चली तो पिता ने एक पिटारा दिया जिसे जिसे रास्ते में न खोलने की हिदायत दी। रास्ते में उसे पिटारा खोलने की उत्सुकता हुई। उसने पिटारे का ढक्कन जरा सा खोला, उस में से एक साँप बाहर भाग गया। वहीं वह झाड़ियों में छिप गया। वहीं से पानी का एक झरना फूट पड़ा। यह झरना वांगतू के पास है। कड़छम के पास पिटारा खोलने पर दूसरा साँप भाग निकला। फिर सापनी गाँव के नीचे पिटारा खोला तो एक साँप का बच्चा और निकला। अभी भी पिटारे से साँप के चार बच्चे निकलने का प्रयास कर रहे थे। घर पहुँचकर उसने पिटारा खुड्ड में, जहाँ पशु बाँधे जाते हैं रख दिया। खुड्ड भी तालाब बन गया।

जिस खुड्ड में पिटारा था, इस समय वह देवता की कोठी है।

इस कथा में एक कुलटा स्त्री के बहकाने में आने पर उस कन्या द्वारा सभी नागों को मारने की कथा है। दराट के काटे नागों का एक बड़ा अजगर बना जो 'दुलिङ्' चोटी पर पहुँचा जहाँ से दुलिङ् खड्ड निकली।

कन्या ने जब साँपों को दराट से काटा तो वे संख्या में अट्ठारह थे। अतः अट्ठारह नागों का उल्लेख यहाँ बार-बार हुआ है। कुल्लू में भी ऐसे ही अट्ठारह नाग उत्पन्न हुए।

किन्नौर में सापनी, ब्रुआ, पौंडा, साँगला, छोटा कम्बा, रापङ्, शिशेरिङ्, लियो, आदि स्थानों में हैं। नागपाश बाद में आर्यों का एक अचूक अस्त्र भी बना।

अन्य देवता

नारायण, महेश्वर तथा देवी मन्दिरों के अतिरिक्त किन्नौर में ठडे गाँव में बोरेस कुल्लो देवता हैं जिसे रिब्बा के कासू राजस ने मिट्टी से पैदा किया। इस देवता का विवाह केदारनाले की उसी गाँव की सहायक देवी से हुआ।

कासूराजस का मन्दिर रिब्बा गाँव में है। सौनिगे का मंदिर राक्छम में है। राक्छम में ही देवता शमशीर भी है। हिरमा देवी का मंदिर कफौर में है जिसने बाणासुर विवाह किया। इस प्रकार गन्धर्वपस (जानी गाँव), युल्सा (नमग्या), डबला (कानम), पांडव (कानम), टङ्टा (लिप्पा), लांगूरा वीर (कामरू), शिशेरिङ्, रोघी नारनेस, ख्वाङ्नी मरकारिङ् रारङ् पाथौरो (पांगी), युल्सा (रोपा), छकोलिंङ् (लवरङ्), खोरमोश (स्पीलो) युल्सा (सुङ्नम), क्यङ् मायुङ् (जंगी, अकपा), ओरमिग (मूरङ्), डबला (हाङ्गो), जोमातोक, तालिङ्सा (लियो), युल्सा, शूमा, ग्यलबू (श्यालखर), पुरग्युल शू (मालिङ् नाको), डबला, देदुम युल्सा (चांगो), रक्शू (मेबर), देवता हैं। गृह देवता भी कई जगह स्थापित हैं। ये देवता नारायण, महेश्वर तथा देवियों से अलग अस्तित्व रखते हैं अतः इस में कुछ मूल देवता हो सकते हैं जो आर्य संस्कृति तथा

बौद्ध धर्म के प्रभाव के पहले के हों।

माथी देवी छितकुल, भगवती देवी राक्छम, नारायण, जानी गाँव (यहाँ नारायण गंधर्वपस का सहायक है और गंधर्व से छोटा है) नारायण नमग्या (हरिजनों का देवता), बद्रीनाथ, कामाख्या देवी कामरू, देवी चंडिका रोपा, काली रोपा, कामशू नारायण मेबर आर्य देवता मंदिर हैं।

कामरू में राजा कल्याण सिंह तथा छत्र सिंह (बुशहर के 112 वें तथा 96 वें राजा) को भी देवता माना जाता है जिन के बाकायदा रथ बने हैं।

किन्नौर के इतिहास के बारे में राहुल जी लिखते हैं–

किन्नर (कनौर) के इतिहास को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है–

1. किन्नर (प्राग्-खश, प्राग्-आर्य)-काल (ताम्र युगाई 8-10वीं सदी से पूर्व), 2. आर्य-खश (प्राग् भोट)-काल (ईसवी 7वीं सदी तक), 3. भोट-काल (ईसवी 13वीं सदी तक) 4. ठाकरशाही (ईसवी 15 वीं सदी तक) और 5. कामरू (रामपुर) राजवंश (फरवरी 1948 ई० तक)।

प्रथम काल की भौतिक सामग्री अभी हमें निश्चित तौर से नहीं मिली है। भाषा के सहारे कुछ बातें हम पहले लिख चुके हैं उससे यह भी मालूम है कि किसी समय यह भू-भाग मोन्-ख्मेर या किरात जाति का निवास स्थान होने से इंदोचीन और इंदोनेशिया की जातियों से लगातार संबंधित था। उस समय से बहुत पीछे भोट-काल के आरंभ होते तक तिब्बत के भीतर भी किरात या मोने लोग रहते थे। नेपाल-उपत्यका से उत्तर तिब्बत के भीतर कि-रोग् वाला इलाका मोने-युल (मोने-देश) कहा जाता है। आज भी मध्य तिब्बत के दक्षिणी भाग में अवस्थित बहुतेरे ध्वंसावशेषों को मोने-पा लोगों की पुरानी बस्तियाँ बतलाया जाता है।

11वीं-12वीं शताब्दी के बाद बिसाहर में भी अनेक ठाकुरों का राज्य था, यह बात गढ़वाल, कुमाऊँ के उदाहरण से ही नहीं, बल्कि पड़ौसी तिब्बत के डरी के इतिहास से भी मालूम होती है। हरेक ठाकुर अपने को परम स्वतंत्र मानता था, और वह अपनी-अपनी अलग ढपली बजाता था। ईसवी 13वीं सदी तक बिसहार के कम-से-कम कनौर इलाके पर पश्चिमी तिब्बत गूगे के राजाओं का शासन था। फिर 15वीं सदी के अंत तक ठाकुरशाही रही। 13वीं सदी के मध्य में ग्रगस-साह-प-दे, (कीर्तिसेन) गूगे का राजा था। मानसरोवर से पश्चिम के तिब्बती भूभाग को गूगे कहा जाता था। कीर्तिसेन के उत्तराधिकारी जिन्दरमल, अजितमल, कलनमल, परतपमल (1320 ई०) हुए। इनका कुछ प्रभाव कनौर पर भी रहा होगा। अनेक ठकुराइयों में बँटे रहने पर भी चिनी का कुछ ज्यादा महत्त्व था, तभी भोटवासी आज भी इसे ग्यल-सा (राजधानी) चिने कहते हैं। अधिक चौरस और उपजाऊ भूमि होने के कारण बसपा-उपत्यका का साँगला गाँव भी एक अच्छी-खासी राजधानी होने का अधिकारी

था, लेकिन वहाँ और पास के मोने (कामरू) के दो अलग-अलग ठाकुर थे, जिनमें आपस में प्रतिद्वंद्विता रहती थी।

यह भी संभव है, कि गुर्जर-प्रतिहार और गहड़वार वंशों के उत्कर्ष के समय कनौर पब्बर उपत्यका तो अवश्य कन्नौज-साम्राज्य के भीतर रही होगी। चिने के पास कोठी-जो 7000 फुट की ऊँचाई पर होने के कारण कनौर का केंद्रीय नगर बनने के अधिक उपयुक्त है। परंपरा बतलाती हैं कि यह स्थान कनौर में किसी समय बड़ा महत्त्व रखता था। कनौर में केवल वहीं प्राप्य दसवीं शताब्दी के हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी इसी बात को प्रमाणित करती हैं। कोठीदेवी के कायथ (लेखक) नेगी ठाकुरसिंह जिस परंपरा को सुना रहे थे, उसके अनुसार नीचे से भागकर आया कोई राजा कोठी में महल बनवाकर रहने लगा। एक दिन जब वह रानी सहित बाहर टहलने या बगीचे में चौपड़ खेलने में लगा था, तो देवी ने उसके महल में आग लगा दी, और राजा को कनौर छोड़कर भाग जाना पड़ा। इस परंपरा की व्याख्या यही हो सकती है कि महमूद गजनवी के बनारस तक के आक्रमण से जर्जरित होकर जब प्रतिहार-साम्राज्य ध्वस्त हुआ, तो कन्नौज का राजा या उसका कोई राजकुमार भागकर यहाँ आया। कन्नौज के बिगड़े राजकुमार का खर्च छोटा-सा किन्नर देश वहन नहीं कर सकता था। लोगों ने विद्रोह किया, और 11 वीं सदी के प्रथम पाद में भगोड़े राजा को यहाँ से भागना पड़ा। कोठी में आज भी मौजूद सुंदर पाषाण-कुंड के पास राजा ने एक भव्य मंदिर बनवाया। हो सकता है, मंदिर काष्ठ का रहा हो, और जल जाने से उसका अवशेष नहीं मिलता, या खुदाई करने पर कुछ मिल जाए। उसी मंदिर में दो फुट की चतुर्भुजी शिव-मूर्ति के साथ उतनी ही बड़ी एक दूसरी मूर्ति भी कहीं पर स्थापित थी, जिसके प्रभामंडल का एक खंड मालाधारी किन्नर मिथुन के साथ वहीं रखा हुआ है। बहुत संभव है, वह मूर्ति गौरी की थी। कोठी की इस अद्‌भुत शिवमूर्ति और दूसरी काष्ठ-पाषाणमयी हिंदू मूर्तियों की व्याख्या केवल इसी तरह की जा सकती है कि प्रथम भोट-साम्राज्य के पतन के समय (10वीं सदी) और पश्चिमी तिब्बत (गूगे) के भोट-राजवंश के शक्तिशाली होने के बीच किन्नर देश पर कुछ समय गुर्जर-प्रतिहारों का अधिकार हो गया। फिर गूगे के राजवंश का भी हाथ शरणार्थी प्रतिहार राजा के विरुद्ध हुआ। यह भी याद रखने की बात है कि इसी समय एक प्रतिहार राजकुमार भागकर सिंहल गया था, और वहाँ कुछ समय तक उसने राज्य भी किया। कुल्लू के राजवंश को पाल वंश की शाखा बतलाया जाता है। परंपरा कहती है कि मुसलमानों के आक्रमण से परास्त हो 11वीं सदी के तृतीय पाद में कोई राजकुमार मायापुरी (हरिद्वार) और गढ़वाल के रास्ते कुल्लू पहुँचा।

11वीं सदी में पाल-वंश पर मुसलमानों के कारण कोई संकट नहीं आया था। नाम के साथ पाल आने के कारण उनका संबंध पाल-वंश से जोड़ा गया, पर कन्नौज

के प्रतिहार-वंश में भी पाल नाम वाले अनेक राजा हुए। महीपाल तो प्रभुता और प्रताप में दूसरा विक्रम था। हो सकता है पाल-उप-नामक प्रतिहारवंशी ही राजा या राजकुमार पहले कनौर में और फिर यहाँ से भागकर कुल्लू गया हो। गूगे-काल (10वीं से 13वीं सदी) में एक बार फिर भोटवासियों की प्रभुता जगी थी। उस समय फिर कनौर पर उनका शासन स्थापित हो गया था। काशि-राजा के बारे में 'भोट्टन्ता ट्टिन्त चले' की बात जो समकालीन कविता में मिलती है, उससे यहा पता लगता है, कि उतरी भारत के अंतिम प्रतापी राजवंश-कन्नौज के गहड़वार-के समय भी भोटदेशियों के साथ झगड़ा रहता था, पर कहा नहीं जा सकता, कि इस समय कनौर पर गहड़वारों ने अधिकार प्राप्त किया था।

ठाकुरशाही का बोलबाला उसी समय हुआ, जबकि दक्षिणी और पूर्वी सीमा पर कोई शक्तिशाली राज्य नहीं रह गया। 14वीं सदी के आरंभ में, जबकि गूगे-राज्य की शक्ति क्षीण हो गई थी। हर दो-दो चार-चार गाँवों के स्वतंत्र राजा बन गए, जिन्हें कनौरी भाषा में ठकरस कहते हैं। ठाकर, ठाकुर और ठकरस मूलतः किस भाषा का शब्द है, यह कहना मुश्किल है। इसका प्रयोग काठियावाड़ और बंगाल तक मिलता है। कहीं यह राजपूतों की उपाधि है और कहीं बंगाल-मिथिला की तरह ब्राह्मणों की। बहुत-सी जगहों में हजाम को भी ठाकर कहा जाता है। जगन्नाथपुरी के देवता को ठाकुर जी कहते हैं। यदि यह तिब्बत भाषा का शब्द ठक्-कर् (श्वेत-रक्त) है, तो यह राजा के रुधिर के संबंध को प्रकट करता है लेकिन, तिब्बती भाषा में इसका प्रयोग नहीं देखा जाता। एकताबद्ध होने से पहले संभवतः कनौर सात ठाकुरों में विभक्त था, जिसको 'सातखूंद' कहते थे। इन खूंदों में प्रत्येक के अपने-अपने ठकरस् और अपने-अपने राजदेवता थे, जैसे–

नाम	स्थान	देवता
1. दोशो खूंद	गौरा और नीचे	बसारू
2. पंद्रह-बीस खूंद	गान्मी	लाछी
3. अठारह-बीस खूंद	सूंगरा	मैसू (मैसूर)
4. बङ्-पो-खूंद	भावा	मैसू
5. पग्रामं (राजग्राम) खूंदठौलङ्	(चगाँव)	मैसू
6. छुवङ् खूंद	चिनी (छुवङ्)	चंडिका (कोठी)
7. टुक्पा-खूंद	कामरू (मोन्)	बदरीनाथ

आज भी कोठी की चंडिका देवी तथा दूसरे कनौरी देवता धमकाते हैं। हमने सातों खूंदों और अठारह गढ़ों को नष्ट कर दिया। तुम्हारी भी वही दशा करेंगे, यदि बात नहीं मानोगे। अठारह गढ़ कनौर से नीचे रामपुर से शिमला तक के अठारह

राजाओं के गिने जाते थे। सातों खूदों में दोशो-खूंद कनौरी-भिन्न कोची (पहाड़ी) भाषा क्षेत्र में है, बाकी कनौरी भाषा में। हो सकता है, उस समय दोशो-खूंद में भी कनौरी भाषा बोली जाती है। लेकिन, सातों खूंदों में सात ही ठाकुर थे, यह मानना गलत होगा। कनौरी खूंदों के भीतर भी लिप्पा (लिपिंग), लबरंग, मोरंग (स्गनम्), तंग-लिंग और चोलिंग में ठाकुर थे। सुंगनम् में भी ठाकुर रहा होगा। पुराने ठाकुरों के वंशजों में लबरंग के नीचे स्पिलो में एक ठाकुर-वंश का पता मिलता है।

इन ठाकुराइयों को ध्वस्त करने में बारूद के हथियारों ने भी काम किया। ठाकुरों ने बड़े-बड़े गाँवों में अपने गढ़ बना रखे थे, जिनमें से कुछ आज भी लबरंग, मोरंग और कामरू के गढ़ों के रूप में विद्यमान हैं। ये गढ़ 30-40 हाथ लंबे, उसमें कुछ कम चौड़े और 6-7 मंजिला है। उदाहरणार्थ मोनेप्रा या मोनेगौरंग के नाम से वहाँ के लोगों में प्रसिद्ध कामरू का किला जमीन पर 24 हाथ लंबा और 24 हाथ चौड़ा है। नीचे वहाँ तक वह ठोस है जहाँ सीढ़ी लगती है। ऊपर पाँच तल्ले हैं। प्रथम तल पर पाँच घर है—गोदाम, स्नानकोष्टक, पानीघर, रसोई और काठघर। जब सारे किले का घेरा केवल 96 हाथ है तो कोठरियाँ कितनी छोटी होंगी। यह अच्छी तरह समझा जा सकता है। दूसरे तल के तीन कमरों में एक बहुत छोटा, दूसरा उससे कुछ बड़ा और तीसरा सबसे बड़ा पूजागृह है। यहाँ आठों थानापति देवताओं के बीच में राजगद्दी रखी है। तीसरे तल पर पाँच कमरे हैं, जिसमें एक कभी खोला नहीं जाता, दूसरे में त्योहार के समय सैकड़ों भेड़-बकरियाँ काटी जाती हैं, जबकि हर तीसरे वर्ष भीमाकाली सराहन से यहाँ पधारती हैं। तीसरे कमरे में बलिपशु का प्रोक्षण किया जाता है, चौथे में भीमाकाली बैठती हैं। पाँचवें कमरे में हथियार, कवच, बारूद, सीसा आदि सामान रखा जाता है। चौथे तल के कमरों में सबसे बड़ा दरबार-हाल है, दूसरा रनिवास है, तीसरा स्नानकोष्टक, चौथा बड़ा रसोईघर और पाँचवाँ पानीघर। पाँचवाँ तल सबसे अंतिम और सबसे ऊपर है जहाँ एक छोटी-सी कोठरी है, जिसमें बटकुला देवता निवास करता है।

कनौर में अब भी बौद्ध-धर्म की प्रधानता है, और वहाँ तिब्बती भाषा में हस्तलिखित कितनी ही पुरानी पोथियाँ नग्‌ग्या, स्पू, सुंगनम्, कनम् आदि में मिलती है। पुरानी प्रथा के अनुसार पुस्तक के आरंभ में लिखने वाले दाता के साथ तत्कालीन राजा के नाम का भी उल्लेख होता है। कितनी ही पुरानी मूर्तियों पर भी लेख होते हैं, जिनसे उस समय के इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। कामरू में 22 इंच लंबी एक सुंदर चतुर्भुज अवलोकितेश्वर की धातुमूर्ति वहाँ के बुद्ध-मंदिर में मौजूद है, जिसकी आँखों पर सदा उज्जवल रहने वाला चाँदी का पानी बतलाता है कि मूर्ति छह-सात सौ वर्ष के कम पुरानी नहीं होगी। मूर्ति अति सुंदर संतुलित है। बाईं ओर के दोनों हाथों में से उपरले में पुस्तक, निचले में कमल, दाहिनी ओर के उपरले में अक्षमाला, और निचले

में वरदहस्त। मूर्ति खड़ी और त्रिभंगी है। मूर्ति के पाद-पीठ पर पुरानी चतुरस्त भोट-लिपि में तीन पंक्तियों का लेख खुदा हुआ है—"लन्-बित्-व्यि- व-दस-फ़्यग्-लेन्-मज़द्। स्मोन्-ब्लोन छै-क्लु मगोन्-म्छेद यु-स्रस-क्विस् यौन्-बदग्-ग्यिस छै-दस्-प स्मोन्-ब्लोन्-छै शेस-बचन्-ग्यिस्र बसौद्-नस्र-सु रिगस्-ग्सुम्-ग्यिस्कु-ब शेड्-सु ब्सौल-बस्। छै-दस्-ल दङ् मर-यस्-पडिसेम्स-चन् थम्-चद्-स्ग्रव-प प्यद-बर ग्युरद्-चिग्।" इस लेख से मालूम होता है कि मोने (कामरू) के महामात्य ग्यानी (शेस्-चन्) के पुण्यार्थ महामात्य नागनाथ और उसके परिवार ने 'त्रिजातिक मूर्ति' का निर्माण करवाया। 'त्रिजातिकनाथ' से बौद्ध-धर्म के तीन बड़े बोधिसत्वों-अवलोकितेश्वर, मंजुश्री और वज्रपाणि को पुकारा जाता है। इसलिए इस मूर्ति के साथ मंजुश्री और वज्रपाणि की भी दो धातु-मूर्तियाँ रही होंगी, जो नष्ट हो गईं या किसी दूसरी जगह चली गईं। मूर्तिकला और इतिहास दोनों की दृष्टि से अवलोकितेश्वर की यह मूर्ति बड़ा महत्त्व रखती है।

यह तो निस्संदेह है, कि कामरू के ठाकुर ने ही दूसरे राजाओं को हराकर कनौर को एक किया। लेकिन, वह कौन राजा था, इसे निश्चयपूर्वक कहना मुश्किल है।

किन्नौर के सात खुंद और देवता

पुराने समय में किन्नौर को सात खुंदों में विभक्त किया गया था। सात खुंद अर्थात् सात खंड। जैसे कुल्लू में कोठी, फाटी की विभाजन है। वैसे ही किन्नौर में 'घोड़ी' चार-पाँच गाँवों का समूह था, खुंद एक परगने को कहते थे। घोड़ी से यह अभिप्राय लिया जाता है कि गाँवों का यह समूह राजा को अन्य कर के साथ घोड़े या घोड़ियाँ भी देता था। किन्नौर या बुशहर के खुंद को शिमला आदि क्षेत्रों में परगना कहा जाता है।

जेरार्ड ने सात खंडों के नाम इस प्रकार दिए हैं–

1. हंगरंग तातीर (नाको, चांगो, हांगो)
2. शवांग या शुई (गुंगल, सुमछो, जुंगडम, योशवांग)
3. टुकपा (गीनम, रीडुंग, तांगलिंग, कामरू)
4. रासग्राम (अरली, पुरली)
5. वांगपो (वांगपो)
6. अठारह-बीस (बरी, नालचे, ग्रोसनम, तरांडे)
7. पंद्रहबीस (रूपी, क्राबे)

गज़ेटियर में हंगरंग को शलखर, शवांग को शुआ और वांगपो को भावा कहा गया है।

इन खुंदों की अन्य विशेषता यह भी रही है कि हर ठकुराई में एक देवता भी प्रशासन में सम्मिलित था। ये देवता निम्न थे–

1. दो शो खुंद	गौरा से नीचे	बसारू देवता
2. पंद्राबीस	गाहनवीं	ला-छी
3. ठाराबीस	सूंगरा	मेशुर
4. वांगपो	भावा	मेशुर
5. पग्राम (राजग्रामङ्)	ठोलङ्	मेशुर
6. छुवङ्	चीनी (छुवङ्)	चंडिका
7. टुकपा	कामरू	बदरीनाथ

उक्त सात में पहला निचले क्षेत्र में आता है, शेष सब *किन्नर भाषी* क्षेत्र हैं। पंद्राबीस, ठारा बीस का अर्थ पंद्रह गुणा बीस, अट्ठारह गुणा बीस है।

पंडित टीकाराम जोशी द्वारा लिखित 'एथनोग्राफी ऑफ बुशहर स्टेट' (1911) में किन्नौर के निम्न देवताओं की सूची दी गई है–

1. बद्रीनाथ : कामरू या मोने गाँव।
2. भीमाकाली : कामरू या मोने गाँव (सराहन में भी)।
3. छकोलिंग डंबर : बेरंग।
4. चंडिका : रोपा गाँव, शुआ परगना।
5. छुवङ् : चाँग गाँव, शुआ परगना।
6. डबला : कानम, डबलिंग, डबलिंग लियो, पूह।
7. डियोडम : नाको, शुआ परगना।
8. ज्ञांग्मज्ञम : जंगी, शुआ परगना।
9. कसुराज : रिराङ् या रिस्पा, भीतरी टुकपा परगना।
10. खोरमो : पिलो या स्पिलो, भीतरी टुकपा परगना।
11. क्यूलो : रिछपा या रिस्पा, शुआ परगना।
12. महेश्वर : सूंगरा ठाराबीस परगना।
    ग्रामङ् या कथगाँव, भाबा परगना।
    चगाँव या ठोलङ् राजगाँव परगना।
13. मारकलिङ् : द्युवांगी शुआ परगना।
14. माथी : छितकुल, बाहरी टुक्पा परगना।
15. मिलिख्यङ् : अकपा, शुआ परगना।
16. नागेस : बेरंग, ब्रआंग, छसंग, छोटा कम्बा, किलबा, मेबर, मीरू, साँगला, सापनी या रापङ् गाँव।
17. नागिन : बरीगांव, ठाराबीस परगना।
18. नारायण : बरेसेरिंग गाँव बाहरी टुकपा परगना।
19. नारेणस, अरसंग, चिनी, शेहांग, उर्नी, युआ गाँव, चगाँव, ग्रामङ् तथा सुंगरा में भी (तीन महेश्वरों के साथ) उरमिग, मूरंग या गिनम गाँव, भीतरी टुकपा परगना।
20. पाथारो : रारङ् तथा पुन्नम गाँव, शुआ तथा राजगाँव परगना।
21. रोगशू : रोगी गाँव, शुआ परगना।
22. शंकरस : पवारी या पोर गाँव, भीतरी टुकपा परगना।
23. शंकरस : रकछम, बाहरी परगना।
24. शेशरिङ् पांगी शुआ टुकपा परगना।
25. रपुक (शंकर) : ठंगी, भीतरी टुकपा परगना।
26. शुवाङ् चंडिका : कोठी, शुआ परगना।
27. त्रासङ् : त्रंडा गाँव, ठाराबीस परगना।
28. तेरस : रूपी गाँव, पंद्राबीस परगना।
29. टुंग्मा डंबर : ग्याबङ्, शुआ परगना।
30. उषा : निचार तथा बड़ा कम्बा गाँव, ठाराबीस तथा पंद्राबीस परगना।
31. युल्सा : सून्नम गाँव, शुआ परगना।

कनैत या ठाकुरों के उपवर्ग

किन्नौर में ब्राह्मण नहीं हैं। अंतिम ब्राह्मण परिवार सराहन में ही रह जाते हैं। यद्यपि बुशहर में ब्राह्मण विद्यमान हैं जो मुख्यतः तीन प्रकार के हैं–पहले 'उत्तम' जो हल नहीं जोतते। दूसरे अचार्ज जो दूषित दान लेते हैं। तीसरे वे, जो हल जोतते हैं। ऐसे ही काँगड़ा में भी हल न जोतने वालों को नगरकोट कहा जाता है और उत्तम माना जाता है। हल जोतने वालों को हलबाह कहते हैं जो निम्न स्तर के माने जाते हैं। अचार्ज या चार्ज मृतक के संस्कार संबंधी दान लेते हैं जो निम्नतर समझे जाते हैं। बुशहर में राजपूतों के खश तथा राहू वर्ग हैं।

किन्नौर में मुख्य जाति कनैत है जिन के वर्ग पंडित टीकाराम जोशी (1911) ने निम्न दिए हैं। इनके अतिरिक्त केवल दो जातियाँ हैं–एक चामङ् जो जूते बनाते हैं और बुनकर हैं तथा डोमङ् जो लोहार तथा बढ़ई हैं।

प्रथम श्रेणी कनैत

राजगाँव परगना

उपवर्ग का नाम	गाँव
बरयान	चगाँव या ठोलंग
स्कामतस	सापनी या रापंग
वाङ्गमो	किल्बा
थंगार	किल्बा
दामेस	उरनी या ऊरा
मोएलस	मीरु या मीरतींग
साना	मीरु या मीरतींग
शवाल	यूला
डाफरेंटो	याना-मेल्लाम
बीटारयन	पूनंग
सांगचान	चगाँव या ठोलंग
रोकेडू	चगाँव या ठोलंग
देरेयान	चगाँव या ठोलंग
दलेयान	चगाँव या ठोलंग

शुआ परगना

बोरस, पोरस	जंगी और सुन्नम
रनशयाँ	यवारिंग
धनशयाँ	ब्रेले
फ्राकपा	कोठी या काष्टामयी
पालसर	तेलंगी
अलदंग, अंगलदेन	लाबरंग
छुगपो	कानम
बारजी	लिप्पा
श्यालटू	लिप्पा
ठोलपा, ठोलपा	रोपा
लोकटस	कानम और सुन्नम
पाँगटू	पाँगी
शूरयान	रोगी
लस्पा, लास्पा	लाबरंग
सीली	कानम
ग्योलंग	पीलो या स्पिलो
थारमी	तेलंगी
पुयान, पुयांग	लाबरंग
माकाला	रोपा
मीसपोन या मीशपोन	जंगी

भीतरी टुगपा परगना

वर्ग का नाम	गाँव
भिष्ट	पवारी
कलदन	रिस्पा
राठू	रीदङ् या रिब्बा (वास्तव में यह ठंगी गाँव में होते हैं)
जयोग्चे	ठंगी
धानगेह	मूरंग या गीनम

बाहरी टुगपा परगना

रेंपालटू	साँगला
चेथा	साँगला
चांगकू	कामरू या मोने
फ़ानेयान	साँगला

दूद्यान	कामरू या मोने

पंद्रहबीस परगना

यूला	नाथपा
छोगला	बड़ा कम्बा

ठाराबीस परगना

टेरस	सूंगरा और ग्रौसनम
जौगटो	पानवी
ज़ीनटू	बरी

द्वितीय श्रेणी के कनैत

भीतरी टुगपा परगना

ब्रालबंग	रीदग या रिब्बा
चमापो	रिस्पा और रिब्बा
काठु	रिछपा या रिस्पा
मौजरंग (मादरस)	रिस्पा
राकसस	रिब्बा
शयाली	रिब्बा
सोठा	बारंग
ऊआ	रिब्बा और रिस्पा

शुआ परगना

खरयान	पाँगी
शूना	असरंग
टूक्यान	चीनी
खिन्नपा, ख्याम्पा	पूह या पूवे

राजगाँव परगना

आज़ेन	चगाँव या ठोलंग
मशान	मेल्लाम या याना

तृतीय श्रेणी के कनैत जो कुम्हार का काम करते हैं

वंगचान	मूरंग (भीतरी टुगपा)
वाज़ा	चगाँव, राजगाँव

सागर से संन्यासी : यात्रा

बिखरे पड़े हैं सागर किनारे जितने शंख, उतनी ही छाल छोड़ते हैं पर्वत पर भोजवृक्ष। दोनों वस्तुएँ पवित्र हैं। दोनों तक पहुँचने के लिए लंबी यात्राओं की दूरी है। दूर की वस्तु दुर्लभ होती है। ऐसी अप्राप्य वस्तुओं के दर्शन होते हैं कठिन यात्राओं से। जैसे भीम हिमालय की ओर से उड़कर आए कमल के लिए यक्षों से जा भिड़े या अर्जुन पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिए जा टकराए किरातों से। यक्षराज कुबेर की अलकापुरी या किरातों के वास इंद्रकील पर्वत की तरह हिमालय का एक पौराणिक भू-भाग है किन्नौर।

रहस्यमयी पर्वत श्रृंखलाओं और तिलस्मी घाटियों की भूमि है किन्नौर जहाँ यह पता नहीं चलता कि केसर के फूल की भाँति रंगीन पत्तियों के भीतर कौन-सी बेजोड़ दुनिया आबाद है। आकाश को उठे पर्वतों के बीच गहन ओर संकरी घाटियों के द्वार दूर से नहीं दिखते किंतु भीतर अपनी गोद में समेटे हैं सेब, बादाम, चिलगोजा, जीरा और केसर की खेतियाँ। सीधी, ऊँची और ठोस चट्टानें, जहाँ से ओस की भाँति टपकती हैं शिलाजीत। अलग-अलग घाटियों की अलग फसल। चिलगोजा यदि रिकांग पियो में होता है तो जीरा वास्पा के किनारे। केसर की खेती साँगला की घाटी में होती है तो बादाम के लिए स्पिलो प्रसिद्ध है।

बर्फीली चोटियों के महामौन में भी गंभीर ध्वनि जो सीधे मन-मस्तिष्क पर चोट करती है। और नीचे फैले भोज वृक्ष जगह-जगह अपनी छाल बिखेरते। भोजपत्र जैसी पौराणिक ओर वंदनीय वस्तु यहाँ बिखरी पड़ी है, जैसे सागर किनारे शंख। शंख और भोजपत्र! हमारी आर्य संस्कृति के प्रतीक। दोनों ही दो छोरों की दुर्लभ वस्तुएँ। दोनों की दूरी सूर्य के उगने और डूबने तक लंबी। फिर भी दोनों ही वस्तुएँ मिलती हैं प्रत्येक भारतवासी के घर में, पूजागृह में। ये दूरियाँ सिमटी हैं यात्राओं से। यात्रा जो सेतु है। जोड़ती है एक को दूसरे से। पहाड़ को समुद्र से। शंख को भोजपत्र से। पुरातन ऋषि-मुनियों ने यात्राओं से ज्ञान के द्वार खोले हैं। एक अलौकिक अनुभव हुआ होगा जब सागर से आए संन्यासी ने भोजपत्र माथे से लगाकर फूँका होगा शंख। जिसका नाद फैला चोटी दर चोटी, किन्नर कैलास होता हुआ सड़क मार्ग से जुड़े एशिया से सबसे ऊँचे गाँव किब्बर तक।

हमारे पौराणिक साहित्य में यक्ष, गंधर्व तथा किन्नरों का बार-बार वर्णन आया है। ब्रह्माजी के मानस पुत्रों—मरीची, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु में से

पुलस्त्य के राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष हुए। यक्ष, गंधर्व और राक्षसों के लिए दिन के अंत में लालिमामयी संध्या के बाद अस्सी लव (चालीस निमेष) के अतिरिक्त सारा समय नियत किया गया था। दिन का समय मनुष्यों के लिए था। ये सभी जातियाँ पर्वतवासी थीं।

खतरनाक सफर

किन्नौर की यात्रा में शिमला से रामपुर होते हुए ज्यूरी से आगे आता है किन्नौर का पहला गाँव चौरा। सड़क के नीचे बसा छोटा गाँव अपनी अलग पहचान लिये हुए। सतलुज किनारे गाँव के अंत में ऊँचे टीले पर बना किलानुमा मंदिर उस अद्वितीय काष्ठ वास्तुकला का परिचय करवाता है जो किन्नौर में भव्य काष्ठ मंदिरों की बनावट में विद्यमान है। यहीं से शुरू होता है यह खतरनाक सफर जो पहली बार इस ओर जाने वाले के रोंगटे खड़े कर देता है। भावानगर तक सड़क सीधी चट्टानें काटकर बनाई हुई। कहीं-कहीं बिलकुल चट्टानों के बीच गुज़रती जैसे गुफा से निकल रही हो। एक बार तो सोचना पड़ता है कि कैसे बनाई होंगी ये सड़कें, सीधी चट्टानों के पेट फोड़कर। यह भगीरथ प्रयत्न ही तो है गंगा पहाड़ में ले जाने का। दोनों ओर सीधे खड़े पहाड़ नब्बे अंश का कोण बनाते हैं। एक ओर प्रसिद्ध हिंदुस्तान-तिब्बत रोड है, दूसरी ओर जलविद्युत परियोजना के लिए सड़क बन रही है। पार की चट्टान में खड़े मज़दूरों को देख अचंभा होता है कि ये खड़े कहाँ हैं। ज्यूरी में उन शहीदों के नाम लिखे हैं जो सड़क निर्माण के समय मारे गए। नई सभ्यताओं का तकाज़ा है आदमी को सड़क से जोड़ना, इसलिए सड़क की गंगा पहाड़ की ओर बही।

भावानगर के आगे सड़क नीचे-नीचे है सतलुज के किनारे। एक तरह से सुरक्षित। बर्फ गिरने पर पदयात्री यहाँ सुरक्षित रहते हैं। ऊपर से चट्टानें गिरें भी तो ऊपर-ऊपर से सतलुज में समा जाती हैं। हाँ, पूरा पहाड़ ही खिसक आए तब बात दूसरी है। जैसे खदरा ढांक में बार-बार कच्चा पहाड़ गिरने से सड़क सतलुज के किनारे बनानी पड़ गई। बीच-बीच में ऐसे कच्चे पहाड़ हैं जो गिरते रहते हैं। वास्तव में सड़क मार्ग नया है। पुराना पैदल मार्ग ऊपर-ऊपर से था, एक गाँव से दूसरे गाँव होता हुआ।

कौन-सा है शिवलिंग

किन्नौर का मुख्यालय रिकांग पियो अब दो भागों में विभक्त है। पहले जिलाधीश तथा अन्य कार्यालय ऊपर काल्पा में थे, अब नीचे हैं। काल्पा की ऊँचाई अधिक है। नीचे पियो 2290 मीटर की ऊँचाई पर है तो काल्पा यहाँ से दस किलोमीटर ऊपर 2900 मीटर पर। काल्पा का छोटा-सा बाजार जो बिलकुल सिरे पर है, अब सूना हो गया है। हालाँकि यहाँ चिलगोज़े के पेड़ों के अतिरिक्त देवदार हैं।

काल्पा से नीचे उतरती बार जब मैं किन्नर कैलास के फोटो लेने लगा तो एक किन्नौरी महिला ने कैमरे में किन्नर कैलास दिखाने को कहा। बातों-बातों में उसने बताया कि किन्नर कैलास पर्वत के साथ 'वी' आकार के दाईं ओर छोटा-सा उभरा हुआ लिंग है। यही असली शिवलिंग है। आजकल किन्नर कैलास के शिवलिंग के फोटो बिक रहे थे। किन्नौर के ही एक सज्जन ने बताया की ये असली शिवलिंग के फोटो नहीं हैं। ऐसे कई शिवलिंग हैं कैलास में। संभवतः उस महिला ने जो बताया, वही असली शिवलिंग होगा।

साँगला घाटी

घाटी में प्रवेश पर एक दूसरी दुनिया नजर आती है। वास्पा नदी जहाँ सतलुज में मिलती है, वहाँ से देखकर सोचा भी नहीं जा सकता कि इस सँकरे द्वार में भीतर ऐसा खुला संसार होगा।

कहा जाता है कि पूरी साँगला घाटी कभी झील थी। साँगला के अंतिम गाँव छितकुल से भी आगे तक पूरी घाटी एक भरी-पूरी झील की मानिंद लगती है। जैसे झील का बाँध टूट गया, पानी वास्पा नदी बन गया और पृथ्वी अगली ओर मांदा होकर उभर आई।

बहुत ही खुला आमंत्रण देती है यह घाटी। यहाँ से कई स्थानों के लिए रास्ते खुलते हैं। जहाँ एक ओर शिमला के दूरस्थ क्षेत्र डोडराक्वार को रास्ता जाता है, वहाँ दूसरी ओर उत्तर काशी, बद्रीनाथ धाम को। तीसरी ओर तिब्बत की ओर द्वार है।

साँगला किन्नर कैलास के पृष्ठभाग के नीचे है। साँगला रेस्ट हाऊस के ठीक ऊपर है किन्नर कैलास की पीठ। यहाँ से यह पर्वत बहुत समीप लगता है। धूप होने से इस ओर बर्फ कम टिकती है।

साँगला के ऊपर कामरू गाँव है। एक ही गाँव में कामरू किला, बद्री नारायण मंदिर और बौद्ध मंदिर। गाँव के बीच में बौद्ध मंदिर के साथ बद्रीनारायण का सुंदर काष्ठ मंदिर है। दोनो मंदिरों का एक ही प्रांगण है। जब हम वहाँ पहुँचे तो प्रातः की आरती का समय था। प्रांगण में दो बालक बैठे थे। एक नगारा बजा रहा था। मंदिर के भीतर दो रथ थे एक बद्रीनारायण का और दूसरा राजा कल्याणसिंह का। राजा कल्याणसिंह बुशैहर रियासत के प्रतापी राजा थे। कालांतर में देवता समान पूजे जाने लगे और उनका भी देवता की भाँति रथ (पालकी) बना। प्रसिद्ध बद्रीनाथ धाम की ओर सांस्कृतिक यात्रा का पहला पड़ाव है यह बद्रीनारायण मंदिर। यहाँ से देवता को उत्तरकाशी होते हुए बद्रीनाथ ले जाया जाता है।

बद्रीनाथ मंदिर के ऊपर कामरू किला है जो अब मंदिर बन गया है। पहले यह एक किला था सामरिक महत्त्व का। बुशैहर रियासत के राजाओं का यहाँ राजतिलक होता था। किले की ऊपरी पहाड़ी से कभी-कभी विद्रोही पत्थरों से हमला करते थे।

ऐसे एक हमले और किले के एक कोने में क्षति पहुँचने का जिक्र वहाँ के बुजुर्गों ने किया। कुछ गोल-गोल पत्थर भी रखे थे जो हमलावरों ने ऊपर से फेंके थे। इस समय किले के भीतर कामाक्षा देवी की मूर्ति है जिसे बुशैहर के किसी राजा द्वारा यहाँ लाया गया। इसी कारण गाँव तथा किले का नाम कामरू पड़ा है। गाँव का पुराना नाम और था। यहाँ कामाक्षा देवी ओर बद्रीनारायण तक की यात्रा का सेतु मिलता है।

साँगला के नीचे प्रदेश के कृषि विश्वविद्यालय का क्षेत्रीय अनुसंधान उपकेंद्र है। यहाँ जीरे तथा केसर की खेती की जाती है। काला जीरा यहाँ सामने के गाँव शौंग के जंगल में भी होता है। यूँ तो जीरा एक जंगली बूटी है परंतु यहाँ इसका फार्म है। इसी फार्म में केसर की खेती होती है। दो क्यारियाँ में केसर का प्रयोगात्मक रूप से सफल उत्पादन किया जा रहा है।

यहाँ केसर का फूल पहली बार देखा। बैंगनी रंग के छोटे से फूल के भीतर लाल-लाल केसर, अलग से दमकता हुआ। केसरिया रंग प्रतीक है त्याग का, बलिदान का। यह समृद्धता का प्रतीक भी है। दोनों तरह से ऐश्वर्य और समृद्धता। आध्यात्मिक और भौतिक। बौद्ध भिक्षुओं के गैरिक वस्त्रों में अध्यात्म और केसर में भौतिक संपन्नता।

साँगला और इस ओर के अंतिम गाँव छितकुल के बीच में है रॉकछम। रॉक अर्थात् पत्थर और छम यानी पुल। यहाँ कभी पत्थर का पुल हुआ करता था, इसलिए गाँव का नाम रॉकछम पड़ा, एक बुजुर्ग ने बताया।

रॉकछम गाँव के नीचे एक छोटा-सा शिव मंदिर है जो नया प्रतीत होता है। गाँव के बीच में है कलात्मक काष्ठ देव मंदिर। इस मंदिर के ऊपर गाँव के सिरे में एक दूसरा मंदिर है जो अब नया बनाया गया है। नए मंदिर में दरवाज़ा पुराने मंदिर का ही लगाया गया है। पुराने मंदिर के कलात्मक स्तंभ भी यहाँ सुरक्षित रखे हुए हैं।

इस मंदिर को 'दुमथानङ्' कहा जाता है। 'दुम' अर्थात् सभी और 'थानङ्' स्थान। इसे हिमालय के समस्त देवताओं का सभास्थल माना जाता है। यहाँ 6 माघ से 15 माघ तक देव सभा होती है जब समस्त देवता सभा में भाग लेते हैं। इन मंदिरों में माघ में बड़ी पूजा, आषाढ़ में उत्सव, भादों में फुलायच के उत्सव मनाए जाते हैं।

इस ओर का अंतिम गाँव है छितकुल। थोड़ी-थोड़ी चढ़ाई के बाद 3450 मीटर की ऊँचाई पर बसा यह अद्‌भुत गाँव है। लगभग सत्तर घर और आबादी पाँच सौ के करीब। रॉकछम में ऊँचाई 3050 मीटर और साँगला में 2680 मीटर। कब एकाएक 3450 मीटर की ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं पता नहीं चलता। आगे ऊँचे-ऊँचे पहाड़। भोजवृक्ष और कुछ बौने पेड़ देखने पर आश्चर्य भी होता है।

गांव के बीच गोल छत वाला माता देवी का सुंदर मंदिर है। ऊपर कामरू किले के शिल्प का एक किला किंतु आकार छोटा। गाँव एक स्वप्नलोक की भाँति लगता है, इतनी ऊँचाई पर जहाँ कोई आबादी होने की संभावना नहीं रहती। गाँव के लोगों

की बोली साँगला से भिन्न है किंतु रॉकछम से ग्रामीण अपना करीबी रिश्ता बताते हैं। मंदिर के माली अर्थात् गूर गंगालाल की आकृति तिब्बतियों से मिलती है। मंदिर में नवरात्रे, बिशु (बैशाखी), फुलायच, बूढ़ी दीवाली, श्रावण में शानू तथा भादों में जागरा आदि त्यौहार मनाए जाते हैं।

रूठना देवी का

साँगला घाटी से वापसी पर मुख्य सड़क में पवारी से ऊपर मार्ग है रिकांग पियो के लिए। रिकांग पियो ज़िला किन्नौर का मुख्यालय है। ऊँचाई 2290 मीटर। पियो से ऊपर कोठी में है देवी कोठी का मंदिर। देवी कोठी में देवी नहीं थी। मंदिर खाली था। पता चला कि देवी रूठकर चली गई है। रात को पहरेदारी के लिए किसी गाँव के व्यक्ति मुकर गए अतः देवी रूठकर कल्पा में नारायण के पास चली गईं। मंदिर परिसर में दो भव्य मंदिर हैं। एक किलानुमा और दूसरा साधारण मंदिर। परिसर के पास एक पुराना तालाब है जहाँ कुछ उत्कृष्ट पाषाण प्रतिमाएँ भी हैं। यहाँ वर्ष में अट्ठारह पर्व मनाए जाते हैं।

रिकांग पियो और कल्पा से दिखता है किन्नर कैलास। विशेषकर कल्पा से अद्वितीय दृश्य दिखता है। यूँ तो सामने के पहाड़ पर शिवलिंग ही शिवलिंग हैं किंतु एक विशेष चोटी को किन्नर कैलास माना जाता है। यह चोटी सूर्य के उदय होने, धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने, अस्त होने के साथ अपना रंग बदलती है। प्रातः या सायं ही विशेष दृश्य होता है क्योंकि दिन में प्रायः बादल छा जाते हैं। इन बदलते रंगों को धार्मिक आस्था एक अलौकिक अनुभूति प्रदान करती है। सायं जब हम पहुँचे तो सारा रिकांग पियो, किन्नौर अँधेरे में डूब रहा था, किन्नर, कैलास पर लालिमा लिये धूप थी। प्रातः ही चोटी के पीछे आकाश को एक दिव्य आभा ने घेर लिया।

कल्पा में एक साथ कई मंदिर हैं। विष्णु मंदिर, नागिन, देवी चंडिका और बौद्ध मंदिर, सब साथ-साथ। विष्णु मंदिर के साथ नारायण व नागिन के मंदिर हैं। नारायण के साथ ही यहाँ रूठी हुई देवी विराजमान थीं। इन मंदिरों में भी वर्ष के अट्ठारह पर्व मनाए जाते हैं।

मूरंग किला

रिकांग पियो से पूह मार्ग के बीच सतलुज के पार है मूरंग किला। किला, जो कभी सामरिक महत्त्व का रहा होगा, अब मंदिर है। किले को मरम्मत के लिए खाली किया गया है। देवता को यहाँ से गाँव ले जाया गया है। देवता के अट्ठारह मोहरे (मास्क) हैं। अट्ठारह प्रबंधक हैं, अट्ठारह वाद्य हैं और अट्ठारह ही पर्व हैं।

मूरंग किले के नीचे सेना का एक जवान बकरियाँ चरा रहा था। ये भेड़-बकरियाँ सेना द्वारा सर्दियों के लिए पाली जाती हैं। जवान बिहार से था। पूछने पर उसने हँसते हुए बताया कि जो ड्यूटी मिल जाए, हम वही करेगा।

संस्कृति में बदलाव

पूह तक आते-आते पर्वत एक दूसरे से मिलने को आतुर हो जाते हैं। सड़क सँकरी है। पूह में आकर संस्कृति में एकदम बदलाव आ जाता है। वनस्पति, वातावरण एकदम भिन्न। लाहौल स्पिति के बिलकुल केलांग जैसा माहौल। यहाँ से बौद्ध गोम्पा आरंभ होते हैं। 2837 मीटर की ऊँचाई पर बसे पूह से लेकर 3600 मीटर कौरिक तक और समदो होते हुए काजा व केलांग तक यह संस्कृति व्याप्त है। पूह के गोन्पा में अभी-अभी तिब्बतियन शैली में चित्रकारी की गई है। मनाली के कलाकार को बुलवाया गया था यह कार्य करवाने। यहाँ से बौद्ध संस्कृति आरंभ होती है, पूरी तरह। कानम गोम्पा के बाद रिचलिंग में बाकायदा बौद्ध विहार स्थापित हैं जहाँ बौद्ध भिक्षु हैं, भिक्षुणियाँ हैं तथा शिक्षा-दीक्षा दी जाती है। यहाँ से नीचे किन्नौर में हिंदू हैं किंतु वे हिंदू तथा बौद्ध दोनों धर्मों को समान रूप से मानते हैं।

मंदिर और गोम्पा या बौद्ध मंदिर साथ-साथ, यह रामपुर से ही आरंभ हो जाता है। रामपुर बुशहर बस स्टैंड के साथ ही है बौद्ध गोम्पा (इस गोम्पा का 2006 में जीर्णोद्धार किया गया है। नए मठ का उद्घाटन प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह की उपस्थिति में 28 अक्तूबर, 2006 को महापावन दलाई लामा द्वारा किया गया)। गोम्पा के साथ ही है मंदिर। यह गोम्पा भी ऐसा है जिसमें कई प्राचीन पांडुलिपियाँ हैं। कांग्यूर और तांग्यूर नामक पांडुलिपियाँ भी यहाँ हैं। पूह के नीचे पूरे इलाके में, हर गाँव में जहाँ एक मंदिर है, वहीं एक गोम्पा है। कहीं-कहीं एक ही परिसर में एक ओर मंदिर है तो दूसरी ओर गोम्पा। दोनों को समान रूप से पूजा जाता है हालाँकि बौद्ध धर्म यहाँ गौण प्रतीत होता है। किंतु लोग दोनों के समान रूप से उपासक हैं। पूह में आकर यह स्थिति बदल जाती है। यहाँ बौद्ध धर्म प्रभावी है।

किन्नौर में लाहुल स्पिति की अपेक्षा जोमो अर्थात् भिक्षुणियों की संख्या अधिक है। भिक्षुणी बनने के लिए प्रेरणापरक एक गीत की पंक्तियाँ किन्नौर में प्रचलित हैं–

"बाला ! यदि तुम संन्यास ग्रहण करती हो तो प्रारंभ का तीन वर्ष का समय जरा कष्टप्रद होगा। उसके पश्चात् तो आजीवन सुख भोगना है। यदि गृहस्थ आश्रम अपनाती हो तो प्रारंभ के तीन साल मजा लूटोगी, उसके बाद सदा दुखों से घिरा रहना पड़ेगा।"

किन्नौर के मंदिरों में महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। किसी भी मंदिर के भीतर महिला को जाने की अनुमति नहीं है। युवतियों में अधिकांश को जोमो अर्थात् भिक्षुणी बना दिया जाता है। बालिका को उसकी इच्छा या अनिच्छा की परवाह किए बगैर जोमो बना दिया जाता है। इस पर यह भी त्रासदी है कि इन्हें जोमो बनने पर अपने-अपने घरों में रहना पड़ता है। किन्नौर के निचले क्षेत्र के बौद्ध मंदिरों में आवासीय व्यवस्था नहीं है। ये बौद्ध विहार न होकर मात्र बौद्ध मंदिर हैं। विशेष अवसरों पर लामाओं को अनुष्ठान के लिए बुलाया जाता है। इन मंदिरों में शिक्षा-दीक्षा

की व्यवस्था नहीं है। ऐसी स्थिति में भिक्षुणियाँ घरों में ही रहती हैं। बहुपति प्रथा का कारण कुछ भी रहा हो, समय के अनंतर इससे कुछ कुप्रथाएँ जन्मीं जिस कारण नारी शोषण का शिकार हुई। बदलते हुए परिवेश व मूल्यों के कारण अब ये परंपराएँ धीरे-धीरे समाप्त हो रही हैं।

कानम मठ

अगले दिन ताबो न जा पाने पर हम कानम आ गए। स्पिलो में एक सौ अस्सी रुपए किलो कागज़ी बादाम लेने पर जब कानम जाने की बात हुई तो वहीं कानम मठ के एक लामा मिल गए। यह लामा आम लोगों की वेशभूषा में थे और चिलगोज़े की बोरी बेचने स्पिलो आए थे। उन्होंने बताया असली लामा मठ में है, मुझे चिलगोज़े बेचने भेजा है। दुकानदार यहाँ सौ रुपए किलो ले रहे हैं जब कि कल भाव एक सौ तीस रुपए था। इसलिए वापस ले जा रहा हूँ। लामा जी को जीप में बिठा लिया बोरी समेत।

स्पिलो से कानम बिलकुल सामने दिखता है। इस बड़े गाँव के लिए पैदल चढ़ाई का रास्ता भी नज़र आता है। सड़क पिछली ओर है, स्पिलो से कुछ आगे जाकर। पाँच-सात किलोमीटर का यह रास्ता बहुत लंबा लगा। बीच-बीच में सड़क बहुत खराब थी। लबरंग के नीचे हमीरपुर का एक ट्रक मालिक सेब लदवा रहा था। उसने बताया आगे मोड़ पर बहुत बड़ा गढ़ा है इसलिए जीप न ले जाएँ। ट्रक के पास गाड़ी खड़ी कर हम आगे नाला पार कर पैदल गाँव तक गए। लामा जी बोरी उठा हमारा इंतजार किए बिना आगे निकल गए।

नाले से एक कुहल के साथ-साथ चलते हुए हम एक दुकान में जा पहुँचे। दुकान के बाहर एक वृद्ध लामा अधलेटे धूप सेंक रहे थे। यहाँ एक बड़े खेत के बाद वह गोल छत वाला बौद्ध मंदिर था जहाँ दुर्लभ तांग्युर तथा कांग्युर ग्रंथ रखे हैं। दूसरे खेत के बाद गाँव शुरू होने से पहले मंदिर था जो डाबला देवता का बताया गया।

वृद्ध लामा जिनका नाम पद्मजीत था, अपने को गाँव के सभी मठों का लामा बता रहे थे। जब उनसे पूछा की अलेक्जेंदर चोमा कहाँ रहते थे तो उन्होंने बताया कि ऊपर के मठ में जिसका नाम खाचे-ले खंङ है। वहाँ एक लामा भी है जो अंग्रेजी बोलता है। आपसे अंग्रेजी में बात करेगा। उससे बात करो सब पता चलेगा। वृद्ध लामा ने अपने को कांग्युर-तांग्युर वाले मठ का मुख्य लामा बताया।

खाचे-ले-खंङ गाँव में सबसे ऊपर है। डाबला देवता के मंदिर के ऊपर दुकान में चिलगोज़े वाले लामा जी बैठे मिले। उनके साथ गाँव के बीच से चढ़ते हुए मुख्य मठ तक पहुँचे।

एक छोटे दरवाज़े के भीतर घुसने पर आसपास छोटी कोठरियाँ नजर आईं जिनमें से कुछ में ताले लगे हुए थे। कोठरियाँ लामाओं के लिए थीं। नीचे की ओर की

कोठरियों की पंक्ति टेढ़ी हो गई थी और बाहरी दीवार का पेट फूल गया था।

मुख्य मंदिर के दरवाज़े पर एक प्लेट लगी थी, जिसमें अंग्रेजी में लिखा था "डेडीकेटिड टु द मेमोरी ऑफ अलेक्जेंदर चोमा दे कोरोश : 1827-1830"।

अलक्जेंदर चोमा दे कोरोश (1784-1842) पहला यूरोपियन था जो सन् 1823 में लेह-लद्दाख होता हुआ यहाँ पहुँचा। चौदह भाषाओं के ज्ञाता कोरोश को यहाँ मूरक्राफ्ट ने तिब्बती सीखने के लिए भेजा।

अलेक्जेंदर चोमा हंगेरियन था। 26 जून, 1823 को लद्दाख के जाँगला में एक वर्ष रहने के बाद वह जून 1827 में कानम आया और नवंबर 1830 तक यहाँ रहा। यहाँ रहकर उसने तिब्बती-अंग्रेज़ी कोश पूरा किया। यह कोश 1834 में कलकत्ता से छपा।

हंगरी के कोरोश गाँव में जन्मे कोरोश ने नवंबर 1819 में यात्राओं के लिए स्वदेश छोड़ दिया। बगदाद, तेहरान, काबुल, लद्दाख, आदि स्थानों की यात्रा के बाद चोमा की भेंट 1922 में मूरक्राफ्ट से हुई। हंगेरियनों के प्राचीन देश की खोज में निकले चोमा की भेंट जाँगला (लद्दाख) मे लामा सङ-फुंछोग के साथ हुई। जहाँ तिब्बती भाषा सीखी। 1827 में कानम आकर लामा सङ-ग्यस-फुंछोग के साथ रहकर शब्दकोश, व्याकरण तथा बौद्ध वाङ्मय के ग्रंथ पूरे किए। लामा सङ-ग्यस- फुंछोग जून 1830 में जाँगला लौट गए। अप्रैल 1842 में दार्जिलिंग में मलेरिया होने से चोमा की मृत्यु हो गई।

चोमा की जीवनी कृष्णनाथ द्वारा लिखी गई जो हिमाचल अकादमी द्वारा प्रकाशित सोमसी के जून-सितंबर, 1995 अंक में छपी है।

चोमा किस कोठरी में रहते थे, यह जानने की इच्छा थी। चिलगोज़े वाले लामा जी इस स्थान को सही-सही नहीं जानते थे।

मठ के बाहर तथा भीतर आकर्षक भित्ति चित्र बने हुए थे। बीच में बुद्ध की आकर्षक प्रतिमा। मठ में गे-लुग-पा संप्रदाय के लामा रहते हैं।

मठ के ऊपर की ओर सीढ़ियाँ चढ़ने पर लामा जी का स्थान है। यहाँ वृद्धलामा गुरु हीराचंद और युवा मुख्य लामा लोपजेंग गेडुन से भेंट हुई। युवा मुख्य लामा इसी गाँव का रहने वाला है। दो वर्ष पहले यह मैसूर से पढ़कर आया है। उसने बताया लामा और जोमो (भिक्षुणी) के लिए यहाँ अलग-अलग भवन हैं जिसमें पंद्रह-सोलह जोमो और नौ-दस लामा लोग रहते हैं।

गुरु लामा ने हमें नमकीन चाय पिलाई और बताया कि चोमा इसी कोठरी में रहते थे जहाँ वह अब खुद रहते हैं। यह कोठरी बहुत छोटी है और दरवाजा बहुत ही छोटा। कृष्णनाथ ने चोमा की जीवनी की भूमिका में लिखा है कि चोमा मुख्य गोम्पा के थोड़ा ऊपर पत्थर, मिट्टी, लकड़ी का एक छोटा-सा घर, छोटा-सा बरामदा बनाकर उस कोठरी में रहते थे। उसमें सिर झुकाकर प्रवेश किया जा सकता है। संभवतः यही वह कोठरी थी। इस समय यह कोठरी और गोम्पा एक ही भवन, एक ही परिसर

लगते हैं।

खाचे-ले-खंङ का दूसरा नाम लुंडुप गंफेल गोम्पा है। खाचे का स्थानीय भाषा में अर्थ मुस्लिम लिया जाता है। राहुल जी के अनुसार 'खाचे' का अर्थ मुस्लिम ही नहीं कश्मीरी भी है। उन्होंने 'खाचे रेक्खङ' को मुसलमानों की कब्र नहीं माना। जो कब्रें लिप्पा में मुसलमानों की मानी जाती थीं, उनका राहुल जी ने अलग तरह से विश्लेषण किया है। राहुल जी के अनुसार इस मठ का निर्माण रिन-चेन-जंग-पो (रत्नभद्र) ने कश्मीर आते-जाते समय कश्मीर शैली में किया।

मठ से चलने से पूर्व चिलगोज़े वाले लामा ने सौ रुपये किलो देने की बात कही, किंतु मुख्य लामा ने यह सौदा स्वीकार नहीं किया।

कांग्युर-तांग्युर

कांग्युर-तांग्युर बौद्ध परंपरा के एनसाईक्लोपीडिया हैं। कांग्युर में बुद्ध के वचन और तांग्युर में शास्त्रों के तत्त्व संग्रहीत हैं। इस दुर्लभ परंपरा का संग्रह नीचे के बौद्ध मंदिर में विद्यमान है। कहते हैं कि इन ग्रंथों में लगा कागज़ दुर्लभ किस्म का है। गोल छत वाले बौद्ध मंदिर में ये ग्रंथ सुरक्षित हैं। इस मंदिर में भी बुद्ध की बड़ी प्रतिमा है। वहाँ लगभग 108 कांग्युर और 200 तांग्युर पोथियाँ हैं।

तीसरा मठ लबरंग कहलाता है जिसे लोचा-द-पोछे भी कहते हैं। इस में मैत्रेय तथा तारा की मूर्तियाँ हैं।

संभवतः यह इस ओर का अंतिम गाँव है जहाँ इन बौद्ध विहारों के साथ डाबला देवता का मंदिर भी है। पूह में ऐसा कोई हिंदू मंदिर नहीं है। पूह से आगे तो पूरी तरह बौद्ध संस्कृति हावी है। कानम से पहले हर गाँव में जहाँ किसी देवी या देवता का मंदिर है, वहीं बौद्ध मंदिर भी है। यह परंपरा रामपुर से आरंभ होती है।

क्या कहते हैं यात्री !

कानम के मठ रिन-चेन-जंगपो (रत्नभद्र 958-1055) के समय के माने जाते हैं तथापि इनका जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण होता रहा है। अपनी पुस्तक 'पीक्स एंड लामाज' में मार्को पालिस ने लिखा है कि जब वे 1933 में कानम में थे, उस समय बौद्ध मंदिरों की मरम्मत हो रही थी। अलबत्ता उन्हें गिराकर दुबारा ही बनवाया जा रहा था। यह काम लद्दाख के एक चित्रकार की देख-रेख में हो रहा था। उसके अधीन वरिष्ठ लामा, मिस्त्री और कनिष्ठ लामा व ग्रामीण मज़दूर के तौर पर कार्य कर रहे थे। अतः निर्देशक (लद्दाख के चित्रकार) के अतिरिक्त सभी कामगार कुशल नहीं थे। तथापि चिनाई और लकड़ी का काम उत्तम था। दीवारों को चित्रों से ढँकना संभवतः कलाकार का मंतव्य था। राहुल सांकृत्यायन 1949 में यहाँ आए जिन्होंने खाचे-ले-खंङ् को कश्मीरी शैली का कहा।

कानम के ठीक पार लबरंग है जहाँ दो गोम्पाओं के अतिरिक्त दूर से दिखाई देने वाला लबरंग किला है। किले में पुराने हथियार रखे हुए हैं और किन्नौर के किलों की शैली में निर्मित हैं।

अंतिम गाँव छितकुल

किन्नौर की साँगला घाटी का अंतिम गाँव छितकुल एक विलक्षण गाँव है। किन्नौर का एक गाँव होते हुए भी यह कई संस्कृतियों का संगम प्रतीत होता है। वैसे भी यहाँ तिब्बत, बद्रीनाथ, रोहडू के लिए 'जोत' खुलते हैं। यहाँ देवी के नवरात्रे मनाए जाते हैं, शिव तप के लिए जाते हैं, महासू देवता के लिए बकरा काटा जाता है, लामा लोग टाणा-माणा करते हैं।

पाँच वर्षों के बाद साँगला में बदलाव के प्रतीक नज़र आए। साँगला में बसपा और हाईवे नाम से दो होटल खुल गए। लोक निर्माण विभाग का पुराना आवास गृह उखाड़ नया बनाया जा रहा है। बिजली बोर्ड का एक भव्य और सुंदर आवास बन गया था। छितकुल गाँव के देवी के पुजारी के आँखों में ऐनक लग गई। रामपुर में पथरी के ऑपरेशन के बाद वह कमज़ोर नज़र आया।

9 नवंबर की रात साँगला पहुँचे तो लोक निर्माण विभाग का रेस्ट हाऊस उखड़ा हुआ पाया। हालाँकि करछम में जगह न मिलने पर चौकीदार ने साँगला में पता करने को कहा था। दुकान में पूछा तो बसपा गेस्ट हाऊस का नाम बताया।

हमने सोचा बसपा प्रोजेक्ट का रेस्ट हाऊस होगा। यह प्राईवेट गेस्ट हाऊस था। उन्होंने यह भी बता दिया कि बिजली बोर्ड के रेस्ट हाऊस में आपको जगह नहीं मिल पाएगी, वन विभाग रेस्ट हाऊस में बिजली नहीं है। जब उन्होंने ऐसे बहाने लगाए तो निश्चित हो गया, वे प्राईवेट गेस्ट हाऊस की वकालत कर रहे थे। आखिर रात ठहरने का प्रबंध हुआ। कुछ को बसपा गेस्ट हाऊस में रुकना पड़ा, कुछ यूको बैंक में ठहरे।

साँगला में पूह से ज्यादा ठंड महसूस हुई। हालाँकि साँगला 2680 मीटर की ऊँचाई पर है। और पूह 2837 मीटर पर। पूह एक ऊँचे पहाड़ पर है जहाँ धूप पड़ती है। साँगला खुली घाटी है कैलास के पृष्ठ भाग में।

सुबह ही हम छितकुल के लिए चल दिए। साँगला घाटी खुलती हुई छितकुल में सँकरी बनती है। यहाँ बस्पा नदी का पानी बहुत कम रह जाता है। साँगला से थोड़ा आगे जाकर बसपा के पार एक बड़ा गाँव नजर आता है जिसमें काष्ठ मंदिर अपनी अलग पहचान बनाते हैं। आगे रॉकछम 649 की जनसंख्या का गाँव है। शिव मंदिर के साथ अद्भुत काष्ठ मंदिर। 2500 मीटर से ऊपर की ऊँचाई को घाटी कहना अजीब लगता है। किंतु किन्नौर और स्पिति के पहाड़ों में भी अद्भुत घाटियाँ और मैदान हैं। पहाड़ों में मैदान और मैदानों में पहाड़ अद्भुत भौगोलिक संरचना है।

साँगला के बसपा नदी के दाएँ किनारे चलते हुए साँगला तक पहुँचते-पहुँचते

देवदार के जंगल बौने भोजवृक्षों के बदल जाते हैं। भोजवृक्ष के बाद कोई पेड़ नहीं होता। इसे सबसे ऊँचे स्थानों पर उगने का गौरव प्राप्त है। शायद इसीलिए वंदनीय है।

पर्वतों के बीच जितनी बार जाओ, नित नए-नए दिखते हैं। अलग मौसम में अलग तेवर। अलग समय में अलग मुद्रा। जो मुद्रा सूर्य की पहली किरण के साथ होगी, वह धूप निकलने पर नहीं रहेगी। जो दोपहर को होगी वह शाम को नया रंग लाएगी।

छितकुल में इस बार कुछ नई बातें जानने को मिलीं। गाँव में उस दिन सब्सिडी का राशन आया हुआ था। अधिकतर लोग अपने-अपने कोठारों में घुसे हुए थे। किन्नौर में अनाज रखने के लिए छोटे छोटे लकड़ी के भंडार होते हैं। एक छोटा-सा कमरा लकड़ी की दीवारों से घिरा ज़मीन से कुछ ऊपर उठा हुआ। एक सुंदर घर-सा दिखता है। लोग कोठारों में अनाज भर रहे थे।

रेस्ट हाऊस में चाय के लिए बोलकर मंदिर देखने गए तब तक स्कूल खुल चुका था। छितकुल में मिडल स्कूल में एक सौ चालीस के लगभग बच्चे थे जिनमें लड़कियों की संख्या अधिक थी। प्रार्थना के समय सबसे आगे लड़कियाँ ही लड़कियाँ खड़ी थीं। अध्यापक, जो ऊना से था, ने बताया कि अब लोग बच्चों को पढ़ाने लगे हैं। लड़कियाँ स्कूल ज़्यादा आती हैं। गाँव से दो लड़के डॉक्टरी कर रहे हैं, दो एम०एस०सी० में पढ़ रहे हैं।

बसपा में दाईं ओर पहाड़ी के छोटे-से एरिया में बसा छितकुल फिल्म नगरी के कल्पना गाँव-सा लगता है। सड़क से ऊपर एक ओर रेस्ट हाऊस, दूसरी ओर एक और सरकारी बिल्डिंग। आगे स्कूल। ऊपर आसपास घर, बीच में देवी का मंदिर, गोल छत वाला वास्तुकला का एक नमूना। उससे ऊपर किलानुमा मंदिर जो शिव को समर्पित है। सबसे ऊपर बौद्ध मंदिर। गाँव के नाम में लगी पट्टिका में जनसंख्या 434 लिखी है जो अब लगभग 500 है।

देवी का ग्रोक्च या माली गंगालाल ही रेस्ट हाऊस का चौकीदार है। एक पुजारी का नाम श्रीनंद और दूसरा तोताराम है। देवी की एक पालकी है, जिसे अब बंद कर किले में रख दिया है। देवी की पालकी अब चैत्र के नवरात्रों में सजेगी। माली ने बताया देवी मंदिर के आगे विभिन्न मेले लगते हैं। बीस असूज को फुलाइच होता है जो सारे किन्नौर में फूलों का त्यौहार है। आषाढ़ संक्रांति को मरजा, सावन संक्रांति को दखारवी, बीस सावन को शुनेटन, बीस भादों को जागरा मनाया जाता है।

देवी का मंदिर चार-पाँच पीढ़ी पहले बना है, गंगालाल ने बताया। पहले यह मंदिर ऊपर था। अब भी वर्ष में एक बार उस स्थान की पूजा की जाती है। "देवता शिव आजकल ढाँक में गया है। तप करने", गंगालाल ने बताया, "शिव का निशान त्रिशूल वहाँ ले जाया जाता है जो माघ में वापस आएगा, जब खेत में बीज छोड़ेंगे।

शिव का त्रिशूलनुमा यह निशान एक पुहाल को मिला था, जो उसकी गोद में आ गिरा जब वह सोया था। इसे त्रिशूल की शक्ल देकर स्थापना की गई।"

बौद्ध मंदिर के लामा का नाम सनम गेछो है। लामा धर्म के साथ-साथ यहाँ फुलाइच और जागरा जैसे उत्सव मनाए जाते हैं। महासू देवता के लिए बकरा काटा जाता है।

3450 मीटर की ऊँचाई पर बसे इस गाँव में केवल दो ही जातियाँ हैं—खोशा और चमङ। दस घर चमङ के हैं जिन्हें अछूत माना जाता है। वे मंदिर के भीतर नहीं आ सकते। पुजारी ने बताया ये लोग पहले गाय खाते थे, इसलिए अछूत हुए।

रेस्ट हाऊस में वापिस आने पर चौकीदार के लड़के ने चाय बनाई। परांठे स्टोव पर बन नहीं पाए इसलिए अंडे उबाले गए गंगालाल ने बताया वह सीमा तक गया है जो यहाँ से 52 कि०मी० है। सन् 1962 में सेना के मेजर के साथ सीमा मापते हुए गया था। 1966 में यहाँ पहली बारी जीप आई। सामने धौला पीक है जिसके पीछे बारह किलोमीटर लंबा मैदान है। बसपा नदी गुंडार ग्लेशियर से निकलती है।

गाँव में आलू, मटर की खेती होती है। चौकीदार ने इस साल पहली बार मुर्गियाँ पाली हैं, "देखता है टिकता है या नहीं।"

गाँव की बोली किन्नौरी से थोड़ी भिन्न है। बोलने का लहजा रोहडू से मिलता है। रकछम और छितकुल की बोली लगभग एक-सी है। दोनों गाँवों में आपस में रिश्ता होता है। गंगालाल का एक लड़का फौज में है जो अब घर नहीं आता। बहुपति प्रथा के बारे में गंगालाल ने कहा, "अलग-अलग घर बर्बादी है, एक घर आबादी है। ऐसा हमारा बुजुर्ग कहते थे। एक रहने के लिए, इकट्ठा होने के लिए यह जरूरी है।"

छितकुल में संस्कृति को रास्ता देते पर्वत हैं जो संस्कृति के द्वार हैं।

सर्दियों का सन्नाटा

कर्मचारियों के लिए इन क्षेत्रों की सर्दियाँ जोखिम भरी होती हैं। सर्दियों का सन्नाटा उनका मनोबल तोड़ता है। साँगला वापस आने पर यूको बैंक के एक कर्मचारी ने वहाँ पहली बार तैनात एक आदमी का किस्सा सुनाया, "पिछले साल वह यहाँ बदलकर आया। जिस रात यहाँ पहुँचा, बत्ती चली गई, बर्फ गिरने लगी। वह रोने लग पड़ा¨मैं यहाँ फँस गया¨अब मर कर ही निकलूँगा। मैंने कहा—"घबराता क्यूँ है। चलो खाना-वाना खाते हैं, दारू-शारू पीते हैं।"

साँगला के सामने कामरू गाँव में बौद्ध मंदिर और बद्रीनारायण मंदिर होते हुए हम कामरू किले में पहुँचे। दोपहर को किले का भीतरी द्वार बंद था। कोई कर्मचारी भी नजर नहीं आया जो द्वार खोलता। पिछली बार मैं भीतर जा चुका था, इसलिए बाहर कुछ सुस्ताने के बाद वापस लौट आए।

पुरातन राजधानी कामरू

कामरू या मोने बुशहर राज्य की पुरातन राजधानी है। देवता बद्रीनारायण भीमाकाली के बाद देवता है। बद्रीनारायण को कृष्ण रूप में भी माना जाता है। बुशहर राजवंश भी कृष्ण से माना जाता है। वंशावली में कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का बाणासुर की पुत्री उषा से विवाह हुआ। अनिरुद्ध-उषा से आगे का वंश चला। यद्यपि बाणासुर और उषा अनिरुद्ध उपाख्यान, नेपाल, गढ़वाल में भी प्रचलित है। कामरू के राजा छतरसिंह (1525) ने बुशहर राज्य स्थापित किया। राजा कल्याणसिंह, जिसे ज़हर देकर मारा गया था, कामरू में देवता के रूप में पूजित हैं। यहाँ राजा का देवता की भाँति रथ बना हुआ है। कल्याणसिंह के बाद केहरीसिंह गद्दी पर बैठा जो दिल्ली दरबार में भी गया।

कामरू किले में गोल पत्थरों से हुई क्षति की बात बुजुर्ग करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केंद्र नमग्या

बड़ा रोमांचक होता है देश के अंतिम गाँव तक जाना। और जिस अंतिम गाँव में दूसरे देश का सामान आता हो, वह और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। नमग्या ही वह गाँव है जो चीन से व्यापार का पहला पड़ाव बना है।

पूह से लगभग ग्यारह किलोमीटर, खाब से एक किलोमीटर पीछे एक कच्ची सड़क जाती है नमग्या को। वहाँ से केवल पाँच किलोमीटर है नमग्या किंतु चढ़ाई सीधी। पहले सेना की एक चौकी पड़ती है। कुछ सैनिक चाय पी रहे थे, रास्ता पूछने पर उन्होंने हमें चाय का आमंत्रण दिया।

नमग्या एक बड़ा गाँव है जहाँ कस्टम के कुछ लोग रहते हैं जो चीन या तिब्बत से आए सामान की चेकिंग करते हैं। कस्टम का एक आदमी जो सरदार लग रहा था, सामान गिन रहा था। कुछ घोड़ों पर ऊन या पशम लदी थी। कुछ में बोरियों सामान। एक बोरी में जूते देख हम उतावले हो गए। कपड़े के जूते थे जिन्हें फ्लीट कहते हैं। हमने खरीदने चाहे तो व्यापारी ने बताया ये तो भारतीय जूते हैं जो हम वहाँ ले गए थे किंतु बिके नहीं, वापस लाने पड़े।

"वहाँ लोग बहुत गरीब हैं" उसने बताया, "कई बार बहुत-सा सामान वापस आ जाता है।" वह पूह का रहने वाला था। उसने अपना नाम बताया और वापसी पर पूह में ऊँचे रबड़ सोल के जूते देने का वादा किया।

"यहाँ से शिपकिला-दर्रा बारह किलोमीटर और दूसरी ओर का गाँव जहाँ तक हम जाते हैं पंद्रह किलोमीटर है। आप लोग भी व्यापार का परमिट बनाकर जा सकते हैं, ल्हासा पहुँच सकते हैं यहाँ से। पुराना रास्ता यही है।" उसने बताया।

खाब के पास पिती नदी सतलुज में गिरती है। इस संगम से आगे दूसरा अंतिम गाँव है टशीगंग जो नमग्या के ठीक पार है, सतलुज के किनारे।

अब चढ़ाई का क्रम शुरू होता है। पिती नदी बहुत नीचे छूटती जाती है और नज़र आते हैं पर्वत ही पर्वत। यही वे अद्‌भुत पर्वत हैं जो हर पल अपना रंग बदलते हैं। नंगे और वीरान पर्वतों में पहला छोटा-सा गाँव 'का' नखलिस्तान-सा नज़र आता है। गाँव के दोनों ओर दूर-दूर तक कोई आबादी नहीं। बीच में सड़क के किनारे छोटा-सा गाँव 'का'। केवल एक-दो घर सड़क के नीचे दिखते हैं।

'का' के बाद पहला पड़ाव यंगथंग है, 3274 मीटर की ऊँचाई पर। यहाँ कुछ दुकानें हैं, होटल हैं। यंगथंग के नीचे एक बड़ा गाँव लिप्पा नज़र आता है और ऊपर मालंग नाको।

यंगथंग में एक दुकान से हमने चीनी जूते खरीदे। चीन से आई जैकेटें भी यहाँ थीं।

यंगथंग से उतराई शुरू होती है। पिती दरिया के करीब आने पर बीच-बीच में गाँव हैं, हरियाली है, सेब की खेती है। यंगथंग से अब रास्ता बदल दिया गया है क्योंकि यंगथंग के नीचे से नाला पड़ता था जिस में हमेशा तेज़ पानी बहता था।

समदो में सेना की चौकी है जहाँ गाड़ियाँ दर्ज की जाती हैं। यहाँ से एक सड़क कोरिक को जाती है जो सीमांत चौकी है 3811 मीटर की ऊँचाई पर। कोरिक के पार चीन दिखाई देता है! आमने-सामने। उस दिन उस क्षेत्र में फायरिंग हो रही थी, इसलिए हमें वहाँ जाने की इजाज़त नहीं मिली।

ताबो

शिमला से 365 किलोमीटर और समदो से मात्र इक्कीस किलोमीटर है ताबो। पिती नदी के किनारे पहाड़ों से घिरा समतल स्थान। रेस्ट हाऊस के सामने ताबो मठ का द्वार। द्वार के साथ नया गोम्पा। साथ में नवनिर्मित आवास गृह गोन्पा की आकृति का। आगे पुराना गोम्पा जिसमें लामा लोग रहते हैं। लामा बालकों के लिए पेंटिंग स्कूल चलता है। इसके साथ ही है ताबो की प्रसिद्ध कलाकृतियों वाला मठ।

लोक निर्माण विभाग के आवास गृह में वायु सेना के सुरक्षा कर्मी ठहरे थे इसलिए हमें लामा जी ने अपने विश्राम गृह में ठहराया। आवास गृह के कमरे में नई चादरें बिछाकर मोटी रजाई रख दी गई।

मठ के आवास गृह के ऊपर पहाड़ी, सामने पहाड़, दूसरी ओर पहाड़। ऊपर दूर-दूर तक पर्वत श्रृंखलाएँ और नीचे दोनों ओर पहाड़ पिती नदी को तोड़ मिलने को आतुर। इन पर्वतों के बीच कटोरे की भाँति ताबो।

आवास गृह में सुबह सात बजे धूप की पहली किरण मेज पर पसरी और जल्दी ही सूरज झाँकता हुआ खिड़की से बीच कमरे में आ गया।

हिमालय की अजंता

ताबो को हिमालय की अजन्ता न जाने किसने नाम दिया। किंतु इस अजंता की दुर्लभ कलाकृतियाँ शोचनीय हालत में हैं।

मुख्य मठ, जिसमें अद्वितीय कलाकृतियाँ हैं, में अब पूजा नहीं होती क्योंकि यह क्षतिग्रस्त हो गया है। इस समय यह भारतीय पुरातत्त्व विभाग के अधीन है। पुराना मठ तो अब छोड़ ही दिया गया है। पूजा के लिए प्रवेश द्वार के पास नया मठ बनाया गया है। एक अन्य गुफानुमा मठ सड़क के पार पहाड़ के नीचे है। यहाँ भी कुछ पेंटिंग्ज़ हैं जो माचिस जलाने पर या टॉर्च से ही देखी जा सकती हैं।

हिमालय की अजंता के मठ की छत लीक करती है जिस कारण मिट्टी वाला पानी गिरता है। दीवारों को धोता है। कुछ पेंटिग्ज़ धुल गई हैं या मिट्टी भरे पानी से ढँक गई हैं। कुछ दीवारें फूल गई हैं।

इन अमूल्य चित्रों के संरक्षण का कार्य भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा चलाया गया है। मठ के लामाओं के अनुसार यह कार्य बहुत धीमी गति से चला है, वैसे भी यहाँ पहुँचने और काम करवाने का समय बहुत सीमित है। मई या जून से अक्तूबर तक ही यहाँ रहना हो सकता है। वैसे भी असली मुद्दा छत की सुरक्षा का है वरना जो संरक्षण कार्य होगा वह पुनः धुल जाएगा और यह काम लोक निर्माण विभाग की सड़कों की तरह ही होगा जहाँ हर साल मरम्मत होती है, हर साल बरसात तोड़ती है।

मठ में भारतीय पुरातत्त्व विभाग के उपपुरातत्त्व अधीक्षक बड़े तपाक से मिले और एक-एक पेंटिंग दिखाई विशेषकर वे जिन्हें संरक्षित किया गया था। मठ की भीतरी दीवारों पर चारों ओर जो भित्ति चित्र मिट्टी-पानी से धुल गए थे, पुनः उभारे गए थे। उन्होंने बताया कि काम 1990 में शुरू किया गया था और 1996 तक पूरा किया गया। दिल्ली से आया कोई फिल्मी दल वीडियो फिल्म बना रहा था। एक कैमरामैन जो दिल्ली से आए थे, मेरे हाथ में कैमरा देख मुझे फोटो न लेने की हिदायत देना नहीं भूले। फ्लैश से पेंटिंग खराब हो जाती है, उन्होंने नसीहत दी।

पुरातत्त्व की किताबों में लिखा है कि मठ का निर्माण दसवीं शताब्दी के अंत या ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ। लोकास्था है कि इस मठ तथा कुछ अन्य मठों की स्थापना रिन-चेन-ज़ंग-पो (रत्नभद्र) ने की। रत्नभद्र तिब्बत की रियासतों में से एक गु-गे के शासक ने ही इक्कीस विद्वान कश्मीर तथा मध्य भारत में भेजे जिसमें से दो ही वहाँ की जलवायु सह सके। इन दो में एक रत्नभद्र था। रत्नभद्र की आत्मकथा में उल्लेख है कि उसने कश्मीर से बत्तीस बौद्ध कलाकार बुलाए जिन्होंने यहाँ आकर काम किया।

ताबो मठ के निर्माण काल के विषय में सही सूचना या तिथि उपलब्ध नहीं है। इस क्षेत्र के मठ दसवीं शताब्दी में स्थापित हुए, ऐसा पुरातत्त्ववेत्ताओं का मत है। मठ की दीवार में तिब्बती भाषा में अभिलेख है किंतु इसमें भी तिथि नहीं दी गई है।

यहाँ दसवीं शताब्दी के अंत में एक भारतीय विद्वान् अतीश भी आए। अतीश ने बहुत छोटी आयु में बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था। अतीश की गु-गे राज्य में रत्नभद्र से भी भेंट हुई।

ताबो में छोरतन के अलावा नौ गोम्पा हैं। कहते हैं छोरतन में भिक्षुओं की अस्थियाँ रखी जाती थीं। सभी गोम्पाओं में भित्ति चित्र हैं।

मुख्य गोम्पा में भित्ति चित्र बहुतायत में हैं, प्राचीन हैं। यहाँ मुख्य मूर्ति या प्रतिमा (सफेद गच की बनी हुई) विरोचन की है जो आदि बुद्ध माना जाता है। विरोचन या आदि बुद्ध की प्रतिमाएँ रत्नभद्र द्वारा स्थापित की गई, मानी जाती हैं। इसके पीछे अमिताभ सिंहासन पर विराजमान हैं, साथ में आदमकद परिचारक खड़े हैं। दीवारों में भी सुंदर आदमकद मूर्तियाँ बैठी हुई मुद्रा में हैं।

कुछ मूर्तियाँ हिंदू देवताओं की भी प्रतीत होती हैं। पुरातत्व के अधिकारी ने सरस्वती की एक कलाकृति दिखाई जो पहले छिपी हुई थी।

भीतर कम रोशनी होते हुए भी कलात्मक चित्रों के रंग आज भी चमकते हैं। बुद्ध तथा महायान बौद्ध धर्म के कई देवी-देवताओं के चित्र, बुद्ध के जीवन प्रसंग, जातक कथाओं के चित्र आकर्षक और मोहक हैं।

मठ में भित्ति चित्रों की चार शैलियाँ मानी गई हैं। भारत, नेपाल, कश्मीर की कला का इनमें प्रभाव माना जाता है जबकि चीन की चित्रकला का प्रभाव इनमें नहीं है। मठ में असंख्य प्राचीन पांडुलिपियाँ भी हैं जो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

चाख़र उत्सव

काज़ा जाती बार लामा जी ने हमें जल्दी आने के लिए कहा था इसलिए हम शाम ही वापस आ गए।

ताबो में चाख़र उत्सव था। चाख़र या चाहर उत्सव हर तीसरे वर्ष ताबो में मनाया जाता है।

सुबह ही मठ में पूजा-अर्चना के बाद लोग जमा होने लगे थे। मठ के पास बढ़िया रेशमी कपड़े पहने, टोपी लगाए एक भव्य व्यक्ति खड़ा था। उसके साथ स्थानीय विधायक फुन्चुक राय खड़े थे। हमने सोचा कोई ट्राईबल चीफ होगा। दूर से ही उसका फोटो लिया और धीमे से विधायक महोदय से पूछा। उन्होंने टाल दिया कि अपना ही लड़का है। नृत्य के समय वह तलवार लिये सबको लीड करता रहा। शाम को जब हम घूमने निकले तो उसे जूतों की दुकान में पाया। वास्तव में वह चीन से आए सामान—जैकेट, जूतों की दुकान करता था। फोटो के कारण वह शिमला भी आया और दोस्त बन गया।

चाख़र उत्सव में लामा नृत्य, छम्म नृत्य हुआ। कुछ मुखौटा नृत्य बहुत ही परंपरागत थे। विशेषकर वादक और गायक ठेठ देहाती थे जिनकी बजाई धुनों पर

ग्रामीणों ने नृत्य किया। आसपास के लोग अपनी परंपरागत वेशभूषा में आए थे। जूते, जैकेट, रेशमी कपड़े और अन्य चीनी सामान की कुछ दुकानें भी लगी थीं। कुछ विदेशी अपने कैमरों और वीडियो सहित विद्यमान थे।

रात को भी सांस्कृतिक कार्यक्रम था। कुछ परंपरागत, कुछ आधुनिक।

काज़ा

ताबो से सैंतालीस किलोमीटर है काज़ा। ताबो से अधिक ऊँचाई पर। यह स्पिति का मुख्यालय है जहाँ रेज़ीडैंट कमिश्नर बैठते हैं और सरकारी कार्यालय हैं।

काज़ा पिती नदी के कुछ ऊपर बसा है। काज़ा के पीछे पर्वत है। सामने रेतीला पर्वत जिससे लगता है रेत झर-झर कर गिरेगी। पार मिट्टी का पर्वत जहाँ हवा चलने पर भी मिट्टी गिरती है। एक बारिश हो तो सारी मिट्टी नीचे आ जाए। पिती के पार बहुत आगे तक पहाड़ों का सिलसिला है जहाँ अंत में बर्फ से ढँका पर्वत दिखता है। यही रास्ता कुंजम दर्रा को जाता है जिसकी दूसरी ओर लाहुल है।

काज़ा में छोटा-सा बाज़ार है। एक गोम्पा है। एक सर्किट हाऊस, एक रेस्ट हाऊस और कुछ निजी होटल।

अक्तूबर के इन दिनों में यहाँ कुछ लोग ट्रांसफर होकर आए थे जो रेस्ट हाऊस में ठहरे थे। अगले दिन रविवार था, अतः रेजीडेंट कमिश्नर से घर में मुलाकात हुई।

रेस्ट हाऊस वापस आने पर एक सज्जन मिले जो अभी-अभी ट्रांसफर होकर आए थे। वे बहुत परेशान थे।

"क्या करें यहाँ आकर फँस गए। छुट्टी वाले दिन यहाँ कोई क्या कर सकता है। आप रात कितने बजे जग गए थे।" उसने अचानक पूछा।

"लगभग चार बजे।" मैंने कहा।

सच ही चार बजे मैं जाग गया था। एकदम जागा तो दिल ज़ोरों से धड़क रहा था जैसे कोई भयानक सपना देखा हो। हालाँकि सपना कुछ याद न था।

मैं तो रोज़ रात दो बजे के बाद सो नहीं पाता, उसने कहा, "यहाँ ऑक्सीजन बहुत कम है।"

हो सकता है मैं भी ऑक्सीजन की कमी के कारण चार बजे जागा होऊँ—मैंने मन ही मन सोचा।

किब्बर की ऊँचाई कम हुई

सड़क मार्ग से जुड़ा एशिया का सबसे ऊँचा गाँव किब्बर माना जाता है जो 4045 मीटर की बुलंदी पर है। अब यह धारणा गलत हो गई है क्योंकि सड़क मार्ग से इससे भी ऊपर जोत की और एक गाँव जुड़ गया है। किब्बर के ऊपर जोत पार करती हुई सड़क एक दूसरे गाँव टशीगंग तक जाती है।

किब्बर एक बड़ा गाँव है, जनसंख्या अब पाँच सौ के लगभग है। हालाँकि बोर्ड में चार सौ नौ लिखी है। यहाँ एक हाई स्कूल, डिस्पेंसरी और गोम्पा है। गाँव शुरू होने से पहले ही एक आधुनिक होटल बन गया है क्योंकि गर्मियों में यहाँ बहुत लोग आने लगे हैं जिनमें अधिकांश विदेशी होते हैं।

किब्बर के पार सामने चिचम गाँव है जिसकी आबादी लगभग चार सौ है। यह सबसे ऊँचा स्थान है और रोहतांग जैसा लगता है। हालाँकि इसकी ऊँचाई रोहतांग से कहीं अधिक है। किब्बर यदि चार हज़ार मीटर है तो यह जगह सौ-दो सौ मीटर अधिक ऊँची है। ऊपर दस किलोमीटर की घुमावदार चढ़ाई चढ़ने पर गेते आता है जहाँ दो-तीन घर हैं। यहाँ एक झीलनुमा सुंदर तालाब है। पार की ओर बर्फभरी चोटियाँ जिनका अक्स साफ-सुथरे पानी में दिखता है। पाँच किलोमीटर और आगे समतल मैदान जिसके नीचे दूसरा गाँव टशीगंग है। पाँच-छह घरों वाला। यह ठीक जोत के दूसरी ओर है जिसके पीछे बर्फीली चोटियाँ हैं और इसकी सीध में दूसरी ओर 'की' गोम्पा।

जोत के ठीक बीच में जब जीप जा रही थी तो अचानक एक चिड़िया जीप के आगे-आगे उड़ने लगी जैसे अनजान जगहों पर जीप या मोटर के आगे गाय-बैल भागते चले आते हैं। चिड़िया भी ऐसे ही काफी दूर आगे-आगे उड़ती रही। यहां एक होटलनुमा मकान बना हुआ था। कुछ कागज़, प्लास्टिक, ठंडे पेय के बैनर-पोस्टर लटके थे। संभवतः गर्मियों में यह होटल चलता होगा।

क्या यह पवित्र बुलंदी भी अब जल्दी ही रोहतांग बनने वाली है। इतनी सुंदर और आध्यात्मिक स्थली जहाँ चारों ओर बर्फीले पर्वत मौन खड़े नज़र आते हैं, मनुष्य के पैरों से कब तक बची रहेगी। रोहतांग में भी आज से दस-बारह बरस पहले एक चाय वाला गर्मियों में कुछ दिन रहता था। अब वहाँ सैकड़ों टैक्सियाँ हर समय खड़ी रहती हैं। लोगों का मेला लगा रहता है। व्यास की पहली बूँद से लोग कुल्ला करते हैं।

की मठ

धन्य हैं ये लामा लोग जो दुर्गम और निकट परिस्थितियों में पर्वत कंदराओं में रहते हुए अपनी परंपरा की रक्षा करते हैं। उसे आज तक जीवित रखे हुए हैं।

किन विपरीत हवाओं में ये अपने बहुमूल्य ग्रंथ उठाकर लाए होंगे। उन्हें किस तरह सुरक्षित रखा होगा, यह सराहनीय है।

की मठ भी इन्हीं परिस्थितियों से रक्षा हेतु एक किले-सा खड़ा है। नीचे से एक किले जैसा प्रतीत होता है जिसमें चारों ओर पहाड़ से जैसे छोटे-छोटे दरवाज़े निकाले गए हों। रोशनी के लिए छोटी खिड़कियाँ खोदी गई हों।

वापसी पर हम वहाँ गए। लामाओं ने हमारे लिए प्रेम से चाय बनाई और बिठाकर चाय-बिस्कुट खिलाए। यहाँ विपुल मात्रा में धार्मिक पोथियाँ रखी हैं। दीवारों

पर भित्ति चित्र भी हैं किंतु ताबो से कम। मठ में कई प्रकोष्ठ हैं।

मठ के मुख्य लामा दिल्ली में रहते हैं। दिल्ली में यह कहाँ रहते हैं, ये वहाँ रह रहे लामाओं को नहीं मालूम। मुख्य लामा लोचेन, टुल्कू से ताबो सहस्राब्दी के समय बाद में भेंट हुई।

की मठ का निर्माण आठवीं शताब्दी में हुआ बताया जाता है। रंग-रीक में बने मठ को लद्दाख के आक्रमणकारियों द्वारा तबाह किए जाने के बाद इस मठ का निर्माण हुआ। यह इस क्षेत्र का सबसे बड़ा मठ है। मठों पर होने वाले हमलों से बचने के लिए इस मठ को किलेबंदी का रूप दिया गया तथापि बार-बार बौद्ध लामाओं को हमलावरों से भागना पड़ा।

की मठ में कांग्युर के एक सौ आठ संस्करण सुरक्षित हैं। इसके अलावा सैकड़ों अन्य पोथियाँ रखी हुई हैं। यहाँ की थंका पेंटिंग्ज़ भी अद्वितीय हैं। इनमें से अधिकांश भिक्षुओं द्वारा ल्हासा से लाई गई हैं।

ढंखर मठ

ऐसा ही विचित्र और किलेबंदी का दूसरा उदाहरण है ढंखर मठ। ढंखर, ताबो और काज़ा के बीच ऊँची जगह पर है। मुख्य सड़क से ऊपर तक जीप जाती है। उतनी ऊँचाई पर प्राकृतिक ढंग से बनाया हुआ यह मठ वहाँ की वास्तुकला का अद्वितीय उदाहरण कहा जा सकता है। मठ के भीतर खिड़की से देखा तो एकदम तीखी उतराई। उतराई क्या नब्बे का कोण बनाती लंबी दीवार-सी जहाँ से कोई कूदे तो एकदम पंद्रह किलोमीटर नीचे सड़क में गिरे।

ढंखर मठ हमने रात को देखा, लालटेन की लौ में। ताबो में ही ढंखर के लामा मिले थे और वहाँ ज़रूर आने के लिए कह गए थे। मठ की हालत खराब है। जगह-जगह से गिर रहा है। फिर भी मुख्य मंदिर में वहाँ अनेकों दुर्लभ मूर्तियाँ रखी हैं, रात को लामा रहते हैं। ढंखर में उतने लामा नहीं हैं। वहाँ उपस्थित प्रभारी लामा ने बताया आजकल लामा लोग गए हुए हैं, कुछ दिनों में वापस आएँगे। ढंखर के युवा लामा ने बताया कि लामा बनने में सालों लग जाते हैं। कइयों की पूरी उम्र लग जाती है। इसी तरह लामाओं में 'रिम्पोचे' बनने के लिए पूरा जीवन चाहिए।

ढंखर स्पिति का मुख्यालय रहा है। बहुत सुरक्षित स्थान पर होने के कारण ढंखर मठ का निर्माण एक किले के रूप में किया गया है। 3890 मीटर की ऊँचाई पर निर्मित यह राजधानी, जो मठ भी है, एक लामा द्वारा बनाई गई जिसका जन्म 1121 में हुआ। लामाओं का विश्वास है कि यह मठ ताबो से पुराना है।

इस मठ को भी लद्दाख के आक्रमणकारियों तथा 1834 के डोगरा आक्रमण के समय कई बार लूटा गया।

लामा की ममी

ताबो की वापसी पर किसी ने बताया कि आप ग्यू ज़रूर जाएँ जहाँ एक लामा का शरीर रखा है वर्षों पुराना। यह लामा बर्फ में निकला था। उसके सिर पर अभी भी बाल उगते हैं।

ग्यू स्पिति का पूह की ओर से पहला गाँव है ठीक पर्वत आधार पर बसा हुआ। मुख्य सड़क से ऊपर यहाँ तक जीप जाती है। यहाँ सेना की चौकी है। एक बड़ा गाँव है। प्राइमरी स्कूल है। स्कूल के टीचर ने हमें अपने डेरे पर ले जाकर चाय पिलाई। वह सरकाघाट ज़िला मंडी का रहने वाला था।

गाँव से ऊपर सेना के टेंट लगे थे। एक सैनिक हमें ऊपर ले गया जहाँ लामा का शरीर रखा था। सैनिक ने हमें बताया कि यह लामा 1987 में मिला है बर्फ में खुदाई करते हुए। खुदाई के समय गेंती उसके सिर में लगी जहाँ से उस समय खून बहने लगा। अब भी सिर में गेंती की चोट से सुराख है।

लामा की ममी को एक मंदिर-सा बनाकर रखा गया है जहाँ दीपक जलाए जाते हैं। लामा उकड़ूँ-सी बैठी मुद्रा में है। शरीर मुँह का माँस अब सूखने को आया है किंतु सिर में बाल ज़रूर लंबे हैं।

एक लामा की ममी नमग्या के इस ओर टशीगंग में भी मिली है जिसे इसी तरह सुरक्षित रखा गया है।

गाँव वाले नहीं जानते कि यहाँ कभी मठ रहा होगा या लामा लोग साधना करते होंगे। जाने किस समय और कैसे यह लामा बर्फ की चपेट में आ गया और कब तक यहाँ दबा रहा।

अलेक्जेंदर चोमा दे कोरोश

अलेक्जेंदर चोमा दे कोरोश पहला यूरोपियन था जो 26 जून, 1823 को जांग्ला गोम्पा में पहुँचा। उसने अपना नाम सिकंदर बेग रखा हुआ था।

अलेक्जेंदर का जन्म हंगरी के ट्रांसिलवानिया प्रदेश की हारोमसेक काउंटी में हुआ। गाँव का नाम था कोरोश। अप्रैल, 1784 को जन्मे अलेक्जेंदर चोमा ने पढ़ाई पूरी करने के बाद हंगेरियनों के मूल देश का पता लगाने की ठानी।

कॉलेज के बाद अप्रैल, 1816 में वह विश्वविद्यालय में आ गया। यह विश्वविद्यालय सन् 1734 में इंग्लैंड के किंग जॉर्ज द्वितीय द्वारा स्थापित किया गया था। अब तक चोमा ने सात से अधिक भाषाएँ सीख ली थीं। यहाँ रहकर उसने अंग्रेजी, अरबी और टर्किश सीखी। बाद में स्लाव भाषा भी सीखी।

चोमा का अंदाजा था कि उस ने पूर्वजों का प्राचीनतम स्थान बोखारिया में उदूगुरों का देश था। यह और नहीं, पश्चिमी तुर्किस्तान है। अतः चोमा दे कोरोश 28 नवंबर, 1819 को स्वदेश से निकल पड़ा। उसके पास केवल एक-दो महीने के खर्च के लिए पूँजी थी।

वह मझोले कद का हट्टा-कट्टा स्वस्थ और सहनशील था। चेहरा लंबोतरा, रंग गेहुँआ, उन्नत ललाट, सीधी नाक, काली आँखें और काले बाल। मितव्ययी था। उसकी स्मरण शक्ति तेज थी और वह बहुत परिश्रमी था।

कुस्तुंतुनिया होता हुआ वह फारस पहुँचा। फिर वोरोस्तोरोन्य दर्रा, बुखारेस्ट, फिलियोपोलिस, कियास, रीडेस, लार्निका, सिडान होते हुए बगदाद और 4 अक्तूबर, 1820 को तेहरान पहुँचा। यहाँ वित्तीय सहायता की प्रतीक्षा में वह छह मास रुका रहा। यहाँ वह विलॉक बंधुओं के पास रहा। उन्होंने इसे रास्ते के लिए 40 गिन्नी दिए क्योंकि यहाँ से आगे यूरोपियनों का भारत तक कोई दूतावास नहीं था। यहाँ से 9 मार्च, 1821 को चलकर वह मेशेद, मिर्क, बुखारा, बल्ख होता हुआ 17 अप्रैल, 1823 को श्रीनगर पहुँच गया।

वह एक महीना लेह में रहा कि कोई यारकंद जाने वाला मिले। यारकंद को वह हंगेरियनों के पुरखों का घर समझता था। वहाँ छह सौ किलोमीटर तय करने के लिए कोई साथी न मिला तः वह लाहौर की ओर चला आया। इस ओर आते हुए ही 16 जुलाई, 1822 को उसकी भेंट विलियम मूरक्राफ्ट से हुई। मूरक्राफ्ट उस समय लेह जा रहा था।

मूरक्राफ्ट ने चोमा को तिब्बती सिखाकर एक कोश और व्याकरण बनाने के लिए कहा। चोमा को भी यह काम सुरुचिपूर्ण लगा। उसने यह भी सोचा कि संभव है तिब्बती पोथियों में हंगेरियनों के विषय में कोई सूचना मिल जाए।

चोमा ने सी०पी० कनेडी के नाम पत्र में उल्लेख किया है–

"मैं लौटानी में, कश्मीर की सीमा के निकट था, जब 16 जुलाई, 1922 को मुझे मिस्टर मूरक्राफ्ट को हिमबब्स में पाकर आश्चर्यजनक खुशी हुई। वह अकेला था। मैंने उसे अपनी सारी परिस्थिति और योजना बताई और उसकी इजाजत लेकर उसने साथ रहा। मैं लेह वापसी में उस के साथ रहा, जहाँ हम 26 अगस्त को पहुँचे। सितंबर में पिति से मिस्टर ट्रेबेक के पहुँचने पर, मिस्टर मूरक्राफ्ट ने अल्फावेटम तिबेतनम पढ़ने को दिया। इसमें मुझे तिब्बत और तिब्बती साहित्य के बारे में बहुत कुछ मिला। और इस विचित्र जबान के ढाँचे को जानने की इच्छा से, सितंबर के अंत में मूरक्राफ्ट के लेह से कश्मीर प्रस्थान करने पर मैंने मिस्टर ट्रेबेक के साथ रहने की इजाजत चाही, जिन्होंने मुझे बातचीत करने और सिखाने के लिए ऐसा आदमी दिया जो तिब्बती और फारसी भाषाओं से अच्छी तरह परिचित था और इस माध्यम से मैंने तिब्बती में खासी पैठ प्राप्त की।"

मूरक्राफ्ट ने चोमा को आर्थिक सहायता दी और लद्दाख लौटने की इजाजत दे दी।

चोमा ने मूरक्राफ्ट के साथ निम्न अनुबंध किया :

"मिस्टर विलियम मूरक्राफ्ट द्वारा मेरे कामों के लिये की गई अनुकूल व्यवस्थाओं को इस पत्र से कृतज्ञतापूर्वक जानकर मैं इनसे पूर्णतः सहमत हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी पूरी शक्ति और परिश्रम से सुसंस्कृत जनों की भरसक सेवा करूँगा– अलेक्जेंदर चोमा दे कोरोश, भाषा शास्त्र का विद्यार्थी।"

26 जून, 1823 को जब कोरोश जांग्ला पहुँचा तो वहाँ लामा सङ्-ग्यास्-फुन्छोग से उसकी भेंट हुई।

लामा सङ्-ग्यास्-फुन्छोग के पास जांस्कर के जांग्ला में चोमा 1823-24 तक रहा। ये लामा बौद्ध शास्त्र का ज्ञाता, चिकित्सा विद्या, ज्योतिष विद्या का ज्ञाता था। अतः चोमा ने वहाँ रहकर व्याकरण की दृष्टि से तिब्बती भाषा सीखी। कंग्युर (बुद्ध वचन) और तंग्युर (शास्त्र वचन) पढ़े। इसके बाद इसने शब्दकोश पर कार्य आरंभ किया। उसने लामाओं से पाठ्यक्रम लिखवाए। लामा सङ्-ग्यास्-फुन्छोग ने भी कई ग्रंथ लिखे।

चोमा ने तिब्बती ग्रंथों में 'उदूगुर' या युगूर नाम भी ढूँढ़ निकाला जिसमें शाक्य मुनि की प्रतिमा एक देश से दूसरे देश ले जाने का उल्लेख है।

जाग्ला में एक वर्ष रहने के बाद चोमा ने कुल्लू जाने का निश्चय किया। सुबाथू में चोमा को अपनी पहचान देने के लिए ब्रिटिश चौकी पर अपमानित होना पड़ा। किंतु

अंततः स्वीकृति मिल गई। कुछ वित्तीय सहायता भी मिली। लामा को कुल्लू आना था किंतु वह नहीं पहुँचा।

सुबाथू छोड़ने पर चोमा ने बुशहर जाने का निर्णय किया। बुशहर से वह कानम पहुँचा। कानम में उसने संपूर्ण बौद्ध वाङ्मय देखा। वह जून, 1827 में कानम आया और नवंबर, 1830 तक रहा। जिस लामा सङ्-ग्यस्-फुन्छोग को वह ढूँढ़ता रहा, उसने भी वहाँ रहकर काम किया।

यहाँ चोमा की भेंट डॉ० गोरार्ड से हुई जो सितंबर 1828 में उससे मिलने आए। गेरार्ड ने मौन साधक चोमा के विषय में लिखा–

जी०ई० गेरार्ड ने 21 जनवरी, 1829 को डब्ल्यू फ्रेजर के नाम निम्न पत्र लिखा–

"मैं अब उस हंगेरियन पर आता हूँ, जो इस यात्रा में मेरे सामने गुज़री चीज़ों में किसी से कम महत्त्व का नहीं है, और जिसके चलते मैं आपको इतना लंबा पत्र लिखकर कष्ट दे रहा हूँ। मैंने उसे कानम गाँव में पाया, अपनी छोटी किंतु रोमांटिक कुटी में, किताबों से घिरा हुआ और बहुत अच्छी तंदुरुस्ती में। यह सुबाथू में अपने सत्कार को नहीं भूला था और अपनी कृतज्ञता प्रकट करने को उत्सुक था। हमें मिले डेढ़ साल बीत चुके थे और वह प्रसन्न और गौरवान्वित था अपने श्रम का फल दिखाने में। वह काम में बिलकुल जुटा हुआ था और सफल था, और अगर उसका मन अध्ययन में रमा न होता तो वह मौसम के कारण इतना कठिन काम न कर पाता, जैसी हालत में वह है और चार महीने से है। ठंड बेहद है, और पिछले जाड़े भर सिर से पाँव तक ऊनी कपड़े लपेटे वह अपनी डेस्क पर काम करता रहा है और सुबह से रात तक, बिना किसी मनोरंजन या गरमाहट के 'इंटरवल' के सिवा सूक्ष्म भोजन के समय जो सदा मक्खन की चाय होती है। लेकिन कानम की ठंड जांगला की ठंड के आगे कुछ नहीं है। जहाँ मि० चोमा ने पूरा एक साल बिताया है। उस जगह उसने, लामा और एक सेवक ने नौ फीट लंबे-चौड़े एक कमरे में तीन या चार महीने बंद रहकर बिताए। वे बाहर निकल नहीं सकते थे, क्योंकि ज़मीन बर्फ से ढँकी हुई थी और तापमान शून्य से कम था। वहां बैठा, भेड़ की खाल ओढ़कर हाथ मोड़कर वह सुबह से शाम तक पढ़ता रहा, बिना आग के, बिना रोशनी के, ज़मीन पर सोता जलवायु की विषमता से जूझने के लिए सिर्फ नंगी दीवालों के सहारे। ठंड इतनी ज्यादा थी कि ऊनी खोल में से पत्र पलटने के लिए हाथ बाहर निकालना भी मुश्किल था।

"ऐसी दशा में, जिसमें अधिकतर लोग हार मान बैठते, उसने तिब्बती भाषा के 40,000 शब्द इकट्ठा किए और क्रम से जमाए। उसने अपना काम जीवंत तृप्ति के साथ दिखाया। उसने एक तिब्बती ग्रंथ की 44 जिल्दें पढ़ डालीं और उसे उनकी विषय-वस्तु में विशेष रुचि है। वह इस संभावना से बहुत खुश लगता है कि वह

दुनिया के लिए विशाल साहित्यिक खज़ाने की खानों को खोल सकेगा : उसने मुझे बताया, दर्द भरे बल के साथ, कि वह तिब्बती भाषा के व्याकरण और कोश को और उस देश के साहित्य के अन्य नमूनों को सुपुर्द कर पृथ्वी का सबसे सुखी आदमी होगा और अपनी प्रतिज्ञा पूरी का सूखपूर्वक मर सकेगा।

"'यहाँ मैं उस आदमी के लिए इस रकम के मूल्य के बारे में तरस ही खा सकता हूँ जिसकी तो सांसारिक खुशी सिर्फ इस बात में है कि वह मानवता के लिए जीए और अपने की समर्पित करे और जिसे सही कद्र और उचित यश के अलावा कोई पुरस्कार नहीं चाहिए।"

इस पत्र के प्रभाव से एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल ने वजीफे की रकम जो पहले संभवतः पचास रुपए मासिक थी, दुगनी कर दी गई।

कानम में अपने प्रवास के शांत तीन वर्षों में चोमा ने अपनी कृतियाँ पूरी कीं।

शब्दकोश, व्याकरण, बौद्ध पारिभाषिक शब्दावली की सूची, बौद्ध वाङ्मय के अंश। चोमा का साथी लामा सङ्-ग्यस्-फुन्छोग जून 1830 में जांस्कर लौट गया। लद्दाख पर 1834 में डोगरा पलटन ने हमला किया। लद्दाख परतंत्र हुआ। लामा वापस नहीं लौटा। चोमा ने भी लामा के जाने के बाद नवंबर 1830 में कानम छोड़ दिया।

सुबाथू आकर उसे अपने कार्य की खबरें मिलीं—'डिक्शनरी ऑफ द बुद्धिस्ट टर्मिनोलॉजी प्रैस के लिए तैयार थी। जनवरी 1933 में उसे छापने की तैयारी हुई। जनवरी 1934 में गुमर डिक्शनरी की पाँच सौ प्रतियाँ छप गईं। इसके प्रकाशन से तिब्बती अध्ययन की एक परंपरा आरंभ हुई।

फरवरी 1842 में चोमा सिक्किम होकर ल्हासा जा रहा था। वह दार्जिलिंग पहुँचा कि मलेरिया हो गया। ए० कैंपवेल की सेवा सुश्रूषा भी उसे बचा नहीं पाई और 11 अप्रैल, 1842 को इस साधक की मृत्यु हो गई।

कानम में चोमा मुख्य गोम्पा के ऊपर रहता था। एक छोटा-सा घर था, छोटा बरामदा। कोठरी के भीतर सिर झुकाकर ही प्रवेश किया जा सकता था। संभवतः यह घर वही है जहाँ अब मुख्य गोम्पा के साथ लामा रहते हैं।

यहाँ हंगरी से 1884 में आई एक टीम ने लिखवाया है जो कोरोश के जन्म की द्विशत वार्षिकी पर कानम आई थी।

आज भी मुख्य मठ के दरवाजे पर प्लेट लगी है। "डेडीकेटेड टु द मेमोरी ऑफ अलेक्जेंदर चोमा दे कोरोश : 1827-1830।"

मठ के ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ने पर वृद्ध लामा जी एक कोठरी में रहते हैं। संभवतः यहीं चोमा दे कोरोश रहते थे। इस कोठरी का भी छोटा-सा दरवाजा है। जहाँ झुककर भीतर जाया जा सकता है।

देव पूजा तथा धार्मिक मान्यताएँ

किन्नौर ऐसा अद्‌भुत क्षेत्र है हिमाचल प्रदेश का जिसमें एक ओर तो बौद्ध धर्मावलंबी हैं तो दूसरी ओर शैव और शाक्त, तीसरी ओर वैष्णव और चौथी ओर आदि देवताओं और शक्तियों के उपासक। यह संभवतः देश या विश्व का पहला ऐसा क्षेत्र होगा जहाँ इतने धार्मिक विश्वास होते हुए भी एक सामंजस्य बना हुआ है। गाँव के एक धर्मस्थल में, एक ही आँगन में एक नारायण मंदिर है तो दूसरा बौद्ध, एक नाग मंदिर है तो सामने गोम्पा।

यहाँ कहीं नारायण हैं, कहीं नाग हैं। कहीं शिव हैं तो कहीं शक्ति। कहीं तथागत हैं तो कहीं अवलोकितेश्वर। एक ओर देवता के गूर हैं जिन्हें ग्रोक्च या माली कहा जाता है तो दूसरी ओर गैरिक वस्त्र धारण किए लामा हैं। ग्रोक्च या गूर और लामा परंपरा यहाँ एक साथ चलती है। देवता की पालकी उठाए श्रद्धालु ऊँची-ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ जाते हैं तो किन्नर कैलास की कठिन परिक्रमा करते हैं। जब धार्मिक उत्सव हो, शादी-ब्याह हो, टाणा-माणा करवाना हो तो लामा लोग प्रकट हो जाते हैं। अकेले कल्पा में ही बौद्ध मंदिर, विष्णु मंदिर, चंडिका मंदिर और नागिन मंदिर हैं।

किन्नौर में शिव की उपस्थिति किन्नर कैलास से है। किन्नर कैलास यहाँ का प्रमुख आकर्षण है। कल्पा और रिकांग पियो के सामने बर्फ से ढका किन्नर कैलास सुबह की किरणों के साथ-साथ दिन भर कई रंग बदलता है। इस किन्नर कैलास की वर्ष में एक बार परिक्रमा की जाती है। शिव को शंकरस या महेशरस कहा जाता है। शिव के कई भव्य मंदिर यहाँ है जो काष्ठ कला की दृष्टि से वास्तुकला के अद्‌भुत उदाहरण हैं। इनमें सुंगरा महेश्वर का मंदिर दर्शनीय है जो निचार में (भावानगर से ऊपर) है। महेश्वर के मंदिर सुंगरा के अतिरिक्त चगाँव, पोवारी, ग्रामङ और ठंगी आदि स्थानों में हैं।

देवी चंडिका यहाँ एक महत्त्वपूर्ण देवी हैं। चंडिका के मंदिर कल्पा, कोठी और रोपा में हैं। चंडिका और उषा सभी बहनें मानी जाती हैं। उषा देवी का मंदिर निचार में है। इसके अतिरिक्त कामरू में भीमाकाली, हंगरंग में काली, रकछम में भगवती और छितकुल में माथी देवी के मंदिर हैं। देवी मंदिरों में बलि दी जाती है।

नाग पूजा भी पूरे क्षेत्र में होती है। साँगला, भंगपा, नटपा, कंदर, पुल, मेबर, चासू तथा रकछम में नाग मंदिर हैं। कल्पा, बरी में नागिन के मंदिर हैं। नाग पूजा में

प्रायः दूध चढ़ाया जाता है। नाग के साथ नारायण मंदिर भी हैं। कुल्लू की भाँति यहाँ नाग नारायण का इकट्ठा संबोधन किया जाता है। बद्रीनारायण मंदिर कामरू, बटसेरी में है।

महासू से लगते क्षेत्रों में महासू के मंदिर हैं। तेलंगी तथा पर्का में महासू देवता के मंदिर हैं। साँगला की ओर अंतिम गाँव छितकुल में बद्रीनाथ तथा रोहड़ू के लिए 'जोत' खुलते हैं। यहाँ महासू देवता के लिए बकरा काटा जाता है।

स्थानीय या आदिम देवी-देवताओं में बन देवी या देवता हैं। इन्हें बनशिरा, वीर, लुंगरा, सउणिया कहा जाता है। कुल्लू की जोगणियों, फुंगणियों की तरह ये देवियाँ व देवता हैं।

यहाँ भी कुल्लू की भाँति देवता के गूर, माली या ग्रोक्च देवता की गाथा सुनाते हैं। इसे देवता का गीत भी कहा जाता है। जिसमें देवता की कथा बखानी जाती है। देवता के रथ या रथङ् में प्रायः अट्ठारह मोहरे (मास्क) होते हैं। देवता के रथङ् को कुल्लू के देवताओं की भाँति नचाया जाता है। किन्नौर के बड़े देवताओं मोनशिरस, बद्रीनारायण आदि के कई कर्मचारी होते हैं। इनमें मोहतमीम, ग्रोक्च या माली, कायथ, भंडारी, पुजारी, बजंतरी आदि प्रमुख हैं।

किन्नौर के हर गाँव में जहाँ मंदिर है, वहीं बौद्ध मठ या गोम्पा भी है। यह परंपरा रामपुर से आरंभ हो जाती है जहाँ सड़क के साथ राजमहल के नीचे से एक मठ है। अधिकांश गाँवों में एक प्रांगण में मंदिर और मठ एक साथ हैं। जिन मंदिरों में बलि नहीं होती वहाँ मठ एक ही प्रांगण में विद्यमान हैं कुछ स्थानों पर अलग भी हैं। किन्नौर में हम जितना ऊपर जाते हैं, मठ अपनी अलग पहचान दिखाते हैं। हर गाँव में एक छोटे मठ के साथ कानम जैसे बड़े मठ भी हैं जहाँ हज़ारों की संख्या में कांग्यूर और तांग्यूर के ग्रंथ विद्यमान हैं।

कल्पा के समीप पांगी में, निचार के युला में, कामरू तथा साँगला में, चांगो, मालिंग, सुमरा, नाको, टशीगंग, शलखर, लियो, नमग्या, पूह, रोपा, स्पिलो जंगी, मूरंग, रिब्बा, ठंगी, रिस्वी और नेसंग में बड़े बौद्ध मठ हैं।

देव परिवार

कुल्लू या महासू की भाँति किन्नौर के देवी-देवता भी एक दूसरे के सगे संबंधी हैं। कोई किसी का पुत्र है, कोई भाई तो कोई बहन। किन्नौर के निचले क्षेत्र में बाणासुर-हिरमा परिवार के देवता हैं।

बाणासुर और हिरमा का प्रसंग प्रसिद्ध है। बाणासुर ने हिरमा से राक्षस विवाह किया और सूंगरा गाँव के समीप एक गुफा में रहने लगे। इस गुफा का नाम 'गोर बोरिङ् अग्ग' था। यहाँ इन दोनों के अट्ठारह पुत्र-पुत्रियाँ हुए। ये अट्ठारह संतानें अलग-अलग नामों से कालांतर में देवी-देवता बने।

एक लोकगीत में भी उल्लेख है कि नीचे (कुल्लू) से देवता आए। देवी हिरमा और देवता इकट्ठे हुए और ब्याह के बाद देवी हिरमा गोरबोरिङ् गुफा में गर्भवती हुई और अट्ठारह भाई-बहनों को जन्म दिया, जिन्हें देवी-देवता के रूप में पूजा जाता है।

हिरमा कफौर गाँव में पूजी जाती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह कुल्लू की हिडिम्बा से भिन्न है जिसका विवाह भीम से हुआ था। संभव है हिरमा या हिडिम्बा एक वंश का नाम हो।

हिरमा-बाणासुर के अट्ठारह पुत्र-पुत्रियाँ निम्न माने जाते हैं–

महेश्वर भावा, महेश्वर सुंगरा, महेश्वर चगाँव, महेश्वर मेबर। इन्हें मेशुर भी कहा जाता है। चंडिका कोठी, उषा निचार, चित्ररेखा तरंडा, दुर्गा छोटा कंबा, चगाँव दुर्गा चगाँव, बड़ा कंबा दुर्गा, बड़ा कंबा। इसके अतिरिक्त पिरासन नात्फा, और परका पवारी। चार अन्य भाई गूँगे तथा बहरे माने जाते हैं। एक अन्य महेश्वर, पुजारली महेश्वर ज़िला शिमला के पुजारली गाँव में है।

बाणासुर इस क्षेत्र का राजा था अतः सभी भाई-बहनों ने पूरा किन्नौर क्षेत्र आपस में बाँट लिया। बड़ी बहन चंडिका ने सब में उपजाऊ क्षेत्र रोपा गाँव अपने लिए रखा।

इसी लोकगीत में यह भी उल्लेख है कि मथुरा वृंदावन से तीन देवता प्रकट हुए। उस समय समस्त पृथ्वी जलमग्न थी। ऐसे समय वृंदावन का पूरा प्रबंध करने के बाद वे बद्रीनाथ चले गए। तीनों भाइयों ने अपने-अपने हिस्से बाँटे। जो सब से बड़े थे, वे वहीं ठहरे। इन का नाम तपपूर्ण था। मझले अन्नपूर्ण टिहरी गढ़वाल चले गए। सबसे छोटे देवपूर्ण ने कामरू की गद्दी सँभाली। कामरू में बाणासुर का राज्य था। इन्होंने बाणासुर और छोटे-छोटे ठाकुरों को हराकर तिब्बत की अंतिम सीमा और

गढ़वाल के कुछ भागों को लेते हुए बुशहर की राजधानी कायम की।

अन्य कथा यह भी है कि श्रीकृष्ण ने सराहन के शासक बाणासुर को हराकर अपने पौत्र प्रद्युम्न को राजगद्दी पर बिठाया। उषा-अनिरुद्ध उपाख्यान के अतिरिक्त यह भी मान्यता है कि तीन भाई सराहन में घूम रहे थे। उस समय सराहन का सिंहासन खाली था। सामंतों ने प्रद्युम्न को राजसी गुणों से संपन्न जान राजगद्दी सौंपी।

लोकगीतों से सूंगरा, चगाँव, चंडिका तथा उषा के बीच राज्य के विभाजन का उल्लेख आता है। कुछ के अनुसार सबने अपने-अपने क्षेत्र स्वयं ढूँढ़े।

लोकगीतों या लोकास्थाओं में अलग-अलग मत है किंतु यह तथ्य झुठलाया नहीं जा सकता कि पुराने राजा या प्रभावी व्यक्ति यहाँ बाद में देवता बने जैसा कि अन्य स्थानों में रहा है।

कथाओं में बाणासुर को कोई हिस्सा नहीं मिला। हालाँकि पहले बाणासुर ही यहाँ का राजा था। बाणासुर-हिरमा की संतानों में देवी चंडिका सबसे चतुर मानी जाती है जिसने सबसे उपजाऊ भूमि ली।

महेश्वर तथा देवियों के अतिरिक्त नाग यहाँ के महत्त्वपूर्ण देवता है। ब्रूआ, सापनी, युला, साँगला, उरनी, बरी में नाग देवता है। इस तरह नागिनें भी पूजी जाती हैं।

नागों के अतिरिक्त ग्राम देवता, वन देवता व देवियाँ, फसल के देवता व देवियाँ, पहाड़ की चोटियों या कंढों के देवता प्रमुख देवता हैं जो यहाँ के मूल देवता भी माने जा सकते हैं।

किन्नौर के ऊपरी क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रभाव है। निचले क्षेत्र में जहाँ बौद्ध और हिंदू मंदिर साथ-साथ हैं, पूह तक पहुँचते-पहुँचते बौद्ध धर्म प्रभावी होता जाता है।

बाणासुर-हिरमा की संतानों के अतिरिक्त भी कुछ प्रभावी देवता हैं जो अलग अलग स्थानों में अपनी मान्यता रखते हैं।

छितकुल की देवी माथी की वहाँ मान्यता है। यह माना जाता है कि देवी का विवाह कामरू के बद्रीनारायण से हुआ। बटेसर का नारायण भी देवी का पति माना जाता है। रिब्बा में कासूराजस का मंदिर है जिसे कंसराज भी कहा जाता है। रकछम में देवी सौनिगे की मान्यता है। देवी को बकरे की बलि दी जाती है। जानी गाँव में गंधर्वस देवता है। यहीं गंधर्वस का सहायक देवता नारायण हैं। युल्सा देवता नमज्ञा में है जो ल्हासा से आया बताया जाता है। युल्सा देवता की मान्यता नमज्ञा, हांगो, सुगनम, रोपा आदि गाँवों में है। छोटा कंबा में नागिन देवी है जो उषा की अवैध संतान मानी जाती है। इसे उषा की बहन भी माना जाता है।

कानम में डबला देवता है जो ल्हासा से आया है। ये नौ भाई-बहन हैं। यह माना जाता है कि इन्हें एक याक दौड़ाता हुआ लाया और यहाँ आकर ये एक गुफा में छिप गए। अशरंग में नागस् देवता है जो सापनी से आया। कामरू किले में बद्रीनाथ के साथ कामाख्या का मंदिर है जो किले के भीतर है। रामपुर बुशहर के राजवंश से

संबंधित कल्यान सिंह तथा छत्र सिंह भी देवता के रूप में पूजे जाते हैं।

रोपा में देवी चंडिका का मंदिर है। रोपा से ऊपर युल्सा का मंदिर कंढे में है। लबरङ् में छंकोलिङ्, स्पिलो मे खोरमोश, सुगनम में युल्सा, जंगी मे क्यङ् मासुङ् के मंदिर हैं। मूरंग में ओरमिग, हांगो में डबला, लियो में जोमातोक देवता स्थापित है। लियो में तालिङ्सा, रापङ्नागस, नैदक के मंदिर भी हैं।

मेबर में काली, रक्शू, महासु, न्युगे, वीर, वजीर कणालोस्या के मंदिर हैं। शयालखर में शूमा, यूल्सा, ग्यलबू, युल्सा के मंदिर है। मालिंग नाको में पुरग्युल शू देवता है। नाको के ऊपर पुरग्युल चोटी है। जो बाईस हज़ार फुट ऊँची है चांगो में डबला, देदुम और युल्सा देवता हैं।

बाणासुर और हिरमा

किन्नर वाङ्मय में बाणासुर का विशेष महत्त्व है। बाणासुर किन्नर क्षेत्र में असुर साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। बाणासुर का राज्य तिब्बत तक था। बाणासुर का उल्लेख पुराणों में मिलता है। प्रह्लाद के वंश से भी बाणासुर का संबंध जोड़ा जाता है। दक्षप्रजापति के वंश में हिरण्यकश्यपु से लेकर विरोचन तक वंशावली के बाद बलि के सबसे बड़े पुत्र का नाम बाणासुर था। लोक आस्था के अनुसार बाणासुर मंत्री था। दूसरे मंत्रियों द्वारा ईर्ष्या करने पर वह कामरू से चला गया। जब बाणासुर जा रहा था जो शिव कैलास में तांडव कर रहे थे। उनके तांडव से सतलुज धरती पर उतरी। शोणितपुर (सराहन) में बाणासुर ठहर गया और सतलुज को आगे जाने के लिए कहा। यहीं बाणासुर ने अपनी राजधानी बनाई। यह भी कथा है कि बाणासुर ने अपनी हज़ार भुजाओं से कई वाद्य बजाकर शिव को प्रसन्न किया।

बाणासुर का विवाह हिरमा से हुआ। हिरमा चौरा (कफौट) की देवी थी। हिरमा की सुंदरता पर आसक्त हो बाणासुर ने गंधर्व विवाह कर लिया। इनकी अट्ठारह संतानें हुईं। सबसे बड़ी पुत्री का नाम चंडिका था जो बाद में देवी के रूप में पूजी जाने लगी। इससे छोटा पुत्र महेश्वर कहलाया। तीसरे-चौथे भी महेश्वर कहलाए। पाँचवीं पुत्री उषा कहलाई।

हिरमा को हिडिंबा भी कहा जाता है। हिडिंबा का संबंध महाभारत के भीम से था। यह निश्चित नहीं है कि यह हिरमा हिडिंबा ही थी। लोकास्था के अनुसार यह हिडिंबा से अलग देवी है। हिरमा नाम से देवी किन्नौर से नीचे रामपुर तक पूजी जाती है। निरमंड के परशुराम मंदिर के बाहरी द्वार में देवी की पाषाण प्रतिमा है जिसे हिरबणी कहा जाता है। अतः हिरमा मनाली की हिडिंबा से अलग देवी रही होगी।

पर्व उत्सव त्यौहार

किन्नौर में त्यौहार उत्सवों का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। विभिन्न संस्कृतियों, धर्म-संप्रदायों के समन्वय ने यहां कई अद्भुत उत्सवों को जन्म दिया। हिंदू तथा बौद्ध धर्म के आगमन से पूर्व यहाँ आदिम मान्यताएँ रहीं। यहाँ की मूल संस्कृति के प्रतीक उत्सव अभी भी यहाँ मनाए जाते हैं। कहीं देव संस्कृति का समावेश हुआ है, कहीं बौद्ध संस्कृति। कुछ पूर्णतया अलग-अलग हैं।

मूल त्यौहार उत्सव

फुल्याच

फुल्याच, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, फूलों का त्यौहार है। यह एक पुरातन त्यौहार है। सम्भवतः बौद्ध संस्कृति के पदार्पण से पहले का। इसे उख्याङ् फुलायच, उखिङ्, नपङ्न और मिंथोको भी कहा जाता है। अलग-अलग गाँवों में यह अलग नामों से और अलग तिथियों को मनाया जाता है। विभिन्न तिथियों को लोग 'कंढे' से फूल लाते हैं। अपने गाँव में समीपस्थ चोटियों से फूल लाए जाते हैं। कंढे से फूल लाकर देवताओं को अर्पित किए जाते हैं। पूर्वजों के लिये झंडे चढ़ाए जाते हैं और 'सावणी' देवियों की पूजा की जाती है। त्यौहार के दिन अपनी निकाली हुई शराब बाँटी जाती है। अश्लील बातें करने के साथ अश्लील हरकतें की जाती हैं।

इस अवसर पर पितरों के नाम बने चबूतरों पर जिन्हें कोटङ् शेखार या शकरि कहा जाता है, झंडे चढ़ाए जाते हैं। पूर्वजों की मृत्यु के शोक संताप से बचने के लिए शराब पी जाती है।

इस पर्व का मुख्य आकर्षण पर्वतों की चोटियों से फूल लाना है। ग्रामीण निश्चित संख्या में पर्वतों की चोटियों पर जाते हैं। कई बार वे घोड़ों और याकों पर सवार हो जाते हैं। विशेष प्रकार से फूल उन्हें ढूँढने पड़ते हैं। इस उत्सव से पहले किसी को भी फूलों के स्थान पर जाने की अनुमति नहीं होती।

फूल को 'ऊ' कहते हैं, संभवतः इसीलिए इस उत्सव का नाम 'ऊख्याङ्' पड़ा। 'ख्याङ्' का अर्थ है देखना—अर्थात् फूल को देखने का त्यौहार। पर्वतों की चोटियों पर होने वाले लदरा, डोङगोर, लोस्करच, बछाऊ, ज़ोल्दी, काचङ्स आदि फूल लाए जाते हैं। इस दिन को 'ऊ चब' अर्थात् फूल लाने का दिन कहा जाता है। फूल लाने गए व्यक्तियों में से कुछ 'ऊ आकठ' अर्थात् फूलों की गुफा में ठहरते हैं। गुफा में ठहरे

लोग फूल लाने वाले लोगों को नहीं देखते और फूल आने पर छिप जाते हैं। इन्हें देखने पर अनिष्ट माना जाता है।

फूल लाते हुए कुल्लू में होने वाले गनेड़ की भाँति दुष्टात्माओं को भगाने के लिए अश्लील शब्दों का उच्चारण एक महत्त्वपूर्ण परंपरा है।

यह पर्व किन्नौर के हर गाँव में मनाया जाता है। फूल लाने के साथ पितरों को तर्पण किया जाता है।

अधिकांश गाँवों में यह पर्व भादों में मनाया जाता है, कुछ गाँवों में असूज में। कुछ में कार्तिक में मनाए जाने की प्रथा भी है।

18-19 भादों को कानम, लिप्पा, लबरङ्, सुङ्नम, लियो, मेबर गाँवों में, 20 भादों को कामरू, रकछम, साँगला तथा कूनोचारङ् में, 24 भादों को सुन्नम में और 31 भादों को मूरंग में फुल्याच मनाई जाती है। चगाँव में यह उत्सव 28 से 31 असोज को मनाया जाता है। वाङ्पो घाटी में 10 से 17 कार्तिक रोपा में 7 से 10 कार्तिक को इस उत्सव का आयोजन होता है।

पांगी में कंढे से लोस्कर तथा ज़ामर फूल लाते हैं, कानम-लिप्पा में चङ्मङ्, लियो में डांङ्गो की चोटी से लदरा फूल लाए जाते हैं। मेबर में डोङ्गोर, लोस्करच, बछाऊ, ज़ोल्छी, काचङ्स फूल लाए जाते हैं। सुंगरा में सोरो कंढे से फूल लाए जाते हैं।

देवताओं का चमत्कार

इस उत्सव में देवताओं के ग्रोक्च (गूर) अपने चमत्कार भी दिखाते हैं। मूरंग में देवताओं के ग्रोक्च होंठों तथा गालों में सूइयाँ चुभोते हैं। वे पितरों के श्राद्ध के अच्छा या बुरा होने के बारे में भी बताते हैं। वाङ्पो घाटी में ग्रोक्च गाल में सूई चुभोकर मेले के तीन चक्कर लगाता है। सुङ्नम में ग्रोक्च उबलते तेल में हाथ डाल आटे से बनी मनुष्य की मूर्ति निकालता है। वह खंबे से सिर टकराता है। ठडे. में ग्रोक्च सिर को पत्थर में मारता है, गालों में सूई या सलाई चुभोता है।

मेला, नृत्य तथा विवाह

फुल्याच जिसे अलग-अलग नामों से मनाया जाता है एक, दो, तीन या चार-चार दिन तक चलती है। इस अवसर पर पूर्वजों को शोक के परित्याग के साथ मेला तथा नाच-गाना होता है। देवताओं को फूल चढ़ाकर नृत्य किया जाता है। कई जगह शोकनृत्य भी किया जाता हैं जिसमें नर्तक हँसते नहीं। शोक के परित्याग के बाद खुशियाँ मनाई जाती है। कई जगह जैसे रोपा में एक दिन नृत्य तथा गायन के लिए निश्चित होता है।

इस अवसर पर विवाह भी किए जाते हैं।

बकरे, मेमने की बलि, सावणी देवी की पूजा, शराब तथा पोल्टू बाँटना आदि अन्य कृत्य हैं जो इस उत्सव में किए जाते हैं।

ऊ ओ

'ऊ' अर्थात् फूल और 'ओ' अर्थात् लाना। फूल लाने का त्यौहार रोपा घाटी में ऊओ के नाम से जाना जाता है। यह 20 भादों को होता है और फुल्याच का ही एक रूप है। कंढे से फूल एक डंडे में लाए जाते हैं। इन फूलों में दो भँवरों को भी जीवित पकड़ा जाता है। फूल लाने वालों का स्वागत चंडिका और युल्सा के ग्रोक्च (गूर) कहते हैं। ये गूर एक-एक फूल भँवरे सहित खा जाते हैं। रिन-चेन-जंगपो के मंदिर की तीन परिक्रमाएँ की जाती हैं और मेला लगता है। अगले दिन कंढे में गई युवतियाँ युवकों को चाय पिलाती हैं। 22 भादों को मेला लगता है जिसमें इक्कीस वर्ष से अधिक आयु के महिला पुरुषों का भाग लेना अनिवार्य है। युल्सा का ग्रोकच् नृत्य करता है और क्रो (कलश) से पानी का छिड़काव करता है। अपने गालों में सूई चुभोता है।

छोटा फुल्याच्

यह त्यौहार कहीं-कहीं मनाया जाता है। मूरंग में सावणी तथा नाग पूजा के साथ शुक्ल पक्ष की सप्तमी को असूज या कार्तिक में नागों को सुलाया जाता है। इनसे फसल की रक्षा की प्रार्थना की जाती है। साँगला में महासू देवता की पूजा अर्चना की जाती है। महासू देवता का माली (गूर) जलती आग में छलाँग लगाता है। रकछम में भी ग्रोकच् (गूर) आग में छलाँग लगाता है। यहाँ भी महासू देवता तथा सावणियों की पूजा की जाती है। यह उत्सव ग्रामङ् कामरू, साँगला, रकछम आदि में मनाया जाता है।

रङ्कोरङ् चिम

'रङ्' अर्थात् पर्वत और 'कोरङ चिम' भेंट करना-पर्वत के दर्शन करने का पर्व है। युवक युवतियाँ पर्वतों की चोटियों पर चढ़कर सावणी देवी की पूजा कर पर्वतों की चोटियों के पास ही मेला मनाते हैं। जुलाई मास में आयोजित इस पर्व में सावणी देवियों के लिये बलि दी जाती है। कोटङ् की झंडियों को बदलकर नई चढ़ाई जाती हैं।

मेबर, साँगला की ओर यह त्यौहार मनाया जाता है।

चैत्रोल

चैत्रोल उत्सव भी एक आदि उत्सव है। इस उत्सव में राक्षसों पर देवताओं की विजय और शिशन पूजा का एक उदाहरण मिलता है। अनार्य जातियों की संस्कृति में

इस प्रकार के अश्लीलता के त्यौहार मनाए जाते रहे हैं—ऐसा समाजशास्त्र के विद्वानों का मत है।

चगाँव के चैत्रोल में एक परिवार का व्यक्ति एक मुखौटा पहनता है जिसे 'खोर' कहते हैं। खोर पहने व्यक्ति को राक्षस माना जाता है जिसे 'खोन' कहते हैं। इसके गले में लकड़ी का एक लिंग लटका देते हैं तथा पेट के नीचे छुनछना बाँध देते हैं। लोग इसे छेड़ते हुए तंग करते हैं। इस प्रकार युवक लिंगाकार लकड़ी लेते हैं जिसे चैत्रोल-शिङ्ो कहते हैं। चैत्रोल शिङ् अर्थात् चैत्रोल की लकड़ी। यह लकड़ी किसी भी वृक्ष से लेकर उसे लिंगाकार बना लिया जाता है। चैत्रोल शिङ् लिए युवक किसी भी युवक या युवती से मजाक कर सकते हैं। ये लोग खोन सहित गाँव का चक्कर लगाते हैं और राक्षसों के भगाने के लिए अश्लील मजाक करते हुए शोक स्वर में शंख बजाते हैं।

इस अवसर पर हरिजनों द्वारा होरिङ्-फो स्वाँग किया जाता है। दो आदमी होरिङ्-फो बनते हैं, एक होरिङ्-फो की पत्नी।

खोन मेले के दो चक्कर लगाकर देवता के भंडार में वापस चला जाता है। खोर अर्थात् मुखौटे को पुनः भंडार में रख दिया जाता है।

चैत्रोल शिङ् ब्रूआ गाँव में भी मनाया जाता है। घरों की सफाई, लिपाई-पुताई के बाद पौल्टू बनाए जाते हैं। देवता की पूजा-अर्चना के बाद सायं भूत-प्रेतों को भगाने के लिए गाँव के बाहर हाँडियाँ फोड़ी जाती हैं।

शुक्ल पक्ष की निश्चित तिथि को मेबर गाँव में भी चैत्रोल मनाया जाता है। प्रथम दिन दीवारों पर चित्र बनाए जाते हैं। हाँडियाँ भी तोड़ी जाती हैं जिन पर चित्रकारी की होती है। आटे के बकरे तथा मेमने बनाकर घरों में रखे जाते हैं जिनके प्रातः दर्शन किए जाते हैं। घरों में पोल्टू बनाए जाते हैं।

बीशू

चैत्रोल के बाद बीशू किन्नौर का एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। बीशू के दिन देवता के मुखङ् या मोहरे की सफाई की जाती है। मंदिर के भंडार से पुराने हथियारों को निकालकर उनकी सफाई की जाती है। कई जगह दो दल बनकर युद्ध का नाटक भी किया जाता है। इस अवसर पर मेमने या बकरे की बलि भी दी जाती है। हथियारों की सफाई तथा कृत्रिम युद्ध को 'बल' भी कहा जाता है। पहले बल के दिन कई जगह सूअर, मेमना, कव्वा, मुर्गा तथा बकरे की बलि दी जाती थी। महासू देवता के मंदिरों में देवता का क्रो (कलश) निकाला जाता है जिसे नचाया जाता है। बहुत स्थानों में मेला लगता है और देवता के साथ मनुष्य भी नृत्य करते हैं।

बीशू का त्यौहार चगाँव, पांगी, मूरंग कानम, लिप्पा, मेबर, रोपा, रारङ्, जंगी आदि गाँवों में मनाया जाता है। रोपा में 20 बैशाख, जंगी में 2-3 बैशाख को

मनाया जाता है। चगाँव में जहाँ देवता के मुखङ् तथा हथियारों की सफाई की जाती है, रोपा में चूली फल देवता को भेंट किए जाते हैं, सुङ्नम में देवनृत्य होता है।

सुंगरा में बीशू के पहले दिन मंदिर के प्रांगण में मेला लगता है। इस अवसर पर स्वाँग निकाले जाते हैं। ये चैत्रोल की तरह पाँच 'खोन' स्वाँग में होते हैं। तीन खोन इकट्ठे होकर एक राक्षस बनते हैं, एक राक्षस की पत्नी बनता है। राक्षसी के मुँह में एक बच्चा दिखाया जाता है। एक 'थर खोन' अर्थात् बाघ राक्षस बनता है। ये लोग उछल-कूद मचाते हुए अश्लील मजाक करते हैं। मेशुर देवता तथा नारायण के रथों के आगे ये अश्लील और भद्दी हरकतें करते हुए गुजरते हैं। इस मेले में पहले चैत्रोल शिङ् भी लाए जाते थे। ये लोग यौन क्रिया-सी हरकतों का प्रदर्शन भी करते हैं।

यह सारा आयोजन राक्षसों के भगाने के लिए किया जाता है। शोक धुन वाद्यों पर बजाई जाती है जिसका अर्थ है राक्षसों की मृत्यु।

कामरू गाँव में बीशू के दिन ग्रोक्च (गूर) हल चलाने का मुहूर्त बताता है। छितकुल में देवी माता को बीशू मेले में प्रथम बार बाहर निकाला जाता है। रिब्बा में प्रथम बैशाख बीशू मनाते हैं।

लोसर

'लो' का अर्थ वर्ष और 'सर' का अर्थ नया, लो सर अर्थात् नया वर्ष। तिब्बत का यह त्यौहार बौद्ध धर्म के आगमन के साथ किन्नौर में भी आया। यह त्यौहार किन्नौर के ऊपरी क्षेत्र में अधिक मनाया जाता है। जहाँ बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ता गया है।

कानम तथा मूरंग में गृह देवता की पूजा की जाती है। वर्ष के प्रथम दिन हरिजन, कुत्तों से मिलना अच्छा नहीं माना जाता। चूहा तथा मेमना देखना शुभ है। प्रातःकाल में हरिजन लोग 'लो सोमा राशी' अर्थात् सौ वर्ष जीने की मंगल कामना के साथ हार लेकर जाते हैं। घरों में आटे के हिरन, घोड़ा, बैल, मेमना बकरा बनाकर रखे जाते हैं। जिन्हें प्रातः उठकर देखना अच्छा माना जाता है।

यह त्यौहार हाङ्गो, लियो, चांगो, नमग्या, सुङ्नम, पूह, रिब्बा, कूनो चारङ् आदि स्थानों में मनाया जाता है।

दकरेणी

श्रावण मास में दकरेणी का त्यौहार किन्नौर के विभिन्न भागों में मनाया जाता है। पांगी गाँव में लोग ऊँचे शिखर पर जाकर बड़े मैदान में अश्लील गाने गाते हैं। रात को धूप की लकड़ी जलाते हैं। कोटङ् में पूर्वजों के नाम के झंडे चढ़ाए जाते हैं और खाद्य सामग्री रखी जाती है। 'पीरी' नामक शिखर में विवाह का स्वाँग निकाला जाता है जो कई बार वास्तविक विवाह में बदल जाता है।

यह त्यौहार मूरंग, कानम, लिप्पा, कामरू, मेबर तथा साँगला आदि में मनाया जाता है।

शिरकिन

शिरकिन या शिरगिन कानम, लवरङ्, जंगी, सुङ्नम, पूह में मनाया जाता है। इस अवसर पर विभिन्न गाँवों में मेला लगता है। नृत्य होता है। देवता की पालकी निकाली जाती है।

पुराने समय में इस मेले मे नरबलि भी दी जाती थी, ऐसा विश्वास है। पूह में एक कथा है कि प्राचीन समय में आठ वर्ष के एक बच्चे और तीन वर्ष के बैल को मेले के दिन गढ़े में फेंक देते थे। कहा जाता है जब यहाँ 'युल्सा ठोमोमिन' गिद्ध बनकर यहाँ रहने लगी तो देवी ने यह प्रथा बंद करवा दी। बौद्ध धर्म की यह देवी जहाँ-जहाँ बैठी, वहाँ स्थान पवित्र माने जाने लगे। पूह में होने वाले 4-5 कार्तिक के इस मेले में अब बच्चे और बैल के स्थान पर छेली डाली जाती है। बैल के स्थान पर पाँच समय दूध इकट्ठा कर इसे मथकर लस्सी व पनीर बनाया जाता है और देवी को चढ़ाते हैं।

कानम में यह मेला 5 कार्तिक को होता है। कानम के ऊपर कमका में मेला लगता है। मेले में नृत्य होता है। इसमें कानम, लबरङ्, स्पीलो के लोग भाग लेते हैं। जंगी में मेला 10 कार्तिक को मनाया जाता है। नमग्या में 7 से 10 कार्तिक मेला मनाया जाता है। 7 कार्तिक को पोल्टू बनाए जाते हैं, 8 को देवता सजता है और बकरे काटे जाते हैं। अगले दो दिन देवता को नचाते हैं और बकरे बलि किए जाते हैं। पूह में 4-5 कार्तिक को मेला लगता है।

ञिने

इस त्यौहार के दिन मठ के लामा तथा ज़ोमो उपवास पर रहते हैं। सत्तू के गोले बनाकर उनकी पूजा की जाती है। उपवास के बाद खाना खाने पर शंख बजाया जाता है। लामा किसी व्यक्ति को चिकोटी काटता है। सभी एक दूसरे को चिकोटी काटते हैं। रात भर मेला चलता है।

लामाओं द्वारा धर्मग्रंथों का पाठ, कल्याण के लिए प्रार्थनाएँ की जाती हैं। पाठ में शांति तथा दीर्घायु के लिए प्रार्थनाएँ की जाती हैं।

खोक्चा

कुनो चारङ् में मनाया जाने वाला यह देवता का उत्सव है। मेले के दौरान देवता को सभी ग्रामीणों को अपने घर बारी-बारी ले जाना होता है। देवता का यह मेला कुनो तथा चारङ् में बारी बारी से आरंभ होता है। गाँव में जिस खानदान की बारी आई हो या जिसके घर पुत्र उत्पन्न हुआ हो, देवता जाता है।

देवता को निकालकर गाँव के लड़के गाँव से पोल्टू, सत्तू और छङ् (शराब) माँगकर लाते हैं। पोल्टू खा लेते और छङ् पी लेते है। सत्तू देवता के पास रखने होते हैं। सत्तू का गोला बनाकर उसकी पूजा की जाती है। देवता के निकलने के साथ

बौद्ध मंदिर से शंख, तलवार तथा कपड़ा निकाला जाता है। कपड़े में अनाज का दाना निकले तो अच्छी फसल होगी, हड्डी निकले तो आदमी बहुत मरेंगे, ऐसा विश्वास किया जाता है।

देवता के निकलने के पहले दिन को 'सूआ' कहते हैं। दूसरा दिन 'पिया' कहलाता है जब देवता की प्रातः पूजा की जाती है। घरों से 'शकदू' लाकर देवता को चढ़ाया जाता है। जिसमें सत्तू, शराब, थुकपा आदि होता है। पुजारी हर महिला से यह भेंट ग्रहण करता है। तीसरे दिन देवता घर में ले जाया जाता है। यदि किसी घर में लड़का हुआ हो तो वहाँ मेला मनाया जाता है। इस उत्सव की समाप्ति चारङ् में होती है। बौद्ध मंदिर में पोथियों का वाचन किया जाता है। कई बार लामा घरों में भी कंग्यूर का पाठ करते हैं। यहाँ अतिथियों को चाय और सत्तू दिया जाता है। रात को छङ् भी पी जाती है। खाना दिया जाता है। इस प्रकार एक दिन एक घर में तो दूसरे दिन दूसरे घर में लामा पोथियाँ पढ़ते हैं। पोथी वाचन के साथ वाद्य भी बजाए जाते हैं।

खेपा

खेपा त्यौहार कामरू, वाङ्पो घाटी आदि कम स्थानों में मनाया जाता है। यह भूतप्रेतों दुष्टात्माओं को भगाने का त्यौहार है। इस दिन शलगम की लफ्फी बनाई जाती है। छत पर घर के कोनों में काँटेदार झाड़ियाँ रखी जाती हैं। भेड़, बकरे या मेमने का सिर पकाया जाता है। इसे काँटेदार टहनियों के साथ घर के भीतर तथा बाहर लगाया जाता है। बकरे का सिर पकाकर खाया जाता है। और सींगों को जलाया जाता है। इस दिन कोई मेला नहीं होता।

पितङ् हूराङ्

यह देवताओं के कैलास या स्वर्ग जाने का त्यौहार है। कुल्लू की भाँति किन्नौर में भी देवता माघ तथा पोष में स्वर्ग जाते हैं। वहाँ जाकर ये जुआ खेलते हैं और अपने क्षेत्र के लिए अधिक से अधिक जीतकर लाने का प्रयास करते हैं। देवताओं के स्वर्ग जाने पर बहुत काम वर्जित हो जाते हैं। मिट्टी नहीं खोदी जा सकती, कुल्हाड़ी नहीं चलाई जा सकती। कथा सुनना, गाना-बजाना, दान करना सब वर्जित होता है।

माहङ् साङा

देवता युकुंतरस की दो बेटियों-गोरे तथा गंगे का विवाह शिव के साथ पंद्रह माघ को हुआ था, इसी घटना के स्मरण में लगभग समस्त किन्नौर में पंद्रह माघ को यह त्यौहार मनाया जाता है। कुछ देवता इस दिन स्वर्ग से वापस आते हैं तो कुछ स्वर्ग को जाते हैं।

लिप्पा में इसे 'माहङ्चोअङ् कहा जाता है। रात्रि को चूल्हा लीप-पोतकर रखा

जाता है। प्रातः यहाँ अनाज के दाने गिरे मिलें तो शुभ माना जाता हैं। कानम में देवता स्वर्ग जाता है। देवता के स्वर्ग जाने के उपलक्ष्य में भोज दिया जाता है। जंगी में माना जाता है कि देवता का सोथिङ् अर्थात् सत्य या सत कैलास चला जाता है। देवता की अनुपस्थिति में लोग लंका राक्षस की मूर्ति या चित्र कागज पर बनाकर तीर से निशाना साधते हैं। मेबर में नया वर्ष मनाया जाता है। लोग नहाते हैं। इस दिन इनका देवता स्वर्ग से वापस आता है। इस खुशी में बकरे काटे जाते हैं। देवता को कोठी या भंडार से मंदिर में लाया जाता है। खुशी में बंदूकें दागी जाती हैं। लबरंग किले में भी यह त्यौहार मनाया जाता है। पकवान बनते हैं मेला लगता है। कफौर में मेला नहीं लगता, चिल्टे के साथ घी खाया जाता है। सारे गाँव में रात को अँधेरा रहता है। केवल पुजारी तथा ग्रोक्च ही घर में रोशनी जला सकते हैं।

शिवरात्रि

किन्नौर में शिवरात्रि मुख्यतः औरेस या बढ़ई जाति द्वारा मनाई जाती है। औरेस तथा हरिजन इस दिन घास का देवता बनाते हैं जिसे घास की पालकी में रखते हैं। इस देवता की पूजा कर दरवाजे के ऊपर लटका दिया जाता है। घरों में नृत्य किया जाता है।

इस दिन वाद्ययंत्रों को सतलुज में स्नान करवाया जाता है और वादक स्वयं भी नहाते हैं। नृत्य किया जाता है। फल-फूल बाँटे जाते हैं और वादकों की शराब के साथ पूजा की जाती है।

यह त्यौहार मूरंग, जंगी, स्पीलो, कानम में औरेस लोगों द्वारा ही मनाया जाता है।

दीवाल

यह त्यौहार दीवाली की भाँति होते हुए भी दीपावली से भिन्न है। साँगला की ओर यह त्यौहार दीवाली के साथ मनाया जाता है। आँगन में लिपाई के बाद अखरोट के छिलकों के दीपक जलाए जाते हैं। बच्चों को ओगले के चिल्टे बाँटे जाते हैं। रात को भी चिल्टे खाए जाते हैं।

पांगी में पाँच व्यक्ति मुखौटे पहन 'खोन' बनते हैं। अश्लील प्रदर्शन करते हुए खोन तीन चक्कर लगाते हैं। यह त्यौहार दीपावली के आम त्यौहार से दस पंद्रह दिन बाद मनाया जाता है। मूरंग में दीवाल मग्घर में मनाई जाती है। चगाँव में आँगन में दीपक जलाए जाते हैं और हवन किया जाता है। दीवाल का त्यौहार लिप्पा, मेबर, सूंगरा, राक्छम, रिब्बा आदि में भी मनाया जाता है।

छोटा दीवाल का त्यौहार बड़े दीवाल के एक मास बाद मनाया जाता है। यह निरमंड तथा महासू-सिरमौर की ओर मनाई जाने वाली बूढ़ी दीवाली की भाँति है। साँगला में यह त्यौहार अधिक प्रचलित है। देवता द्वारा मेला के लिए चार प्रबंधकों का

चुनाव किया जाता है। जिन्हें 'पोटोमङ्' कहा जाता है। तीन अन्य व्यक्ति जिन्हें 'जेठेरस' कहा जाता है। देवता के भंडार में शराब तथा अन्य वस्तुओं की देख-रेख करते हैं। दो व्यक्ति 'सिंहा' बनाए जाते हैं। सिंहा देवता के प्रतिनिधि माने जाते हैं। एक वृक्ष की टहनियों से 'बाणा' बनाया जाता है जो एक लंबे साँप का ही रूप होता है। इस सांप को आगे से हरिजन और पीछे से सवर्ण उठाकर जोलारिङ् में ले जाते हैं। रास्ते में साँप को रस्से की तरह खींचा जाता है। जोलारिङ् में इसे रख दिया जाता है और अश्लील गाना गाया जाता है। फिर साँप को सिंहा तथा पुजारी काट देते हैं, साँप का सिर मंदिर में ले जाया जाता है।

दीवाल का त्यौहार कामरू, साँगला, चगाँव, लिप्पा, मूरंग, पांगी, कफौट में भी मनाया जाता है। साँगला और चगाँव में आँगन में दीपक जलाते हैं। मूंरग में यह मग्घर में होता है। पांगी में दीपावली के लगभग पंद्रह दिन बाद मनाया जाता है। मेबर में मग्घर अमावस्या को तथा साँगला में दीपावली के एक मास बाद यह त्यौहार मनाया जाता है।

जग्रो

जग्रो को जागङ् या जगरना कहते हैं जो महासू देवता की पूजा का त्यौहार है। यह जन्माष्टमी से चार दिन पहले मनाया जाता है। कामरू में इस त्यौहार के अवसर पर ग्रोक्च आग में छलांग लगाता है। मूरंग में देवता अट्ठारह वाद्ययंत्रों के साथ अपनी कोठी के अट्ठारह चक्कर लगाता है। यह त्यौहार रिब्बा में 16-17 माघ को मनाया जाता है।

साज़ो

साज़ो या संक्रांति देवताओं की विदाई का पर्व है। यह माना जाता है कि देवता अब स्वर्ग चले गए। इस दिन से मंदिर बंद हो जाता है। देवता की पालकी खोल दी जाती है। कामरू में साज़ो के दिन देवता पंद्रह माघ तक इंद्रपुरी चला जाता है। राक्छम में साज़ो 28 माघ से पाँच फाल्गुन तक मनाया जाता है। पहले समय में यह माना जाता था कि देवता के जाने पर गाँव के राक्षस आ जाते थे अतः देवता ने महासू तथा रङ्न् देवताओं के ग्रोक्चो को गाँव की रक्षा के लिए तैनात किया। देवता के ग्रोक्च चेहरों पर राख मलकर और खाल की टोपियाँ पहन गाँव में घूमते हैं। राक्षसों के लिए बकरे की बलि दी जाती है।

जातरङ्

जातरङ् या जातरा मुख्यतः महासू का त्यौहार है किंतु ठडे गाँव में बग्ग जातरङ् त्यौहार मनाया जाता है। गाँव में लामा प्रातः से सायं जप करते हैं। जप के

साथ आटा, मक्खन, मिट्टी तथा लकड़ी की मूर्ति बनाई जाती है और इस मूर्ति को बाहर निकाल दिया जाता है।

बीशू

बीशू भी महासू की भाँति यहाँ बैशाख में मनाया जाता है। यह त्यौहार मेबर, कानम, पांगी, चगाँव, लिप्पा, भाबा, रोपा, जंगी आदि में मनाया जाता है। यह बैशाख के आरंभ से बीस बैशाख तक अलग-अलग तिथियों को मनाया जाता है। देवता के रथङ् को सजाया जाता है और मेला लगता है। कई जगह नए कारदार लगाए जाते हैं। देवताओं को मोहरों की सफाई की जाती है।

फागली

फागली को सुस्कर भी कहा जाता है। यह कामरू तथा सुंगरा में विशेष रूप से मनाया जाता है। कामरू में चार दिन तथा सूंगरा में छह दिन तक ये त्यौहार मनाया जाता है। चगाँव में सात दिन तक मनाया जाता है। कुल्लू की भाँति यहाँ भी फागली एक गाँव से दूसरे में चलती हुई कहीं चार, कहीं पाँच, कहीं छह तो कहीं सात दिन तक मनाई जाती है।

चगाँव में पहले दिन घरों सफाई की जाती है। दूसरे दिन गेहूँ, जौ, मक्की आदि भूनकर मूड़ी बनाई जाती है। तीसरे दिन चिल्टे बनाते हैं। मूड़ी तथा चिल्टे की पूजा भी की जाती है। चौथे दिन पोल्टू बनाए जाते हैं। फाफरे के आटे की रोटी बनाई जाती है और इसका पतला घोल दीवार पर हाथ से लगाया जाता है। पाँचवें दिन हाँडी तोड़ी जाती है। हाँडी में पोल्टू, नमक, राख, फूल तथा आग डाली जाती है और इसे चौराहे पर फोड़ दिया जाता है। हाँडी फोड़ने का अर्थ भूत भगाना है। छठे दिन सावणी देवियों की ब्रह्ममुहूर्त में पूजा की जाती है। आटे का बकरा बनाकर उसकी पूजा की जाती है।

कामरू में फागली पाँच दिन मनाई जाती है। वसंत पंचमी के दिन रावण का चित्र बनाकर बाण चलाए जाते हैं। इस उत्सव को 'फारूली' कहा जाता है। फारूली में पहले दिन पुजारी कैलास से आने वाली गंगारङ् में नहाते हैं और पानी लाते हैं। किले में बंद नारायण और लक्ष्मी को निकालकर शूकिम मंदिर में रखा जाता है। दूसरा दिन आराम का दिन है। तीसरे दिन देवताओं को मंदिर से बाहर निकाल पूजा की जाती है। चौथा दिन 'शिवन' कहलाता है इस दिन देवताओं को उठाकर बाहर ले जाते हैं। लोग दर्शन करते हैं। इसी दिन देवता वापस किले में लाए जाते हैं। पाँचवें दिन फिर देवता बाहर निकलते हैं। जिनके साथ दो व्यक्ति 'सिंहा' होते है। साथ में वादक भी होते हैं।

यहाँ फागली रोहिणी तारे के उदय होने के समय मनाते हैं।

कुछ स्थानों में फागली को 'लामोच' भी कहते हैं। लिप्पा गाँव में यह इस नाम से फाल्गुन शुक्ल पक्ष की छठी-सातवीं तिथि को मनाई जाती है। यहाँ भी घरों की सफाई, सावणियों की पूजा कर उन्हें वापस कंढे पर भेजा जाता है। चूलिङ् तथा जंगी में भी लामोच मनाया जाता है।

कुछ अन्य त्यौहार

चगाँव में 25 ज्येष्ठ को 'ऐराटङ्' मनाया जाता है। कंढे से लोग फूल (शुरशूर नामक पत्ती) लाते हैं जिसे देवता पर चढ़ाया जाता है। इस दिन देवी का छत्रङ् निकालकर नचाया जाता है।

पांगी में बैशाख में 'फूलोरिङ्' त्यौहार मनाते हैं। दयार की पुरानी और बेकार लकड़ी के बूरे से 'स्पीण' बनाया जाता है जिसे रात के समय मशालों पर चमक के लिए फेंका जाता है। मूरंग में बीशू के अगले दिन 'ज्येष्ट्ङ' मनाया जाता है। इस दिन सेब, चूली और यल्ल के फूल देवता पर चढ़ाए जाते हैं। देवता को धूपित किया जाता है।

एथनोग्राफी ऑफ बुशहर (पंडित टीकाराम जोशी : 1911) के अनुसार किन्नौर में मनाए जाने वाले त्यौहारों की संक्षिप्त विवरण सहित सूची

1. कानम में शुक्ल पक्ष में 13 तिथि से पूर्णमासी तक तीन दिन लोसर या नव वर्ष मनाते हैं। आने वाले वर्ष में नुकसान, फायदा कैसा रहेगा, लामाओं से पूछने के लिए सारे लोग इकट्ठे हो जाते हैं। यह किन्नौर की एक वैली में एक विशेष त्यौहार है जिसमें लोग अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों को दावत देते हैं।
2. कानम में आषाढ़ मास की 15 तिथि को कङ्ग्यूत जालम मनाते हैं। लोग तिब्बतन लाइब्रेरी जिसे कङ्ग्यूर तङ्ग्यूर कहते हैं, का दर्शन करते हैं या माथा टेकते हैं।
3. मेनथोको त्यौहार भी कानम गाँव में 20 भादों (अगस्त) को मनाते हैं। जो दो दिन तक चलता है। इस त्यौहार पर मुख्यतः घुड़दौड़, दावत, मदिरापान गाना-बजाना चलता है।
4. कानम में 20 से 25 माघ तक 5 दिन खवाकचा (खोक्चा) त्यौहार मनाते हैं। डाबला देवता के मंदिर में सारी रातें गाते-बजाते गुज़ारते हैं।
5. शूवाङ् वैली में लिप्पा गाँव के ऊपर-चाङमाङ जंगल में कार्तिक मास की पूर्णमासी को गंगा त्यौहार मनाते हैं। पुरुष, औरतें और बच्चे चाङमाङ जंगल को जाते हैं तथा वहाँ खाना, मदिरापान, गाना-बजाना इस त्यौहार की विशेषता है।
6. कानम में माघ (जनवरी) मास की 13 व 14 तिथि को ज़ोख्या-कुशिम और

ज़ोख्या-छुगशिमिग नामक महत्त्वपूर्ण त्यौहार मनाते हैं जिसमें रिश्तेदारों और मित्रों से मिलते हैं।

7. ऊ-ख्याङ् (ऊ-फूल ख्याङ्-दृश्य) किन्नौर में ऊ-ख्याङ् अत्यधिक विशिष्ट त्यौहार है। लोग ऊँची पहाड़ियों पर जाते हैं और वहाँ से फूल, पत्ते, धूप आदि इकट्ठे करके लाते हैं। फूलों की बड़ी-बड़ी मालाएँ देवता को पहनाते हैं।
8. चीनी गाँव मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की दशमी से पूर्णमासी तक 5 दिन शोगे त्यौहार मनाते हैं। आस-पास के गाँवों के लोग इकट्ठे होकर नाचते-गाते खुशी मनाते हैं।
9. चीनी में पहली पौष को राथीं त्यौहार मनाया जाता है। जिसमें सभी मिलकर नाचते-गाते हैं।
10. थोटुक्पा वैली के रिस्पा गाँव में साल के अंत में एक दिन के लिए अग्टारङ त्यौहार मनाते हैं, कुल देवता के मंदिर में आस-पास के गाँव के लोग इकट्ठे होकर नाचते-गाते हैं।
11. रिस्पा में 18 माघ से एक सप्ताह एक माङ् त्यौहार मनाते हैं। लामा तथा ज़ोमो बुद्ध की पूजा करते हैं। औरतें, पुरुष, बच्चे सभी सातों दिन नाचते-गाते रहते हैं।
12. रिस्पा में पौष मास में ज़ुङनस भी मनाते हैं। इसका निश्चित दिन गाँव वाले अपनी सुविधानुसार रखते हैं। यह पाँच दिन तक चलता है। लोग बुद्ध की पूजा करते हैं तथा मौन व्रत रखते हैं।
13. कानम में कार्तिक मास की तृतीय को एक दिन के लिए शेरकान मनाते हैं।
14. श्वाङ् वैली के करला गाँव में दुंग्युल-जालमो त्यौहार मनाते हैं। गाँव वाले आषाढ़ मास के शुक्ल-पक्ष की किसी भी तिथि को दिन निश्चित करते हैं। दुंग्युर का अर्थ है बुद्धिस्ट पूजा के लिए एक बड़ा-सा घुमाने वाला चक्र तथा इसका बाएँ से दाएँ ओर जितना मर्जी चक्कर लगा सकते हैं।
15. श्वाङ् वैली के स्पिलो गाँव में आषाढ़ मास के किसी एक दिन कैलाश-जालमो या कैलाश पर्वत पर चढ़ने का त्यौहार मनाते हैं। इस त्यौहार की मुख्य विशेषता खाना, पीना, नाचना-गाना होता है।
16. खेपा त्यौहार अधिकांश किन्नौर में मार्गशीर्ष की सप्तमी से दशमी तीन मनाते हैं। पहले दिन लोग अपने घर के सारे दरवाज़ों पर काँटे लगाते हैं। इस का तात्पर्य यह होता है कि कोई बुरी-आत्मा अंदर न आ सके। तीसरे दिन उन काँटों को निकालकर गाँव से दूर ले जाकर जला देते हैं, जैसे वे बुरी आत्मा को जलाते थे। नाचना-गाना इस त्यौहार की मुख्य विशेषता है।

17. रास-क्याङ् वह दिन है जिस दिन सूर्य मेष राशि में आता है। भारत में इसे आमतौर पर मेषी संक्रांति से जाना जाता है। पूरी शिमला पहाड़ी रियासत में इसे बिशु कहते हैं। यह त्यौहार पूरे किन्नौर तथा शिमला जिला में पहली बैशाख को मनाते हैं। अपने घरों में सफेदी करवाकर सुंदर चित्रकारी करते हैं तथा नाचते-गाते एवं खूब खुशी मनाते हैं।
18. कानम में जेठ मास की 17 तिथि को लाबरङ्-जालमो त्यौहार मनाते हैं। इस त्यौहार पर डबला देवता के मंदिर में नाचते-गाते हैं।
19. 15 आषाढ़ को श्वाङ् वैली के लाबरङ् गाँव में छौकतेन-जालमो त्यौहार मनाते हैं। लोग छौकतेन के पास इकट्ठे होकर नाचते-गाते हैं।
20. कोठी या कोशटांपी गाँव तथा अन्य दूसरे गाँवों में भी फाल्गुन मास की नवमी में लगभग एक सप्ताह तक सुस्कार मनाते हैं।
    नौजवान लड़के-लड़कियाँ दो दलों में बँटकर बर्फ के गोलों से एक दूसरे को तब तक मारते हैं। जब तक वे थकते नहीं हैं। चंडिका माता के सामने गाते-नाचते, खुशियाँ मनाते हैं।
21. कोठी में तीन माघ से तीन दिन तक ज़ागङ् त्यौहार मनाते हैं। इस दिन देवता की पूजा और गाना-बजाना मुख्य होता है।
22. बिशु मेले का ही दूसरा नाम रास-क्याङ् है जो पहली वैशाख को मनाते हैं ऊपरी-किन्नौर में लोग इसे रास-क्याङ् तथा नीचले किन्नौर में बिशु कहते हैं।
23. भावा-वैली के ग्रामङ् और कटगाँव में पौष महीने की पूर्णमासी को बाङ्-कायङ् मनाते हैं। भावा-वैली के सभी लोग महेश्वरस देवता के मंदिर में इकट्ठे होकर पूजा करते और नाचते-गाते हैं।

नोट : उक्त विवरण में कुछ उत्सवों के नाम गलत थे जो ठीक कर दिए गए हैं।

लोक नृत्य

यक्ष, गंधर्व, किन्नर पौराणिक काल में नृत्य-गायन में प्रवीण माने जाते थे। देव सभाओं में गंधर्व यशोगान करते थे। हिमाचल में अभी भी यक्षों के स्थान हैं। इन्हें 'जख' के रूप में पूजा जाता है। गंधर्व नाम से अब कोई समुदाय विशेष नहीं है किंतु किन्नर संपूर्ण किन्नर प्रदेश में फैले हुए हैं। किन्नरी बालाओं का कोकिल कंठ आज भी पर्वतों में गूँजता है। उनका बारीक स्वर और उतार चढ़ाव अपनी अलग विशिष्टता रखता है। किन्नरी महिलाओं के आभूषण अद्वितीय हैं। एक महिला के सोने चाँदी के आभूषणों का भार आठ किलोग्राम से अधिक होता है। उनके आकर्षक पट्टू का डिजाइन अपने में अद्भुत है जो बुनने में सबसे कठिन माना जाता है। महिलाओं को फूलों से सजने का बहुत शौक है।

किन्नौर के नृत्य बहुत धीमी गति के हैं। शीत प्रदेश होने के कारण नृत्य बहुत धीमा चलता है। वैसे भी आठ किलोग्राम गहने पहनकर और पूरा मुँह गहनों से ढका होने पर तेज गति से नृत्य नहीं किया जा सकता है। नृत्य की गति कुल्लूई नृत्य से धीमी है किंतु गद्दी नृत्य के लगभग बराबर है।

जहाँ नृत्य में पग संचालन के साथ भिन्नता आती है उसी आधार पर लोक नृत्यों के प्रकार भी बदलते हैं। यहाँ कुछ विशिष्ट लोकनृत्यों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

1. कायङ् नृत्य

इस नृत्य में नर्तक गोलाकार खड़े होकर घेरा बनाते हैं। सबसे आगे नाचने वाले व्यक्ति को 'धूरे' कहा जाता है। कुल्लू में इसे 'धुरी' कहते हैं। यह व्यक्ति नृत्य का नेतृत्व करता है और हाथ में देवता का चँवर लेकर नाचता है। चँवर को हाथ में घुमाता हुआ धूरे नृत्य दल को पग संचालन बदलने के लिए निर्देश भी देता है। लगभग आधा घेरा बनाकर यह नृत्य किया जाता है। बीच में लोकवादक धुन बजाते हैं जिसकी तान पर कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। चार कदम आगे बढ़ने के बाद घुटनों के बल नीचे झुकना होता है। नृत्य करते हुए एक नर्तक तीसरे नर्तक का हाथ पकड़ता है। इस प्रकार एक माला-सी बन जाती है और त्यौहार उत्सवों के अवसर पर गाँव में नर्तकों की एक लंबी पंक्ति बन जाती है। यह महासू के माला नृत्य की भाँति है। नृत्य के समय पहले दो युवतियाँ गाती हैं, सभी नर्तक उसे दोहराते है। यह नृत्य लंबे समय तक चला रहता है।

वाकायङ्

इस नृत्य में आमने-सामने दो पंक्तियों में नाचते हैं। 'वा' का अर्थ 'दो' है अतः महिलाएँ दो पंक्तियों में अलग-अलग नाचती हैं। एक पंक्ति नृत्य करती हुई आगे बढ़ती है तो दूसरी पीछे हटती है। इस प्रकार गीत तथा लोकवाद्यों की लय के साथ आगे-पीछे होते हुए यह नृत्य किया जाता है। इस नृत्य में मंद गति का गीत चलता है और उसी मंद गति से यह नृत्य चलता है। इस नृत्य में महिलाएँ ही भाग लेती हैं, पुरुष नहीं।

थर कायङ्

थर कायङ् में नृत्य तीव्र गति से होता है। 'थर' का अर्थ बाघ है। नर्तक बाघ की-सी तेजी से नाचते हैं। एकदम आगे बढ़ते हैं, पीछे हटते हैं। इस नृत्य के पीछे बाघ के शिकार की बहादुरी की गाथा है। यदि कोई व्यक्ति बाघ को मार गिराता है तो उसे सम्मानार्थ पगड़ी पहनाई जाती है। बाघ की खाल में घास आदि भरकर शिकारी को गाँव-गाँव में नचाया जाता है। इस नृत्य में 'बोर्चो नाटी' का गीत गाया जाता है। इस गीत में बाघ का वर्णन रहता है कि कैसे वह जंगल से चला, गाँव में पहुँचा और भेड़-बकरियाँ खाईं।

यह एक जोशीला और बहादुरी का नृत्य है, इसीलिए तीव्र है। गाँव-गाँव घूमकर नर्तक लोगों से अनाज या पैसे लेते हैं। जिन्हें बाद में आपस में बाँट लिया जाता है।

डबर कायङ्

इस नृत्य में पुरुष नृत्य का नेतृत्व करते हैं, साथ में महिलाएँ भी नाचती हैं। धूरे या नेता के हाथ में चँवर होता है, वह चँवर घुमाता हुआ नृत्य करता है। कायङ् की भाँति एक नर्तक अपने से तीसरे नर्तक का हाथ पकड़कर नाचता है। सभी नर्तक धूरे के पग संचालन के अनुसरण में नाचते हैं। नर्तक बाएँ के दाएँ चलते हुए झूमते हुए, नृत्य करते हैं। तीन कदम आगे, दो कदम दाएँ, एक कदम पीछे करते हुए नृत्य किया जाता है। इन नृत्य में 'बालगथिंङ्' गीत गाया जाता है। यह नृत्य लंबे समय तक चलता रहता है।

नागस कायङ्

यह नृत्य अधिक प्रचलित नहीं है और निश्चित स्थान पर ही होता है। वास्तव में यह नागिन देवी के लिए किया जाता है। फुल्याच या किसी अन्य अवसर पर चगाँव में इसे किया जाता है। एक व्यक्ति इसमें नागिन बनता है। और नागिन की भाँति नाचता है। अन्य नर्तक भी सर्प की तरह नृत्य करते हैं। एक व्यक्ति नागिन (कंढे की

देवी) बनता है उसके हाथ में जलकलश दिया जाता है जिसे 'क्रो' कहते हैं। नृत्य करते हुए कलश या 'क्रो' से गिरा पानी शुभ माना जाता है।

जातरू कायङ्

यह त्यौहार के अवसर पर नाचा जाने वाला कायङ् है। इसमें भी धूरे चँवर लेकर आगे-आगे नृत्य करता है। नृत्य के समय त्यौहारों के गीत गाए जाते हैं। माला नृत्य की भाँति त्यौहार के अवसर पर नृत्य करने वालों की संख्या सैकड़ों में चली जाती है।

छेरकी कायङ्

छेरकी कायङ् तीव्र गति का नृत्य है जिसमें युवक तथा युवतियाँ भाग लेती हैं। इसमें प्रेमी-प्रेमिका के गीत गाए जाते हैं। गीतों, वाद्यों की लय भी तीव्र होती है।

शुना कायङ्

यह नृत्य वहीं होता है जहाँ राक्षसों की अधिक मान्यता है। शुना कायङ् का अर्थ हैं राक्षसों का मेला। इस नृत्य में राक्षसों की तरह हरकतें की जाती हैं। नर्तक धमाचौकड़ी मचाते हैं। कभी तो बहुत तेजी से भागते हुए नृत्य करते हैं। कभी एकदम धीमे हो जाते हैं।

जाबरो नृत्य

जाबरो नृत्य में नर्तक पग संचालन करते हुए नाचते हैं। 'जब' का अर्थ है पैर और 'रो' नाचना। अतः पैरों के संचालन से नाचना। इसमें नर्तक एक दूसरे का हाथ पकड़ते हुए अर्धगोलाकार नृत्य करते हैं। चार कदम आगे और चार कदम पीछे जाते हुए नर्तक धर्मचक्र की भाँति बाईं ओर नाचते हैं। यह नृत्य तिब्बती या बौद्ध प्रभाव लिए हुए है। इसके गीत भी बौद्ध धर्म को समर्पित होते हैं। गीतों में लामाओं का स्मरण किया जाता है।

खार नृत्य

खार नृत्य में एक व्यक्ति अकेला ही नृत्य करता है। लोकगीत पर नृत्य गीत और वाद्य बजाए जाते हैं।

गोम्फोना

गोम्फोना में भी एक व्यक्ति नाचता है यह नृत्य प्रायः घर में किया जाता है।

वेशभूषा

किन्नौर में पुरुषों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र कमीज या कुर्ती, छब्बा, सदरी, कोट, सुथण, गच्छी या गछंङ् हैं। सिर पर ठेपंग या टोपी अवश्य पहनी जाती है। अब लोग आम पैंट-शर्ट पहनने लगे हैं किंतु पुराने बुजुर्ग पारंपरिक वेशभूषा में देखे जा सकते हैं।

अधिकांश महिलाओं ने अपनी पारंपरिक वेशभूषा अभी नहीं छोड़ी है।

पारंपरिक टोपी या ठेपंग, मखमल की चोली तथा ऊनी दोह्डू आज भी लगाया जाता है। उत्सवों या लोकनृत्यों के अवसर पर मखमल की चोली तथा मोटा ऊनी दोहडू आवश्यक है।

आभूषणों का विशेष शौक है महिलाओं को। दो-अढ़ाई किलोग्राम तक आभूषण तो आम पहने जाते हैं। आभूषणों में झुमकू, खुंडो, तकपाऊ-शंगलड्ड, कंटाई, लौंग, बुलाक, कंठी, जुट्टी, मुलुमैथो, पीचुप, तुमुख, बालू, शोक-पोटोक, दोरोली, कोशमाल, पोशल, डिगरा, धगलो, तोनंग आदि प्रमुख हैं। सोने-चाँदी के गहनों में मूँगा, रतन, फिरोजा का प्रयोग होता है। लकसप या अँगूठी पुरुष तथा महिलाओं दोनों द्वारा पहनी जाती है।

विवाह परंपरा

इस समय एक पत्नी प्रथा प्रचलित होने के कारण किन्नौर में पारिवारिक दायरा सिमट रहा है, किंतु पुराने समय में बहुपति प्रथा के कारण परिवार एक विस्तृत इकाई के रूप में स्थापित थे। बहुपति प्रथा में यहाँ की अर्थव्यवस्था की पृष्ठभूमि भी रही है और एक सामान्य परंपरा के अनुसार महासू, जौनसार बाबर या गढ़वाल, टिहरी के कुछ क्षेत्रों की भाँति यह प्रथा प्रचलित रही। पुराने समय में कम भूमि, कम उपज, कम वर्षा आदि कारणों से अपनी भूमि को बँटने से रोकने के लिए और एक होकर रहने के लिए भी यह प्रथा आवश्यक थी। अब स्थिति बदली है। किन्नौर में सेब, बादाम, चिलगोजा, पश्म होने लगी है। अतः अब पहले-सी स्थिति नहीं है।

किन्नौर में एक पत्नी तथा बहुपति दोनों ही प्रथाएँ हैं। बहुपति प्रथा में एक महिला बहुत से पतियों से विवाह कर सकती है। ये पति भाई भाई भी हो सकते हैं। और अलग-अलग व्यक्ति भी। किंतु किन्नौर में एक महिला द्वारा केवल उन्हीं से विवाह की आज्ञा है जो आपस में भाई हों। परिवार में सबसे बड़े बेटे का विवाह किया जाता है। जब वह दुल्हन को घर लाता है तो पगड़ी बाँधने की रस्म अदा की जाती है। इस रस्म में दुल्हन को सभी भाइयों के सामने बिठाया जाता है। सभी भाइयों को हार पहनाते हैं। दूल्हे का मामा सभी भाइयों को सफेद कपड़े की पगड़ी पहनाता है। इस प्रकार वह महिला सबकी पत्नी बन जाती है। यदि कोई दूसरा भाई अलग से पत्नी लाए तो वह भी सबकी पत्नी कहलाती है।

ज़नेकङ्

वर-वधू के माता पिता की सम्मति से होने वाला विवाह जनेकङ् कहलाता है। वर का पिता पुत्र के लिए तीन उपयुक्त कन्याएँ ढूँढ़ता है। तीन कन्याओं के नाम पर तीन फूल ग्राम देवता के पास ले जाए जाते हैं। देवता एक फूल चुनकर एक कन्या की स्वीकृति दे देता है। इस अवसर पर उपस्थित 'माजोमी' या मध्यस्थ अब वर के पिता के साथ जाकर कन्या के पिता से बात करते हैं। कन्या के पिता की स्वीकृति पर एक रूपया कन्या के पिता को दिया जाता है। वर के पिता का स्वागत, भोजन तथा घंटी (शराब) से किया जाता है। यदि विवाह संभव न हो पाए तो फागली के अवसर पर वर का बाप पोल्टू भेजता है। इसी प्रकार दूसरे त्यौहारों पर बकरा काटने पर बकरे की आँतें भेजी जाती हैं।

विवाह के अवसर पर वर पक्ष की ओर से वधू को माथे पर गहना 'फ्यापज' भेजा जाता है। वर पक्ष की ओर से बस यही एक गहना दिया जाता है। शेष गहने लड़की के माता-पिता देते हैं।

विवाह की बात कन्या से चोरी रखी जाती है। निश्चित दिन कन्या को रिश्तेदारों के यहाँ भेज दिया जाता है। इतने में बारात के आगमन की तैयारी पूरी कर ली जाती है। कन्या को पता चलने पर भी किसी दूसरे आयोजन का बहाना लगाया जाता है। कन्या को विवाह की सूचना बारात आने पर ही दी जाती है। इस पर वह रोना आरंभ कर देती है।

कन्या को गहने पहनाकर तथा नए कपड़े पहनाकर तैयार कर दिया जाता है। माजोमी (मध्यस्थ) कन्या के माता-पिता के पाँव पर कुछ रखकर लड़की का हाथ पकड़कर उसे दरवाजे और गाँव से बाहर ले जाता है। सभी संबंधी भी छोड़ने आते हैं। बाराती रात को कन्या के घर सोते हैं और नृत्य चलता रहता है जिसमें वर सहित सभी नाचते हैं।

कन्या के घर बारात में बहुत कम लोग जाते हैं क्योंकि वधू के साथ उससे बीस गुणा लोग जाते हैं। पिता कन्या को दहेज में गृहस्थी का सामान देता है, जैसे—पलंग, बिस्तर, थाली, लोटा तथा बर्तन, कुदाली, दरांती आदि।

वर या वधू पालकी में नहीं जाते अपितु पैदल ही जाते हैं। कुछ संपन्न परिवारों में वर को घोड़े पर ले जाया जाता है। मार्ग में नदी पार करने पर मेमने की बलि दी जाती है। रात को मशालें लेकर सरसों जलाई जाती हैं ताकि भूत-प्रेत निकट न आएँ।

वधू के आने के बाद अगले दिन सभी संबंधी घर की छत पर बैठते हैं। वर सहित सभी भाइयों को सफेद पगड़ी पहनकर एक पंक्ति में बिठाया जाता है। वर भी सफेद पगड़ी ही पहनता है, सेहरा यहाँ नहीं लगाया जाता। वर-वधू के सामने एक थाली में फूल रखते हैं जिसमें सभी संबंधी अपनी-अपनी ओर से भेंट चढ़ाते हैं। इसे 'बेल्हिङ्' कहते हैं जिसे लिखकर रखा जाता है। 'बेल्हिङ्' परिवार में पहले विवाह में ही दिया जाता है। वर की पगड़ी मामा देता है। कन्या की बारात में बहुत बार सौ से अधिक बाराती जाते हैं।

न्योटङ् मीरङ्

जो परिवार बहुत बड़ा विवाह नहीं कर सकते उनके लिए न्योटङ् मीरङ् विवाह है। 'न्योटङ्' अर्थात् दो, मीरङ् अर्थात् आदमियों के साथ विवाह। अतः विवाह में या कन्या की बारात में केवल दो ही आदमी जाते हैं। इस विवाह में वरणी एक रुपया दी जाती है। माजोमी की भूमिका भी वैसी ही रहती है। कन्या के घर माज़ोमी और एक

व्यक्ति जाता है। ये एक दिन वहाँ ठहरकर वधू को ले आते हैं। शेष प्रथाएँ उसी प्रकार हैं जो ज़नेकङ् में होती हैं।

दम चलशिश

'दम चलशिश' का अर्थ है ठीक संबंध होना। इस विवाह को भाग्यमिग भी कहते हैं। इस विवाह में प्रेम प्रेमिका भाग जाते हैं। जब वे घर लौटते हैं तो वर का पिता माजोमी को कन्या के घर भेज़ता है ताकि समझौता हो जाए। माजोमी घंटी की बोतल, मक्खन तथा 'इज़ित' के रूप में कुछ रुपए ले जाता है। वहाँ जाकर वह क्षमा-याचना करता हुआ ये वस्तुएँ भेंट करता है। यदि माता-पिता अधिक नाराज हों तो उन्हें समझाता-बुझाता हुआ इज़ित की राशि बढ़वाता है। जब वे भेंट स्वीकार कर लें तो समझौता हुआ माना जाता है। कन्या के मामा को भी कई बार इज़ित देनी पड़ती है। समझौता होने पर विवाह को मान्यता मिल जाती है।

दारोश डब डब

'दारोश' का अर्थ है बलपूर्वक और 'डब डब' घसीटना। बलपूर्वक घसीटना दारोश डब डब विवाह है। इसे पुरातन राक्षस विवाह से जोड़ा जा सकता है। कन्या की इच्छा-अनिच्छा के प्रतिकूल बलपूर्वक उठाकर ले जाना दारोश डब डब विवाह है। सुंदर, शिक्षित कन्या से विवाह के लिए युवक उत्सुक रहते हैं और इस विवाह परंपरा का सहारा लेते हैं। कई बार लड़के लड़की की इच्छा होने पर भी इस विवाह का सहारा ले लिया जाता है।

इस विवाह में वर अपनी एक टोली बना लेता है। कन्या को कहीं अकेला पाकर वह सबसे पहले कन्या को पकड़ता है और फिर दूसरे बलपूर्वक उठा ले जाते हैं। लड़की रोती-चिल्लाती है। दाँतों से काटती है क्योंकि इस प्रक्रिया से उसे पता नहीं चलता किसे उसने सर्वप्रथम छुआ है और कौन उसका पति होगा। इस प्रकार कन्या को उठाकर वर के घर ले आते हैं।

घर में कन्या की खूब सेवा की जाती है। उसे बढ़िया खाना दिया जाता है। परिवार की महिलाएँ उसे समझाती हैं। यदि लड़की रजामंद न हो तो खाना नहीं खाती। मौका मिलने पर भाग जाती है।

कन्या को घर लाने पर वर पक्ष से माजोमी भेजा जाता है। वह क्षमा माँगता है, इजित के रुपए देता है। पाँच रुपए इज़ित में, मक्खन तथा घंटी भेंट की जाती है। मामला सुलझने पर कन्या के माता-पिता कन्या को घर बुलाते हैं ताकि निश्चित दिन विधिवत् विवाह किया जा सके।

इज़ित स्वीकार करने पर कन्या का विवाह से पूर्व ससुराल आना जाना बना रहता है। प्रथम संतान होने के बाद विधिवत् विवाह कर दिया जाता है।

सुङ्नम की ओर इस प्रथा को 'न्यमशा डायङ्' कहते हैं। समझौता होने के बाद विवाह की तिथि लामा द्वारा निश्चित की जाती है।

न्यमशा लेमो

न्यमशा लेमो विवाह में वर के साथ उसका साथी भी बारात में जाता है जो सदा उसके साथ रहता है। वह वर की रक्षा के लिए तीन रंग के कपड़े तथा तीर हाथ में लिए हुए चलता है। वर के साथ उसके संबंधी तथा बाजे वाले भी चलते हैं। बारात को एक कमरे में बिठाया जाता है। वर सास के पाँवों को छूता है और कुछ रुपए उसके पैरों पर रखता है। शेष संबंधियों के पाँवों में भी कुछ राशि रखी जाती है।

अब बाराती नाराजगी जाहिर करते हैं। बिचौलिया एक पैमाने से घंटी देकर मनाने का प्रयास करता है। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो घंटी के बर्तन की पूजा की जाती है। फिर सबको घंटी पिलाकर खाना खिलाया जाता है।

वधू विदाई के समय रोती है और माँ के गले से लिपट जाती है। विचौलिया उसे माँ से छुड़ाता है। बारात में सबसे आगे बाजा, फिर मामा, वधू के संबंधी, वधू तथा सहेलियाँ और सबसे पीछे वर तथा उसका सखा चलते हैं। बारात के वर पक्ष के घर पहुँचने पर बकरा काटा जाता है। बारात में वधू के घर जाने के लिए सभी भाइयों में से कोई भी दूल्हा बन जाता है। सबके दूल्हा बनने की आवश्यकता नहीं होती, यद्यपि दुल्हन सभी भाइयों की होती है।

किन्नौर की बोलियाँ

रेखङ् पद्धति

पुराने समय में जब लिखने-पढ़ने का कोई साधन नहीं था, किसी प्रकार की लिखत-पढ़त नहीं होती थी, उस समय यहाँ रेखङ् पद्धति थी। देव मंदिरों में लेन-देन लकड़ियों के रेखङ् से किया जाता था। जमींदारों और अमीरों के घर में भी लेन-देन रेखङ् से किया जाता था। कुछ मंदिरों में अभी तक अनाज पत्थों के हिसाब से लकड़ियों से रेखाएँ लगाकर दिया जाता रहा है। अलग-अलग अनाजों के लिए अलग लकड़ियाँ प्रयोग में लाई जाती थीं। कई बार एक लकड़ी में चिह्न लगाकर उसे बीच से चीर दिया जाता। इस का एक भाग उधार लेने वाले को दिया जाता ताकि वह उधार वापस करती बार उसी लकड़ी को वापस लाए।

रामपुर बुशहर राज्य में टाकरी का प्रचलन रहा। उपरि किन्नौर में तिब्बती या भोटी भाषा का प्रयोग होने लगा।

मोटे तौर पर यहाँ की बोलियाँ दो भागों में बाँटी जा सकती हैं। पूह तथा लियो आदि उपरि भाग में तिब्बती का प्रभाव अधिक है। पूह, हंगरंग तथा जंगी की बोलियों में भी भिन्नता है यद्यपि तिब्बती मूल के शब्दों की अधिकता है।

निचले क्षेत्र राक्छम, छितकुल, कुनो-चारङ् आदि में तिब्बती शब्द कम हैं। इसे 'कनौरया नुस्कद' क्षेत्र कहा जाता है।

जातियों के अनुसार बोलियाँ तीन भागों में बाँटी जा सकती हैं : सवर्णों की बोली, औरेसों की बोली तथा हरिजनों की बोली।

जिस प्रकार लाहौल में 'चिनाल' अलग बोली बोलते हैं जो संस्कृत के निकट है, उसी प्रकार यहाँ भी औरस तथा हरिजनों की बोली अलग है।

राहुल जी ने किन्नौरी भाषा में भोट, संस्कृत और किराती भाषाओं में तत्त्व गिनाए। इन तीनों संस्कृतियों का संगम किन्नौर में मिलता है। वे लिखते हैं :

भाषातत्व की दृष्टि से व विश्लेषण करने पर कनौरी भाषा-जिसका सर्वाधिक प्रचलित रूप हम्-स्कद् की बोलियाँ हैं थोशङ् पौ-स्कद, शुम्-छौ-स्कद, शुन्नम्-स्कद्, उस्कद्, न्यम्स्कद्। इनमें तीन भाषाओं के तत्त्व मिले हुए हैं—तिब्बती (भोट) भाषा, संस्कृत और इन दोनों में भिन्न एक तीसरी किरात भाषा। मानव-समाज की सुपरिचित वस्तुओं के नामों में इन तीनों भाषाओं का भाग कितना है, इसे अभी ठीक से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि किन्नर का अभी पूर्ण शब्दकोश तैयार नहीं हुआ है।

यहाँ हम हम्-स्कद् के शब्दों का विश्लेषण करते हैं :

भोट भाषा में शब्द—में (आग), शिङ् (काष्ठ), सेम्‌चन् (प्राणी), चङ्कू (भेड़िया), शा (मांस), क्रा (कैश), मिक् (आँख), मिक्‌पू (भौं) कद्, स्कद् (भाषा), निश् (दो), शुम् (तीन), ङ (पाँच), टुग् (छह), किम् (घर), लाद् (उत्तर), शीमिक् (मृत्यु), तोङ्‌मिक् (मारना), ताङ्‌मिक् (देखना, दिखाई देना), जल्‌मिक् (भेंट करना), फम्मिक (हराना), शैमिक् (मारना), तुङ्-मिक (पीना-पिलाना)। संस्कृत के उत्सम-तद्भव शब्दों का प्रयोग करते समय अंत में बहुधा इङ् या अङ जोड़ दिया जाता है—मटिङ् (मिट्टी), दुवङ् (धुआँ), अज्यारङ् (अंधार), सोर्गङ् (स्वर्ग, आकाश), रतिङ् (रात), रितङ् (ऋतु), भारङ् (भार), खेरङ् (क्षीर), दुवारङ् (द्वार), मज़ङ् (मध्य), कुखिङ् (कुक्षि)। कभी-कभी संस्कृत शब्दों के अंत में अस भी हो जाता है; जैसे—चोरस् (चोर), परमेशरस् (परमेश्वर), ज़ैपालस् (अजपाल)। संस्कृत के शब्द कनौरी भाषा में काफी मिलते हैं और सभी तरह के-काठां (काष्ठ), कौहर (कुहरा), बिजुल (बिजली), रिखा (रीछ), खउ (खाद्य), छौप (सूप, मांसरस), रंडोलस (रंडुवा), बोगवान् (भगवान्), पुजा (पूजा), बोदी (बहुत), बया (भैया)। संस्कृत धातुओं में निक् मिक् लगाकर प्रयोग किया गया है—लान्निक् (लाना), भगेन्निक (भागना), हटैमिक् (हटाना), विचारेमिक् (विचारना), म्यङ्‌मिक् (भय करना), पुजा लनिनक (पूजा करना), पकयामिक् (पकाना), फैकयामिक् (फेंकना), पोलटेन्निक (पलटना), जोडेमिक् (जोड़ना), लटक्यामिक् (लटकाना), भूज्यामिक् (भूँजना), वसन्निक (वसना), वज्रमिक् (बजाना), छर्‌यामिक् (छोड़ देना), रङ्‌यमिक् (रंगना), सज्यौमिक् (सजाना), लजाशैमिक् (लजाना), सुंचन्निक् (सोचना), कटयामिक (काटना), गोत्यामिक् (गलाना)।

किरात भाषा वस्तुतः कनौरी भाषा का मूल अंश है, जिसके कुछ शब्द हैं- शू (देवता), ओम् (पथ), रङ् (गिरि), ती (पानी), शुप् (फैन), पोम् (हिम), ठङ् (बर्फ), लो (अंगार), राक (ताप), लान् (वायु), जू (बादल), युनैक (सूर्य), लाइ (दिन), गोल् (मास), रुद (सींग), कुइ (कुत्ता), फो (हरिन), होम् (भालू), एरङ् (आखेट), खस (भेड़ी), दमस् (बैल), रो (तख्त।), पोलाच (रुधिर), वंस् (मधु), टालङ् (चमड़ा), शोक् (कंठ), ताकुस् (नाक), गार् (दाँत), वङ् (चरण), लिङ् (हृदय), रिङ्-स् (बहिन), छङ् (पुत्र), चिमेत् (बेटी.), छद (जमाता), तैम् (पुत्रवधू), रु (ससुर), तेते (दादा), कोतेते (परदादा), कोणस् (मित्र), जङ् (सोना), ठोग् (सफेद), सै (दस), रा (सौ), लोन्निक (बहुत), कुस्क्या (बहुत, ज्यादा), कैन् (तुम), कोमो (भीतर), रैनम् (बसंत), इवा (नीचे), ईमिक् (प्रश्न करना), रोमिक् (बोलना), हचेमिक् (होना), स्कुन्निक (उबालना), कुन्निक (बांधना), रन्निक (देना), रैन्निक (बेंचना), युन्निक् (चलना, चूर्ण करना), लन्निक (करना), कन्निक (बुलाना), बुन्निक् (आना), द्वन्निक् (निकलना, प्रकट होना), लौन्निक् (कहना), ग्वान्निक (खोदना, काटना), कस्-मिक् (मिलना, मिलाना), लन्निक (बनाना, पकाना), उन्निक् (चूसना), पन्निक (उबालना, पोंछना), हुन्निक (सोखना), नार्‌मिक् (गिनना), चैन्‌मिक् (सोना), सवयुबमिक (लादना, उठाना)।

नाग परंपरा

हिमाचल प्रदेश में नागपूजा का बाहुल्य है। नाग को देवता के रूप में पूजा जाता है। सर्पों में 'नाग' एक जाति है जो विषरहित होती है। अत्यंत भोले किस्म के ये नाग हिमाचल में पाए जाते हैं जिन्हें मारना पाप समझा जाता है। इन नागों द्वारा कटोरी में दूध पीने तथा गाय के थनों से दूध चोरी से चट कर जाने की घटनाएँ सुनाई जाती हैं। स्त्रियों द्वारा मनुष्यों की जगह नागों की उत्पत्ति के प्रसंग भी पौराणिक आख्यानों की भाँति सुनाए जाते हैं। एक स्त्री द्वारा नागों की उत्पत्ति की कथा कुल्लू में प्रसिद्ध है।

प्रदेश के निचले क्षेत्रों में नाग एक जाति भी है। नाग जाति ब्राह्मण मानी जाती है और ये लोग आज भी अपने नाम के साथ "नाग" लगाते हैं।

शैव मत के अनुयायी और शंकर के भक्त भी यहाँ कम नहीं। मणिमहेश कैलास, किन्नर कैलास के अतिरिक्त शिव के अनेकों छोटे-बड़े मंदिर यहाँ विद्यमान हैं। शिव के गले में शोभायमान नाग का अलग से अस्तित्व भी उतना ही है जितना कि स्वयं शिव का। जहाँ प्रदेश के निचले क्षेत्र में हर घर के आँगन में नाग की प्रतिमाएँ बनी होती हैं, वहाँ ऊपरी क्षेत्रों में मंदिरों के द्वार के दोनों ओर लकड़ी में नागों का उत्कीर्ण किया जाता है। नाग पंचमी जैसा त्यौहार घर-घर मनाया जाता है। तो 'गुग्गा' के स्थानों में सर्पदंश को नाकाम किया जाता है। जन्माष्टमी के दिन गुग्गा के मंदिरों में लोग जादू-टोने के अतिरिक्त सर्पदंश का विष उतारने भी आते हैं।

नाग एक ओर तो शिव के गले की शोभा बढ़ाते हैं तो दूसरी ओर शेषनाग विष्णु की शय्या बने। शेषनाग ने ही पर्वत, वन, सागर, ग्राम, नगरों सहित समस्त पृथ्वी को धारण किया।

पौराणिक कथा के अनुसार नागों की उत्पत्ति एक मनुष्य स्त्री से हुई। कद्रू और विनता दो बहनें थीं। कद्रू के हज़ार सर्प पुत्र थे। एक बार कद्रू और विनता में शर्त लग गई। अमृत मंथन के समय उत्पन्न हुए उच्चैश्रवा नामक घोड़े को दोनों बहनों ने आकाश मार्ग से जाते देखा। दोनों में इस बात को लेकर शर्त लग गई कि घोड़े का रंग तो सफेद है, पूँछ काली है। दोनों में एक दूसरे की दासी होने की शर्त लगी थी। कद्रू ने विनता को धोखा देने के लिए अपने हज़ार नाग पुत्रों को घोड़े की पूँछ से लिपट जाने को कहा। कुछ सर्पों ने माता की आज्ञा नहीं मानी। इन्हें कद्रू ने शाप दिया कि तुम सब जन्मेजय के सर्प यज्ञ में जलकर भस्म हो जाओगे।

दूसरे दिन सुबह ही शर्त के अनुसार दोनों बहनें घोड़ा देखने चल दीं। कद्रू के

पुत्र सर्प घोड़े की पूँछ से लिपट गए और पूँछ काली दिखने लगी। विनता दासी बन गई।

कुछ समय बाद विनता के गर्भ में निकले अंडे से महातेजस्वी गरुड़ का जन्म हुआ। एक बार कद्रू ने विनता को समुद्र के भीतर नागों का दर्शनीय स्थल दिखाने की आज्ञा दी। विनता ने कद्रू और गरुड़ ने सर्पों को अपनी पीठ पर बिठा लिया और ले चले। गरुड़ ने सर्पों को लवणासागर, मनोहर वन आदि दिखाए। उन्होंने अपनी माता से इस दास भाव का पता कर सर्पों से पूछा कि वे उनका कौन-सा कार्य करें जिससे वे दासत्व से मुक्त हो सकें। सर्पों ने उनसे अमृत की माँग की।

गरुड़ जी अमृत लेने चले तो माता-पिता ने कहा कि समुद्र में निषादों की बस्ती है। उन्हें खाकर तुम अमृत ले आओ। माता की आज्ञा से गरुड़ जी निषादों की बस्ती में गए और निषादों को खाकर आगे बढ़े। इसके बाद वे कश्यप जी के पास गए और अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। कश्यप जी ने गरुड़ की भूख मिटाने के लिए एक विश्वविख्यात सरोवर में जाने को कहा जहाँ एक हाथी और एक कछुआ रहते थे।

कश्यप जी से आज्ञा लेकर गरुड़ जी उस सरोवर में गए और एक पंजे में हाथी और दूसरे में कछुआ पकड़कर आकाशमार्ग से होते हुए अलग तीर्थ में जा पहुँचे। वहाँ एक वट वृक्ष की शाखा पर जैसे ही वे बैठे, वह शाखा टूट गई। उस शाखा में बालखिल्य नामक ऋषि लटक रहे थे। गरुड़ जी ने झपटकर वह शाख पकड़ ली और आकाश में उड़ने लगे। बैठने का स्थान न पाने के कारण वे उड़ते रहे। उड़ते-उड़ते वे गंधमादन पर्वत पर पहुँच गए। कश्यप जी ने उन्हें इस तरह उड़ते देखा तो बालखिल्य ऋषियों से प्रार्थना की। उनके आग्रह पर बालखिल्य ऋषियों ने वट वृक्ष की शाखा छोड़ दी और तपस्या करने हिमालय चले गए। गरुड़ जी ने अब शाखा फेंककर पर्वत की चोटी पर बैठकर हाथी और कछुए को खाया।

जब देवराज इंद्र को पता चला कि गरुड़ अमृत लेने आ रहे हैं तो उन्होंने अमृत के रक्षकों को सावधान कर दिया। सभी देवता और स्वयं देवराज इंद्र भी अमृत की रक्षा के लिए तैयार हो गए।

गरुड़ जी के पंखों में इतनी धूल उड़ी कि सभी देवता अंधे हो गए। उनकी चोंच और डैनों से घायल देवगण डर गए। गरुड़ ने आकाश में उड़कर देवताओं के सभी वार विफल कर दिए। गरुड़ की मार से उनकी चमड़ी उधड़ गई और वे भाग खड़े हुए।

अमृत के चारों ओर घूमते चक्र और अमृत की रक्षा में डटे भयंकर सर्पों को मार उन्होंने अमृत कलश उठा लिया और सर्पों के पास चल पड़े। मार्ग में उन्हें विष्णु के दर्शन हुए। गरुड़ को स्वयं अमृत न पीकर केवल ले जाते देख वे बहुत खुश हुए और वर माँगने को कहा। गरुड़ ने बिना अमृत पिए अजर-अमर होने और विष्णु की ध्वजा में लगने का वर माँगा। उधर जब इंद्र को होश आई तो उसने अपना वज्र गरुड़ पर फेंका।

गरुड़ ने मान रखने के लिए अपना एक पंख गिरा दिया।

तब उन्होंने मित्रता का हाथ बढ़ाया। इंद्र ने अमृत ले जाने का कारण पूछा तो गरुड़ ने बताया, मैं इसे किसी को पिलाना नहीं चाहता। मैं जहाँ इसे रखूँ आप उठा लेना। इंद्र ने भी वर दिया कि बलवान सर्प ही आपके भोजन बनें।

गरुड़ सर्पों के पास आए जहाँ उनकी माता भी थी। गरुड़ ने अमृत कलश पवित्र कुशा पर रख दिया और कहा कि इसे स्नानादि के बाद पवित्र होकर पीना। गरुड़ और उनकी माता मुक्त हुए। सर्प जब स्नान करने गए तो इंद्र ने कलश उठा लिया। जब सर्प लौटे अमृत कलश वहाँ नहीं था। सर्पों ने सोचा संभवतः कुशा के साथ कुछ अमृत लगा हो। वे कुशा को चाटने लगे जिससे उनकी जीभ के दो टुकड़े हो गए।

अधिकांश सर्प अपने दुष्कर्मों के कारण लोक में प्रसिद्ध नहीं हुए। तक्षक नाग इसका उदाहरण है जिसने राजा परीक्षित को डसा था। समय-समय पर नागों ने मनुष्यों (आर्यों) को तंग किया जिसके फलस्वरूप मनुष्य या आर्य उनका शत्रु बन गया।

किन्नौर में नाग

यूँ तो किन्नौर जैसे बर्फीले प्रदेश में नाग पूजा अचंभा लगता है, किंतु ऊँचे क्षेत्रों में भी नागों का अस्तित्व रहा है। नागों को जलस्रोतों का स्वामी माना गया है। काँगड़ा क्षेत्र में तो नाग एक जाति है जो ब्राह्मण माने जाते हैं।

नाग या सर्प शिव का संवाहक माना गया है। शिव के गले में साँपों की माला शोभायमान रहती है। अतः जहाँ शिव का वास किन्नर कैलास हो, वहाँ नाग का अस्तित्व जरूरी हो जाता है।

नाग पूजा किन्नौर के निचले क्षेत्रों में ही नहीं, बर्फीले क्षेत्रों में भी होती है। साँगला का प्रमुख देवता बेरंग या बेरीनाग है। इसी तरह नटपा, युल, भंगपा, कंदर, असरंग, बरूआ, रक्छम, चांसू आदि स्थानों में भी नाग मंदिर हैं।

नाग को दूध चढ़ाया जाता है। इनकी उतनी ही मान्यता है जितनी अन्य देवी-देवताओं की। कई जगह इन्हें बकरा भी चढ़ाया जाता है हालाँकि नाग का मुख्य आहार दूध ही है।

नाग उत्पत्ति कथा

कुल्लू क्षेत्र में एक घड़े में अट्ठारह नागों की उत्पत्ति कथा प्रचलित है। इसी प्रकार सूंगरा क्षेत्र में भी नाग उत्पत्ति की एक कथा प्रचलित है। सूंगरा क्षेत्र में पौंडा नामक स्थान पर एक महिला रहती थी। इस महिला का विवाह ब्रुआ में हुआ। ब्रुआ गाँव में पानी 'बुलचो' नामक स्थान से लाना पड़ता था जो बहुत दूर था। इस समस्या से यह महिला बहुत दुखी हुई। एक बार वह अपने मायके गई और यह समस्या

रो-रोकर सुनाई। महिला के पिता ने उसे एक टोकरी दी और कहा इसे बिना देखे पशुशाला में रख दे। नित्यप्रति इसकी पूजा करे किंतु कभी खोलने की कोशिश न करे।

महिला वह टोकरी लेकर ससुराल की ओर चल दी। जब वह टापरी पहुँची तो उसके मन उत्सुकता जागी कि आखिर इस टोकरी में है क्या। उसने टोकरी जरा-सी खोली तो उसमें से नाग निकला और भाग गया। इस तरह रास्ते में वह टोकरी खोलकर देखती रही और नाग भागते रहे। जहाँ-जहाँ नाग छिपे, वहाँ-वहाँ जल की कमी न रही। टोकरी में छः नाग और एक नागिन रखे थे। तीन नाग तो रास्ते में ही निकल गए। उस महिला ने अंततः टोकरी पशुशाला में रख दी और पूजने लगी। कुछ समय बाद वहाँ से जल निकलने लगा जहाँ टोकरी रखी थी।

जब उस महिला ने जल भरना बंद कर दिया तो गाँव की एक अन्य महिला को यह बात पता चल गई। उसने चुपके से जाकर टोकरी खोल दी। टोकरी से तीन नाग बाहर निकल आए। उस महिला ने शोर मचा दिया कि इसने तो सर्प पाल रखे हैं। उसने टोकरी ली और पहाड़ की चोटी पर जाकर सर्पों के टुकड़े कर दिए। वह वापस लौटी तो सर्प पुनः जुड़ गए और उसके साथ चल दिए। तीनों सर्प दुलिङ् में पहुँचे और एक सरोवर में चले गए।

उस सरोवर में एक गडरिया अपनी भेड़ें चराता था। एक भेड़ बार-बार सरोवर के पास चरती थी। गडरिये ने उस भेड़ का सिर काटा और सरोवर में फेंक दिया। इससे तीनों नाग बाहर निकले।

इनमें एक सापनी नाग ने अपना शरीर इतना बढ़ा लिया कि उसका सिर तो दुलिङ में था और पूँछ बसपा नदी तक फैल गई। सरोवर से निकलकर तीनों नागों ने अपने-अपने लिए स्थान चुन लिए। सबसे बड़ा नाग ब्रुआ में रहा, बीच वाला रोहडू (शिमला) चला गया और सबसे छोटे दोनों नाग सापनी में ही रहे।

नाग, जल देवता माने जाते हैं। जल स्रोतों पर नागों का अधिकार रहा है। इसीलिए जल के लिए नाग पूजा की जाती है।

किन्नौर में कल्पा के साथ चुङ्लिङ् में सात नाग-नागिनों का स्थान माना जाता है। पहले कल्पा में भी नागिन रहती थी जिसे देवी चंडिका ने गाय की खाल डालकर भगा दिया।

नाग को यहाँ 'नागस' कहा जाता है।

अन्य नाग

साँगला नाग

साँगला नाग तथा भाई बहनों का जन्म बोराल में हुआ। इन भाई बहनों में सबसे बड़ा नाग साँगला का बेरिंग नाग है। बेरिंग नाग ने बड़ा होने के कारण सभी को क्षेत्र बाँटे। अपनी दो बहनों को बीतीङ्ला भेज दिया। तीसरी को साँगला घाटी में

ही 'हुरबा' में भेजा। स्वयं एक भाई के साथ साँगला में ही रहा।

भारंग नाग

भारंग गाँव के देवता की उत्पत्ति बदरीनाथ (कामरू) के शीश से हुई मानी जाती है। इस नाग देवता को पर्वतों का राजा 'गिरिराजस' भी कहते हैं।

बरीनाग

बरी गाँव के नाग का स्थान पहाड़ की चोटी में पोङ्-सोराङ् माना जाता है। इसे कालीनङ् या कालानाग भी कहते हैं। विश्वास है कि एक बार इस नाग ने श्रीकृष्ण को डस लिया। श्रीकृष्ण पोङ्-सोराङ् में जा गिरे। होश में आने पर श्रीकृष्ण ने नाग की नासिका में छेद कर दिया। अभी नाग के रथङ् के मुखङ् नासिका में छेद है।

यूला नाग

यूला नाग गाँव के बाहर एक पत्थर के नीचे रहता था। यूला गाँव के देवता उरनी नारायण से उसे निकालने का अनुरोध किया। नारायण ने नाग को निकालने की इजाजत दे दी। अब यूला नाग का भी रथङ् बना दिया गया है।

इसके अतिरिक्त जानी नाग रोहडू से आया। पांगी में बायो नाग किल्बा से आया। किल्बा में अलग से नाग देवता है।

नागिनों के स्थान कल्पा, छोटा कंबा में हैं।

उषा देवी

वर्तमान भावानगर से ठीक ऊपर है निचार। सीधी चढ़ाई से करीब, घुमावदार सड़क से लगभग 18 किलोमीटर। निचार में उषा देवी का मंदिर है। उषा महाभारत के नायक श्रीकृष्ण के पौत्र की प्रेमिका। उषा-अनिरुद्ध प्रेम प्रसंग, बाणासुर-कृष्ण संग्राम के कई पौराणिक आख्यानों की स्मृति मन में उभरती है। क्या यह वही उषा देवी है जिसकी स्मृति में कालांतर में मंदिर बना ?

लोगों की आस्था है कि अभी भी यहाँ बाणासुर आता है। बाणासुर का आगमन चाहे प्रतीक हो, यहाँ आकर तो ऐसा अनुभव होता है कि कैसे पौराणिक संस्कृति ने यात्रा की है। द्वारिका से दुर्गम पर्वत कंदराओं तक।

उषा देवी का मंदिर गाँव के ऊपर की ओर है। मुख्य द्वार के भीतर प्रांगण में दो युवतियाँ बैठी थीं। संभवतः ये पुजारी परिवार से होंगी, हमने सोचा। गाँव के एक आदमी ने हमें रूखे-स्वर में बताया कि इस समय हम मंदिर के भीतर नहीं जा सकेंगे। इस आदमी की रूखाई का राज हमें मंदिर के भीतर जाने पर पता पड़ा। पुजारी को बुलाने के बाद जब भीतर गए तो ज्ञात हुआ वे पहरेदार थीं। दिन में पहरा देने की बारी आज उनकी थी। देवी के पास पर्याप्त सोना-चाँदी है। अतः दिन में गाँव की महिलाएँ और रात को पुरुष बारी-बारी से पहरा देते हैं। जो पहरा न दे सके उसे पहरेदारी जितनी मजदूरी देनी पड़ती है (अब यहाँ सरकार की ओर से होम गाड्र्स तैनात हैं)।

मुख्य द्वार के भीतर देवी के दो मंदिर हैं। एक पुराना किलानुमा और दूसरा नया। नए मंदिर में देवी का सुसज्जित रथ रखा था। देवी के पुजारी को बुलाकर लाया गया जो अविवाहित था। परंपरा के अनुसार देवी का पुजारी अविवाहित होता है। वही मंदिर के भीतर प्रवेश कर सकता है। महिलाओं का मंदिर में प्रवेश वर्जित है। मंदिर की प्रबंध व्यवस्था के लिए समिति बनी हुई है जिसका प्रमुख मोहतमीम कहा जाता है। मंदिर में वैशाख में बिशु, असौज में फुलाइच और श्रावण में हूहू मेला होता है।

निचार के साथ सुंगरा में सुंगरा महेश्वर का भव्य काष्ठ मंदिर है। मंदिर के द्वार बंद मिले। वापसी पर सड़क में चौकीदार मिला जो कहीं गया हुआ था। मंदिर के ऊपर देवता का सेब का बागीचा है और जंगल है। मंदिर में फुलाइच तथा बीस भादों को निजागदरंग त्यौहार मनाया जाता है।

सुंगरा महेश्वर तथा उषा देवी किन्नौर के आठ प्रमुख देवताओं में से हैं। अन्य हैं

विष्णु कल्पा, महेश्वर भावा, महेश्वर चगाँव, देवी चंडिका कल्पा, बद्रीनारायण कामरू तथा माथी देवी छितकुल। इनमें सूंगरा, भावा तथा चगाँव के महेश्वर तीनों भाई माने जाते हैं।

भावानगर में संजय जलविद्युत परियोजना है। यहाँ से आगे टापरी होते हुए करछम से प्रवेश होता है साँगला घाटी में।

कथा एक

किन्नर कैलास और बाणासुर की राजधानी शोणितपुर

किन्नौर का पूरा क्षेत्र कैलास माना जाता है। शोणितपुर को वर्तमान सराहन में जोड़ा जाता है। सराहन में भीमाकाली का प्रसिद्ध मंदिर है। शोणितपुर और कैलास के एक ही क्षेत्र में होने की पुष्टि इस बात से भी होती है कि शोणितपुर सम्राट बाणासुर भगवान शंकर का परम भक्त था। उषा-अनिरुद्ध प्रेम प्रसंग में शंकर का बाणासुर की ओर से श्रीकृष्ण से युद्ध में सामना हुआ।

कैलास को पर्वतवासियों ने अपने-अपने पर्वत पर सिद्ध करने का प्रयास किया है। गंगा के उद्‌गम वाले बर्फीले शिखर वहाँ कैलास मानते हैं। चंबा की ओर मणिमहेश कैलास माना जाता है। जहाँ बर्फीली चोटियों से प्रातःकाल सूर्य मणि के समान उगता है। किन्नौर में किन्नर कैलास को ही शिव का वास्तविक वास माना जाता है।

श्रीमद्‌भागवत के चतुर्थ स्कंध में शंकर के प्रिय कैलास का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

"उस कैलास पर औषधि, तप, मंत्र तथा योग आदि उपायों में सिद्धि को प्राप्त हुए और जन्म से ही सिद्ध देवता नित्य निवास करते हैं : किन्नर, गंधर्व और अप्सरा आदि सदा वहाँ बने रहते हैं। उसके मणिमय शिखर हैं जो नाना प्रकार की धातुओं से रंग-बिरंगे प्रतीत होते हैं।"

किन्नर कैलास में आज भी शिवलिंग कई रंग बदलते हैं। प्रातःकालीन किरणों, दोपहर की धूप और सायं की किरणों से किन्नर कैलास अपना रंग बदलता है। कैलास वर्णन में आगे कहा गया है–

"वहाँ निर्मल जल के अनेकों झरने बहते हैं और बहुत-सी गहरी कंदरा और ऊँचे शिखरों के कारण यह पर्वत अपने प्रियतमों के साथ विहार करती हुई सिद्ध पत्नियों का क्रीड़ा स्थल बना हुआ है। मंदार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़ कचनार, असन और अर्जुन के वृक्षों से वह पर्वत बड़ा सुहावना जान पड़ता है। उसके सरोवरों में कुमुद, उत्पल, फलहार और शतपत्र आदि अनेक जाति के कमल खिले रहते हैं। उनकी शोभा से मुग्ध होकर कलरव करते हुए झुंड के झुंड पक्षियों से वहाँ बड़ा ही

भला लगता है। वहाँ जहाँ-तहाँ हरिन, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ कृष्णमृग, भैंसे, कर्णांत्र, एकपद, अश्वमुख, भेड़िए और कस्तूरी मृग घूमते रहते हैं।"

ऐसे कैलास में ब्रह्मादि देवताओं ने एक वृक्ष के नीचे भगवान शंकर को विराजमान देखा। सनंदनादि शांत सिद्धगण और सखा-यक्ष राक्षसों के स्वामी कुबेर उनकी सेवा कर रहे थे। संध्याकालीन मेघ की-सी कांति वाले शरीर पर वे तपस्वियों के अभीष्ट चिह्न-भस्म, दंड, जटा और मृगचर्म एवं मस्तक पर चंद्र कला धारण किए हुए थे। वे एक कुशासन पर बैठे थे और अनेक साधु श्रोताओं के बीच श्री नारद जी के पूछने पर सनातन ब्रह्म का उपदेश कर रहे थे।

इन्हीं शंकर का भक्त था बाणासुर। राजा बलि के सौ लड़कों में बाणासुर सबसे बड़ा था। यह शिव भक्ति में सदा लीन रहता था। बुद्धिमान और उदार भी था। उसकी राजधानी शोणितपुर थी जहाँ शंकर की कृपा से इंद्रादि देवता उसकी सेवा किया करते थे।

कहा जाता है उसकी हज़ार भुजाएँ थीं। एक बार जब भगवान शंकर तांडव कर रहे थे, बाणासुर ने अपने हजार हाथों से अनेकों प्रकार के बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न किया। शंकर ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। बाणासुर ने कहा "भगवान ! आप मेरे नगर की रक्षा करते हुए यहीं रहा करें।"

एक बार बाणासुर ने अपने बल के घमंड से चूर होकर भगवान शंकर को प्रणाम कर कहा—"देवाधिदेव। आप चराचर जगत के गुरु और ईश्वर हैं। मैं आप को नमस्कार करता हूँ। भगवन ! आपने मुझे एक हज़ार भुजाएँ दी हैं, परंतु वे मेरे लिए केवल भार रूप हो रही हैं क्योंकि त्रिलोक में आपको छोड़कर मुझे अपनी बराबरी का कोई वीर योद्धा ही नहीं मिलता, जो मुझसे लड़ सके। आदिदेव एक बार मेरी बाहों में लड़ने की इतनी खुजलाहट हुई कि मैं दिग्गजों की ओर चला किंतु वे डर के मारे भाग खड़े हुए। उस समय मार्ग में अपनी बाँहों की चोट से मैंने बहुत-से पहाड़ों को तोड़-फोड़ डाला था।"

बाणासुर की इस बात पर भगवान् शंकर ने क्रोधित होकर कहा—"रे मूढ़! जिस समय तेरी ध्वजा टूटकर गिर जाएगी, उस समय मेरे ही समान योद्धा से तेरा युद्ध होगा और वह युद्ध तेरा घमंड चूर-चूर कर देगा।" शंकर की बात से बाणासुर को बहुत हर्ष हुआ और वह उस युद्ध की प्रतीक्षा करने लगा जिसमें उसे अपने मुकाबले का योद्धा मिलने वाला था।

कैलास जाते हुए अलकापुरी का उल्लेख भी आता है। अलकापुरी के बाहर नंदी और अलकनंदा नाम की नदियाँ बहती हैं। यहीं सर्वत्र सुगंध फैलाने वाले सौगंधिक कमलों से युक्त सौगंधिक वन भी है। अलकापुरी में सोने-चाँदी के सैंकड़ों विमान विराजमान रहते हैं जहाँ यक्ष पत्नियाँ निवास करती हैं। अलकापुरी यक्षराज

कुबेर की राजधानी मानी जाती है। अलकापुरी से आगे कल्पवृक्षों से सुशोभित वन में भी भगवान् शंकर वास करते हैं।

विष्णु पुराण में उल्लेख है कि पूर्व और पश्चिम की ओर फैले हुए गंधमादन और कैलास—ये दो पर्वत हैं जिनका विस्तार अस्सी योजन है। मेरू के चारों ओर शीतांत आदि केसर पर्वतों के बीच सिद्ध चारणादि से सेवित अति सुंदर कंदराएँ हैं। इन सुंदर पर्वत श्रेणियों में गंधर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानवादि अहर्निश क्रीड़ा करते हैं। ये संपूर्ण स्थान भौम (पृथ्वी के) स्वर्ग कहलाते हैं। वे धार्मिक पुरुषों के निवास स्थान हैं। पापकर्मा मनुष्य इनमें सौ जन्म में भी नहीं जा सकते। इसी स्वर्ग लोक में शिवपुरी भी अवस्थित थी।

कथा दो

उषा-अनिरुद्ध उपाख्यान

किन्नौर में भावानगर से ऊपर निचार में उषा देवी का मंदिर है। गाँव के भीतर उषा देवी का मंदिर सुंदर काष्ठ कला का उदाहरण है। मुख्य द्वार के भीतर देवी के दो मंदिर हैं। एक पुराना किलानुमा और दूसरा नया। मंदिर में देवी का पुजारी परंपराओं के अनुसार अविवाहित होता है। लोगों की आस्था है कि अभी भी यहाँ बाणासुर आता है।

उषा मंदिर की बाहरी दीवारों पर सुंदर काष्ठ कला हुई है, जिसमें श्रीकृष्ण के चित्र उकेरे गए हैं।

यहाँ आकर उषा-अनिरुद्ध की वह पौराणिक प्रेम गाथा ताज़ा हो जाती है। जिसने बाणासुर के मद को चूर किया।

बाणासुर की एक कन्या थी जिसका नाम उषा था। उसने एक स्वप्न देखा कि उसका परम सुंदर अनिरुद्ध के साथ समागम हो रहा है। उषा ने कभी भी अनिरुद्ध को नहीं देखा था। बाणासुर के मंत्री कुंभांड की पुत्री चित्रलेखा उषा की सखी थी। उषा ने अपने मन की बात चित्रलेखा को बताई। उषा ने कहा, "मैंने स्वप्न में एक बहुत ही सुंदर नवयुवक को देखा है। उसके शरीर का रंग साँवला-सा है। नेत्र कमलदल के समान हैं। शरीर पर पीला-पीला पीतांबर फहरा रहा है। भुजाएँ लंबी हैं और वह स्त्रियों का चित्त चुराने वाला है।"

चित्रलेखा ने कहा कि अगर वह पहचान सकेगी तो विरह-व्यथा अवश्य शांत होगी। उसने बात की बात में बहुत-से देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्यों के चित्र बना दिए। मनुष्यों के चित्रलेखा ने वृष्णिवंशी वसुदेव जी के पिता शूर, स्वयं वसुदेव जी, बलराम और भगवान् श्रीकृष्ण के चित्र बनाए। प्रद्युम्न का चित्र दिखाते ही उषा लज्जा गई। जब उसने अनिरुद्ध का चित्र बनाया तो लज्जा के मारे

उसका सिर नीचा हो गया।

चित्रलेखा योगिनी थी। उसने जान लिया यह अनिरुद्ध है और श्रीकृष्ण का पौत्र है। वह आकाशमार्ग से द्वारिका जा पहुंची और अनिरुद्ध को वहाँ से उठाकर उषा के अंतःपुर में ले आई। अपने प्रियतम को पाकर उषा प्रसन्न हो अपने महल में विहार करने लगी। उषा के अंतःपुर में कोई पुरुष झाँक नहीं सकता था। उषा ने अनिरुद्ध का खूब आदर-सत्कार किया। अनिरुद्ध को भी यह पता नहीं चला कि उसे कितने दिन वहाँ आए हो गए हैं।

अंततः पहरेदारों को पता चल गया और उन्होंने बाणासुर से शिकायत की। बाणासुर को यह जानकर बहुत दुःख हुआ और वह महल में जा धमका। उस समय अनिरुद्ध जी वहाँ बैठे उषा के साथ पासे खेल रहे थे। अनिरुद्ध स्वयं कामावतार प्रद्युम्न के पुत्र थे। त्रिभुवन में उन जैसा सुंदर कोई और न था। साँवले सलोने शरीर पर पीतांबर, कमलदल के समान आँखें, लंबी-लंबी भुजाएँ, कपोलों पर घुँघराली अलकें, होंठों पर मंद-मंद मुस्क़ान।

बाणासुर विस्मित और चकित हो गया। जब अनिरुद्ध ने देखा कि बहुत-से आक्रमणकारी वीर उन पर हमला करने वाले हैं तो वे एक भयंकर परिध लेकर डट गए और बाणासुर के कई सैनिकों को मार गिराया। अपनी सेना का संहार देखकर बाणासुर ने उन्हें नागपाश में बाँध लिया। वर्षा ऋतु के चार मास बीतने पर जब अनिरुद्ध का पता नहीं चला तो सभी यदुवंशी चिंतित हो गए। एक दिन नारद ने वहाँ जाकर पूरा समाचार सुनाया।

श्रीकृष्ण सहित यदुवंशियों ने शोणितपुर पर धावा बोल दिया। श्रीकृष्ण, बलराम, उनके अनुयायी बारह अक्षौहिणी सेना के साथ व्यूह रचना कर शोणितपुर आ धमके।

बाणासुर भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगर से बाहर आ गया। बाणासुर की ओर से शंकर नंदी पर सवार होकर कार्तिकेय तथा गणों सहित युद्ध भूमि में पधारे।

बड़ा घमासान युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण का शंकर से और प्रद्युम्न का कार्तिकेय से युद्ध हुआ। बलराम से कुंभांड, बाणासुर से सात्यकि भिड़े। ब्रह्मादि देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-चारण, गंधर्व, अप्सरा और यक्ष विमानों पर सवार हो युद्ध का दृश्य देखने लगे।

श्री कृष्ण ने तीखी नोक वाले बाणों से शंकर जी के अनुचरों को भगा दिया। शंकर ने श्रीकृष्ण पर भाँति-भाँति के शास्त्रास्त्रों का प्रयोग किया किंतु श्रीकृष्ण ने उन्हें शांत कर दिया। श्रीकृष्ण ने शंकर को अपने अस्त्र से मोहित कर बाणासुर की सेना का संहार करना आरंभ किया। प्रद्युम्न ने कार्तिकेय को बलराम ने कुंभांड को घायल कर दिया। इससे बाणासुर की सेना तितर-बितर हो गई।

अपनी सेना तितर-बितर होते देख बाणासुर सात्यकि को छोड़ श्रीकृष्ण से भिड़ गया। श्रीकृष्ण ने उसके हज़ार हाथों से चलाए बाणों को निष्प्राण कर दिया। वह

रथहीन होने पर अपने नगर चला गया।

बाणासुर दोबारा तरह-तरह के हथियार लेकर युद्धभूमि में आ धमका। श्रीकृष्ण अपने चक्र से उसकी भुजाएँ काटने लगे। जब भगवान शंकर ने देखा कि बाणासुर की भुजाएँ कट रही हैं, वे श्रीकृष्ण के पास आकर उनकी स्तुति करने लगे।

शंकर के कहने पर श्रीकृष्ण ने बाणासुर की बाँहें काटकर उसे निर्भय कर दिया। श्रीकृष्ण ने यह भी कहा कि प्रह्लाद को दिए वरदान के कारण मैं उनके वंश में बाणासुर का वध नहीं कर रहा, केवल भुजाएँ काट रहा हूँ।

श्रीकृष्ण से अभयदान मिलने पर बाणासुर ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और अनिरुद्ध जी को अपनी पुत्री उषा के साथ रथ पर बिठाकर श्रीकृष्ण के पास ले आया। इसके बाद श्रीकृष्ण ने शंकर भगवान् की संप्रति से उषा अनिरुद्ध को साथ ले द्वारिका के लिए प्रस्थान किया।

उषा आज निचार में देवी के रूप में पूजी जाती है। उषा का अनिरुद्ध से विवाह दो संस्कृतियों का मिलन है, एक पर्वत शिखर की तो दूसरी सागर किनारे की।

देवता ओरमिंग

देवता ओरमिंग मूरंग तथा आसपास के इलाकों का प्रमुख देवता है। इसे उरमिंग भी कहा जाता है। देवता का मंदिर मूरंग में है।

मूरंग लगभग 1800 की जनसंख्या वाला समृद्ध गाँव है। गाँव में सेब, खुमानी, चिलगोजे, बादाम भरपूर होते हैं।

ओरमिंग देवता का भव्य मंदिर खुले स्थान में अवस्थित है। यह मंदिर किन्नौर के मंदिरों की शैली का अनूठा उदाहरण है। मंदिर काठकूणी शैली में निर्मित है जिसमें शहतीर तथा पत्थरों का प्रयोग हुआ है। आयताकार मंदिर के ऊपर पिरमिडाकार शिखर है। छत स्लेटों से छाई गई है। ऊपर तीन कलश हैं। सामने बरामदा बना है। मुख्य मंदिर के सामने चौरङ् है जहाँ देवता की सवारी सजाई जाती है। यहाँ देवता की पालकी रखकर सजाई जाती है। जब देवता की पालकी किसी उत्सव या मेले में सजाई जाती है तो पालकी अन्य तीन जगहों थ्वलिंग, ग्रामङ् और शिलिंग गाँवों में जाती है। यहाँ भी देवता के मंदिर हैं। मेले के अवसर पर देवता की पालकी थ्वारिंग पहुँचती है। यहाँ से कुछ लोग मुखौटा नृत्य करते हुए सवारी के साथ शामिल हो जाते हैं। इसके बाद देवता ग्रामङ् रुकता है। ग्रामङ् में एक रात्रि का ठहराव होता है। इसके बाद यात्रा शिलिंग पहुँचती है। इस उत्सव में देवता की पूजा के साथ नाच-गाना, खाना-पीना चलता है। देवता का यह मेला आठ माघ, पूर्णिमा के दिन शुरू होता है और सोलह माघ तक चलता है। मेला माघ में होता है अतः मेले के बाद बर्फ गिरने की संभावना रहती है।

देवता का मूल स्थान मूरंग किले में था। देवता के रथ में अट्ठारह मोहरे थे। ये मोहरे चोरी हो गए।

किन्नौर में देवता बने प्रतापी पुरुषों की तरह ओरमिंग भी पहले साधारण व्यक्ति था। देवता की गाथा में कहा जाता है कि ठाकुर धर्मचंद ने अपनी सीमाएँ तिब्बत तक पहुँचा दीं। एक बार सीमा विवाद हुआ तो धर्मचंद और ओरमिंग का युद्ध हुआ जिसमें धर्मचंद मारा गया। ओरमिंग ठाकुर बन गया। बाद में पूजा जाने लगा।

बद्रीनारायण मंदिर बटसेरी

बटसेरी गाँव में मुख्य देवता बद्रीनारायण है। देवता बद्रीनारायण कामरू के बद्रीनारायण का बड़ा भाई माना जाता है। बटसेरी में बद्रीनारायण मंदिर का जीर्णोद्धार किया गया है। मुख्य मंदिर के साथ अन्य देवताओं के मंदिर भी बनाए गए हैं।

किन्नौर में अभी भी ऐसे काष्ठ कलाकार हैं जो लकड़ी में अद्‌भुत नक्काशी करते हैं। मंदिर के भीतर की छत में अद्‌भुत नक्काशी की गई है। मंदिर के दोनों द्वारों पर देवी-देवताओं के सुंदर चित्र बनाए गए हैं। द्वार के एक ओर श्रीकृष्ण, शिव, हनुमान, भरतमिलन, वीणावादक के चित्र हैं तो दूसरी ओर शिव, पार्वती, लक्ष्मी, गणेश, मत्स्य और बुद्ध चित्रित हैं। इसी तरह राम, कृष्ण, अर्जुन, विष्णु, भक्त ध्रुव, शेषनाग के चित्र भी उकेरे गए हैं।

बटसेरी गाँव एक पुराना गाँव है। कहा जाता है बसपा झील जब सूख गई तो यहाँ गाँव बसा। पूरी बसपा घाटी पहले झील थी जो सूख गई। इस गाँव का पुराना नाम युग बसेरा था।

बटसेरी में बद्रीनारायण शासक है। देवता प्रजा की रक्षा करता है तो अपराधियों को दंड भी देता है। यदि कोई चोरी करे या अन्य अपराध करे तो देवता दंड देता है। अपराधी को दंडित किया जाता है।

कुछ अन्य देवता

शंकरस पवारी

पवारी का शंकरस या शंकर किन्नौर के शंकरों में सब से छोटा भाई है। पवारी गाँव किन्नर कैलास के ठीक नीचे है। अतः इस देवता का नाम शंकरस या 'शङ्करस' है। कहा जाता है एक बार सूंगरा महेश्वर का 'रथङ्' पवारी से होता हुआ आ रहा था। देवता शंकरस ने लोकवाद्यों की ध्वनि करने पर प्रतिबंध लगाया हुआ था। अतः सूंगरा महेश्वर के रथङ् पर एक पत्थर गिरा जिसमें रथङ् धरती पर गिर गया।

रथङ् के धरती पर गिरने से लोग परेशान हो गए क्योंकि उनसे रथङ् उठाया नहीं जा रहा था। अंत में शंकरस से प्रार्थना की गई। शंकरस ने कहा मेरे बड़े भाई ने नियम तोड़ा है। तथापि शंकरस ने कहा मेरे रथङ् की भुजाएँ निकालकर महेश्वर के रथ में लगा दो। जब शंकरस के रथ की भुजाएँ लगाई गईं तो रथ उठाया जा सका।

देवी पिरासन

देवी पिरासन को बहुत प्रचंड और क्रूर देवी माना जाता है। यह महेश्वरों की बहन है। एक बार देवी पिरासन के रथङ् को निचार ले जा रहे थे तो नाथपा में झूले पर चलते समय देवी का रथङ् नदी में गिर गया। देवी नदी में गिरने पर कुछ दूरी पर जाकर सँभलीं और पाषाण के रूप में स्थापित हो गई। यह देवी नवयुवतियों पर कोप करती है। कहा जाता है देवी के प्रकोप पर नवयुवतियाँ सज-धजकर सतलुज नदी की और भागकर जाती हैं और नदी में छलाँग लगा देती हैं।

नरेणस देवता

नारायण को ही यहाँ नरेणस कहा जाता है। नारायण की महिमा भी इस क्षेत्र में कम नहीं। चीनी (कल्पा) में नारायण या विष्णु का सिर, सापनी में पेट और रामनी में पैर माना जाता है। चीनी में विष्णु के दो मंदिर हैं, रामनी में विष्णु का रथङ् है। रामनी गाँव में नरेणस देवता को माना जाता है।

रोक शू (रोघी) में भी नरेणा देवता का मंदिर है। एक बार पांगी में कोई औजार पत्थर से तेज करते समय एक मोहरा मिला। इसके बाद तीन मोहरे और निकले। इन्हें चार भाई माना गया। बड़ा भाई रोघी नरेणस कहलाया। शेष ख्वांगी मारकोलिंग, पांगी शैशेरिङ और रारंग पाथोरो।

इसी प्रकार किल्बा में नरेणस देवता रुनङ् से आए। आसरङ् में एक ग्रामीण को देवता का मुख मिला और नरेणस की स्थापना की गई। कामशू नरेणस सात भाई-बहन माने जाते हैं। इनका महेश्वर से झगड़ा हुआ। महेश्वर ने इन्हें बहा दिया किंतु एक भाई को पकड़ लिया और कामशू में देवता बनाया।

जानी के नरेणस देवता पहले चगाँव में थे जो बाद में यहाँ आए, नरेणस देवता रामनी तथा उरनी, कल्पा में भी स्थापित है।

नाको मठ

शिमला काजा मार्ग पर पिति नदी के ऊपर 3274 मीटर की ऊँचाई पर यंगथंग आता है। यंगथंग के नीचे एक ओर बड़ा गाँव लियो है और ऊपर मालंग नाको। नाको के ऊपर पुरग्युल पर्वत है। पुरग्युल देवता का नाम भी है। कहा जाता है नाको पहले समय में पुराने व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। वर्तमान गाँव के ऊपर खेतों के अवशेष हैं। नाको में एक 'खर' अर्थात् किला भी था। नाको को 'नावो-ग्यल-सा' अर्थात् नावो राजधानी कहते थे। नाको को स्थानीय लोग आज भी 'नावो' कहते हैं। गजेटियर में उल्लेख है कि तिब्बत के राजा का प्रतिनिधि जिस का नाम 'नाव' था, यहाँ आया और यहीं बस गया। उस के नाम पर इस स्थान का नाम 'खंपा नाव' पड़ा और वही खंपा नाम बाद में नाको बना। यहाँ के शिलालेखों में जो बुशहर के राजा शमशेर सिंह (1850-1911) के समय में बौद्धों द्वारा खोदे गए, गाँव का नाम 'ग्नस-स्गो' आता है। संभवतः ग्नस-स्गो का ही नाको बना।

नाको के साथ ही मालिङ् या मालंग गाँव है। म-ग्लिङ् का अर्थ निचला द्वीप या गाँव है। मालिङ्, नाको गाँव के नीचे है।

नाको मठ तथा झील प्रादुर्भाव कथा

कथा है कि पुरग्युल देवता और एक लामा (संभवतः रिन-चेन-जंगपो) ने लोगों की भलाई के लिए कुछ करने की ठानी। पुरग्युल देवता ने रात को नहर का निर्माण कर नाको में पहुँचाने की बात कही जबकि लामा ने रातोंरात बौद्ध विहार निर्माण की कही।

लामा ने किन्नौर से शहतीर लाने में चींटियों की सहायता ली। बौद्ध मठ के लिये शहतीर ढोते-ढोते चींटियों की कमर पतली हो गई किंतु उन्होंने इस धर्म के कार्य में हार नहीं मानी। लामा जी ने रातोंरात बौद्ध विहार बना दिया।

पुरग्युल देवता को नाको में नहर तथा पानी पहुँचाने में बड़ी कठिनाई हुई। नहर कई स्थानों से टूट गई जिसे कठिनाई से जोड़ा गया। देवता को अपने कपड़े फाड़-फाड़कर नहर का इधर-उधर बहता पानी रोकना पड़ा। नाको तक सुबह होते-होते पानी पहुँच गया किंतु देवता के सारे कपड़े फट गए। देवता का माली (गूर) देवता के प्रवेश करने पर अपनी कमीज उतारनी पड़ती है।

पुरग्युल पर्वत से निकलने वाली धारा नाको में एक प्राकृतिक झील का रूप धारण करती है।

नाको मठ का निर्माण महा अनुवाद रिन-चेन-जंगपो (रत्नभद्र) द्वारा किया गया माना जाता है। यह मठ किन्नौर में निर्मित जंगपो द्वारा बनाए मठों में सबसे बड़ा है। यह मठ वस्तुतः समय-समय निर्मित और पुनर्निर्मित होता रहा। विहार के मुख्य कक्ष में एक लेख है जो अब पढ़ा नहीं जाता। इस मठ में चार कक्ष हैं।

सबसे पहला कक्ष रसोई के रूप में प्रयुक्त होता है। मठ में समारोह के समय यहाँ रसोई पकाई जाती है। इसे 'जनखङ्' कहते हैं। इसे पार करने के बाद मठ का प्रथम कक्ष 'कर-जुङ्' आता है। कक्ष की दीवार के साथ देवता पुरग्युल का स्थान है। इसकी दीवारों पर बौद्ध देवी-देवताओं के चित्र बने हैं। जनखङ की छत से उतरकर दूसरा कक्ष है। इसे लोचावई लाखङ कहा जाता है। जो लोचा (अनुवादक रत्नभद्र) का कक्ष है। यह मठ का मुख्य कक्ष है। इस कक्ष में गच प्रतिमाएँ स्थापित हैं। इन प्रतिमाओं में अमोघसिद्धि, रत्नसंभव, विरोचन, अमिताभ की प्रतिमाएँ है। ये प्रतिमाएँ दीवार पर ऊँचाई पर स्थापित हैं। इनका क्रम तथा स्थापना बौद्ध सिद्धांतों के अनुरूप हुई है। स्थापना के अनुसार मध्य में विरोचन, पूर्व में अक्षोम्य, दक्षिण में रत्नसंभव, पश्चिम में अमिताभ और उत्तर में अमोघसिद्धि रखे गए हैं। बाईं ओर ऊँचाई पर प्रज्ञापारमिता की गच़ प्रतिमा है जिसके नीचे 'गोन खङ्' या नाथगृह है। इस कक्ष में छोस-क्योङ् या धर्मपाल की प्रतिमा है। इस कक्ष में जाना मना है।

वज्रधातु मंडल की प्रतिमाओं के अतिरिक्त वाद्ययंत्र, मुखौटे, पूजा उपकरण, थंके तथा धार्मिक पोथियाँ भी यहाँ सुरक्षित रखी गई हैं। पूजा-अर्चना, अनुष्ठान इसी कक्ष में होते हैं।

इस मुख्य कक्ष के बाहर एक आधुनिक भवन बनाया गया है। यह भवन बैठने के लिए, बच्चों के शिक्षा देने के लिए प्रयुक्त होता है। इसे 'जोमखङ्' कहते हैं। इसके आगे तीसरा कक्ष है जिसे 'लोचावई-लाखङ्-गोङ्मा' अर्थात् लोचा का ऊपर वाला मंदिर कहते हैं। इसमें भी कुछ ऊँचाई पर मूर्तियाँ स्थापित हैं जिनमें तारा की अद्‌भुत प्रतिमा है। पीत तारा के अतिरिक्त यहाँ आठ गुरुओं की प्रतिमाएँ हैं।

चौथा और अंतिम कक्ष ग्यापग-पा का मंदिर कहलाता है। पहले कक्ष की भाँति इसमें भी कोई मूर्ति नहीं है। बस दीवारों पर भितिचित्र हैं। इन चित्रों में शारिपुत्र, मोगलीपुत्र, नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, बसबंधु आदि के चित्र सम्मिलित हैं।

चौथे कक्ष के बाहर एक प्राचीन स्तूप है। बौद्ध विहार के नाम कुछ जमीन भी है।

लोपोन लाखङ्

नाको में एक विहार आचार्य पद्‌मसंभव को समर्पित भी है। इस विहार को लोपोन लाखङ् अर्थात् आचार्य का मंदिर कहते हैं। आचार्य पद्‌मसंभव ने तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उन्होंने तांत्रिक विधि से भूत-प्रेतों का दमन किया। इस मठ में एक शिला में गुरु पद्‌मसंभव का चरण-चिह्न है। इसी शिला पर पद्‌मसंभव का प्रतिमा बनाई गई है। इसके साथ एक अन्य शिला में देवता पुरग्युल के हाथ का चिह्न है। जो व्यक्ति पुरग्युल शिखर पर नहीं जा पाते वे यहीं देवता के दर्शन कर लेते हैं।

यहाँ गुरु पद्मसंभव का जन्मदिवस मनाया जाता है। इस मठ में कुछ भितिचित्र भी हैं जो मिट रहे हैं।

इस मठ के साथ ही आकर्षक नाको झील है। रिवालसर झील की भाँति इसे भी पवित्र झील माना जाता है।

नाको में दो अन्य विहार भी हैं। ये यहाँ के 'खर-वा' परिवार के व्यक्तिगत मठ हैं। ये दुङ्ग्युर लाखङ् अर्थात् दुङ्ग्युग मंदिर के नाम से जाने जाते हैं। इन मठों में अवलोकितेश्वर, पद्मसंभव, रत्नभद्र की प्रतिमाएँ हैं।

'दुङ्ग्युर' का अर्थ दस करोड़ है। यह धर्मचक्र या प्रार्थना चक्र के लिए प्रयुक्त होता है। दुङ्ग्युर में 'ऊँ मणि पद्मे हुँ' मंत्र कागजों में लिखकर भरा जाता है। इस धर्मचक्र में मंत्र की संख्या दस करोड़ होती है। इसीलिए धर्म चक्र या प्रार्थना चक्र को दुङ्ग्युर कहते हैं।

नाको में याङोन विहार भी है जो तिब्बत के याङोन विहार की परंपरा पर बना। इनके अतिरिक्त व्यक्तिगत पूजागृह भी हैं।

रिन-चेन-जंगपो द्वारा निर्मित बौद्ध मठ

रिन-चेन-जंगपो (रत्नभद्र) की जीवनी में उल्लेख है कि उन्होंने खुनु (किन्नौर) में होपुलङ्का तक बौद्ध विहारों का निर्माण किया। होपुलङ्का किन्नौर का कल्पा (चीनी) का क्षेत्र है। अतः रत्नभद्र द्वारा निर्मित इस ओर अंतिम विहार कल्पा (चीनी) में माना जा सकता है। किन्नौर में रत्नभद्र द्वारा निर्मित मठों की संख्या चौदह गिनाई जाती है :

चिने (कल्पा), पङे (पंगी), रिदङ् (रिब्बा), ठङे (ठंगी), चारङ्, असरङ्, कानम, सुन्नम, रोपा, पूह, नाको, चांगो, शलखर तथा चुलिङ् के ये गोम्पा रत्नभद्र के नाम हैं जहाँ लोचा ल्हाखङ् अर्थात् अनुवादक (रत्नभद्र) का मंदिर है।

चीनी (कल्पा) गाँव में लोचा ल्हा-खङ् था जो आग लगने से नष्ट हो गया। अब इस स्थान पर नया ल्हा-खङ् बनाया गया है। पङे (पंगी) गाँव का मठ नष्ट हो चुका है। रिदङ् (रिब्बा) में मठ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। इसके द्वार तथा छत पर अच्छी काष्ठ कला हुई है। भीतर प्राचीन मूर्तियाँ हैं। इस मंदिर के बारे में एक गीत प्रचलित है जो विशेष पर्व पर रात को गाया जाता है। गीत में मठ का निर्माता रिन-चेन-जंगपो बताया गया है। इस मठ के साथ अब एक नए मठ का निर्माण कर दिया गया है।

ठङे (ठंगी) गोम्पा का नाम 'शङ्स' दिया गया है। शङ्स भोट भाषा में ठङे (ठंगी) का ही नाम है। ठंगी वासियों को शङ्पा कहा जाता है। ठंगी में एक प्रज्ञापारमिता की पोथी उपलब्ध है जिसमें स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है।

चारङ् मठ का नाम 'रङ्-रिग-स्रुङ्मा' है। यह एक पवित्र स्थान माना जाता है जहाँ हिंदू और बौद्ध समान रूप में अनुयायी हैं। जन्माष्टमी के दिन यहाँ उत्सव होता है। यह मठ अभी अच्छी स्थिति में है। प्रवेश द्वार के साथ ही अब नया मठ भी बन गया है।

मठ के द्वार पर उत्कृष्ट काष्ठ कला चित्रित हुई है। मठ के भीतर ताबो की भाँति दीवार में लकड़ी गाड़कर हवा में मूर्तियाँ लगाई गई हैं। ये कुल दस मूर्तियाँ हैं। हयग्रीव तथा बज्रपाणि की मूर्तियाँ रौद्र रूप में है। मुख्य मूर्ति संगमरमर की है और अत्यंत आकर्षक है। इस मूर्ति के नीचे एक छोटी मूर्ति है जो घोड़े पर सवार है। इसे दोर्जे-छेनको या स्रुङ्मा (रक्षिका) माना जाता है। मठ कंग्युर पोथियों का विस्तृत भंडार है। इस मठ का लिखित इतिहास भी था जो अब उपलब्ध नहीं है।

असरङ् मठ रिब्बा के मठ से बड़ा है। यहाँ मिट्टी की बनी पुरातन मूर्तियाँ हैं। कपड़े पर लिखी विवरणिका भी जिसमें राजा सेर सिंह, वजीर ज्वाला दास तथा खर-पोन लेगस-पग ज्ञल-छल के नाम लिखे हुए हैं। यह विवरणिका पुरानी नहीं है। यहाँ एक बहुत बड़ा पत्थर भी है जिसके नीचे तीन स्तूप तथा गुप्त खजाना बताया जाता है।

कानम मठ भी रत्नभद्र द्वारा निर्मित माना जाता है। राहुल ने इसे कश्मीरी प्रभाव से बना मठ माना है। इस मठ का पुनर्निर्माण होता रहा है। अंतिम बार पुनर्निर्माण 1948 में टोगो गेशे लामा द्वारा हुआ।

सुन्नम गोम्पा भी नष्ट हो चुका है। इस समय जो गोम्पा है वह नया है। रोपा में प्राचीन गोम्पा विद्यमान है यद्यपि इसकी छत जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है। पुरानी मूर्तियाँ भी इसमें स्थापित हैं।

पूह का गोम्पा भी पुनर्निर्मित होता रहा है। इसमें पुरानी मूर्तियाँ विद्यमान हैं। पूह के रास्ते रत्नभद्र कई बार गुजरे हैं।

चुलिङ् गोम्पा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है, अतः प्राचीन है। चांगो में मठ का पुनर्निर्माण हुआ है। नाको मठ में तीन कक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण हैं जो ताबो की तरह हैं। इनकी दीवारों में बहुत से मंडल है तथा भित्तिचित्र भी विद्यमान है। दुर्लभ पांडुलिपियाँ भी यहाँ हैं।

शलखर गोम्पा लगभग बीस वर्ष पूर्व आए भूकंप में गिर गया। अब यहाँ नया मठ बना है।

रिन-चेन-जंगपो के नाम से कई स्तूप भी गिनाए जाते हैं। रोशन लाल नेगी के अनुसार जंगी में एक गुप्त खजाना है जिसे रिन-चेन-जंगपो के नाम से जोड़ा जाता है। गाँव से एक किलोमीटर नीचे उतरकर 'छिती-फुग' अर्थात् विरोजे की गुफा आती है। यहाँ पर कुछ मूर्तियाँ तथा स्तूप मिले हैं। राहुल ने भी इन स्तूपों का उल्लेख किया है।

इस प्रकार रत्नभद्र से जुड़े कई रहस्यमय स्थान हैं जिस तरह प्रदेश के दूसरे भागों में भीम या अन्य पांडवों से जुड़े बताए जाते हैं।

जनगणना पुस्तिका के अनुसार किन्नौर में 32 मठ गिनाए हैं। रामपुर (शिमला) में एक तथा शिमला शहर में अब दो मठ हैं। एक मठ संजौली में और दूसरा मठ पंथाघाटी में है।

किले

किन्नौर के किले अद्‌भुत वास्तुकला और काष्ठ कला के उदाहरण हैं। इन किलों में सुरक्षा कितनी हो सकती होगी यह कहना तो कठिन है किंतु वास्तुकला की दृष्टि से इनका मुकाबला नहीं है। कई मंदिर भी किलानुमा वास्तुकला में ही निर्मित हैं।

किला निर्माण की यह शैली किन्नौर, लाहौल तथा कुल्लू तक प्रचलित है। लाहौल का गोंधला किला, बंजार की चैहणी कोठी इसके उदाहरण हैं। किन्नौर में मूरंग, लबरंग, जबरंग, कामरू ऐसे ही किले हैं जो बड़े-बड़े शहतीरों और पत्थरों से बनाए गए हैं। इनमें चढ़ने के लिए धरातल मंजिल से लकड़ी की सीढ़ियाँ आरंभ होती हैं। पहली मंजिल में चारों ओर लकड़ी का बरामदा, फिर एक किनारे से ऊपर को सीढ़ियाँ। इसी तरह दूसरी मंजिल में बरामदा और किनारे में सीढ़ियाँ। चौथी मंजिल के बाद ऊपर ढलवाँ छत जो अब अधिकांश किलों में क्षतिग्रस्त हो चुकी है। मूरंग किला तो ऊपर से समतल ही हो गया है।

छितकुल किला सबसे छोटा किला है और यह मिनिकिला था। एक सुंदर मॉडल-सा दिखता है। जैसे पहले बड़े मंदिरों के निर्माण से पूर्व छोटे मॉडल या डमी मंदिर बनाए जाते थे।

ऐसे डमी मंदिर का उदाहरण कुल्लू मंदिर नग्गर के नीचे गौरीशंकर मंदिर के पार खेतों में एक छोटा मंदिर है। उसी तरह यह छितकुल किला भी दिखता है। किंतु यह अपने में पूर्ण है।

कुछ ऐतिहासिक संदर्भ

हिमाचल में बौद्ध धर्म

तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व, लगभग सम्राट अशोक के ही समय में हिमाचल में बौद्ध धर्म का प्रसार हो गया था। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भिक्षु हिमालय में भेजे। स्तूप बनाए गए, शिलालेख खोदे गए। जिला काँगड़ा के खनियारा, पठियार, चैतड्रू, चड़ी, लाखामंडल आदि स्थानों में तीसरी शताब्दी पूर्व से कनिष्क के समय के अवशेष पाए जाते हैं।

ह्यून सांग ने अपनी भारत यात्रा (630-644 ई०) में इन स्थानों का वर्णन किया है। जिला काँगड़ा में धर्मशाला के निकट खनियारा में ब्राह्मी-खरोष्ठी शिलालेख, पठियार शिलालेख तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व बौद्ध मठ की पुष्टि करता है।

ह्यून सांग ने त्रिगर्त में पचास बौद्ध मठ और दो हज़ार बौद्ध भिक्षु तथा कुल्लू में बीस मठ देखे। कुल्लू घाटी के मध्य एक स्तूप का उल्लेख भी किया गया है।

काँगड़ा के निकट चैतड्रू में कनिष्क के समय का स्तूप पाया गया। छठी शताब्दी में बुद्ध धर्म के प्रबल विद्रोही मिहिरकुल (518-529) ने इन विहारों को नष्ट किया।

सतलुज घाटी

सतलुज घाटी के इतिहास के स्रोत रामपुर बुशहर के पार निरमंड गाँव से जुड़े हुए हैं। रामपुर से लगभग बारह किलोमीटर सतलुज के पार निरमंड गाँव है। सतलुज से पार पंद्रह-बीस तक का क्षेत्र जिला कुल्लू में आता है।

निरमंड को परशुराम द्वारा स्थापित गाँव माना जाता है। सतलुज के पार ज़िला कुल्लू तथा इस ओर ज़िला शिमला में भी परशुराम के स्थान माने जाते हैं। निरमंड के अतिरिक्त ज़िला शिमला में निरमंड के ठीक पार नीरथ और नग्गर दो स्थान हैं। नीरथ में सूर्य मंदिर, नगर या दत्तनगर में दत्तात्रेय का मंदिर है। ज़िला मंडी में काओ तथा ममेल दो अन्य स्थान हैं। काओ में कामाक्षा देवी और ममेल में ममलेश्वर महादेव के मंदिर हैं। कुछ लोग खेखशु और धनाओ को मिलाकर सात स्थान मानते हैं। स्थानों के अतिरिक्त चार 'ठहरी' हैं। डणसा, लालसा, शनेरी और शिंगड़ा।

परशुराम की इस किंवदंती या लोकास्था को छोड़ दें तो निरमंड के परशुराम

मंदिर में होने वाले 'भुंडा' उत्सव को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। भुंडा उत्सव की परंपरा से कुछ निकले, न निकले, इस अवसर पर परशुराम मंदिर से निकाली जाने वाली मूर्तियों से इतिहास को दिशा मिलती है।

भुंडा उत्सव निरमंड के अतिरिक्त रामपुर, रोहड़ू में अब भी कई स्थानों में मनाया जाता है। इस पारंपरिक उत्सव में सभी क्रियाएँ तथा रस्में लगभग एक-सी हैं किंतु वर्षों के अनंतर इनमें क्या-क्या बदलाव आते रहे, यह कहना कठिन है।

निरमंड में हर बारह वर्ष बाद भुंडा का आयोजन होता था। हारकोट ने 1856 के बाद 1868 में भुंडा का उल्लेख किया है। 1868 के बाद शैटलवर्थ ने 1909 के भुंडे का उल्लेख किया है। बारह वर्ष बाद भुंडा होने की परंपरा खंडित हो गई थी अब तक अन्यथा यह भुंडा 1916 में होता। इसके बाद 1933, 1962 में भुंडों का उल्लेख मिलता है।

इस उत्सव में अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त ऊँची पहाड़ी में ऊपर से नीचे मोटा रस्सा बाँध 'बेड़ा' जाति के एक आदमी को एक लकड़ी की घोड़ी पर बिठाकर फिसलाया जाता है, जिससे आदमी की मृत्यु हो सकती है। हारकोट ने 1856 के भुंडा के दौरान बेड़ा के मरने का उल्लेख किया है जिसके बाद यह खतरनाक खेल सरकार ने बंद करवा दिया। फिर रस्से में बकरा बाँधा जाने लगा। अंतिम भुंडा 1981 में हुआ था जिसमें रस्से से बकरा बाँधा गया था।

महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ

भुंडा के अवसर पर परशुराम मंदिर से मूर्तियाँ निकाली जाती हैं। यूँ यह मंदिर वर्षों बंद रहता है। भुंडा के आयोजन में सर्वप्रथम एक जगनाहट (ब्राह्मण) तथा तीन माहते (सुनार) भीतर जाकर मूर्तियाँ निकालते हैं। मंदिर के भीतर गुफानुमा कमरे से एक बार में जो मूर्तियाँ हाथ लगती हैं, उन्हें निकाला जाता है। ये मूर्तियाँ भुंडा के आयोजन के दिनों मंदिर के बाहर दर्शनार्थ रखी जाती हैं।

हारकोट ने 1868 में भुंडा पर निकाली गई मूर्तियों की सूची दी है। उस समय चालीस पौंड का परशुराम का फरसा, एक गागर (या कलश), एक धनुष, लोहे के कुछ तीर और एक बहुत बड़ा कवच निकाले गए थे। इस समय निकाली गई मुख्य मूर्ति के विषय में हारकोट ने लिखा है कि मूर्ति के हाथ में एक ताम्रपत्र है। पुजारी कहते हैं कि इसमें दाता द्वारा लिखित उनकी जागीर का अधिकारपत्र है।

एच०सी० शैटलवर्थ ने 1909 के भुंडे में रानी के एक हेड मैटल निकलने का उल्लेख किया है। इस हैड मैटल में एक संस्कृत लेख में संवत् 7 लिखा है। इसी में एक लेख टाकरी में है जो संभवतः बाद में लिखा गया। भुंडा के रिकॉर्ड में एक जगह एक मोती-हार का उल्लेख भी आता है जिस पर संवत् 749 लिखा है।

1962 में एक अँगूठी भी बाहर लाई गई थी। परशुराम की त्रिमुखी मूर्ति भी बाहर

लाई गई। 8 फरवरी, 1982 को हुए अंतिम भुंडे में ताम्रपत्र के सिवा लगभग सभी मूर्तियाँ निकालकर यज्ञशाला में रखी गईं। परशुराम की मुख्य मूर्ति के अतिरिक्त बुद्ध, तारा, विष्णु, गणेश, महिषासुरमर्दिनी, शूलपाणि, दुर्गा की कलात्मक मूर्तियाँ, सिंहमुख वाले दो स्टैंड, कलश, दो मोर तथा घंटियाँ बाहर लाई गईं। इनके अतिरिक्त एक सोने का कंठा, कमंडल, दो हाथीदाँत के पंखे, एक अँगूठी तथा चाँदी का एक थाल भी निकाला गया।

रानी माँ की आवक्ष प्रतिमा, परशुराम का फरसा तथा गेहूँ का दाना इस बार नहीं निकले।

जिसे परशुराम की मूर्ति माना गया, वह तीन मुख वाला मोहरा या मास्क था। इस मास्क के बारे में यह भी विश्वास है कि एक बार जब मूर्ति निकाली गई थी तो हमला हो गया और हमलावर या अखाड़े में ठहरे साधु इसे ले गए। यह मूर्ति बाद में बनी किंतु लोगों की याददाश्त के अनुसार यही मूर्ति निकाली जाती रही है।

इनमें महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ बुद्ध की थीं जिन्हें लोग इंद्र-इंद्राणी की बता रहे थे। अंतिम भुंडे के बाद परशुराम मंदिर से मूर्तियों की चोरी हो गई। यद्यपि इन मूर्तियों को पुलिस द्वारा बरामद कर लिया गया। कुल पचास मूर्तियाँ बरामद हुईं। इनमें रानी माँ की आवक्ष प्रतिमा भी थी जिसमें 10 आषाढ़ संवत् 7 खुदा है। बुद्ध की दो प्रतिमाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं जिसमें एक की आँखें चमकती हुई हैं और पैरों में छोटे पहिए लगे हैं। दूसरी कमलदल पर विराजमान है।

निरमंड ताम्रपत्र

निरमंड ताम्रपत्र, जिसका उल्लेख हारकोट ने किया है, 1981 के भुंडे में देखा नहीं जा सका। पता चला एक सज्जन इसे पढ़वाने के लिए ले गए हैं। इसकी प्रतिलिपि स्थानीय वकील महेन्द्र प्रकाश के पास मौजूद थी। ताम्रपत्र 32×20 से०मी० है जो संस्कृत से किसी अन्य भाषा में है।

कनिंघम के अनुसार यह ताम्रपत्र बारहवीं शताब्दी का है, जबकि डॉ० जे० एफ० फ्लीट ने इसे सातवीं शताब्दी का सिद्ध किया है।

ताम्रपत्र में उल्लेख है कि कपालेश्वर मंदिर महाराज सर्ववर्मन द्वारा बनवाया गया। इसमें समुद्रसेन की माता परमदेवी महाभट्टारिका मिहिरलक्ष्मी ने मिहिरेश्वर की मूर्ति की स्थापना की। मिहिरेश्वर की पूजा-अर्चना के लिए महाराजा समुद्रसेन ने शूलिशग्राम और उससे संलग्न भूमि व जंगल निरमंड के अथर्ववेदी ब्राह्मणों को अग्रहार के रूप में दी। लेख में चार महासामंत महाराजाओं की वंशावली दी है—वरुणसेन, संजयसेन, रविसेन और समुद्रसेन।

कपालेश्वर मंदिर में मिहिरेश्वर की स्थापना और कालांतर के बाद इसका परशुराम मंदिर बनना एक लंबे इतिहास को छिपाए है। कपालेश्वर मंदिर में शिव की

स्थापना बौद्ध के स्थान पर शैव होने की परंपरा को भी लक्षित करती है। अभी भी भुंडे के अंत में 'नाथ' संप्रदाय के लोगों को गाँव के बाहर खदेड़ा जाता है। निरमंड का यह ताम्रपत्र 630 का माना जाता है। इस घटना को मिहिरकुल (518-529) से जोड़ा जा सकता है। अतः यह बौद्धों पर ब्राह्मणों की विजय भी हो सकती है।

'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में उल्लेख है कि स्पिति या पित्ति में सेन वंश के शासकों का राज्य था। 'पित्ति' का अर्थ है मध्यदेश। स्पिति के शासक राजेन्द्रसेन ने रुद्रपाल (600-650) के समय कुल्लू पर हमला किया और इसे अपने अधीन किया। प्रसिद्धपाल ने रोहतांग के निकट युद्ध में पुनः स्वतंत्रता प्राप्त की। निरमंड का ताम्रपत्र इससे पहले के राजाओं द्वारा दिया गया।

कुल्लू के प्रसिद्धपाल द्वारा हार के तुरंत बाद स्पिति पर तिब्बत का हमला हुआ और हिंदू राज्य की समाप्ति हुई। इस युद्ध में लद्दाख की सहायता कुल्लू के संसारपाल ने की। स्पिति के चेतसेन के पुत्रों को जागीर सौंपी गई।

तिब्बत में बौद्ध धर्म

सातवीं शताब्दी के मध्य तिब्बत के शासक स्रों-त्सन-गम्पो (Sron-btsan Sgampo 617-650) ने लद्दाख को अपने अधीन कर लिया। अतः स्पिति भी मध्य तिब्बत का एक भाग बन गई। छोटे-छोटे राज्यों में बँटा स्पिति, लद्दाख, तिब्बत का यह हिस्सा अब स्रों-त्सन-गम्पो के अधीन आ गया जिसका विवाह चीन तथा नेपाल की राजकुमारियों से हुआ। इससे राजा के शक्तिशाली होने की पुष्टि होती है।

चीन तथा नेपाल से आई राजकुमारियों द्वारा अक्षोभ्य तथा शाक्य मुनि की प्रतिमाएँ दहेज में लाई गईं। अतः चीन से आई रानी ने कोङ-जो-नेर-मो-छे और नेपाल से आई रानी ने ठि-चुन-ने-ठुल-नंङ विहार बनवाए। स्रों-त्सन-गम्पो ने लगभग 632 में अपने एक मंत्री संभोट को सोलह छात्रों के साथ कश्मीर भेजा। बौद्ध धर्म के प्रबल समर्थक इस शासक ने नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में बौद्ध भिक्षुओं को तिब्बत आने हेतु प्रेरित करने के लिए अपने दूत भेजे। वे प्रसिद्ध विद्वान शांतरक्षित को तिब्बत लाने में सफल रहे। शांतरक्षित ने रिम्पोचे पद्मसंभव को आमंत्रण देने के लिए कहा। तंत्रयान के अनुयायी पद्मसंभव को बुलाया गया। पद्मसंभव की जीवनी पेमाकातङ् में जोहार (मंडी-रिवालसर), गार्ज़ा (लाहुल), गुरुघंटाल (गोंधला) का नाम आता है। पद्मसंभव का नाम लाहौल के मठों से भी जुड़ा है। यह भी कहा जाता है कि पद्मसंभव ने लगभग 779 ई० में तिब्बत में सम-यास या समय नाम से मठ की स्थापना की।

स्रों-त्सन-गम्पो का पौत्र राल-पा-चैन (Ral-Pa-Chen) (817-36) बौद्ध धर्म का तीसरा प्रबल समर्थक शासक माना जाता है। इसे विद्रोही भाई लंग द्रामा (Lang-drama) द्वारा मार दिया गया। लंग द्रामा (899-902) बौद्ध धर्म का शत्रु था। उसने

भारतीय पंडितों को निकाल दिया। स्थानीय विद्वान् जहाँ-तहाँ छिप गए।

लंग द्रामा को 902 ई० में पाल-दोर्जे लामा की सुनियोजित योजना द्वारा मार दिया गया। इसकी मृत्यु के बाद इसका भतीजा राजा बना। इसके साथ छोटी रानी के वारिस ओद-स्रुंग (Od-Srung) के बीच संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष के चलते ओद-स्रुंग का पौत्र की-दे-निमा-गों अपने अनुयायियों सहित पश्चिम तिब्बत चला गया किंतु वैवाहिक संबंधों से की-दे-निमा-गों ने शक्ति प्राप्त की और गुगे व लद्दाख के क्षेत्रों को मिलाकर राज्य विस्तार किया। लगभग 930 ई० में इसकी मृत्यु के बाद राज्य तीन पुत्रों में बाँट दिया गया। बड़े पुत्र पालगी गों को लद्दाख तथा दोनों भाइयों पर शासन। दूसरे पुत्र टशी-गों को पुरंग तथा तीसरे भाई देत्सु-गों (Detsu-gon) को जंगसर व स्पिति। पालगी-गों (930-960) की मृत्यु के बाद शासक का दर्जा टशी-गों को मिल गया। टशी-गों बिना उत्तराधिकारी के मर गया अतः गुगे व पुरंग का शासन देत्सु-गों के पुत्र खोर-रे (Khor-re) चक्रसेन को मिल गया। खोर-रे ही ये शेस-ओद (Ye-shes-hod) था। इसे लो-चेन अर्थात् पंडित और गुरु भी कहा जाता है।

ये-शेस-ओद (967-1040) ही गुगे का वह शासक था जो अपने दो पुत्रों नागराज और देवराज सहित बौद्ध भिक्षु बन गया। राजपाट अपने भतीजे स्रोन-ने (Sron-ne) को सौंप स्वयं बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में जीवन लगाया। इसने इक्कीस युवाओं को भारत भेजा जिनमें से रिन-चेन-ज़ंग-पो भी एक था। इनमें से केवल दो रिन-चेन-ज़ंग-पो तथा लेक-पाई-शे-रेप (Lek-pai-she-rap) ही अपना अध्ययन पूरा करने के लिए बच पाए। रिन-चेन-ज़ंग-पो कई वर्षों तक कश्मीर में रहे और भारत के दूसरे स्थानों का भी भ्रमण किया। ये-शेस-ओद ने सन् 1005 में रिन-चेन-ज़ंग-पो सहित दूसरा दल कश्मीर भेजा। ये वहाँ से पहली यात्रा में रह गई पुस्तकें लाए और अपने साथ लाए बत्तीस बौद्ध कश्मीरी मूर्तिकार और कलाकार।

स्रोन-ने के बाद उसका पुत्र चंग-छुब-ओद (Chang-chub-od) शासक बना, जिसे बौद्धिप्रभ भी कहते हैं। इसने भी राजपाट त्याग दिया और अपने भाई-ज़ी-बा-ओद (Zi-ba-od) सहित विक्रमशिला महाविहार से दीपंकर श्रीज्ञान को गुगे आमंत्रित करने के लिए अपने चाचा ये-शेस-ओद के ध्येय में जुट गया। परिणामस्वरूप दीपंकर श्रीज्ञान सन् 1042 में गुगे पहुँचे। चंग-छुब-ओद ने ही सन् 1042 में ताबो मठ का जीर्णोद्धार या पुनर्निर्माण किया।

चंग-छुब-ओद ने शासन अपने बड़े भाई ल्हा-इद-होद-इद (Lha-ide-Hod-ide) के सुपुर्द किया था। इसके शासनकाल में ही रिन-चेन-ज़ंग-पो सन् 989 में कश्मीर और भारत भ्रमण के बाद गुगे लौटा। ल्हा-इद-होद-इद ने विद्वानों की एक सभा बौद्ध धर्म ग्रंथों के अनुवाद के लिए बुलाई।

स्पिति का क्षेत्र शांतिप्रिय प्रजा के कारण हमलावरों से आक्रांत रहा। जब-जब हमला हुआ, लोग पर्वतों की ऊँचाइयों की ओर भाग खड़े हुए। लद्दाख, बुशहर तथा कुल्लू से घिरा स्पिति का इलाका इन तीनों कोणों से आक्रमण झेलता रहा। ऐसा पहला आक्रमण सातवीं शताब्दी में लद्दाख की ओर से हुआ। दूसरा आक्रमण कुंजम की ओर से कुल्लू ने 1891 में किया। इससे पूर्व, जैसा कि गेरार्ड ने उल्लेख किया है, ढंक्खर का किला दो वर्ष तक बुशहर के कब्जे में रहा। तीसरी बार डोगरा जोरावर सिंह के नेतृत्व में लद्दाख की पराजय के बाद रहीम खान को 1841 में स्पिति का क्षेत्र सौंपा जिसके दामाद गुलाम खान ने मठों को लूटा, मूर्तियों को तोड़ा। 1841 में ही सिक्खों द्वारा कुल्लू पर आधिपत्य जमाने के बाद एक सेना स्पिति में भी भेजी गई। सन् 1846 में रावी से सिंध तक का पूरा पंजाब का क्षेत्र जिसमें लद्दाख तथा स्पिति भी थे, जम्मू के राजा गुलाबसिंह के कब्ज़े में आ गया। सन् 1846 में ही कनिंघम ने स्पिति, लद्दाख तथा पूर्वी तिब्बत के बीच सीमा रेखा निर्धारित की। सन् 1849 में कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर मेजर हे ने स्पिति का चार्ज ले लिया।

ताबो मठ की संरचना ढंक्खर तथा की मठों की भाँति किलानुमा नहीं थी, अतः यह हमलावरों की तोड़फोड़ से बचा रहा, ऐसी संभावना फ्रेंके ने व्यक्त की है जबकि टूची (1933) का कहना है कि ताबो मैदान में बना था अतः इसे गिराना आवश्यक नहीं था। टूची ने माना कि हमलावर की और काज़ा जाते हुए ताबो होकर गया है।

हिमालय और विशेषकर हिमाचल में बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक शृंखला साक्ष्य के अभाव में बहुत अस्पष्ट है। इतिहास की सीमित पुस्तकों, विदेशी यात्रियों के कुछ वर्णनों तथा कहीं-कहीं प्राप्त अवशेषों से इतिहास की टूटी कड़ियाँ जुड़ती तो हैं, पूरी शृंखला नहीं बन पाती। हचिसन, वोगल जैसे इतिहासकार स्पिति पर केवल सवा चार पृष्ठ लिखकर मौन हो गए हैं। ऐसा ही किन्नौर के विषय में है। इस कारण एक धुंधली और अस्पष्ट तस्वीर सामने आती है।

कुल्लू तथा काँगड़ा में चीनी यात्री ने जो बौद्ध मठ देखे, उनके कोई अवशेष अब विद्यमान नहीं हैं। यहाँ जो स्तूप होने का उल्लेख किया गया है, वे भी अब नहीं हैं। दूसरे, इतिहास की परंपरा को निर्भय होकर लिखने में लोक विश्वास आड़े आते हैं। प्रदेश के अधिकांश मंदिरों में जिस देवता की पूजा सदियों से हो रही है, भीतर मूर्ति किसी दूसरे देवता की पाई जाती है। उदाहरण के तौर पर निरमंड में जिस तीन मुख वाली प्रतिमा को परशुराम माना जाता है, वह परशुराम की नहीं है। वहाँ बुद्ध प्रतिमाएँ इंद्र-इंद्राणी की मान ली गईं। त्रिलोकीनाथ में अवलोकितेश्वर को शिव कहा गया।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात जो इतिहास को सामने लाने में सहायक हो सकती है, पुरानी मूर्तियों की पहचान है। किन्नौर, निरमंड, सराहन तथा कुछ दूसरे स्थानों में विद्यमान बुद्ध मूर्तियों की पहचान तथा काल निर्धारण आवश्यक है जिससे इतिहास की दिशा बदल सकती है।

बौद्ध धर्म तथा त्योहार

किन्नौर में जैसे-जैसे ऊपर चलते जाते हैं बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ता जाता है। प्रत्येक गाँव में, रास्तों में 'मानी फानी' नज़र आते हैं। बौद्ध लोग पत्थरों पर 'ऊँ मणि पद्मे हुँ' लिखते रहते हैं। इन पत्थरों के ढेर रास्तों में और जगह-जगह लगा दिए जाते हैं। इनमें भूत-प्रेतों और दुरात्माओं से रक्षा होती है। इसी तरह स्थान-स्थान पर छोरतेन भी बने हैं। मानी फानी तथा छोरतेन को दाहिने से पार नहीं करते। पार करते समय ये बाईं ओर रहने चाहिए।

तिब्बत-स्पिति तथा किन्नौर में बौद्ध धर्म की तंत्र शाखा की प्रधानता है। यहाँ बौद्धों की तीन शाखाएँ विद्यमान हैं : ग्येलुपा, डुक्पा और निङ्मा या निङ्माया।

ग्येलुपा लामा ऊँचे माने जाते हैं। ये पीत वस्त्र धारण करते हैं। डुक्पा तथा निङ्मा लाल वस्त्र धारण करते हैं। इन तीन मुख्य शाखाओं में अतिरिक्त भी कई उपशाखाएँ हैं जो अपनी-अपनी मान्यताओं और अलग-अलग देवताओं को मानने से हैं।

बौद्ध गोम्पा में तथागत, विरोचन, महाविरोचन, पद्मसंभव के अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ रहती हैं। बहुत से हिंदू देवी-देवताओं के तिब्बती नाम प्रतिरूप भी देखने को मिलते हैं। अवलोकितेश्वर, मंजुश्री, वज्रपाणि, छोगंदक, डुकर के साथ डोल्मा, पाल्दनलामो, गैंवो-छग-दु-वा, शेरिंगमा जैसी देवियाँ बौद्ध मंदिरों में विराजमान रहती हैं। कुबेर, यमराज, शिव, गणेश, विष्णु, इंद्र, धर्मपाल, नाग, सरस्वती, पार्वती आदि देवी-देवता अपने तिब्बती नामों के साथ इन मंदिरों में स्थापित हैं।

नाको, चांगो, हांगो, चूलिंग, लियो, नमज्ञा, टशीगंग, डबलिंग, श्यालखर, पूह, रोपा, कानम, सुगनम, तालिङ्, स्पिलो, लबरंग, लिप्पा, जंगी, रारंग, मूरंग, नेसंग, सांगला, रिस्पा, रिब्बा, कुनुचारंग, पांगी, भावा, यूला, चगाँव, रोहगी, कल्पा आदि स्थानों पर बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाओं में संबंधित गोम्पा विद्यमान हैं। इनमें ग्येलुग्पा, डुक्पा, निङ्मा, के अतिरिक्त ठोमा, छोग्ले, जोग्छेन आदि उपशाखाएँ भी विद्यमान हैं।

लामा लोग अपने पूजा यंत्रों द्वारा इन बौद्ध मंदिरों में पूजा करते हैं। दरजे वज्र, डमरू, डिलू इनके पूजा वाद्य हैं। दुंग्युर या धर्मचक्र तो प्रत्येक लामा के हाथ में रहता है। इसके अतिरिक्त दुङ् यानी शंख, मारमे या छोंपे यानी दीपक भी अन्य मंदिरों की भाँति मंदिर की शोभा बनते हैं।

पंडित टीका राम जोशी ने 'एथनोग्राफी ऑफ बुशहर स्टेट' (1911) में बौद्धों के निम्न संस्कार तथा त्योहार गिनाए हैं–

1. कंग्सो का धार्मिक संस्कार पूरी किन्नौर घाटी में शुक्ल पक्ष की आठ, दस, बारह तथा चौदह तिथि और पूर्णमासी व अमावस्या को मनाया जाता है जिसमें लामा तथा जोमो होम तथा पूजा-पाठ करते हैं। यह हर मठ में किया गया है।
2. कानम में शुक्ल पक्ष की आठवीं तिथि तथा पूर्णमासी और अमावस्या को हर महीने ज़िंशोक मनाया जाता है।
3. कानम में शुक्ल पक्ष की चौदह तिथि तथा फागुन की पूर्णमासी को तोरग्या मनाया जाता है।
4. कानम में चैत्र मास की 11 तिथि को एक दिन के लिए तोना मनाया जाता है।
5. कानम गाँव में फाल्गुन मास के 20 प्रविष्टे को तीबाङ्मा मनाया जाता है।
6. कुतिंफ भी कानम गाँव में फाल्गुन मास के 15 प्रविष्टे को मनाया जाता है।
7. नमग्यंग, भी कानम में मनाया जाता है जो प्रत्येक मास की अमावस्या से शुरू होकर दो दिन तक होता है। लामा तथा जोमो द्वारा होम, पूजा तथा पथ का पाठ करते हैं।
8. शिवरात, शिव या महादेव का जन्म दिन न केवल हिंदुओं का ही धार्मिक अनुष्ठान है परंतु बौद्धों का भी होता है। यह फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की 14 तिथि को पड़ता है जिस दिन लोग शिव की आराधना करते हैं, जिसे बौद्ध लॉफन कहते हैं तथा इस दिन अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों को पकवान बाँटते हैं।
9. शोनेटङ् भावा वैली के ग्रामङ् तथा कटगाँव में सावन मास की पूर्णमासी को मनाया जाता है। लगभग दर्जन युवा अपने साथ तीन दिन तक के लिए पकवान अपने साथ लेकर गाँव से दूर बर्फीली ऊँची चोटी पर जाते हैं जहाँ पर वे दो रातें रुकते हैं और जंगली फूल, धूप इकट्ठा करते हैं। जंगली फूलों की माला बनाते हैं। जब ये लोग पहाड़ से वापस आते हैं तो गाँव वाले उनका बाजे-गाजों के साथ स्वागत करते हैं। वे जंगली फूलों की माला लेकर आते हैं। उसे देवता को पहनाते हैं तथा गाँव वालों को भी फूल, धूप आदि बाँटते हैं। उसके बाद सारे लोग इकट्ठा होकर नाचते-गाते हैं।
10. लामा-पज़ा शवाङ् वैली के लाबरङ् गाँव में चैत्र मास के अमावस्या को मनाया जाता है। लामा और जोमो देवता जिसे छोकोलिङ् डोम्बर कहते हैं। कहीं पूजा करते हैं, जबकि पुरुष तथा महिलाएँ खुशी से नाचते-गाते हैं।
11. ज़ागरो (संस्कृत जागरण) भी एक धार्मिक समारोह है, जिसे अधिकांश किन्नौर में 20 भादों को मनाया जाता है। इस दिन सभी में मंदिरों की पूजा करते हैं तथा रात भर गाते-बजाते हैं।

अवतारवाद और वंश परंपरा

किन्नौर तथा लाहुल-स्पिति में वंश परंपरा दो प्रकार से चलती है। एक तो पिता, पुत्र, पौत्रादि से सामान्य वंश परंपरा है। दूसरी अवतारवाद है जो एक लामा के बाद दूसरे लामा में जाती है। इस परंपरा में बहुत बार लामा का नाम एक चलता है जैसे दलाईलामा, पंचेनलामा। यह परंपरा हमारी ऋषि परंपरा से मेल खाती है। जैसे वेदव्यास नाम से कालांतर में कई व्यक्ति हुए। अलग-अलग मनवंतर में मनु हुए। प्रत्येक मनवंतर के इंद्र, सप्तर्षि भी अलग-अलग व्यक्ति हुआ करते थे। पुराणों के संग्रह तथा विस्तार की आवश्यकता हर युग में प्रतीत हुई। अतः प्रत्येक युग में पुराणों की रचना के कारण अट्ठाईस व्यास हुए। ऋषि परंपरा के अतिरिक्त राजाओं में भी यह परंपरा थी। देवराज इंद्र, राजा जनक इसके उदाहरण हैं।

ऋषि परंपरा और लामा परंपरा में एक मूलभूत अंतर है। ऋषि परंपरा में व्यास वेद-पुराणों के विस्तार के बाद बनता था किंतु लामा परंपरा में लामा पहले चुना जाता है। उस चुने हुए शिशु लामा में पहले ही दैवी शक्ति की सत्ता स्वीकारने के बाद उसे शिक्षा-दीक्षा देकर गुरु लामा बनाया जाता है। सर्वोच्च शक्ति संपन्न महापावन दलाईलामा तथा पंचेनलामा से लेकर प्रत्येक मठ के लामा का चुनाव इसी विधि से किया जाता है। मठों के गुरु लामाओं में बहुत बार गुरु लामा के होते हुए भी नए शिशु लामा का चुनाव हो जाता है। अतः गुरु चेला बन जाता है और चेला गुरु।

लामा का चुनाव एक आश्चर्यजनक पद्धति से होता है। लामा की मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म निश्चित माना जाता है। अतः उस शिशु की खोज आरंभ होती है जो अब कहीं न कहीं अवतरित हुआ है। इसे खोजने के बाद उसके माता-पिता से शिशु को माँग लिया जाता है। इसके बाद शिशु की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध किया जाता है। शिक्षा पूर्ण होने पर इसे संबंधित मठ में मुख्य लामा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है।

कुछ वर्ष पूर्व मनाली से ऐसे शिशु खोजकर कई मठों में स्थापित किए गए। रिवालसर में सन् 1982 के लगभग ऐसे ही एक शिशु को रखा गया।

यूँ तो ऐसे अवतारवाद और सांसारिक वंश परंपरा के उदाहरण इन क्षेत्रों में कई मिल जाते हैं। ऐसा एक उदाहरण 'चीला वंश वृक्ष' का है। किन्नौर के पूह में चीला गोम्पा का निर्माण डुगपा नमज्ञाल (1736-1813) द्वारा हुआ।

डुगपा नमज्ञाल का अवतार छुलट्रिम दोरज़े (1820-1890) हुआ। छुलट्रिम दोरज़े के अवतार देहरादून के रिम्पोचे हैं। इस अवतारवाद के अतिरिक्त सांसारिक

वंश जो चला उसका विवरण निम्न प्रकार से है–

चीला वंश वृक्ष

खेदुप दोरजे बागंपो (पति) व गेवा टशी छोडोन (पत्नी)

डुगपा नमझाल
(1736-1813)

टुलकू छुलट्रिम दोरजे
(1820-1890)

छामगौन डुगपा नमझाल
(अवतार)

टुलकू नेगी तनजिन झलछन रिमपोचे
(अवतार)

वर्तमान अवतार
(देहरादून वाले)

जम्पल झाछो
(1851)

कारग्युंडा
(1876-1951)

सोनम थरछीन (1898-1961) था) → ज़ोतपा

छुलिम → रतनचीला आदि

डुबझुत (1926-1991) → गोपीसिंह आदि

लोबजाङ (1910-1979) → हीरासिंह आदि

छेशु → छेरिंग रपतन

पासङ (गुम हो गया)

चुना जाना सर्वोच्च लामा का

जब 1933 में दलाई लामा थुप्तेन ग्यातसो का निधन हुआ, तब नए दलाई लामा की खोज आरंभ हुई।

दलाईलामा का पुनर्जन्म कहाँ हुआ होगा, यह जानने के लिए भविष्यवाणियों, संकेतों का सहारा लिया जाता है। तिब्बत की झीलों में एक ल्होमोई लात्सो के निर्मल स्वच्छ पानी में कुछ संकेत या शब्द दिखाई देते हैं। इन संकेतों के आधार पर नए शिशु लामा की खोज होती है। उस समय लामाओं को तीन अक्षर झील में नजर आए थे जिनके आधार पर वे 'दोखाम' गाँव में आ पहुँचे। यह भी कहा जाता है कि मृत्यु के

बाद दलाईलामा को ल्हासा में एक सिंहासन पर दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके बिठाया गया। कुछ दिनों के बाद उसका मुँह स्वतः ही पूर्व दिशा की ओर हो गया। इसी पूर्व दिशा में, और झील में दिखे अक्षरों के आधार पर वरिष्ठ लामा अवतरित शिशु के घर पहुँचे। वहाँ अपना परिचय दिए बिना लामाओं ने शिशु को पिछले दलाईलामा की माला दिखाई जिसकी ओर वह आकर्षित हुआ। लामाओं के चलने पर वह शिशु भी उनके साथ जाने की जिद्द करने लगा। अंततः उस शिशु को आगामी दलाईलामा माना गया।

छोटे मठों के लामाओं के अवतारों को चुने जाने की भी लगभग यही प्रक्रिया है। प्रायः लामा आसपास के गाँव में ही मिल जाते हैं। किन्नौर, लाहुल में ऐसे शिशु मिले हैं जो आज प्रतिष्ठित मठों के मुख्य लामा हैं।

पंचेनलामा का विवाद

इन परंपराओं का राजनैतिक लाभ उठाने की बात हाल ही में सामने आई जब चीन ने अपना पंचेनलामा घोषित कर दिया। दलाईलामा द्वारा मई 1995 में गेधून चौइकीन्यिमा की पंचेनलामा के रूप में घोषणा कर दी। छह वर्षीय गेधून चौइकीन्यिमा को देखा नहीं गया अतः यह आशंका थी कि उन्हें चीन सरकार ने नजरबंद कर दिया है।

इस तरह समानांतर पंचेनलामा की घोषणा से दंगे भड़क उठे। ल्हासा सहित तिब्बत के तीन शहरों में कर्फ्यू लग गया। तिब्बत की निर्वासित सरकार मकलोड़गंज, धर्मशाला में भी प्रदर्शन हुए।

पंचेनलामा की मृत्यु छह वर्ष पूर्व हुई थी। अतः दलाई लामा द्वारा यह दावा किया गया कि छह वर्षीय गेधून चौइकीन्यिमा की नियुक्ति धार्मिक परंपरा के अनुसार हुई है।

3 दिसंबर, 1995 तक तमाम रैलियों, भूख-हड़ताल, अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से गुहार के बावजूद चीन मंत्रिमंडल द्वारा छह वर्षीय ग्येन चेन नोर्बू को ग्याहरवें पंचेन लामा के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई। जनसत्ता के अनुसार यह मान्यता 4 दिसंबर को दी गई और सरकारी एजेंसी ने कहा कि पंचेनलामा की खोज पूर्णतया बौद्ध परंपरा के अनुरूप हुई है। 8 दिसंबर को तिब्बत में पुलिस तथा अर्धसैनिक बलों की घेराबंदी के बीच पंचेनलामा के परंपरागत स्थान शिंगात्से के टशी लहुनपो मंदिर में ग्येन चेन नोर्बू का अभिषेक कर दिया गया। चीनी समय के अनुसार साढ़े दस बजे, भारतीय समय साढ़े आठ बजे। उधर निर्वासित सरकार द्वारा धर्मशाला में पाँच सौ तिब्बतियों ने एक दिन की भूख हड़ताल की और दलाईलामा द्वारा चयनित गेधून चौइकी की सुरक्षा व दीर्घायु के लिए प्रार्थना की। मकलोडगंज में बाजार व प्रतिष्ठान बंद रहे।

जनसत्ता के अनुसार शिंगात्से का मंदिर पाँच सौ से अधिक सैनिकों के घेरे में था। चीन की सरकारी ऐजेंसी के अनुसार मंदिर में चालीस हजार तिब्बती फूल लेकर पहुँचे जबकि वास्तव में समारोह में लगभग पाँच सौ लोग ही जुट सके। आम जनता समारोह से दूर रही। समारोह में वही लोग गए जिनके पास परिचय-पत्र थे।

21 दिसंबर को लंबी पूजा के बाद महापावन दलाईलामा ने नियमों के अनुसार चुने गए पंचेनलामा गेधून चौइकी के बारे में कहा कि वे विश्व में सबसे कम उम्र के राजनैतिक बंदी हैं। उन्होंने इस छह वर्षीय बालक तथा उसके माता-पिता की रिहाई के लिए विश्व समुदाय से अपील की।

इधर दलाईलामा ने (कुछ समाचारों के अनुसार) यह भी संकेत दिए हैं कि वे अंतिम दलाईलामा होंगे। उनके साथ छह सौ वर्षों से चली आ रही यह अवतार परंपरा समाप्त हो जाएगी। यदि ऐसा होता है तो वर्तमान पंचेनलामा का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

पर्वतों ने द्वार खोले

भारत तिब्बत व्यापार

पर्वत कंदराओं में व्यापार के द्वार खुले। सोलह हजार फुट से ऊँचे दर्रों से होकर व्यापारी नदियों के किनारे-किनारे सोलह सौ फुट की निचाई तक पहुँचे। आज से तीन सौ वर्ष पहले इस तरह की यात्राएँ एक अचंभा थीं। व्यापार की सामग्री के साथ ऐसे दुर्गम मार्गों से आना और कुछ विक्रय करना एक आश्चर्यजनक घटना है। कैसे पहुँचते होंगे व्यापारी इतने बड़े पर्वतों को लाँघकर, कैसा होता होगा यह व्यापार जहाँ वस्तु के बदले वस्तु खरीदी बेची जाती थी।

कुल्लू दशहरा के व्यापारिक पक्ष को नकारा नहीं जा सकता। इस मेले में व्यापारी पर्वतों को लाँघ लंबा सफर तय कर रूस, चीन, तिब्बत, समरकंद, यारकंद, लद्दाख, लाहुल से आते थे। वे घोड़े, पश्म का व्यापार करते थे। घुड़दौड़ होती थी जिसमें प्रथम आए घोड़े ऊँचे दामों में बिकते। ऐसा माना जाता है कि दशहरे को व्यापारिक रंग राजा मानसिंह (1635-1637) दे दिया।

इसी तरह लवी में भी तिब्बत, चीन से व्यापारी आते थे। घोड़े, ऊन, पश्म का व्यापार भी यहाँ प्रमुख था। तिब्बत-बुशहर संधि के बाद लवी मेले में व्यापार के द्वार खुले और व्यापारी निर्भय हो लवी में आने लगे।

ए०एच० फ्रैंके को नमग्या तथा चपरंग में ल्हासा और बुशहर के बीच हुई संधि की प्रतियाँ मिली। यह संधि बुशहर के राजा केहरीसिंह (1639-1669) तथा ल्हासा के सेनानायक ग्यालदन छङ् के बीच हुई। ग्यालदन छङ् तिब्बत तथा मंगोल सेना का नायक था। बुशहर के राजा ने तिब्बत के राजा का लद्दाख के विरुद्ध साथ दिया। युद्ध में तिब्बत की विजय हुई। राजा केहरीसिंह तथा ग्यालदन छङ् के बीच पुलिंग गेंग या नमग्या में यह समझौता हुआ। दोनों ने इस संधि पर महामुनि बुद्ध को साक्षी मान हस्ताक्षर किए। संधि की काव्यमय भाषा निम्न प्रकार से है–

"जब तक त्रिकालज्ञ देवताओं के वास स्थान और जंबू द्वीप में स्थित हिम नहीं पिघलता, जब तक मानसरोवर झील पानी से रिक्त नहीं हो जाती, जब तक श्याम वर्ण कौवा सफेद नहीं हो जाता और जब तक कल्प आ अंत नहीं हो जाता, तब तक ऊपर और नीचे के दोनों राजा अपने मैत्री संबंध कायम रखेंगे और अपने राज्य की सीमाओं में सत्कार्य कर के, सब प्राणियों का कल्याण करेंगे।

ऊपर और नीचे के दोनों राजाओं के संदेशवाहक, कर्मचारी और राजदूत

स्वच्छंद इलाके में आ-जा सकेंगे। यह आवश्यक होगा कि बुशहर राज्य के संदेशवाहक तीन वर्ष में आएँ और नारिस के तीनों खंड की राजधानियों-सपरंग, रोथंग और जंगसर में वास करें। ऊपर और नीचे के राजाओं के संदेशवाहक को ऊपर और नीचे (अर्थात् तिब्बत और बुशहर में) आते-जाते बाल भर भी तंग न किया जाए और किसी प्रकार का कर न लिया जाए और न ही कोई कष्ट पहुँचाया जाए। ऊपर और नीचे के राजा अपने सत्कार्यों से ऐसी व्यवस्था बनाएँ जिससे आने वाले लोग निर्भय होकर, विष और घातक हत्यारों के भय से सर्वथा मुक्त होकर विचरण करें।

सन् 1681 में हुई यह संधि सन् 1947 तक कायम रही और आवागमन बना रहा जिससे व्यापारियों को आने-जाने की छूट मिली।

अभी कुछ वर्ष पहले भारत का चीन से व्यापार खुला है। सन् 1994 में जब पूह जाना हुआ था। तो वहाँ कुछ कस्टम अधिकारियों से बात हुई जो सामान की चेकिंग करने आए थे। अभी समझौते के तहत केवल परंपरागत वस्तुओं का व्यापार खुला है जैसे ऊन, खालें, मक्खन आदि। पूह से लगभग ग्यारह किलोमीटर पीछे एक कच्ची सड़क जाती है नमग्या को। नमग्या एक बड़ा गाँव है। यही गाँव व्यापार का केंद्र है जहाँ चीन से सामान आकर चैक किया जाता है। भारत की ओर से जाने वाला सामान भी यहीं देखा जाता है। नमग्या से शिपकिला दर्रा बारह किलोमीटर है। जिसके दूसरी ओर पंद्रह किलोमीटर पर चीन की ओर का पड़ाव आता है। इसी रास्ते पुराने समय में लोग ल्हासा पहुँचते रहे हैं। भारत की ओर से व्यापारी जूते ले जाते हैं। किंतु ये वहाँ बिकते नहीं। वहाँ लोग बहुत गरीब हैं—एक व्यापारी ने बताया था, कई बार सारा सामान वापस लाना पड़ता है।

इस व्यापार के खुलने से ऊन, पश्म, खालें तथा मक्खन लवी तक आने लगे हैं। चोरी छिपे चीन के जूते तथा 'वॉरियर के गोला-शू' भी लाए जाते हैं जो लवी में बिकते हैं। यदि राजनैतिक वातावरण सुधरे और तिब्बत बुशहर संधि की भाँति पुनः व्यापारिक संधि हो तो यह व्यापार पहले की तरह बढ़ सकता है।

लवी मेला

मेले मिलन के हैं। हिमाचल में ये मेले देवता, मनुष्य और पशु मिलन के उत्सव हैं। पर्व-उत्सव के साथ कुछ मेले व्यापारिक महत्त्व लिए हुए हैं। पुराने समय में पूरे साल के लिए आवश्यक वस्तुएँ मेले से खरीदी जाती थीं। आज भी बहुत-से मेलों में यह परंपरा बनी हुई है। बेशक सभी आवश्यक वस्तुएँ पूरा वर्ष उपलब्ध रहती हैं। कुछ मेले व्यापारिक दृष्टि से दूर देशों के व्यापारियों का समागम भी करवाते थे। रामपुर का लवी मेला भी एक व्यापारिक मेला रहा है जिसमें चीन, तिब्बत आदि के साथ घोड़े, पश्म, शिलाजीत, सूखे मेवे आदि का क्रय-विक्रय होता था। आज भी इस मेले का व्यापारिक महत्त्व कायम है।

ज़िला शिमला का रामपुर सतलुज किनारे बसा है और सतलुज के पार कुल्लू ज़िला है। समुद्रतल से 924 मीटर की ऊँचाई पर बसे रामपुर में राजा बुशहर के महल हैं। यहीं बस स्टैंड के पास मंदिर के साथ बौद्ध मंदिर है।

रामपुर उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (1824-1856) में बुशहर की राजधानी बना। कहा जाता है कि रामपुर में बुशहर के राजा केहरीसिंह के शासनकाल (1696-1753) में लवी मेला आरम्भ हुआ। राजा केहरीसिंह द्वारा तिब्बत के शासकों के साथ सीमावर्ती गांव नमग्या में एक व्यापारिक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार तिब्बत के व्यापारियों को ऊन तथा पश्म बुशहर में बेचने की अनुमति दी गई। इसी प्रकार बुशहर के व्यापारी तिब्बत जाकर ऊन, कपड़ा, अनाज तथा नमक बेच सकते थे।

लवी मेले का आरंभ कभी भी हुआ हो, इस समझौते के बाद इसे और व्यापारिक रंग मिला। अभी भी मेले का यह व्यापारिक महत्त्व कायम है। मेले में पश्म, ऊन, ऊनी वस्त्र, पट्टू, दोहड़ू, शालें, दुपट्टे तथा शिलाजीत, बादाम, चिलगोज़े, सूखे मेवे, पहाड़ी चाय, काला ज़ीरा, सेब का क्रय-विक्रय होता है। भेड़-बकरियों तथा घोड़ों का व्यापार भी होता है। किन्नौर क्षेत्र में उगने वाले सभी उत्पादन यहाँ बिकने आते हैं।

पुराने समय में तिब्बत के व्यापारी लंबी यात्रा तय करते हुए गूंठ नस्ल के घोड़े-खच्चर तथा भेड़-बकरियाँ पर्याप्त मात्रा में बिक्री के लिए लाते थे। क्या घोड़े, क्या भेड़-बकरियाँ सभी पशु भार ढोने के लिए प्रयोग में लाए जाते। इन पशुओं पर लोई, पट्टी, पट्टू, पश्म, ऊन, गुदमे नमदे, लादकर लाए जाते और बादाम, चिलगोज़ा, खुर्मानी, जीरा, शिलाजीत आदि ले जाया जाता। नमक और चीनी का भी उस समय अधिक महत्त्व था, अतः इनका लेन-देन भी महत्त्वपूर्ण व्यापार था। उस समय यह मेला सीमावर्ती क्षेत्रों के लिए अंतर्राष्ट्रीय मंडी था। लवी के विधिवत् 'खुलने' की घोषणा राजा बुशहर द्वारा की जाती थी। राजा तथा रियासत के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के परामर्श पर ही क्रय-विक्रय आरंभ होता था।

लवी का अर्थ लिया जाता है 'लोई'। लोई ऊनी कंबल को कहा जाता है। या यूँ कहा जाए कि लोई का अर्थ अब लवी के रूप में प्रयोग में आने लगा है तो उचित होगा। इसका दूसरा अर्थ ऊन कतरने से भी लिया जाता है। इस मौसम में लोग भेड़-बकरियों की ऊन काटकर मेले में लाते हैं। प्रदेश के ऊपरी इलाके में एक ऊनी ओवरकोटनुमा वस्त्र पहना जाता है जिसे 'लोइया' कहा जाता है।

कुछ वर्ष पहले तक यह मेला राम बाजार के साथ-साथ लगता था। सड़क के साथ ऊपर की ओर महल है तो नीचे बाजार। यह एक बड़ा बाजार है और आसपास के इलाकों तथा किन्नौर तक के लिए एक मंडी है। यह बाजार तो अब भी सजता है किंतु मेले के आयोजन के लिए बाजार से आगे मेला ग्राउंड बन गया है। इस ग्राउंड में विभिन्न विभागों की विकास प्रदर्शनियाँ लगाई जाती हैं तथा अलग-अलग बाजार

बनाए जाते हैं। किन्नौर से आने वाले व्यापारियों के लिए मेला ग्राउंड में अब अलग स्थान सुरक्षित रखा गया है।

किन्नौर से आने वाले व्यापारियों के अब भी रंग निराले हैं। ये सपरिवार वहाँ ठहरते हैं। वहीं भोजन बनाते हैं, वहीं सोते हैं। अपनी मस्ती में मदमस्त ये हँसते-गाते तथा नाचते हुए पूरे मेले में वहीं जमे रहते हैं। पश्म, शाल, पट्टी, बादाम, चिलगोज़ा, काला जीरा आदि का विक्रय इन लोगों द्वारा किया जाता है।

जैसा कि अब हर मेले में होने लगा है, यहाँ भी रात को सांस्कृतिक कार्यक्रम करवाए जाते हैं जिनमें देश तथा प्रदेश के विभिन्न भागों से आमंत्रित सांस्कृतिक दल अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। ये कार्यक्रम मुख्य बाजार में उपमंडलाधिकारी (नागरिक) कार्यालय के समीप बने मंच पर होते हैं। मेला ग्राउंड में अलग से पारंपरिक नृत्य चलता रहता है।

यह मेला 11 नवंबर से 14 नवंबर तक मनाया जाता है किंतु इसके कुछ दिन बाद तक भी व्यापारी डटे रहते हैं। अब इस मेले में तिब्बत से व्यापारी तो नहीं आ पाते, ज़िला किन्नौर, ज़िला लाहौल स्पिति, कुल्लू तथा शिमला के भीतरी भागों से ग्रामीण उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। चमुर्थी नस्ल के घोड़ों की प्रदर्शनी भी कुछ वर्षों से आरंभ की गई है।

पिछले वर्ष चीन के साथ व्यापार खुलने के कारण अब पुनः चीन से माल आने लगा है। सीमांत गाँव नमग्या (स्पिति) में इस व्यापार का केंद्र है। अभी परंपरागत सामग्री जैसे ऊन, खालें, मक्खन आदि का आयात हो रहा है। इस कारण रामपुर लवी में व्यापारिक आयाम खुले हैं।

सीमांत प्रदेशों की सीमाओं तथा प्रवेशद्वारों पर लगने वाले ये मेले व्यापारिक तथा राजनैतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहे हैं और आज भी सदियों पुरानी उन परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

देव कथा

किन्नौर में अनेक देव कथाएँ प्रचलित हैं। यह कथाएँ पौराणिक कथाएँ न होकर स्थानीय परिवेशजन्य कथाएँ हैं जिनका अपना अलग अस्तित्व है। यद्यपि ये पौराणिक देवों-महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, देवी, नाग, राक्षस से जुड़ी हैं तथापि इनका अलग बखान है। यहाँ दसरावन, कंस, कृष्ण अलग हैं। महेश्वर भी मैशुर हैं। इसीलिए इनकी अलग पहचान है। यहाँ कुछ कथाएँ संक्षिप्त में दी जा रही हैं।

सृष्टि निर्माण कथा

जब सृष्टि की रचना नहीं हुई थी तो ब्रह्मांड में कुछ नहीं था। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था। सर्वप्रथम पूर्व से एक ज्योर्तिलिंग प्रकट हुआ जिससे सब ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया। यह ज्योर्तिलिंग शिव में परिवर्तित हो गया। शिव के प्रताप से ब्रह्मा, विष्णु, सप्तऋषि और देवताओं का जन्म हुआ। ज्योर्तिलिंग शिव के तेज से सूर्य, चंद्रमा, सितारे और ग्रह उत्पन्न हुए। इनसे ब्रह्मांड में प्रकाश तो भर गया किंतु सृष्टि के बिना सब सूना था। न धरती थी, न आकाश था, न पवन।

शिव, ब्रह्मा और विष्णु ने मिलकर सृष्टि के निर्माण की सोची। सबसे पहले धरती का निर्माण आवश्यक था। अतः शिव जी ने ब्रह्मा को धरती लाने के लिए आदेश दिए। ब्रह्माजी ने धरती को बहुत खोजा किंतु धरती नही मिलीं। ब्रह्मा जी के बाद विष्णु को धरती की खोज में भेजा गया। विष्णु ने धरती को खोज लिया। विष्णु ने धरती से अनुरोध किया कि शिव बुला रहे हैं, आप चलिए। धरती ने कहा मैं उस पापी शिव के पास नहीं जाऊँगी। विष्णु ने धरती को गोमूत्र देने का वायदा किया। इस पर धरती विष्णु के साथ चल पड़ी। अतः धरती के आने से सब जगह मिट्टी ही मिट्टी हो गई। अब पवन की खोज में ब्रह्मा जी को भेजा गया। उन्हें पवन कहीं नहीं मिली। उनके खाली हाथ लौटने पर विष्णु को भेजा गया। विष्णु ने पवन को खोज लिया और शिव जी के पास चलने को कहा। पवन ने शिवजी के पास जाने को मना कर दिया। विष्णु ने उन्हें धरती (मिट्टी) देने का वचन दिया तो पवन साथ चलने को तैयार हो गए। अब शिव जी ने ब्रह्मा को पशु पक्षी लाने भेजा। ब्रह्मा इस बार भी खाली हाथ लौटे। अब विष्णु गौ माता की खोज में भेजे गए। विष्णु को गौ माता मिल गई किंतु गौ ने उस पापी शिव के पास जाने से इंकार किया। विष्णु ने गौ को चारा देने का वचन दिया। इस पर गौ शिव जी के पास आ गई। शिव जी ने गौ का धरती पर रहने का आग्रह किया। इस तरह से धरती और उस पर पशुपक्षियों का रहना आरंभ हुआ।

विष्णु को लगा कि सृष्टि में धरती है, पवन भी है, पशु पक्षी भी है किंतु मनुष्य के बिना सृष्टि अधूरी है। अतः तीनों देवताओं ने मनुष्य के निर्माण की योजना बनाई। सबसे पहले सोने का मनुष्य बनाया। वह सुन नहीं सकता था। ताँबे का मनुष्य बनाया, वह भी सुन नहीं सकता था। लोहे का मनुष्य बनाया, वह भी सुन नहीं सकता था। तब उसी समय विष्णु के कान में खुजली हुई। तभी उन्हें ध्यान में आया कि वे कान बनाना तो भूल ही गए। अंत में राख और पशुओं के गोबर, मूत्र का मनुष्य बनाया गया। उसे प्राण फूँककर एक चोटी पर छोड़ दिया। शिव जी ने उसे आवाज लगाई तो वह उत्तर में बोलने लगा। शिव जी ने उसे मुट्ठी भर जौ, कपड़े और लकड़ी व आग दी और कहा मैं तुम्हें मृत्युलोक जाने का वरदान देता हूँ।

इस तरह सृष्टि में धरती, पवन, पशु-पक्षी, मनुष्य सब उत्पन्न हो गए।

ब्रह्मांड में पहले सात सूर्य थे। विष्णु ने शिव जी से कहा आप कृपा कर एक ही सूर्य ब्रह्मांड में रखिए। सात सूर्यों के तेज से मनुष्य काले हो रहे हैं। अतः शिवजी ने छह सूर्य अपने तेज में समा लिए और एक ही रखा।

जब सृष्टि का निर्माण हो गया तो ब्रह्मा-विष्णु ने सोचा उन्हें भी सृष्टि से कुछ न कुछ मिलना चाहिए। अतः दोनों ने शिव जी से प्रश्न किया कि तीनों लोकों का स्वामी कौन है। शिव जी ने कहा तुम में से जो भी कल प्रातः हिमालय से पोपशी नाम का फूल लाकर मुझे पहनाएगा, वही तीनों लोकों का स्वामी बनेगा। अगली प्रातः जैसे ही शिव स्नान कर रहे थे, विष्णु ने उन्हें वह फूल अर्पित कर दिया। ब्रह्मा जी बाद में पहुँच पाए। अतः तीनों लोकों के स्वामी विष्णु बन गए। ब्रह्मा जी को उदास देख शिव जी ने उन्हें शास्त्रों का स्वामी बनाया।

शिव विवाह

सृष्टि तैयार हो गई। त्रिलोक के स्वामी विष्णु बने। ब्रह्मा जी के हाथ शास्त्र दिया गया। कुछ दिन बाद विष्णु को अनुभव हुआ कि सब कुछ करने के बाद भी विश्व के स्वामी शिव अभी अविवाहित हैं। अतः एक दिन विष्णु भेष बदलकर कैलास गए और शिव जी के सामने खड़े होकर कहा : मेरे पैरों के नीचे की मिट्टी गीली है, आपके पैरों के नीचे की मिट्टी सूखी। आप अशुद्ध हैं। शिव हैरान परेशान हो गए और विष्णु को इस घटना के बारे में खत लिखा। सुबह ही एक कौए के पास उन्होंने वह पत्र भेज दिया।

जब पत्र विष्णु को मिला तो वे मन ही मन मुस्काए और कैलास आ पहुँचे। शिव जी ने विष्णु से पूछा कि उस व्यक्ति के यह बात कहने का क्या अर्थ हो सकता है। विष्णु ने अर्थ समझाया कि आपका विवाह नहीं हुआ, इसलिए आपका जीवन रूखा-सूखा है। आप विवाह कर लीजिए। शिव समझाने-बुझाने पर विवाह करने पर राजी हो गए।

हिमालय में बर्फ का राजा युकुन्तरस अपनी रानी और बेटी गिरिजा के साथ रहता था। शिव और विष्णु ने युकुन्तरस से शिव विवाह का प्रस्ताव रखा तो युकुन्तरस की पत्नी क्रोधित हो गई कि वह ऐसे काले और बदसूरत आदमी के साथ अपनी बेटी का विवाह नहीं करेगी। युकुन्तरस भी नाराज हुआ। किंतु वे महल के बाहर धूनी रमाकर बैठ गए। युकुन्तरस ने उन्हें भगाने के लिए ढेरों बर्फ गिराई किंतु उन पर बर्फ नहीं गिरी। यह देख गिरिजा, जो सात द्वारों के भीतर महल में रहती थी, वह शिव पर मोहित हो गई। गिरिजा ने पिता को प्रस्ताव मानने के लिए कहा।

युकुन्तरस ने शर्त रखी कि हर बाराती को एक बकरे का माँस और पचास पथा भात खाना होगा। कल सुबह तक सात रंग के फूल लाने होंगे। लोहे को रगड़कर हथियार बनाना होगा। विष्णु ने सभी शर्तें मान लीं और पूरी कर दिखाईं।

युकुन्तरस ने शिव को महल के भीतर बुला लिया। गिरिजा की माँ नंगे साधु को कोस रही थी। अतः शिव जी से अपने वास्तविक रूप में आने का अनुरोध किया गया। शिव वास्ताविक रूप में आए तो गिरिजा की माँ उनके रूप को देख मोहित हुई। शिव का विवाह गिरिजा से हो गया। विवाह के बाद महल से निकलते ही शिव जी ने युकुन्तरस के महल में आग लगा दी जिससे युकुन्तरस परिवार सहित भस्म हो गया। गिरिजा को इस बात का पता नहीं चला।

हिरमा बाणासुर कथा

हिरमा और बाणासुर का मिलन सूंगरा के पास हुआ। बाणासुर ऊपर से आ रहा था और हिरमा नीचे से आ रही थी। बाणासुर के पूछने पर हिरमा ने बताया वह कैलास दर्शन के लिए जा रही है। हिरमा ने जब पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो तो बाणासुर ने कहा, मैं रिवाल्सर तीर्थ जा रहा हूँ। इस मिलन से दोनो में प्रेम हुआ और वे 'गवारबारङ्' नाम की एक गुफा में रहने लगे। यह गुफा सूंगरा के पास थी। कहा जाता है, कुछ समय बाद बाणासुर अपने रास्ते चल दिया। हिरमा वहीं रही जो गर्भवती थी। हिरमा ने अट्ठारह संतानों को जन्म दिया।

कहा जाता है कि चंडिका ने चतुराई से हिरमा की पहली संतान बनने का श्रेय प्राप्त किया। चंडिका ने हिमालय की सुंदरता देखी तो मोहित हो गई। देवी नीचे से आ रही थी कि देवी ने गवारबारङ् गुफा में हिरमा को देखा।

देवी को यह भी पता था कि हिरमा अपने प्रथम पुत्र सूंगरा महेश्वर को जन्म देने वाली है। हिरमा और बाणासुर की संतानें ही आगे किन्नौर के देवता बनेंगे। अतः चंडिका माया से मक्खी बनकर हिरमा के नाक में घुस गई। हिरमा के छींक मारते ही चंडिका शिशु रूप में सबसे पहले हिरमा को उत्पन्न हुई। चंडिका के बाद सूंगरा मैशूर, भावा और चगाँव मैशूर पैदा हुए। इसी गुफा में हिरमा से अट्ठारह भाई-बहन पैदा हुए जो वहीं पले और बड़े हुए।

जब सभी भाई-बहन बड़े हुए तो क्षेत्र के बँटवारे का प्रश्न आया। बँटवारा 'रारङ्

पानुङ्' में किया गया। सभी भाई-बहनों ने कहा कि बड़ा भाई मैशूर ही बँटवारा कर दे। मैशूर ने बँटवारे का काम चंडिका को सौंप दिया। बँटवारे के समय देवी चंडिका ने रोघी से पांगी तक का क्षेत्र अपनी वेणी के नीचे छिपाए रखा। देवी ने पहले सोना, चाँदी और ताँबे की धातु से बना पाशा खेला जो सही संकेत नहीं दे सका। जब हड्डी से निर्मित पाशा खेला तो संकेत ठीक आने लगे। देवी ने सूंगरा मैशूर को जन्म स्थान सूंगरा का क्षेत्र सौंपा। मैशूर ने यह क्षेत्र कम होने की आपत्ति की तो देवी ने कहा मैशूर हर वर्ष दशहरा पर सराहन जाया करेंगे और इसका खर्चा सराहन की देवी भीमाकाली देंगी। अतः महेश्वर मान गए।

भाबा मैशूर को दूसरे स्थान पर भावा का क्षेत्र दिया तो उन्होंने भी क्षेत्र कम होने की आपत्ति की। अतः देवी ने उन्हें स्पिति का क्षेत्र भी दे दिया। तीसरे भाई को चगाँव का क्षेत्र दिया जो सोने चाँदी की खानों से भरा था। इन्हें अपनी एक गूँगी बहन की जिम्मेवारी भी दी गई। मैशूर ने गूँगी बहन का दायित्व स्वीकारा और जब बाहर जाना हो तो गूँगी बहन के मुख (मोहरे) को साथ ले जाते हैं। बहनों में अंबिका को द्वारिकापुरी दी गई। उसने भी आपत्ति की यह क्षेत्र बहुत दूर है और कम है। किंतु उसे श्रीकृष्ण का वास द्वारिका ही दिया गया। दूसरी बहन हाटकोटी को होटकोटी का क्षेत्र दिया गया। उसने भी कहा कि यह क्षेत्र कम है तो चंडिका ने बताया हाटकोटी में अट्ठारह ठाकुर वास करते हैं, सभी ओर से वही रास्ते मिलते हैं। ज्वाला को ज्वालामुखी का क्षेत्र दिया गया। इसे भी कम बताया गया तो देवी ने कहा यह क्षेत्र अन्न धन से संपन्न है। निरमंड देवी को निरमंड का क्षेत्र दिया गया। उसने आपत्ति की तो बताया गया कि उस क्षेत्र में अट्ठारह जातियों के लोग रहते हैं और सवा सेर गेहूँ का दाना उगता है। भीमाकाली को सराहन का क्षेत्र सौंपा गया। उषा देवी का निचार का क्षेत्र दिया। निचार में पानी अधिक बरसता है। देवी पिरासन को नाथपा का क्षेत्र दिया गया।

अंत में देवी ने अपने लिए रोपा क्षेत्र चुनने की बात बताई। समस्त क्षेत्र का बँटवारा कर देवी चंडिका तुरंत रोपा के लिए कूच कर गई। देवी ने अपने साथ दो रघुवंशी पंडित जमत्यान तथा लियत्यान लिए। ये देवी के लिए भोजन बनाते थे।

दसरावण से युद्ध

रोपा में कुछ दिन रहने के बाद जब देवी चीनी में पहुँची तो वहाँ दसरावण का राज्य था। चंडिका ने दसरावण को युद्ध के लिए ललकारा तो वह देवी पर मोहित हो गया और देवी से विवाह का प्रस्ताट रखा। देवी क्रोधित होकर दसरावण को युद्ध के लिए ललकारने लगी। दसरावण ने देवी को शाप दिया कि देवी को जीवन भर कोई योग्य वर नहीं मिलेगा।

चंडिका ने इंद्र से एक ढोल, एक बुगजाल और एक खंडा प्राप्त किया। देवी खंडा लेकर दसरावण पर टूट पड़ी। देवी रात गुफाओं में बिताती और दिन में युद्ध

करती किंतु दसरावण को हरा नहीं पाई। देवी ने कैलास से बाणों की वर्षा कर दसरावण के चार किले और महल गिरा दिए। अब चीनी में आमने-सामने युद्ध होने लगा। देवी जब जीत नहीं पाई तो नीति से काम लिया और दसरावण की पुत्री को अपनी ओर कर लिया। देवी ने दसरावण की पुत्री को बहकाया कि दसरावण तो जादूगर है। उसे अपनी गोद में रखकर पालने का वादा करते हुए पिता को मारने की युक्ति पूछी। पुत्री ने कहा कि वह पिता को घराट में भेजेगी और घराट के दो पाटो में उसके बाल फँसा दूँगी, तब उसे मार देना।

शाम को पुत्री ने पिता दसरावण को घराट भेज दिया और कहा कि मैं जल्दी ही आटा लेने आऊँगी, आप घराट बंदकर बाहर न निकलें। यदि पीसने के लिए अनाज न बचे तो अपने सिर की जटाओं को घराट के पाटों में देना ताकि घराट चालू रहे।

रात जब अनाज पिसकर समाप्त हो गया और पुत्री नहीं पहुँची तो दसरावण ने अपनी जटाएँ घराट के पाटों में दे दी। उसी समय चंडिका वहाँ पहुँची और दसरावण का सिर धड़ से अलग कर दिया। किंतु यह देखकर देवी अचंभित हो गई कि कटा हुआ सिर तो वही फँसा रहा और दूसरा सिर लग गया। इस तरह एक सिर काटने पर पुनः सिर लग जाता। अब युद्ध बाहर होने लगा। देवी लहू के तालाब में डूबने लगी। बचने की उम्मीद न रहने पर उसने अपने भानजे ख्वांगी के देवता मारकालिङ् को बुलाया। भानजा तत्काल वहाँ पहुँचा। भानजे से देवी ने आग्रह किया कि वह तुरंत मैशूर भाइयों को लेकर यहाँ आए। भाई सूंगरा में न हुए तो कैलास में जाना। मैशूर चीनी में पहुँचे और देवी को दोहडू (ऊनी वस्त्र) तथा पीचुक (आभूषण) दिए जो निरवस्त्र देवी ने जल्दी में उलटे ही पहन लिए। महेश्वर ने अपनी योगमाया से देखा कि देवी के सिर के ऊपर एक भँवरा मँडरा रहा है जिसमें दसरावण राक्षस के प्राण हैं। चंडिका ने यह जानकर खंडे से भँवरे के टुकड़े कर दिए और दसरावण निष्प्राण हो पृथ्वी पर आ गिरा। दसरावण को हौनू (राक्षस) भी कहा जाता है।

कोठी पर विजय

दसरावण के साथ युद्ध में देवी घायल हो गई थी। देवी के लिए खाने बनाने वालों जमत्यान और लियत्यान तथा दसरावण की पुत्री ने देवी की खूब सेवा की। स्वस्थ होने पर देवी ने अंगूर की मदिरा पी ली और रास्ते में पत्थर पर लेट गई। ब्रेलंगी गाँव के रनस्यान और थनस्यान नेगी ने देवी को कंबल और सिरहाना दिए। जब देवी को होश आई तो वे कोठी की ओर चल दिए। कोठी का राजकुमार महल से निकलकर बाहर आ गया और देवी को पाशा खेलने का आमंत्रण दिया। दोनों जब पाशा खेलने लगे तो देवी को लगा कि राजकुमार के मन में देवी के प्रति अच्छे विचार नहीं हैं। देवी ने माया का प्रयोग किया और राजकुमार को सारा महल और कोठी गाँव जलता हुआ नजर आया। राजकुमार कोठी छोड़ सतलुज की ओर भाग गया।

जब राजकुमार नहीं लौटा तो उसके परिवार वाले और गाँव वाले भी उसे ढूँढ़ने

चल दिए। उनमें से कोई भी नहीं लौटा। अब देवी ने कोठी को अपना निवास बनाया। देवी की महिमा और यश सब ओर फैल गया।

सृष्टि निर्माण कथा में शिव को 'मामा' कहकर संबोधित किया गया है। शिव विवाह के बाद कथा में गिरिजा के मेले में जाने की जिद्द करना, मेले में विष्णु के पास नृत्य करना, रुष्ट होकर मायके जाना आदि प्रसंग भी हैं।

कासुराज की कथा में कासु को राजा कंस की तरह अत्याचारी बताया है। राजा कंस और कृष्ण की कथा की भाँति इसमें भी कांसु की बहन के पुत्र को उस का काल बताया गया। जब बहन के पुत्र का जन्म हुआ तो उसने किसी प्रकार उस शिशु को समुद्र पार बहन के पास पहुँचा दिया। कासु को बताया गया कि कन्या हुई है। कन्या को उछाला गया ताकि वह तलवार पर गिरे। किंतु वह आकाश में बिजली बन गई। अंत में भानजे द्वारा हल जोतकर जमीन में दबे कासु का सिर छेदन करने का वर्णन है।

चंडिका और दसरावण युद्ध में दसरावण का उल्लेख है जिसके सिर काटने पर अपने आप फिर जुड़ जाते थे। किन्नौर के एक त्यौहार में रावण पर तीर छोड़े जाते हैं। कोठी की देवी के 'रथङ' में उनकी धर्मबहन, दसरावण की पुत्री की मूर्ति भी रखी रहती है। बँटवारे में निरमंड और हाटकोटी तक के क्षेत्र का उल्लेख आता है।

इसी तरह उषा देवी, पवारी शंकरस, पिरासन की देवी, नाग उत्पत्ति की कथाएँ हैं। नारेणस (नारायण) की अलग कथाएँ हैं।

किन्नौर के लोकगीतों में सृष्टि उत्पत्ति, देवी चंडिका, महेश्वर, कासुराज, सूंगरा, महेश्वर, नारेणस, नाग, पवारी शंकरस आदि का वर्णन मिलता है जो लोक कथाओं की भाँति है।

इन लोक कथाओं और लोकगीतों की कथाओं में थोड़ी-बहुत भिन्नता है जैसे गीत में हिरमा का ज्येष्ट पुत्र सूंगरा महेश्वर बताया गया है, देवी चंडिका चौथे स्थान पर है। महेश्वर को गीत-कथाओं में मैशूर या शंकरस कहा गया है।

लाहौल स्पिति

लाहौल स्पिति : भौगोलिक स्थिति

लाहौल स्पिति हिमाचल प्रदेश का एक जनजातीय ज़िला है। बहुत समय तक यह काँगड़ा ज़िला के अंतर्गत कुल्लू उपमंडल की एक तहसील रही। सन् 1966 तक पंजाब में रहने के बाद विशाल हिमाचल बनने पर नवंबर 1966 में यह हिमाचल प्रदेश का एक ज़िला बना।

लाहौल और स्पिति की अलग-अलग दुनिया है। दोनों क्षेत्र 4,590 मीटर (15,056 फुट) ऊँचे कुंजम दर्रे द्वारा विभाजित हैं। कुंजम दर्रे के इस ओर लाहौल है तो दूसरी ओर स्पिति। कुंजम दर्रा रोहतांग दर्रे के बाद खुलता है, कभी जाकर जून के अंत या जुलाई के आरंभ में। अक्तूबर-नवंबर में बंद हो जाता है। अतः दोनों क्षेत्रों का मिलन लगभग तीन मास में ही होता है। यह ज़िला क्षेत्रफल की दृष्टि से हिमाचल में सबसे बड़ा और जनसंख्या में सबसे छोटा है। ज़िला में तीन उपमंडल (केलांग, उदयपुर, स्पिति) हैं।

लाहौल

उत्तर में 32^0-6′-15″ से 33^0-15′-25″ अक्षांश उत्तर 76^0-21′-44″ से 77^0-49′-30″ देशांतर पूर्व में स्थित लाहौल उत्तर में लद्दाख, पूर्व में स्पिति, दक्षिण में कुल्लू तथा भंगाल और पश्चिम में चंबा से घिरा हुआ है। क्षेत्रफल 1955 वर्ग किलोमीटर। घाटी में प्रवेश के लिए एकमात्र मार्ग रोहतांग दर्रा (3976 मीटर) जो जून के अंत में खुलता है और नवंबर के प्रथम सप्ताह बंद हो जाता है। 1981 की जनसंख्या के अनुसार कुल आबादी 21,998 थी जो 1991 की जनगणना में 21,703 रह गई। संभवतः कुछ लोग लाहुल छोड़ गए। अब लाहुल के बहुत लोग, जो साधन संपन्न हैं, कुल्लू तथा मनाली में आ बसे हैं। लाहुल की कठिन भौगोलिक परिस्थितियों के कारण यह पलायन हो रहा है। बहुपति प्रथा के कारण भी जनसंख्या वृद्धि में रोक रही है।

पुराने समय में तिब्बती लोग लाहुल के लिए 'गर-जा' नाम का प्रयोग करते थे। गरजा ऐसा प्रदेश कहा जाता है जहाँ के लोग सफेद टोपी पहनते हों। तिब्बती भारत को भी गरजा ही पुकारते थे। लद्दाख निवासी लाहुल को गरजा के स्थान पर 'करजा' कहते हैं। इतिहास में भी 'गरजा' शब्द का प्रयोग मिलता है। इतिहास में लाहुल को 'गरजा' तथा मंडी को 'जोहार' कहा गया है।

'लाहौल' शब्द के विषय में कई धारणाएँ हैं। इसे देवताओं का देश कहा जाता

है। 'ल्हा' का अर्थ देवता और 'युल' अर्थात् देश-ल्हायुल-देवताओं का देश। लाहौल को 'लायुल' भी कहा जाता है। 'ला' का अर्थ दर्रा और 'युल' अर्थात् देश। लायुल-दर्रों का देश। लाहौल में रोहतांग ला, कुंजम ला, बारालाचा ला आदि दर्रे हैं। तिब्बती लोग इसे 'लहोयुल' या 'टलोयुल' भी कहते हैं। टलोयुल का अर्थ दक्षिण देश है। लहोयुल या टलोयुल से लाहौल बना। अतः लाहौल शब्द का अर्थ देवताओं का देश, दर्रों का देश और दक्षिण देश माना जाता है।

लाहौल का मुख्यालय केलांग है। यहाँ ज़िलाधीश बैठते हैं और अन्य ज़िला कार्यालय हैं। लाहौल घाटी के दो उपमंडल हैं—केलांग तथा उदयपुर।

मुख्यालय केलांग का नाम यहाँ के मुख्य देवता केलङ् के नाम से पड़ा। देवदार को भी केलमङ् कहा जाता है। किंतु यहाँ देवदार के वृक्ष नहीं हैं। यद्यपि केलांग देवता का निवास निचले केलांग के देवदार के वृक्ष में माना जाता है। अतः केलङ् देवता के नाम से केलांग नाम पड़ना स्वाभाविक प्रतीत होता है। स्थानीय भाषा में इसे 'केलङ्' ही पुकारा जाता है।

चंद्रा तथा भागा नदियाँ लाहौल घाटी को तीन भागों में विभक्त करती हैं। चंद्रा नदी की घाटी चंद्रभागा के मिलन स्थल ताँदी तक जाती है। इस घाटी को रंगलोई घाटी कहते हैं। कोखसर, शिशु, गुशाल, गोंधला कोठियाँ इस घाटी में हैं। गोंधला किला भी गोंधला में स्थित है। इसे तोद (स्तोद) भी कहते हैं जिसका अर्थ उच्च शिखर है।

चंद्रभागा नदी जहाँ से बहती है, वह चंद्रभागा घाटी कहलाती है। इसे पट्टन घाटी भी कहते हैं। इस घाटी में तिंदी, वरपा, रानिका, थोलांग, शंशा, लोते, जाह्ल्मा, थरोट और उदयपुर कोठियाँ हैं। प्रसिद्ध मृकुला देवी मंदिर तथा त्रिलोकीनाथ मंदिर भी इसी घाटी में हैं।

पहले थरोट से आगे का क्षेत्र चंबा में आता था तभी इसे चंबा-लाहौल कहते थे। सन् 1975 में उदयपुर क्षेत्र में चार पटवार हलके-त्रिलोकीनाथ, उदयपुर, मियाड़ नाला और तिंदी लाहौल में मिला दिए गए। इन चार हल्कों से एक नया इलाक़ा मूरिंग लाहौल में आया। 'पट्टन' शब्द को संस्कृत 'पत्तन' से जोड़ा जाता है। राजतरंगिणी में दस सहस्र गाँवों वाले स्थान को पत्तन कहा है। पत्तन से नदी के किनारे का भी बोध होता है। चंद्रभागा नदी के किनारे बसा क्षेत्र पत्तन या पट्टन।

बारालाचा के उत्तर-पूर्व में लद्दाख तक लिंगटी घाटी स्थित है। इस घाटी में लंबे-लंबे मैदान हैं। मैदान और पठार लद्दाख तक फैले हुए हैं। यहाँ आबादी नहीं है। अब केलांग से लद्दाख तक बस सेवा उपलब्ध है जो गर्मियों में बर्फ पिघलने पर चलती है।

लाहुल क्षेत्र की मुख्य फसल आलू है। इसके साथ काला जीरा, रतनजोत, कुठ, धूप तथा कई जड़ी बूटियाँ होती हैं।

स्पिति

स्पिति के लिए मूल संबोधन 'पिति' है। 'पिति' का अर्थ है मध्य देश। पिति का गुगे साम्राज्य मानसरोवर तथा लद्दाख के मध्य स्थित था अतः मध्य देश कहलाया होगा।

स्पिति में प्राचीन काल में 'सेन' वंश के शासकों का शासन भी रहा। यह क्षेत्र चमुर्थी नस्ल के उत्तम घोड़ों के लिए प्रसिद्ध रहा है। ये घोड़े रामपुर की लवी में बिका करते थे। कहा जाता है कि अश्वों की बहुतायत होने के कारण इस राज्य को अश्वपति कहते थे। अश्वपति से ही पिति या स्पिति शब्द बना। किंतु पिति का अर्थ मध्य देश अधिक स्वीकार्य है।

स्पिति यद्यपि लाहौल स्पिति ज़िला में है किंतु यह कुंजम दर्रे के कारण केवल जुलाई से अक्तूबर तक ही लाहौल से जुड़ता है। किन्नौर के साथ स्पिति का संबंध अधिक रहता है और लगभग पूरा साल लोग स्पिति से किन्नौर आते-जाते रहते हैं। अधिक बर्फ गिरने पर ही यह रास्ता बंद होता है अन्यथा लोग पैदल चलते रहते हैं। लाहौल जा पाना संभव नहीं है क्योंकि 4,590 मीटर ऊँचा कुंजम दर्रा नवंबर तक बंद हो जाता है और जून के अंत या जुलाई में खुलता है।

स्पिति का क्षेत्रफल 202 वर्ग किलोमीटर है। लरी, कौरिक, शेगो, काज़ा, चिचिम, रंगरीक, खुरी, हंसा, सुमलिंग आदि गाँवों सहित ताबो, की, ढंक्खर के प्रसिद्ध मठ भी यहीं हैं। कुंजम की ओर अंतिम गाँव लोसर है। जनसंख्या 9,591 है।

यह बर्फ का रेगिस्तान है जहाँ न तो किन्नौर की भाँति सेब होता है और न ही लाहौल की भाँति आलू। जौ, गेहूँ, मटर उगाए जाते हैं।

यहाँ का मुख्य पशु याक है। यह रेगिस्तान में ऊँट की भाँति है। खेतों में हल जोतने, सामान ढोने और यहाँ तक कि खाने के भी काम आता है। याक जब छोटे होते हैं तो उनके बाल काटकर ऊनी कपड़े बनते हैं।

स्पिति में ही बस मार्ग से जुड़ा एशिया का सबसे ऊँचा गाँव किब्बर है। की मठ से ऊपर स्थित किब्बर की ऊँचाई 4,045 मीटर है।

ब्रिटिश काल में प्रशासन व्यवस्था

हारकोट ने लिखा है कि लाहौल में नेगी मानद मजिस्ट्रेट था जिसे द्वितीय श्रेणी मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह एक महीने तक कैद तथा जुर्माना कर सकता था और पचास रुपए के मूल्य के सिविल मुकद्दमे सुन सकता था। लाहौल के नेगी का नाम ताराचन्द था जिसे कार्यालय व्यय के लिए पच्चीस रुपए मासिक दिए जाते थे।

लाहौल में ताराचन्द्र नेगी के अतिरिक्त देवीचन्द, हीराचन्द और बुले राम– तीन ठाकुर भी थे जिनके पास जागीर के रूप में पर्याप्त भूमि थी।

ताराचन्द नेगी को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रमुख या मुखिया भी बना दिया गया

और पहले प्रमुख बुले राम ने इस पद पर आने में आनाकानी की। इसे दीवानी और फौजदारी दोनों तरह की शक्तियाँ प्राप्त थीं और इसके पास 550 रुपए प्रतिवर्ष की जागीर थी।

स्पिति में नोनो मानद मजिस्ट्रेट था किंतु इसे दीवानी शक्तियाँ नहीं दी गई थीं। क्रिमिनल केस में यह दस रुपए जुर्माना कर सकता था। नोनो का नाम तेंजिन नमग्याल था जो 1865 में अपने पिता के बाद नोनो बना।

सन् 1863 में जब डिप्टी कमिश्नर काँगड़ा ने स्पिति का दौरा किया, स्पिति के दो निवासियों ने अपने को स्वतंत्र नोनो घोषित कर दिया। ये व्यक्ति पिन घाटी के थे इनमें से एक जिसे छोटा नोनो कहते थे, तिब्बती मूल का था जो हकीम था और जिसे पिन घाटी में भूमि मिली हुई थी। दूसरे का नाम छेरिंग था जिसके पूर्वज गारपों थे। ब्रिटिश राज से पहले स्पिति में दो व्यक्ति प्रमुख थे। एक नोनो या वित्तमंत्री था और दूसरा गारपों जो सेना तथा प्रजा का मुखिया था। ये दोनों एक दूसरे पर नज़र रखते थे। डिप्टी कमिश्नर काँगड़ा ने दोनों की माँग को उचित कारण देकर ठुकरा दिया।

जनसंख्या

1868 की जनगणना के अनुसार लाहौल में 216 ब्राह्मण, 502 कनैत, 4,566 डागी, 277 बराड़, 10 सायर (चरानी), 3 हेस्सी थे। हारकोट ने लिखा है कि ठाकुर जागीरदार हैं, यद्यपि वे तिब्बती मूल के हैं तथापि अपने को राजपूत मूल का बताते हैं। ब्राह्मण केवल पट्टन घाटी में हैं जो चंबा से आए हैं। कनैत आधे तिब्बती हैं आधे वास्तविक कनैत। पट्टन घाटी में कुल्लू या भंगाल से भी लोग आ बसे हैं, शेष तिब्बती मूल के हैं और बौद्ध हैं। लाहौल में डागी भी कुल्लू से आए बताए गए हैं। यही लोग मठों में वाद्य यंत्र बजाते हैं और कुलीगीरी करते हैं, लकड़ियाँ ढोते हैं। लोहार भी डागी के समकक्ष जाति मानी जाती है। बराड़ पट्टू बुनते हैं, हेस्सी पेशेवर वादक हैं।

1868 की जनगणना के अनुसार लाहौल की जनसंख्या 6,265 थी तो स्पिति की 2,272 थी। स्पिति में 100 लोहार तथा 46 बेड़ा के अतिरिक्त अधिकांश लोग कनैत थे। स्पिति के लोग भोट हैं। कहा जाता है बहुत समय पहले तिब्बत से 200 लोग यहाँ आकर बसे। इतनी कम आबादी होने पर और लोगों के गरीब होने पर भी यहाँ आक्रमणकारी आते रहे।

1991 की जनगणना के अनुसार लाहौल स्पिति का कुल क्षेत्रफल 13,835 वर्ग किलोमीटर अर्थात् प्रदेश में सबसे अधिक और जनसंख्या 31,294 अर्थात् प्रदेश में सबसे कम है। जनसंख्या का घनत्व सबसे कम मात्र दो है।

लाहौल (क्षेत्रफल 6,244 वर्ग किलोमीटर) की 1981 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 21,738 थी जो 1991 में घटकर 21,703 रह गईं। इसी प्रकार स्पिति (क्षेत्रफल 7,591 वर्ग किलोमीटर) की जनसंख्या जो 1981 में 10,362 थी, 1991 में घटकर 9,591 रह गई। 2001 की जनगणना के अनुसार लाहौल स्पिति की

जनसंख्या 33,224 है जिसमें शहरी जनसंख्या कोई नहीं है। इस जनगणना में 7,999 परिवार दिखाए गए हैं। जिनमें 18,441 पुरुष तथा 14,783 महिलाएँ हैं।

ब्रिटिश शासन में लाहौल स्पिति

अंग्रेजी शासन (1864 से) के दौरान डिप्टी कमीश्नर काँगड़ा के अधीन कुल्लू का क्षेत्र असिस्टेंट कमीश्नर के चार्ज में था। कुल्लू के अंतर्गत कुल्लू, ऊपरी व्यास घाटी, बजीरी रूपी, सराज तथा लाहौल स्पिति के क्षेत्र थे। उत्तर में लद्दाख, पूर्व में चीन, दक्षिण में बुशहर, कुमारसेन, कोटगढ, शांगरी से घिरे क्षेत्र को सतलुज नदी विभाजक रेखा के रूप में बाँटती है। पश्चिम में सुकेत, मंडी, बड़ा भंगाल, चंबा हैं। कुल्लू का कुल क्षेत्रफल 6,025 वर्गमील था। यहां प्रथम असिस्टेंट कमिश्नर कैप्टन हे को लगाया गया।

ऊपरी व्यास घाटी में सत्रह कोठियाँ, वजीरी रूपी में छह, सराज में पच्चीस, लाहौल में चौदह तथा स्पिति में पाँच कोठियाँ थीं। कुल्लू की ओर रोहतांग शृंखला में उत्तर में 20,356 फुट ऊँची चोटी है और पूर्व में देऊटिब्बा 20,417 फुट है।

नदी पर्वत

हारकोट ने लाहौल में तेईस से अधिक ग्लेशियर बताए हैं। पश्चिम की ओर 19,000 फुट से ऊँचे पर्वत, बारालाचा तथा दूसरी चोटियाँ 18,000 फुट से 20,000 फुट तक ऊँची हैं। पश्चिम में चंद्रा घाटी की ओर 21,415 फुट से ऊँची चोटियाँ हैं जिसके दक्षिण में बारह मील लंबा ग्लेशियर है।

स्पिति की पुरंग शृंखला में 23,064 फुट ऊँची चोटियाँ हैं, पश्चिम में 21,000 फुट दक्षिण में 21,646 फुट।

चंद्रा नदी लाहौल के 16,221 फुट ऊँचे बारालाचा दर्रे से निकलकर दक्षिण-पूर्व दिशा में तीस मील से अधिक चलती हुई तांदी में भागा से मिलती है। तांदी से चंद्रभागा के रूप में लाहौल से बारह मील की यात्रा कर चंबा में जालंग में पहुँचती है। अंत में यह चंबा से होती हुई सिंधु नदी में मिलती है। कनिंघम ने इसकी कुल लंबाई 950 मील बताई है।

चंद्रा ऐसे क्षेत्र के गुज़रती है जहाँ जीवन के कोई चिह्न नहीं हैं। इसके किनारे कोई गाँव नहीं है। कोई खेती नहीं होती। किनारों पर बस पहाड़ ही पहाड़ हैं और ऊँची चट्टानें हैं। शिगड़ी जैसे भीमकाय ग्लेशियर हैं। चंद्रा, खोखसर से होती हुई तांदी में भागा से मिलती है।

भागा नदी बारालाचा दर्रे से उत्तर-पश्चिम की ओर से निकलती है और पैंतालीस मील का सफर कर तांदी में चंद्रा से मिलती है। अपने स्रोत से निकलने के एक मील बाद ये सूरज ताल में मिलती है। सूरज ताल लगभग डेढ़ मील के व्यास में फैला है और 16,000 फुट की ऊँचाई पर स्थित है। जिंगजिंगबार से होती हुई यह

दारचा में पहुँचती है जहाँ लाहौल का अंतिम बसा हुआ गाँव है। यहाँ इस में जंस्कर नदी मिलती है जिससे इसका आकार बढ़ता है। केलांग में यह फिर गहरी और तंग होकर बहती है। यहाँ से तांदी में चंद्रा से मिलती है। केलांग, कारदंग तथा बेलंग में इसके साथ-साथ खेती-बाड़ी भी की जाती है।

लिंगटी नदी को लाहौल तथा लद्दाख के बीच सीमा रेखा माना जाता था। यह बारालाचा दर्रे के उत्तर-पश्चिम की ओर से निकलती है। यूनम, सेरचू से होती हुई यह लद्दाख की ओर जाती है।

जंस्कर नदी लाहौल के उत्तर में सिंगो ला के उत्तर-पश्चिम से निकलती है और बीस मील चलकर दारचा में भागा से मिलती है। इसके साथ कोई जनबस्ती नहीं बसी है।

इन बड़ी नदियों के अतिरिक्त छोटे-छोटे नाले भी चंद्रा तथा भागा में मिलते हैं।

स्पिति में प्रमुख नदी 'पिती' नदी है जो 20,073 फुट ऊँचे पर्वत के आधार से निकलती है। लिचू में कुंजम ला से निकला एक नाला इस में मिलता है। स्पिति के अंतिम सिरे पर की मठ के नीचे इसके पाट बहुत चौड़े हो जाते हैं। इस तरह कहीं चौड़ी और कहीं सँकरी होती हुई यह खाब में सतलुज में मिल जाती है। इसकी खाब तक लंबाई 120 मील के लगभग है। इस बीच इसमें कई नाले मिलते हैं।

स्पिति घाटी की लोसर गाँव से पनी गाँव तक लगभग पचास मील लंबाई है। स्पिति में पिन, थुरंग, लिंगटी घाटियाँ भी हैं। इनके अतिरिक्त कई घाटियाँ ऐसी भी हैं जो मरुस्थली जलवायु के कारण मानव द्वारा रहने योग्य नहीं बनाई जा सकीं।

स्पिति नदी की महत्त्वपूर्ण सहायक नदी पिन नदी है जो स्पिति के दक्षिण पश्चिम सिरे से निकलती है और लगभग बीस मील तक बहती है। इसके बाद पच्चीस मील चलकर यह ढंक्खर के पास पिती में मिलती है।

अब लाहौल स्पिति में तीन उपमंडल (केलांग, स्पिति, उदयपुर) तथा लाहौल और स्पिति दो तहसीलें हैं।

लाहौल-स्पिति : राहुल की नज़रों में

चालीस वर्षीय राहुल बौद्ध भिक्षु बनकर 1933 में लद्दाख भ्रमण के बाद 26 सितंबर 1933 को तिङ्री जोत से होकर लाहुल आए। 27 सितंबर को दारचा पहुँचे। 28 सितम्बर को ठाकुर मंगल चंद के घर ठहरे। 29 सितंबर को ठाकुर पृथ्वीचंद ने उन्हें मंदिर व गोम्पा दिखाए। 30 सितंबर को खोकसर रहे। पहली अक्तूबर रोहतांग होते हुए मनाली पहुँचे। किन्नौर के बाद यह उनकी दूसरी हिमाचल यात्रा थी।

तीसरी यात्रा में 1937 को दिल्ली, लाहौर होते हुए कुल्लू पहुँचे। 19 मई को मनाली से खोकसर, सीसू, गोंधला रुकने के बाद 23 मई को केलांग पहुँचे। 23 से 25 तक केलांग रुकने के बाद 26 मई को ठाकुर मंगल चंद के घर गए। वे 6 जून तक

केलांग में रहे। 7 जून को जायसवाल की बीमारी की सूचना पर वापस आना पड़ा। 14 जून को कुल्लू होते हुए पटना लौट गए।

राहुल जी ने लाहौल का वर्णन इस प्रकार किया है :

"कुल्लू और चंबा की सीमा पर चंद्रभागा की दोनों मूल शाखाएँ चंद्रा और भागा की माला पहने लाहुल की 1764 वर्गमील भूमि उत्तरी अक्षांश 30^0 8'-32^0 59' और देशांतर 76^0 49'-77^0 50' पर अवस्थित है। इसकी सीमाएँ उत्तर में जांस्कर, पूर्व में स्पिति की तिब्बती-भाषी भूमि, दक्षिण में कुल्लू और पश्चिम में चंबा है। यह कितनी ऊँचाई पर बसा है, यह इसी से मालूम होगा कि चंद्रभागा अपने सबसे निचले स्थान पर पहुँचकर भी 9000 फुट से नीचे नहीं उतरी है।

लाहुल, ल्हा-युल (देवदेश) का नहीं, बल्कि ल्हो-युल (दक्षिण देश) का अपभ्रंश है। कितनी ही शताब्दियों तक लाहुल के ऊपर लद्दाखी राजाओं का अधिकार था, और उन्होंने इसे यह नाम दिया। तिब्बती भाषा में इसे गर्-जा (अज्ञात) देश कहते हैं। सीमांत में उत्तर में लद्दाख और ज़ांस्कर, दक्षिण में कुल्लू और बड़ा-बनगाहल, पूर्व में स्पिति और पश्चिम में चंबा ज़िले से मिलता है। चंबा-लाहुल भी किसी समय लाहुल का ही एक अभिन्न अंग था, जिसे कुल्लू और चंबा के राजाओं ने आपस में बाँटकर दो भागों में विभक्त कर दिया। प्राकृतिक तौर से इसके उत्तर में पश्चिमी (मुख्य हिमालय), दक्षिण में मध्य-हिमालय पड़ता है। यह पर्वत प्राकार औसतन 18000 फुट ऊँचे हैं, जिन पर सबसे निचला स्थान रोटंग जोत 13000 फुट है। यहाँ का सबसे ऊँचा पर्वत शिखर 21000 फुट है। चंद्रभागा इसी के एक पहाड़ से निकलकर लाहुल में बहती कहीं भी 9000 फुट से नीचे नहीं आती। उसका उद्गम स्थान बड़ा लाचा जोत 16200 फुट पर है। बड़ा लाचा असल में पारा-ला-चे का अपभ्रंश है। अनपढ़ खच्चर वालों ने उसे बड़ा लाचा या बड़ी लाइची बना समझने की कोशिश की और उसी तरह उससे और उत्तर के जोत ला-छुंग को छोटा-लाचा (छोटी लाइची) कहते हैं।

लाहुल के चार प्राकृतिक भाग हैं—उत्तर-पूर्वी भाग, जो कि युनान-उपत्यका की ओर बढ़ा हुआ है। इस भू-भाग की औसत ऊँचाई 14000 फुट है, और यहाँ खेती या गाँव नहीं हैं। इसकी समाप्ति लिंगती-उपत्यका में है, जहाँ पर कि युनान नदी स्पिति की सैरछू नदी से मिलती है, और फिर दोनों मिलकर उत्तर-पूर्व की ओर बहती चा-रद् नदी से मिलकर उत्तर की ओर जांस्कर में जाती है। यह भू-भाग सौ वर्गमील का है। इसी के रास्ते कुल्लू-लद्दाख या मध्य एशिया का व्यापार-मार्ग जाता है। भागा-उपत्यका, जिसके निचले भाग को गारा (कुल्लू भाषा में गाहर, बुकयाल) कहते हैं, और जिसको तिब्बती भाषा में पूनन या बुनन कहते हैं, इसी नाम से वहाँ की किराती भाषा में भी मशहूर है। भागा के ऊपरी भाग को तिब्बती भाषा में स्तोद

(उपरला) कहते हैं। चंद्रा-उपत्यका इसके निचले आबादी वाले भाग को रंगलोई कहते हैं, जो तिब्बती रंगलो से बना है। पट्टन-इलाका-चंद्रा और भागा मिलकर चंद्रभागा का नाम चनाब जहाँ से शुरू होती है, वहाँ से चंबा की सीमा तक के इलाके को कुल्लू भाषा में पट्टन कहते हैं, और तिब्बती में मन-चत् (निचला भाग)। गारा (भागा-उपत्यका) में करदंग, बरबांग, कोलंग और गुमरंग की कोठियाँ हैं। रंगलोई में खोक्सर, सिस्सू रंगलो, गोंदला (तिनन्) और गुशाल की चार कोठियाँ हैं। पट्टन की छह कोठियाँ हैं—तांदी, वारपा, रानिका, शांशा, जालमा और जोबरंग। चंबा-लाहुल-चंद्रभागा की ऊपरी उपत्यका जो चंबा ज़िले में पड़ती है, उसे चंबा-लाहुल कहते हैं। यहाँ पर त्रिलोकनाथ का प्रसिद्ध उपत्यका जो चंबा ज़िले में पड़ती है, उसे चंबा-लाहुल कहते हैं। यहाँ पर त्रिलोकीनाथ का प्रसिद्ध बौद्ध-हिंदू मंदिर है। मिरकुला (काली देवी) का मंदिर मिरकुला गाँव में है, जिसमें 13वीं, 14वीं सदी के टाकरी लिपि के लेख हैं। मंदिर इससे पहले का भी हो सकता है।"

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

कौन थे हिमालय के मूल निवासी !

फ्रैंके ने सन् 1909 में स्पिति के लरी ताबो में प्राचीन समय के चित्र चट्टानों में खुदे देखे। ताबो मठ के पूर्व में चट्टानों में ये चित्र विद्यमान हैं। इन चित्रों को यद्यपि अलग-अलग समय का बताया जाता है किंतु इन्हें निश्चित रूप से स्पिति में बौद्ध धर्म के आठवीं शताब्दी में आगमन से पहले का माना जाता है। चट्टानों में घोड़े-चीते जैसे पशु, स्वास्तिक चिह्न, सूर्य, योनि तथा नृत्य मुद्रा में मनुष्यों के चित्र हैं। ये प्राचीन समय के गुफा चित्रों की याद दिलाते हैं।

स्पिति में पहले बों-छोस (Bon-Chos) धर्म को मानने वाले बों-पा (Bon-pa) लोग रहते थे। ये लोग घुमंतू थे।

किन्नर, किरात तथा नाग—इन तीन जातियों का उल्लेख किन्नौर, कुल्लू तथा जालंधर में मिलता है। किन्नर और किरात यदि अलग-अलग जातियाँ थीं तो किन्नर किन्नौर में और किरात कुल्लू की ओर के वासी थे। लोकास्था के अनुसार तथा पर्वतों के नामकरण के अनुरूप कुल्लू और स्पिति के बीच के पर्वत को 'इन्द्रकील' कहा जाता है। इसे देउ टिब्बा भी कहते हैं। कुल्लू में ही जगतसुख के ऊपर हामटा है जहाँ 'अर्जुन गुफा' है। ये नाम अर्जुन द्वारा शंकर से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने की पौराणिक घटना का स्मरण कराते हैं। पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से जब अर्जुन इंद्रकील पर्वत के समीप पहुँचे तो उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी—खड़े हो जाओ ! अर्जुन ने देखा एक वृक्ष के नीचे एक तपस्वी बैठा हुआ है। तपस्वी ने कहा—"तुम धनुष बाण, कवच और तलवार धारण किए हुए कौन हो ? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? युद्ध होता नहीं है, इसलिए तुम अपना धनुष फेंक दो।" इस तपस्वी वेशधारी इंद्र के बाद अर्जुन का किरात वेशधारी शंकर से समागम हुआ। किरात से युद्ध के बाद पाशुपतास्त्र की प्राप्ति हुई। जगतसुख के पास ही शुरू में शबरी का मंदिर भी है। कुल्लू में कई स्थानों पर नाग देवता हैं।

हिमाचल के जालन्धर प्रदेश (काँगड़ा आदि) में तो नाग जाति आज भी विद्यमान है। मंडी तथा कुल्लू के मंदिरों में द्वार पर नाग उकेरे गए हैं। चंबा में भी नाग पूजा प्रचलित है। इन क्षेत्रों में कई नाग मंदिर हैं।

किन्नौर के एक लोकगीत में भी नाग-प्रदेश का उल्लेख है।

दाङ्पो में तोग् गाङ्स् युल दु ठुङ् स।
बर-दु मे-तोग चुन-यल दु ठुङ् स।
था-मर ये तोग लू-थुल दु ठुङ् स।
दा-नी मे तोग मी युल दु ठुङ् स।
पुष्प प्रथम हिम प्रदेश में उत्पन्न हुआ।
पुष्प मध्य में पिशाचों के देश में उत्पन्न हुआ।
पुष्प अंत में नागों के प्रदेश में उत्पन्न हुआ।
पुष्प अबकी बार मानव प्रदेश में उत्पन्न हुआ।

दीवाली के एक मास बाद निरमंड में 'बूढ़ी दीवाली' मनाई जाती है। मार्गशीर्ष अमावस्या को मनाई जाने वाली इस दीवाली में एक लोकनृत्य नाट्य की प्रस्तुति में खश-नाग युद्ध होता है।

स्पिति की पिन घाटी में सगनम गाँव है। यहाँ बुछैन लोग रहते हैं। यूँ यह घाटी बिलकुल कटी हुई है और इसी कटाव के कारण यहाँ के लोग आज भी आदिवासी नजर आते हैं। इन लोगों के शरीर की बनावट, चेहरे के हाव-भाव बिलकुल तिब्बती हैं। इन्हीं लोगों को स्पिति का मूल वासी माना जाता है। यद्यपि आज ये अर्धबौद्ध हैं।

बुछैन के विषय में एक कथा भी प्रचलित है। एक बार तिब्बत में एक निर्दयी शासक का राज्य आया जिसने लोगों में बुद्ध धर्म का निषेध कर दिया। राजा की निर्दयता से प्रजा के अत्यधिक दुखी होने पर एक देवता राजा के घर में अवतरित हुआ। इस शिशु का नाम ग्यालपो था। ग्यालपो धार्मिक प्रवृत्ति का था। जब उसने बौद्ध धर्म की रक्षा का कोई दूसरा उपाय नहीं देखा तो वह घर छोड़कर बुछैन बनकर निकल पड़ा। बुछैन बनने पर बौद्ध धर्म के प्रति लोगों को आकर्षित करने के लिए उसने कई अद्भुत करिश्में दिखाने आरंभ किए। ग्यालपो को बुछैन का जन्मदाता माना जाता है। कुछ लामा लोग बुछैन बनकर चमत्कार दिखाते हुए धर्मप्रचार में लग गए। यह परंपरा जारी रही। बुछैन अपने बाल नहीं कटवाते।

अब बुछैन परंपरा दूसरे स्थानों में कम हो गई है जबकि सगनम में अभी पूरी तरह से विद्यमान है। सगनमवासी स्पिति के मूल वासी माने जाते हैं।

एक लोकनाट्य परंपरा भी है—बुछैन। इसे बुचैन भी कहा जाता है। यह परपंरा एक ही गाँव में है। यह गाँव है काज़ा से पहले आने वाली पिन घाटी का सगनम गाँव।

सगनम गाँव में कुल चार-पाँच ही बुछैन हैं। आसपास के गाँवों को मिलाकर आठ या दस ही बुछैन रहे होंगे। केवल बुछैन लोग ही ऐसा नृत्य या नाट्य कर सकते हैं।

जनजातीय ज़िला-किन्नौर व लाहुल स्पिति में बौद्ध संस्कृति व्याप्त है। किन्नौर के उत्तरी भाग में बौद्ध पूह व उससे ऊपर पूरी तरह प्रभावित हो जाती है।

रामपुर से हर बौद्ध मंदिर के साथ हिंदू मंदिर है। हर गाँव में एक ओर किसी देवी या देवता का मंदिर है तो दूसरी ओर बौद्ध गोम्पा। दोनों को समान रूप से पूजा जाता है। हर घर में जहाँ देवी देवताओं की उपासना की जाती है, वहाँ एक जोमो या भिक्षुणी बनाए जाने की भी प्रथा है।

निचले क्षेत्र के इन गोम्पाओं या बौद्ध मंदिरों में भिक्षु या भिक्षुणियाँ नहीं रहतीं। बौद्ध विहार किस्म के मंदिर ऊपरी क्षेत्र में हैं। पूह से ऊपर बड़े-बड़े बौद्ध विहार हैं। इन विहारों में तपस्यारत बौद्ध लामाओं और ढेरों धर्मग्रंथों की कथाएँ स्वप्नलोक की तरह सुनाई जाती हैं।

यही परंपरा स्पीति व लाहुल तक विद्यमान है। ताबो मठ, की मठ, कारदंग, गुरु घंटाल आदि मठों की ख्याति विश्व में फैली हुई है जहाँ अनेकों भित्ति चित्र, ढेरों पांडुलिपियाँ विद्यमान हैं।

यह बौद्ध परंपरा तिब्बत होती हुई चीन तक जा पहुँची जहाँ लामा धर्म की अपनी विशिष्ट परंपराएँ हैं। हर बौद्ध मठ में लामा गुरु अपने शिष्यों सहित रहते हैं। यहाँ उन्हें धार्मिक परंपराएँ सिखाई जाती हैं। साथ ही वे धार्मिक पोथियों का वाचन करते हैं।

धर्म परंपरा के साथ बौद्ध मठों में विशेष उत्सवों पर मुखौटे लगाकर नृत्य का प्रचलन है। अपने मधुर वाद्यों के साथ लामा लोग मुखौटे धारण कर नृत्य करते हैं। तरह-तरह के मुखौटे भी इनके शिल्प के प्रतीक हैं। इस मुखौटा नृत्य को छम्म नृत्य कहा जाता है। यह नृत्य छेशु जैसे उत्सवों पर किया जाता है। जिन स्थानों पर बौद्ध विहार हैं, वहाँ यह नृत्य आम देखने को मिलता है।

बुछैन द्वारा किया जाने वाला नृत्य भी इसी प्रकार का मुखौटा नृत्य है जो केवल बुछैन लोगों द्वारा किया जाता है। इसी कारण इसे बुछैन नृत्य कहा जाता है। मुखौटा नृत्य के साथ कुछ चौंका देने वाले कृत्य दिखाना इस नृत्य या नाट्य की विशेषता है।

बुछैन का आरंभ शंख ध्वनि से होता है। इतने ऊँचे पर्वत पर शंख ध्वनि बहुत आश्चर्यजनक लगती है। सागर किनारे का वाद्य जब हिमालय में गूँजता है तो यह एक लंबी सांस्कृतिक यात्रा और समन्वय का स्मरण करवाता है कि कब कोई योगी सागर किनारे से शंख लाया होगा।

प्रारंभिक नृत्य लामा नृत्य की तरह होता है। विभिन्न राक्षसी मुद्राओं के मुखौटे पहने बुछैन नृत्य करते हैं। इनके हाव-भाव और मुद्राएँ लगभग वैसे ही होते हैं जैसे छम्म नृत्य के। यद्यपि इनके वस्त्र लामाओं जितने नए या आकर्षक नहीं होते। नृत्य के बीच-बीच तरह-तरह के मज़ाक व हास्य अभिनय कर दर्शकों को रिझाया जाता है।

नर्तकों द्वारा पहने जाने वाले मुखौटे बहुत ही आकर्षक होते हैं। सादे किंतु विविध प्रकार के ये मुखौटे नर्तकों को एक विशिष्टता प्रदान करते हैं।

छम्म नृत्य या मुखौटा नृत्य से यह नृत्य बिलकुल भिन्न प्रतीत होता है। यह

अंतर कुछ-कुछ वैसा ही लगता है जैसा कि किसी शहरी नृत्य और ठेठ गाँव के नृत्य को देखकर लगता है। बौद्ध मंदिरों में होने वाले लामा नृत्य में लामा लोग सुसज्जित होकर नाचते हैं। भव्य वेशभूषा और वैसे ही भव्य और बड़े-बड़े मुखौटे भी सीधे-सादे और 'क्रूड फार्म' में बने हुए। यद्यपि नृत्य के कदम व मुद्राएँ लगभग वैसी ही होती हैं।

साधारण नृत्य और नाट्य मुद्राओं में मनोरंजन का प्रयास करने के बाद 'हाथी नृत्य' होता है। एक बहुत बड़ा हाथी बनाकर उससे नृत्य करवाया जाता है। जिस प्रकार 'सिंह नृत्य' व 'याक नृत्य' विभिन्न क्षेत्रों के लामाओं द्वारा किया जाता है उसी प्रकार यह हाथी नृत्य है। हाथी का आकार लगभग वास्तविक हाथी जितना ही होता है जो यहाँ के शिल्प कौशल का प्रतीक है। हाथी नृत्य करते हुए विभिन्न मुद्राएँ दिखाता है। इनमें लामाओं को उठाना-गिराना शामिल है। हाथी द्वारा मार खाने वाला व्यक्ति विभिन्न मुद्राओं से दर्शकों को लुभाता है। ये लोग 'जोकर' की भाँति हाथी की सूँड से खेलते व नाचते हैं।

बुछैन नृत्य के प्रारंभ में शंख-ध्वनि की तरह हाथी नृत्य भी इस ऊँचाई पर चौंकाता है। जो वस्तुएँ या पशु-पक्षी जिस स्थान पर न हो, उसके चित्र, आकृतियाँ बनाना या उन्हें लेकर नृत्य या नाट्य करना आश्चर्यजनक तो है ही, संस्कृतियों के समन्वय का प्रतीक भी है।

हाथी नृत्य के बाद वे अजूबे दिखाए जाते हैं जो साधारण आदमी के लिए करना संभव नहीं। बुछैन अपनी छाती पर भारी पत्थर रखवाकर तुड़वाता है। अपने मुँह में सलाखें आर-पार करता है। तलवार की नोक पर पूरे शरीर का भार डालता है।

समझा जाता है कि ऐसे नृत्य किसी अलौकिक शक्ति की प्रेरणा से किए जाते हैं। बिना उस शक्ति के ये नृत्य संभव नहीं। किंतु ऐसे ही कई करतब सर्कस में भी दिखाए जाते हैं। बड़े-बड़े पत्थर उठाना, छाती पर रखकर हथौड़ा से कुटवाना, छाती के ऊपर से कार चलाना आदि कुछ ऐसे साहसिक कार्य हैं जो कई लोग करते हैं।

क्या ये धार्मिक नृत्य भी इसी तरह के शारीरिक कर्म हैं या कोई अलौकिक नृत्य। इसमें शोध कार्य अपेक्षित है। बुछैन क्योंकि यही काम करते हैं अतः यह संभव है कि वे इस कार्य में पारंगत हो गए हैं और यह कला उन्होंने अपने पूर्वजों से सीखी हो। ऐसे नृत्य करने वाले कुछ ही लोग हैं, सभी नहीं। इससे भी साबित होता है कि ये कला उन्होंने अपनी परंपरा से ली है।

इस अद्भुत परंपरा के अलावा हिमाचल के ऊपरी भागों में भी देवताओं के गूर ऐसे आश्चर्यजनक नृत्य करते हैं। मुँह के आर-पार सलाखें निकालना, आग खाना, जलते अँगारों पर चलना, बर्फ में नंगे पाँव नृत्य, नदियों में कूद जाना, देवताओं के गूरों व कारिंदों द्वारा ही संभव है। ऐसे नृत्य और नाट्य शोध की माँग तो करते ही हैं, कुछ सोचने पर भी विवश करते हैं।

लाहौल

आज के लाहौल में कई जातियों जनजातियों के रक्त का सम्मिश्रण हुआ है। यह सम्मिश्रण आज भी यहां की चार प्रमुख बोलियों से पता चलता है। इन सभी बोलियों की मूल विशेषताएँ, पुरातन शब्दावली उन पुरानी जातियों की ओर इंगित करती है जो यहाँ पहले अलग अस्तित्व रखती थीं। लाहौल में गारी या बुनन, तोद-रंगलोंई, तिननी, पटनी और चनाली बोलियाँ प्रचलित हैं।

भागा नदी का गार क्षेत्र मूलतः तिब्बती का है। तोद-रंगलोई क्षेत्र में लद्दाखी (ठाकुरों की बोली), चंद्रा नदी के क्षेत्र में तिननी (जिस में तिब्बती शब्द कम पटनी अधिक हैं) और पटनी चंद्रभागा का क्षेत्र जिसमें हिंदी, पहाड़ी अधिक है। चनाली (हरिजनों की भाषा) संस्कृत बहुल भाषा है। अतः लाहौल के ऊपर की ओर तिब्बती, एक ओर लद्दाखी तथा दूसरी ओर चंबयाली व कुल्लुई संस्कृति का समावेश हुआ। चनाल संभवतः बाहर से निचले क्षेत्र से आए जो अपने साथ मूल संस्कृत भाषा लाए।

हारकोट ने लाहौल के मूल धर्म को 'लूङ्-पई-छोस' कहा। ये लोग प्रकृति पूजा करते थे जिसमें वृक्ष पूजा, जल पूजा, पाषाण पूजा शामिल है। निम्न जाति के लोगों में ऐसी रहस्यमयी पूजाएँ की जाती रही हैं जिनमें ब्राह्मण या लामा भाग नहीं लेते। भूदेव पूजा, लिंग पूजा इसी मूल धर्म के रूप हैं। घेपङ् देवता इस प्रकृति पूजा का उदाहरण है। देवता का चिह्न, कोई मूर्ति न हो कर एक लंबा लक्कड़ है। यह लक्कड़ जो पूरा शहतीर है, नाग का प्रतीक है। कथाओं के अनुसार घेपङ् ने ही लाहौल बसाया। वही यहां जौ तथा गेहूँ के बीज मुँह में छिपाकर लाया। उसने बारालाचा दर्रे पर राक्षसों से युद्ध किया और उन्हें मार भगाया। घेपङ् देवता बलि स्वीकार करता है।

मलाणा का जमलू या जमलङ् इस देवता का भाई है। मलाणा के लोग भी इसी तरह अपनी मूल जनजाति से किसी कारण भटककर मलाणा के दूरस्थ और कटे हुए गाँव में जा बसे। उनकी भाषा में स्पिति के शब्द हैं। देवता का पुजारी बताता है कि प्रीणी का जमलू देवता भोटंत और चिन (चीन), पांगू या पांगी या मानसरोवर से आया।

पहले यहाँ मोन लोग रहते थे। यहाँ के लोगों को तिब्बती में मोन कहा जाता है। जंस्कर कभी मोन लोगों के अधिकार में था। लद्दाख में आज भी कुछ मोन परिवार हैं। गुगे में भी मोन लोगों द्वारा निर्मित पुराने किले हैं। जंस्कर में भी मोन किले के अवशेष हैं। मोन, जो तिब्बती का शब्द है, यहाँ किरात कहलाते थे। फ्रैंके का मानना है कि मोन आर्य थे। वे कश्मीर के लोगों से, जिन्हें 'किर' कहा गया है, भिन्न थे। किरात, जो आज भी लाहौल, कनावर, मलाणा में विद्यमान हैं।

किन्नौर की भाँति लाहौल में भी कब्रें पाई जाती हैं। हल चलाती बार या घर बनाती बार ये कब्रें मिलती हैं। हारकोट ने इन कब्रों को मुस्लिम कब्रें बताया है जो चंगेज़ खाँ के समय की बताई गई हैं। किंतु ये कब्रें मुस्लिम कब्रें नहीं हैं। किन्नौर की

भाँति इन कब्रों में भी पानी तथा खाद्य सामग्री के लिए बर्तन रखे मिलते हैं। लद्दाख में इन्हें 'दरद' की कब्रें बताया गया है जो मृतकों को दबाते थे। फ्रैंके ने भी इन्हें 'दरद' की कब्रें माना है, तिब्बती या मुस्लिम नहीं। दरद इंडो-ईरानी जाति थी। इन कब्रों को पहली से पाँचवीं शताब्दी तक की माना गया है। राहुल ने इन्हें ईसा से आठवीं शताब्दी के पहले की माना। किंतु इन् कब्रों तथा वहाँ उपलब्ध सामग्री का वैज्ञानिक परीक्षण आवश्यक है, जो अभी नहीं हुआ है।

लाहौली परंपरा में हमलावर यारकंद से आए माने गए हैं। हचिसन, वोगल ने हमलावरों को मध्य एशिया की ये-था (हूण) जनजाति माना जो 400-500 ई० के लगभग आए।

लाहौल के 'ल्हो-युल' (दक्षिण देश), गरजा आदि नाम बाद के हैं।

कुषाण काल में जब संपूर्ण उत्तर भारत कनिष्क के अधीन था, लाहौल भी कुषाणों के अधीन रहा होगा। जंस्कर में भी कनिष्क के समय का स्तूप मिलता है अतः लद्दाख तथा लाहौल भी कुषाणों के अधीन रहे हैं।

गुप्त काल में लाहौल संभवतः सीमाओं से दूर रहा। समुद्रगुप्त का साम्राज्य व्यास घाटी तक रहा। हर्षवर्धन (606-664 ई०) के समय लाहौल ब्रह्मपुर (चंबा) तथा कुल्लू के अधीन रहा। अतिदुर्गम तथा दूरस्थ होने के कारण लाहौल का क्षेत्र बड़े साम्राज्यों द्वारा उपेक्षित छोड़ा गया। संभवतः लाहौल पर व्यावहारिक रूप से हमला करनेवाले चंबा तथा कुल्लू ही थे। चंबा ने कुगती जोत से होकर चंद्रभागा तलहटी पर कब्ज़ा किया और इसी रास्ते रोहतांग से कुल्लू पर आक्रमण किए। इसी प्रकार कुल्लू ने भी रोहतांग के परे अपना अधिकार रखने के लिए लगातार संघर्ष किया। लाहुल के ठाकुर चंबा, कुल्लू, लद्दाख तथा बाद में सिक्ख साम्राज्य को कर देते रहे। ठाकुर या शासक को 'ज़ौ' कहते थे जिसका तिब्बती में अर्थ स्वामी है।

ह्यून सांग ने (630-645) अपनी यात्रा के दौरान कुल्लू में लाहौल के बारे में सुना कि लाहौल 1800 या 1900 ली की दूरी पर है। यह दूरी (300-320 मील) अधिक है। इस यात्री ने लाहौल में बुद्ध धर्म के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया।

यह भी कहा जाता है कि उत्तर की ओर से किसी जाति ने लाहौल पर आक्रमण किया और दस वर्ष तक लाहौल को अपने अधिकार में रखा। ऐसा ही एक वर्णन चंबा के इतिहास में भी आता है। इन लोगों को 'किर' कहा गया है। सन् 800 में 'किर' या 'कीरों' का आक्रमण लक्ष्मी वर्मन के समय हुआ। ये हमलावर कश्मीरी माने जाते हैं। कश्मीर का बैजनाथ तक प्रभाव रहा जिसे 'किर ग्राम' कहा जाता था। कश्मीर की कला का प्रभाव मृकुलादेवी उदयपुर तथा त्रिलोकीनाथ मंदिरों में भी देखा जा सकता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

लाहौल

लाहौल में बौद्ध धर्म आठवीं शताब्दी के लगभग आया।

सातवीं शताब्दी के मध्य तिब्बत के शासक स्रों-त्सन-गम्पो (617-650) ने लद्दाख को अपने अधीन कर लिया। यह शासक हर्षवर्धन का समकालीन था। लाहौल तथा स्पिति का क्षेत्र इसके अधीन आ गया।

स्रों-त्सन-गम्पो ने लगभग 632 में अपने मंत्री संभोट को सोलह छात्रों के साथ कश्मीर भेजा। इसने नालंदा तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों से भी बौद्धभिक्षु तिब्बत आमंत्रित किए। शांतरक्षित के आमंत्रण पर पद्मसंभव यहाँ आने को तैयार हुए। पद्मसंभव का यहाँ आगमन हुआ। पद्मसंभव की जीवनी पेमा कातङ् में जोहार (मंडी-रिवालसर) तथा गारजा (लाहौल), गुरु घंटाल का नाम आता है जिससे पता चलता है कि तंत्रयान के अनुयायी पद्मसंभव ने मंडी-रिवालसर तथा लाहौल (गुरु घंटाल) में बौद्ध मठ स्थापित किए। यह भी कहा जाता है कि पद्मसंभव ने लगभग 779 ई० में तिब्बत में समये नाम से मठ की स्थापना की।

स्रों-त्सन-गम्पो का पौत्र राल-पा-चैन (817-36) बौद्ध धर्म का तीसरा प्रबल समर्थक था किंतु इसे विद्रोही भाई लंग द्रामा (899-902) ने मार दिया। लंग द्रामा बौद्ध धर्म का शत्रु था। अतः इसके काल में बौद्ध भिक्षु तथा पंडित यहाँ-वहाँ भागकर छिप गए। लंगद्रामा को सन् 902 में एक लामा पाल दोर्जे ने मार दिया। इसके बाद उसका भतीजा वारिस बना जिसका छोटी रानी के वारिस ओद-स्रुंग से संघर्ष चलता रहा। ओदस्रुंग का पौत्र की-दे-निमा-गों अनुयायियों सहित पश्चिम तिब्बत चला गया जहाँ वैवाहिक संबंधों से शक्ति प्राप्त कर लद्दाख तथा गुगे के क्षेत्र को मिलाकर राज्य विस्तार किया।

लगभग 930 ई० में की-दे-निमा-गों की मृत्यु के बाद राज्य तीन पुत्रों में बाँटा गया। बड़े पुत्र पालगी-गों को लद्दाख तथा दोनों भाइयों पर शासन मिला। दूसरे पुत्र टशी-गों को पुरंग तथा तीसरे देत्सु-गों को ज़स्कर तथा स्पिति। अतः लद्दाख (लाहौल) पालगी-गों के अधीन रहा।

इसी राजवंश में ल्हा-चेन-उत्तपाल (1080-1110) ने कुल्लू पर आक्रमण किया

और कुल्लू के राजा को लोहा तथा सुरागाय कर के रूप में देने के लिए बाध्य किया। इससे पहले के समय में लाहौल कुल्लू के अधीन रहा होगा, ऐसा भी माना जाता है। चंबा और कुल्लू दोनों राज्य लाहौल पर अधिकार करते रहे।

ल्हा-चेन उत्तपाल के समय ही मरगुल के मृकुला देवी मंदिर को वज्रेश्वरी मंदिर (या मठ) में बदला गया तथा इसकी मरम्मत की गई। इस समय लाहौल के 'ज़ौ' सीधे लद्दाख के प्रति उत्तरदायी बने।

कुल्लू के शासक सिद्ध सिंह के समय लद्दाख के शासक टशे-बांग-नमज्ञाल (1535-1575) ने लाहौल के रास्ते कुल्लू पर आक्रमण किया। यह मात्र एक हमला था, जिससे लाहौल पर प्रभाव नहीं पड़ा। जब तिब्बती शासक कमज़ोर हुए तो कुल्लू के राजा बहादुर सिंह ने लाहौल पर अपना अधिकार कर लिया। इस से पहले लाहौल लद्दाख राज्य का एक भाग था।

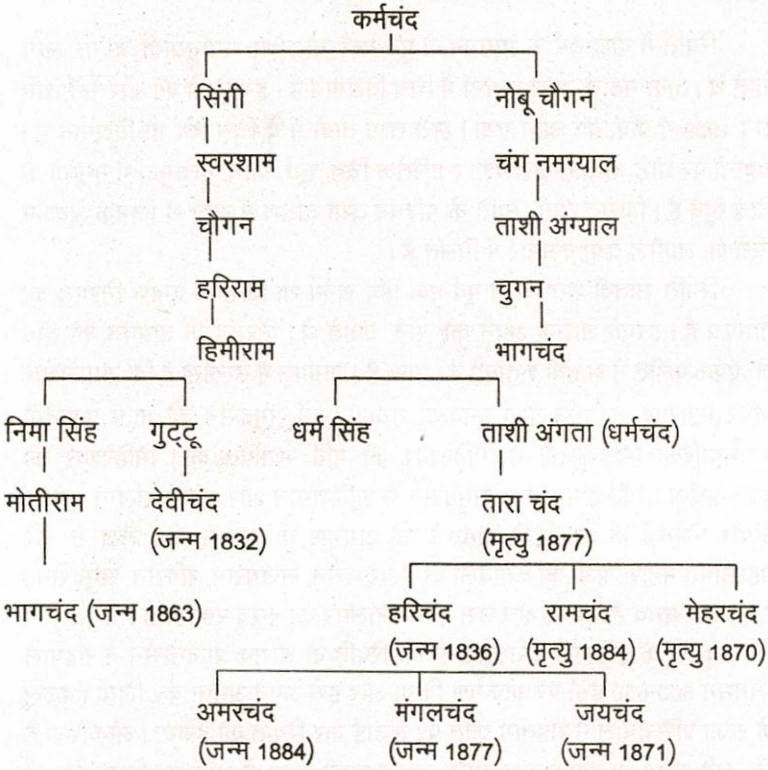
सत्रहवीं शताब्दी में मंगोलों द्वारा लद्दाख पर आक्रमण के समय एक टुकड़ी लाहौल में भी आई किंतु मार्ग में ग्लेशियर गिरने से वे मर गए। इस बीच कुल्लू के राजा विधि सिंह ने लगभग 1672 ई० में लाहौल पर अधिकार कर लिया। सभी 'ज़ौ' को जागीरें दीं और वे कुल्लू की भाँति ठाकुर कहलाए। बाद में ये ठाकुर अपने को राजपूत कहने लगे।

राजा मान सिंह ने लाहौल की सीमा लींगटी तक बढ़ा दी।

राजा मान सिंह से लेकर अंतिम शासक जीत सिंह (सन् 1840) तक लाहौल कुल्लू के अधिकार में रहा। इसके बाद सन् 1846 तक सिक्ख शासन के अधीन और 1846 में सिक्खों की हार के बाद ब्रिटिश राज्य का एक अंग बना।

पुरानी कब्रों को वैज्ञानिक विश्लेषण, किलों में पाई जाने वाली पुरातात्त्विक सामग्री, ठाकुरों के पास उपलब्ध मूर्तियाँ, पुरासामग्री, पट्टन घाटी के जलस्रोतों के अभिलेखों, फ्रैंके द्वारा देखे गए चट्टानों पर 23 अभिलेखों, स्तूपों की खोज खबर से लाहौल के इतिहास पर और प्रकाश पड़ सकता है।

ठाकुर हरिचंद वजीर रईस लाहौल



कर्नल मैसी ने लिखा है कि ताराचंद राजा कुल्लू तथा सिक्खों की ओर से शासक था। प्रबंध व्यवस्था के लिए इसे 'नेगी' कहते थे, बाद में यह खिताब बदलकर 'वजीर' कर दिया गया। सन् 1861 में इसे आनरेरी एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर भी नियुक्त किया गया। सन् 1877 में इसकी मृत्यु के बाद बड़ा बेटा हरिचंद उत्तराधिकारी बना। सन् 1858 में मि० शिलजेंट पैट (अफसर महकमा सर्वे) की खबर हरिचंद द्वारा दिए जाने पर (जिसे वलीखाँ कोकान ने यारकंद में कत्ल किया) अंग्रेज सरकार द्वारा अच्छा बर्ताव किया गया। हरिचंद ने सन् 1863-64 में तिब्बत की यात्रा कर आय, मार्ग तथा व्यापार की उन्नति पर एक रिपोर्ट तैयार की।

ज़िला काँगड़ा के वायसरीगल दरबारियों में इसका 15वाँ स्थान था। लाहौल में इसे न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। इसे लाहौल की आय का चौथाई (550 रुपए) मिलता। आय लगभग 2000/- रुपए थी।

इसी वंश की घुमसंग शाखा का मुखिया देवीचंद था। हीराचंद गोंधला की तीसरी शाखा का मुखिया था।

स्पिति

स्पिति में बौद्ध धर्म के आगमन से पूर्व यहाँ 'बों-छोस' धर्मानुयायी 'बों पा' लोग रहते थे। ताबो मठ के ऊपर चट्टानों में चित्र विद्यमान हैं। इन चित्रों की ओर सर्वप्रथम सन् 1909 में फ्रैंके का ध्यान गया। लरी तथा ताबो में ये चित्र अब भी विद्यमान हैं। चट्टानों पर घोड़े या चीते जैसे पशु, स्वास्तिक चिह्न, सूर्य, योनि, नृत्यमुद्रा में मनुष्यों के चित्र खुदे हैं। किरात लोग स्पिति के पश्चिम तथा दक्षिण में रहते थे जिनके अवशेष मलाणा, लाहौल तथा कनावर में मिलते हैं।

स्पिति सातवीं शताब्दी से पूर्व एक हिंदू राज्य था जिसका प्रमाण निरमंड का ताम्रपत्र है। इसके शासक अपने को 'सेन' कहते थे। निरमंड के ताम्रपत्र को डॉ० जे०एफ० फ्लीट ने सातवीं शताब्दी का माना है। ताम्रपत्र में उल्लेख है कि कपालेश्वर मंदिर महाराज सर्ववर्मन द्वारा बनवाया गया। इसमें समुद्रसेन की माता परमदेवी महाभट्टारिका मिहिरलक्ष्मी ने मिहिरेश्वर की मूर्ति स्थापित की। मिहिरेश्वर की पूजा-अर्चना के लिए महाराजा समुद्रसेन ने शूलिशग्राम और उससे संलग्न भूमि व जंगल निरमंड के अथर्ववेदी ब्राह्मणों को अग्रहार के रूप में दी। लेख में चार महासामंत महाराजाओं की वंशावली दी है वरुणसेन, संजयसेन, रविसेन, समुद्रसेन।

यह संभव है कि यह क्षेत्र उस समय जालंधर का करद रहा होगा।

कुल्लू के इतिहास में उल्लेख है कि स्पिति के शासक राजेन्द्रसेन ने रुद्रपाल (लगभग 600-650 ई०) पर आक्रमण किया और इसे अपने अधीन कर लिया। कुल्लू के राजा प्रसिद्धपाल ने रोहतांग जोत पर लड़ाई कर स्पिति को हराया। लोकास्था है कि इसी समय या इसके कुछ समय बाद लद्दाखी राजा ने आक्रमण किया जिससे चेतसेन मारा गया और हिंदू राज्य का अंत हुआ। इस युद्ध में कुल्लू के राजा संसारपाल ने लद्दाख की सहायता की। हार के बाद चेतसेन के पुत्रों को जागीर सौंपी गई।

सातवीं शताब्दी के मध्य लद्दाख तिब्बत के शासक स्रों-त्सन-गम्पो (617-650) के अधीन होने से स्पिति भी इसी का अंग बना।

ल्हा-चेन-उत्तपाल (1080-1110) के समय भी स्पिति लद्दाख के अधीन रही। स्पिति यद्यपि गुगे राज्य में थी किंतु यह लद्दाख के अधीन रही। लद्दाख के शासकों ने एक लंबे समय तक शासन किया। छै-द्पल-दोन-गुव (1710-1840) डोगरा सेनापति ने लद्दाख को जीता और कश्मीर में मिला दिया। लद्दाख का स्पिति पर शासन होते हुए भी स्पिति अपने में स्वतंत्र रहा। स्पिति का प्रबंध ग्याल्पो के अधीन रहा जो स्थानीय सामन्त या शासक थे।

जब बालतियों ने लद्दाख को हराया, उस समय स्पिति लद्दाख से अलग हो गया किंतु जमयङ्-नमज्ञाल (1560-90) के पुत्र सेंगे नमज्ञाल (1590-1620) ने बालतियों

को हराकर पुनः लद्दाख को स्वतंत्र करवाया। सेंगे नमग्याल के बाद उसके छोटे पुत्र देछोग् (1620-40) को स्पिति दी गई किंतु शासक लद्दाख का ही रहा। देलग नमग्याल (1645-80) के समय या सन् 1681 में लद्दाख तथा गुगे का युद्ध हुआ। स्पिति गुगे सहित तिब्बत के अधिकार में आ गया। सन् 1642 में तिब्बत में दलाईलामा का शासन आरंभ हो गया था। किंतु देलग नमग्याल ने तिब्बत के सेनापति की पुत्री से विवाह कर स्पिति को पुनः दहेज में ले लिया। अतः फिर से यह लद्दाख का अंग बनी।

बुशहर के राजा केहरी सिंह (1639-96) के समय ल्हासा के सेनापति ग्यालदन छङ् तथा केहरीसिंह के बीच संधि हुई। इस संधि के अनुसार दोनों राज्यों में व्यापारिक संबंध बने। सन् 1681 में हुई यह संधि 1947 तक कायम रही।

सन् 1672-1717 के मध्य कुल्लू के राजा मानसिंह ने भी स्पिति पर आक्रमण कर यहाँ से कर वसूल किया।

अतः स्पिति लद्दाख, कुल्लू और बुशहर के अधीन रही। सन् 1821 में विलियम मूरक्राफ्ट और ट्रेबेक के समय स्पिति लद्दाख के अधीन थी किंतु कुल्लू को भी कर दिया जाता था। महाराजा गुलाबसिंह के सेनापति जोरावर सिंह ने 1835 में लद्दाख पर अधिकार किया और वसंत ऋतु आने पर लेह पर भी अधिकार कर लिया। लद्दाख के शासक ने बुशहर में शरण ली। अतः स्पिति का क्षेत्र भी जम्मू के अधिकार में आ गया। महाराजा गुलाब सिंह ने सन् 1841 में रहीम खाँ को स्पिति का गवर्नर नियुक्त किया। सेनापति जोरावर सिंह 1841 के ग्रीष्म में तिब्बत पर आक्रमण के समय रहीम खाँ को भी साथ ले गया। युद्ध में जोरावर सिंह मारा गया और रहीम खाँ पकड़ा गया। उसे ल्हासा ले जाकर मार दिया गया। इसी बीच (1841) सिक्खों ने कुल्लू को अपने अधिकार में कर लिया और सेना स्पिति भी भेजी गई किंतु इस सेना को वापस लौटना पड़ा। यह भी कहा जाता है कि स्पिति के लोग घरों को छोड़ पहाड़ों में भाग गए और सिक्खों द्वारा गाँव तथा मठों को लूटा गया। मठों को जलाया गया।

सन् 1846 में पंजाब का रावी से सिंधु नदी तक का पहाड़ी क्षेत्र, लद्दाख तथा स्पिति जम्मू के राजा गुलाबसिंह को मिला। अंग्रेजों ने स्पिति को कुल्लू में मिलाया और स्पिति के बदले अन्य भू-भाग दिया गया। अतः कुल्लू, लाहौल-स्पिति को मिलाकर एक डिवीजन बनाया गया। सन् 1849 में कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर मेजर हे ने स्पिति जाकर शासन सँभाला और इस बारे एक विस्तृत रिपोर्ट दी गई जिसे काँगड़ा के डिप्टी कमिश्नर ईगर्टन ने 1864 में प्रकाशित किया। सन् 1846 में कनिंघम ने स्पिति, लद्दाख और तिब्बत की सीमाएँ निर्धारित कीं।

स्पिति के ग्याल्पो को अब तक नोनो कहा जाने लगा था। अंग्रेजों ने स्थानीय शासन नोनो के हाथ में दे दिया। नोनो को मजिस्ट्रेट और सब जज का अधिकार भी दिया गया। मैसी ने स्पिति के नोनो के निम्न नाम दिए है–

नोनो कलजुंग

|

नोनो तनज़ान लमग्याल

|

नोनो दुर्जी चेतन (जन्म 1833)

कर्नल मैसी ने लिखा है नोनो (श्रेष्ठ सज्जन) दुर्जी चेतन स्पिति के शासक वंश का मुखिया है। स्पिति पहले एक बहुत ही दक्षिणी ज़िला था और अब ज़िला काँगड़ा के सबडिवीजन कुल्लू का एक भाग है।

तनज़ान लमग्याल के बुढ़ापे के कारण सन् 1878 में रियासत का प्रबंध छोड़ दिया तो उत्तराधिकार पुत्र नोनो दुर्जी चेतन को मिला। इसे फौजदारी अधिकार प्राप्त थे तथा मालगुज़ारी भी वसूल करता है। मालगुज़ारी का 6 / 16 भाग इसे मिलता था जो 282 / - रुपए के बराबर था। नोनो पचास एकड़ भूमि का मालिक था।

दुर्जी चेतन का ज़िला काँगड़ा के वायसरीगल दरबारियों में 16वाँ स्थान था।

पिति (स्पिति) के लोग हामटा दर्रे के नीचे प्रीणी मंदिर में जमलू के अनुयायी थे। स्पिति वासी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक वहाँ पूजा करने आते रहे। उस समय भी उस देवता का संबंध मलाणा से था। उधर लाहौल का राजा घेपङ् भी मलाणा के जमलू का भाई माना जाता है। घेपङ् मलाणा यात्रा पर आता है।

लामा परंपरा

तिब्बत, हिमाचल प्रदेश के जनजातीय ज़िलों किन्नौर तथा लाहौल स्पिति में बौद्ध धर्म अपनी विलक्षणता के साथ विद्यमान है। गेरुआ वस्त्र पहने लामा, ऊँचाइयों में स्थित बौद्ध मठ, आकर्षक मूर्तियाँ व चित्र, पांडुलिपियों के अंबार, पत्थरों, चट्टानों पर खुदे बौद्ध मंत्र, हवा में लहराती पताकाएँ इस अद्‌भुत परंपरा के दृढ़ अस्तित्व को दर्शाती हैं। लामा लोग इसके अधिष्ठाता हैं। विपरीत परिस्थितियों और भौगोलिक कठिनाइयों के बावजूद इन्होंने इसे आज तक सुरक्षित रखा है। परंपरा का भार ढोते हुए लामा आज भी त्याग, तपस्या से परिपूर्ण कष्टमय जीवन जीते हुए धर्मचक्र लिए चलते रहते हैं। इस परंपरा को समझने के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नज़र दौड़ानी होगी।

बुद्ध का जन्म

563 ई०पू० कपिलवस्तु के लुम्बिनी ग्राम में बुद्ध का जन्म एक अद्वितीय घटना थी। शाक्य वंश के शुद्धोधन तथा माता महामाया के यहाँ जन्मे सिद्धार्थ का जीवन प्रारंभ से ही विचित्र रहा, अनहोनी घटनाओं से परिपूर्ण। कहीं राह जाते हुए जन्म, अकस्मात् माता महामाया की मृत्यु, महाप्रजापति गौतमी द्वारा लालन-पालन आदि-आदि। यद्यपि उन्नीस वर्ष की आयु में पत्नी तथा पुत्र को त्यागकर संसार छोड़ने की कथाएँ जुड़ी हैं। इतनी आयु होने पर, विवाह तथा पुत्र की प्राप्ति होने के बाद जीवन के इन कटु सत्यों से अनभिज्ञ रहकर पहली बार वृद्ध रोगी, मृतक तथा संन्यासी से साक्षात्कार व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता। तथापि ये घटनाएँ प्रतीकात्मक लगती हैं और बुद्ध के अभावग्रस्त जीवन के कारण जो वैराग्य शनैः-शनैः घर कर गया होगा, उसी ने सुविधापूर्ण संसार छोड़ने पर विवश किया।

संसार त्यागने पर विभिन्न साधु-संन्यासियों के पास भटकने के बाद अंततः अपनी एक राह खोजी, एक धारणा बनाई और पैंतीस वर्ष की आयु में सारनाथ से उपदेश प्रारंभ करने के बाद जीवन के अंत (483 ई०पू०) तक जारी रखे। बुद्ध के पहले पाँच शिष्य ब्राह्मण माने जाते हैं। इसके बाद शाक्यवंश से शुद्धोधन के भाई के पुत्र आनन्द, बुद्ध के सौतेले भाई नन्द, चचेरे भाई देवदत्त और कुछ भिक्षु बने। महाप्रजापति गौतमी तथा आनन्द के आग्रह पर बुद्ध ने संघ में महिलाओं को स्थान दिया।

चार परम सत्य, आत्मा, पुनर्जन्म सिद्धांत, कर्म सिद्धांत, मध्यमार्ग तथा निर्वाण पर बुद्ध के उपदेश केंद्रित रहे। संसार नित्य है या नहीं, आत्मा का शरीर से क्या संबंध है, जीवन के बाद मृत्यु तथा मृत्यु के बाद जीवन है या नहीं, ऐसे कुछ प्रश्न अनुत्तरित भी माने जाते हैं जिन्हें उन्होंने या तो टाल दिया या उन पर वे मौन रहे।

कब लिपिबद्ध हुए बुद्ध के उपदेश

बौद्ध सिद्धांत कब लिपिबद्ध हुए, यह स्वयं बौद्ध भी नहीं जानते। उत्तर भारत में यह और भी अस्पष्ट है। बुद्ध वचन तो मौखिक था। मौखिक परंपरा से ही शिष्यों ने ग्रहणकर आगे बढ़ाया। इस परंपरा को पहली बार किसने और क्यों लिपिबद्ध किया होगा, यह अज्ञात है। बाद में तो पूरा एक शास्त्र तैयार हुआ जिसकी कई शाखाएँ बनीं। बुद्ध वचन क्या रहे होंगे, इस में भी मतभेद है। आत्मा, संसार, त्याग, निर्वाण आदि शब्दों की अलग-अलग व्याख्या की गई।

दक्षिण भारत में लिखित परंपरा पर विभिन्न बौद्ध सम्मेलनों से प्रकाश पड़ता है जिनमें बौद्ध धर्म विद्वानों ने एक परिपाटी निर्धारित की और कुछ सिद्धांत बनाए जिन पर अधिकांश विद्वान् सहमत हुए।

पहला बौद्ध सम्मेलन बुद्ध परिनिर्वाण के तीन महीने बाद अजातशत्रु की अध्यक्षता में राजगृह में हुआ। कहा जाता है, शुभदा नामक भिक्षु को बुद्ध के प्रति प्रतिकूल टिप्पणी से आगामी समय में धर्म सुरक्षा का प्रश्न उत्पन्न हो गया। अतः पाँच सौ भिक्षुओं की एक सभा बनी जिनमें भिक्षु आनन्द को बाद में सम्मिलित किया गया। भिक्षु आनन्द पर कुछ आरोप भी लगाए गए। अश्वघोष की सुमंगल बिलासिनी के अनुसार आनन्द द्वारा प्रतिपादित धम्म तथा उपालि द्वारा प्रतिपादित विनय को स्वीकारा गया। इस सभा में बुद्ध के रथवाहक चन्ना को ब्रह्मदंड दिया गया।

दूसरा सम्मेलन महानिर्वाण के एक सौ दस वर्ष बाद हुआ। यह सम्मेलन वैशाली के भिक्षुओं द्वारा दस सूत्रों में छूट लेने के कारण हुआ। इनमें प्रयोग हेतु सींग में नमक ले जाना, दोपहर के बाद भोजन करना, दूसरे गाँव में पुनः भोजन करने से अधिक खाना, दुष्कर्म के लिए संघ से आज्ञा, भोजन के बाद दूध, मक्खन लेना, सोना चाँदी लेना बहस का मुद्दा था। ये सब विनय के विरुद्ध तो था ही अतः अधिकांश विद्वानों ने इन्हें गलत करार दिया। सभा में सात सौ भिक्षु एकत्रित हुए जिसमें वैशाली के भिक्षुओं द्वारा इन दस बातों को अस्वीकार कर दिया गया।

तीसरा सम्मेलन सम्राट अशोक के समय पाटलिपुत्र में हुआ जो महानिर्वाण के 218 या 236 वर्ष बाद हुआ माना जाता है। बौद्ध धर्म के विभिन्न संप्रदाय बनने के कारण धर्म में शुद्धि लाने के उद्देश्य से इसे बुलाया गया। भ्रष्ट लोगों के संघ में आने से संघ की मर्यादा क्षीण हुई। इस सम्मेलन का भारत तथा एशिया के विभिन्न भागों में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु भिक्षुओं को भेजा जाना महत्त्वपूर्ण निर्णय था। सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को लंका भेजा गया। कुछ इतिहासकार तीसरे

सम्मेलन की ऐतिहासिकता पर संदेह करते हैं।

चतुर्थ सम्मेलन कनिष्क के समय 100 ई० में हुआ। सम्मेलन जालंधर या कश्मीर में हुआ जिसमें अट्ठारह संप्रदायों को मान्यता दी गई। कनिष्क ने पाँच सौ भिक्षुओं का सम्मेलन किया जिसमें वसुमित्र उपाध्यक्ष तथा अश्वघोष अध्यक्ष थे। एक मठ का निर्माण किया और उन्हें पिटक पर व्याख्या लिखने को कहा।

इतिहासकार बताते हैं कि बुद्ध के महानिर्वाण के लगभग चार सदियों से बाद तक बुद्ध वचन मौखिक ही चले रहे। लिखित उपदेश 104 ई०पू० के बीच आया। पिटक पहली बार पालि में लिखा गया। इसकी व्याख्या सिंहली में की गई। मगध के मूलतः ब्राह्मण बुद्धघोष ने लंका जाकर मागधी में काम किया। बुद्धघोष ने पालि को बौद्धों की पवित्र भाषा बनाया। इसके बाद महावंश तथा दीपवंश की रचना पालि में हुई।

त्रिपिटक को पालि, मागधी आदि में लिखा गया किंतु इसकी पालि में ही पूरी व्याख्या उपलब्ध रही। इस समय संस्कृत में कोई पूरी कृति उपलब्ध नहीं है।

बौद्ध ग्रंथ

बौद्ध ग्रंथ, धर्म के अनुसार दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं–हीनयान और महायान। हीनयान के सूत्र पालि तथा मिश्रित संस्कृत में हैं, महायान के शुद्ध तथा मिश्रित संस्कृत में।

पालि में त्रिपिटक सबसे पुराना और पूरा ग्रंथ है। त्रिपिटक में तीन पिटक हैं–विनय पिटक (अनुशासन संग्रह), सूत्रपिटक (व्याख्यान), अभिधम्म पिटक (धर्मग्रंथ)। विनय पिटक में चार ग्रंथ आते हैं। सूत्रपिटक में बुद्ध के व्याख्यान, सूत्र हैं इसमें पाँच ग्रंथ हैं। अभिधम्म में सूत्रपिटक के अनुसार ही धर्म के विषय में कहा है जिसके अंतर्गत सात ग्रंथ आते हैं।

ऊँ मणि पद्मे हुँ

नेपाल, तिब्बत, किन्नौर तथा लाहौल-स्पिति में बौद्ध शब्दावली मिश्रित तथा अशुद्ध संस्कृत व स्थानीय भाषाओं से ली गई है। ऊँ मणि पद्मे हूं इसका उदाहरण है। इस ओर अवलोकितेश्वर एक अधिष्ठाता देवता है जिसकी हज़ार आँखें, हज़ार सिर या ग्यारह सिर आठ बाँहें होती हैं।

तिब्बत, लाहौल-स्पिति तथा किन्नौर की और बौद्ध ग्रंथों के रिन-चेन-ज़ंग-पो द्वारा अनुवाद से पूर्व भी यहाँ पद्मसंभव के समय बौद्ध मठ विद्यमान थे। इस युग में बौद्ध ग्रंथों का पाठ तथा परंपरा का निर्वाह संभवतः मिश्रित भाषा के माध्यम से होता थां।

रिन-चेन-ज़ंगपो ने बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद भोटी में उपलब्ध कराया और एक नई परंपरा का जन्म हुआ जिसमें तंत्रवाद का समावेश रहा।

वर्तमान बौद्ध धर्म

तिब्बत, किन्नौर तथा लाहौल-स्पिति में बौद्ध धर्म के वर्तमान स्वरूप को देखकर लगता है कि यह शाक्य मुनि द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म नहीं, कोई दूसरा ही धर्म है। बौद्ध मठों में लामाओं द्वारा वाद्यों के साथ मंत्रोच्चारण, सामाजिक जीवन में धर्मगुरु की तरह दखल, हर संस्कार करवाते हुए टाणे-माणे की मुख्य भूमिका, यह सब ब्राह्मण धर्म की भाँति प्रतीत होता है। जो ब्राह्मण लोग मंदिरों में करते थे, वही सब लामा लोग मठों में कर रहे हैं।

लाहौल स्पिति में प्रत्येक परिवार में बड़े लड़के की शादी कर दी जाती है। छोटे लड़के को लामा बनाया जाता है। पाँच, छह वर्ष की आयु में ही उसे शपथ दिलाई जाती है। अहिंसा धर्म का पालन, सत्यवचन, मद्यनिषेध आदि की शपथ के बाद उसे 'ग्याछुल' कहा जाता है। वरिष्ठ लामा उस पर नज़र रखते हैं। यदि शपथ तोड़े तो मठ से बाहर निकाल दिया जाता है। मठ में ही सब शिक्षा-दीक्षा दी जाती है। गर्मियों में ऐसे युवा लामा घर आ सकते हैं, घर का पूरा काम कर सकते हैं। मठ में वापसी पर इस बात की पुष्टि की जाती है कि कोई गलत काम तो नहीं किया। बारह वर्ष बाद यह व्यक्ति 'गेलोङ्' अर्थात् धर्म पर चलने वाला बनता है। पूर्ण लामा बनने में वर्षों लग जाते हैं।

लामा लोग मठ में रहते हैं जहाँ धर्म ग्रंथों के पाठ के अतिरिक्त वे धर्मचक्र घुमाते रहते हैं। ग्रामीण मठ में जाने पर भेंट चढ़ाते हैं। लामाओं को धर्म कर्म के लिए घरों में आमंत्रित किया जाता है।

तिब्बत में बौद्ध धर्म के चार संप्रदाय विकसित हुए। यही संप्रदाय किन्नौर तथा लाहौल-स्पिति में फैले। पद्मसंभव तथा शांतरक्षित द्वारा प्रतिपादित सबसे पुराना संप्रदाय ञिङ् म-पा या निङ्मा है। गे-लुगपा, कर-ग्युद-पा, डुग्पा आदि अन्य शाखाएँ हैं।

लाहौल में धर्म

मूलवासियों का धर्म

हारकोट ने लाहौल के मूल धर्म को 'लूङ्-पई-छोस' या घाटी का धर्म कहा है। यह यहाँ के मूल वासियों का धर्म था जिसके बलि प्रथा तथा प्रकृति पूजा, दो प्रमुख तत्त्व थे। इन धार्मिक आस्थाओं में दुष्टात्माओं के लिए बलि प्रथा भी विद्यमान थी। हारकोट ने तो मानव बलि का भी उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है :

"यह सत्य है कि इस समय कोई मानव बलियाँ नहीं दी जातीं, किंतु बसंत में झरनों के फूटने के समय पेड़ों के समक्ष या फसल के समय होने वाले उत्सवों पर भेड़-बकरों की बलि दी जाती है, यह सब बौद्ध परंपरा के विरुद्ध है।...यह कहा जा सकता है कि लाहौल में तीन धर्म हैं—पहला बुद्ध धर्म, दूसरा हिंदू धर्म और तीसरा लूङ् पई छोस, और इनसे संबंधित एक जाति भी है, जो बौद्ध सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है। जहाँ हिंदू धर्म है, जाति प्रथा का औपचारिकतावश पालन किया जाता है, जहाँ बौद्ध धर्म है, इसके धर्मावलंबी जाति की वकालत करते हैं, किंतु वास्तव में ऐसा है नहीं, उदाहरणतः लाहौलियों द्वारा गुप्त रूप से गाय का माँस खाया जा रहा है। जहाँ हिंदू धर्म फल-फूल नहीं रहा है, वहाँ बौद्ध पूर्वाग्रहों का आदर किया जाता है और बिना किसी विरोध के बलि में याक मारे जा सकते हैं और मारे जा रहे हैं। यनमपैल या यम्बी में प्रत्येक तीसरे वर्ष एक याक मारा जाता है और बलि पशु देने के लिए लाहौल की हर कोठी बारीबारी से प्रस्तुत होती है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि तीनों धर्म एक सीमा तक आपस में मिल गए हैं। चंद्रभागा के साथ हिंदू धर्म फैला हुआ है जिसकी मान्यता के अनुसार याक को मारना उचित नहीं है, वैसे ही बौद्ध मान्यता के भी विरुद्ध है, इसलिए नहीं कि बौद्ध गाय का बहुत आदर करते हैं किंतु इसलिए कि उनके लिए किसी के भी प्राण लेना मना है।"

लूङ्-पई छोस लोग वृक्ष पूजा के साथ पत्थर-चट्टानों की पूजा करते हैं। यह प्रकृति पूजा का ही एक रूप है। पेंसिल सिडार पेड़ों के आगे, जल स्रोतों के आगे पशु बलि दी जाती है। यह रहस्यमयी पूजा निम्न जाति के वर्गों में है जो वहाँ के ठाकुरों तक जा पहुँची। ठाकुर भी ऐसी मूर्तियों की पूजा करते हैं जो न हिंदू हैं न बौद्ध। इन धर्मावलंबियों के अनुष्ठानों में न ब्राह्मण बुलाए जाते हैं, न लामा।

इस धर्म की वार्षिक प्रथा है कि नया घास लकड़ी या सींग की दराती से तब तक काटा जाता है जब तक एक निश्चित दिन बकरा बलि न किया जाए। उसके

बाद ही लोहे की दराती प्रयोग में लाई जाती है। यदि कोई नौकर भी इस निश्चित दिन से पहले लोहे की दराती प्रयोग में लाए तो उसे दंडित किया जाता है।

लाहौल में लिंग पूजा भी एक प्राचीन पूजा पद्धति है। प्रकृति पूजा में स्थानीय देवता तथा भूदेवता ज़ी-डाग (gzhi-bday) तथा सा-डाग (Sa-bdag) भी प्रकृति पूजा के ही रूप हैं।

घेपङ् शिखर तथा घेपङ् देवता भी पुरातन प्रकृति पूजा का ही उदाहरण है। शिशु गाँव में घेपङ् देवता एक लंबे लक्कड़ के रूप में स्थापित है। इस लंबे लक्कड़ को रंग-बिरंगे कपड़ों में लपेटकर रखा जाता है। घेपङ् लाहौल का प्रमुख और धनवान देवता है। इसे मलाणा के जमलू देवता का छोटा भाई माना जाता है। देवता को अपने भाई से मिलाने के लिए मलाणा भी ले जाया जाता है। स्पिति में भी जमलू के स्थान हैं। देवता ग्युंग्डुल भी नाग है। घेपङ्, जमलू या जमलङ् तथा जगथम (बरशैणी-कुल्लू तथा किन्नौर) देवता तीनों भाई-भाई हैं।

घेपङ् की कथा के अनुसार लाहौल घेपङ् द्वारा बसाया गया। घेपङ् के आगमन से पूर्व यहाँ राक्षस रहते थे। घेपङ् ने लद्दाख से आकर बारालाचा पास में राक्षसों से युद्ध किया और अपने साथियों की सहायता से राक्षसों को मारकर यहाँ शांति स्थापित की।

यह कथा आदिकाल का स्मरण करवाती है—घेपङ् अपने साथ जौ और गेहूँ का बीज लाया था जो उसने मुँह में डालकर छिपा लिया था। इसी बीज से यहाँ जौ और गेहूँ उगने लगा।

'घेपङ् का अर्थ धर्म या पुण्य का त्याग है। यह संभवतः इसलिए है कि घेपङ् न हिंदू था न बौद्ध। वह आदि पुरुष था अतः हिंदू या बौद्धों की नज़रों में अधर्मी हो सकता है। यह शब्द कुछ वैसा ही है जैसे आर्यों द्वारा किन्नरों को 'किन्नर' अर्थात् बुरा आदमी कहा गया। 'असुर' शब्द बुरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

घेपङ् एक लोक देवता है जो बलि स्वीकार करता है जबकि बौद्ध बलि प्रथा के विरोधी हैं।

सर्पनुमा लक्कड़ के रूप में स्थपित होने के कारण घेपङ् का संबंध नाग परंपरा से भी हो सकता है। नाग पूजा कुल्लू तथा लाहौल के सीमावर्ती क्षेत्र तथा उधर पांगी की ओर विद्यमान है। तिनन में ग्युंग्डुल एक नाग देवता है।

तोद घाटी में भागा नदी के बाएँ किनारे तिनो कोठी कोलोंग गाँव में पेंसिल सिडार के वृक्ष समूह को ल्हा शुंग कहा जाता है और पवित्र समझा जाता है। यहाँ महिलाओं का प्रवेश वर्जित है और न ही वहाँ पेड़ काटने का कोई हथियार ले जाया जाता है। यह वृक्षों के प्रति सम्मान भाव भी हो सकता है क्योंकि यहाँ वृक्ष एक दुर्लभ वस्तु है किंतु यहाँ महिलाओं का प्रवेश वर्जित होना बौद्ध मंदिरों में भी प्रभावी हुआ है। किन्नौर तथा लाहौल में महिलाएँ मठों के भीतर नहीं जा सकतीं।

घेपङ् के लकड़ी के प्रतीक की भाँति लिंदूर में खोरदेव का मंदिर भी है जिसमें लकड़ी के बने लगभग आधा दर्जन मेढ़े के सिर पूजा के लिए रखे हैं। इस प्रकार मेढ़े के सींग मंदिर के दरवाज़ों पर लगाने की परंपरा कुल्लू में भी है।

जिस प्रकार किन्नौर के लोगों को पहले समय में 'मोन' कहा जाता था और राजधानी कामरू को 'मोने', उसी प्रकार एक लोक कथा में लाहौल में भी 'मोन' लोगों के होने का उल्लेख हुआ है। तिब्बती में नेपाल, भूटान, सिक्किम वासियों को मोन कहा जाता है। मोन लोग किरात थे।

काँगड़ा गज़ेटियर (1883-84) में लाहुल की कुल जनसंख्या 5,860 में से 5,806 हिंदू बताए हैं जो संभवतः मुद्रण की भूल से या अन्यथा गलत आंकड़े हैं। स्पिति की कुल जनसंख्या 2,862 में केवल एक हिंदू बताया है जो सही है। कुल्लू की कुल जनसंख्या 108981 में से 2860 बौद्ध थे। मात्र सात सिक्ख कुल्लू में थे।

लाहौल में विशेषकर मनचात क्षेत्र में (किन्नौर में भी यह परंपरा विद्यमान है) अपने पूर्वजों के नाम से चबूतरे बनाए जाते हैं। ये चबूतरे लगभग हर गाँव में तथा सड़क-मार्गों में देखे जा सकते हैं। इन चबूतरों के पत्थरों में कई बार कुछ आकृतियाँ या मृतक की आकृति बनाई जाती हैं। इन पर झंडियाँ चढ़ाई जाती हैं। इन्हें कोटङ्, शेखार या शकरि कहा जाता है। यह भी एक पुरातन और आदिम परंपरा है।

घेंपङ् की तरह केलङ् या केलांग भी आदि देवता है। केलांग एक देवदार के पेड़ में रहता है जो वर्तमान केलांग की बीचोंबीच है। इस देवता के विषय में एक कथा प्रचलित है कि यह पहले रोज़ एक मनुष्य की बलि लेता था। एक बार एक लामा ने एक बुढ़िया के एकमात्र पुत्र की बलि के बदले अपने को प्रस्तुत किया। लामा ने बलि से पूर्व देवता को स्वयं प्रकट होकर बलि स्वीकार करने को कहा। देवता के ऐसा न करने पर लामा ने देवता की लकड़ी की मूर्ति कुल्हाड़ी से काटकर भागा नदी में फेंक दी। एक रूपांतर के अनुसार देवता गुलाब की जंगली झाड़ी में रहता था। लामा ने झाड़ी उखाड़कर भागा नदी में फेंक दी जिसे पट्टन घाटी में कुछ गद्दियों ने दया कर पकड़ लिया किंतु शर्त यह रही कि देवता मानव बलि न लेकर भेड़-बकरे की बलि लेगा। गद्दी उसे भरमौर ले गए और कुगती में स्थापित किया गया। भरमौर में भी कुछ स्थानों पर केलांग देवता की पूजा होती है।

यह कथा एक पुरातन देवता, जो बलि लेता था, के स्थान पर बौद्ध या लामा धर्म की विजय की कथा है। ऐसी ही कथा एक नाग की भी है जो बलि लेता था। एक गद्दी ने बुढ़िया के पुत्र के स्थान पर अपने को प्रस्तुत कर नाग को चंद्रभागा में फेंक दिया। इस नाग को भी चंद्रभागा से निकालकर पांगी के किलाड़ में स्थापित किया गया।

केलांग देवता भी एक नाग था जिस की मूर्ति या प्रतीक घेपङ् की भाँति लकड़ी का था। कुगती में इसे कालीहर नाग कहा जाता है जो लाहौल से लाया गया।

भरमौर में यह भी कथा है कि केलांग नाग मेढ़े के सींगों पर सवार होकर आया और कुगती में रुका। यह वर्तमान मंदिर से दो मील पीछे ही रुक गया। उसके बाद दरूं में आया जहाँ पानी का स्रोत था।

ये कथाएँ प्रतीकात्मक हैं। लाहौल में लामा ने नाग को उखाड़ फेंका किंतु भरमौर में इसे स्वीकार किया गया और मेढ़े-बकरे की बलि दी जाने लगी। अतः यह पुरातन देव या नाग परंपरा को लाहौल से खदेड़ने की कथा है। चंद्रभागा घाटी से नाग पूजा आरंभ हो जाती है, बौद्ध धर्म का प्रभाव घटता जाता है।

देवता का देवदार या झाड़ियों में वास वृक्ष पूजा की पुरातन पद्धति की ओर भी इशारा करता है।

हिंदू धर्म

हिंदू धर्म का प्रमुख क्षेत्र चंद्रभागा की पट्टन घाटी है। यहाँ कुल्लू, चंबा और भंगाल से आकर लोग बसे।

इस क्षेत्र में कैलास, मानसरोवर, त्रिलोकीनाथ धाम के दर्शन हेतु धर्मयात्री तथा साधु लोग जाते रहे। मूरक्राफ्ट तथा ट्रेकबेक ने भी लाहौल गुज़रते हुए जो साधु देखे, वे त्रिलोकीनाथ जा रहे थे। त्रिलोकीनाथ धाम की स्थापना से यहाँ धर्मयात्री जाने शुरू हो गए। विहंगमणिपाल से समय, जो पाल वंश का प्रथम शासक था, कुल्लू राज्य से एक पंडित त्रिलोकीनाथ धर्मयात्रा पर आया।

पट्टन घाटी की ओर शैव मत प्रभावी रहा। भरमौर में स्थापित शिव मंदिरों का भी यहाँ प्रभाव रहा होगा। पांगी से होते हुए उदयपुर तक जितने भी मंदिर या थान हैं, उन पर त्रिशूल का चिह्न अवश्य है, चाहे वे किसी भी देवता को समर्पित हों। सड़क के किनारे कई जगह धार्मिक स्थानों में त्रिशूल गड़े हैं। महादेव की उपासना यहाँ प्रमुख रही।

मृकुला देवी जैसे महत्त्वपूर्ण मंदिर शक्ति उपासना के उदाहरण हैं। यह देवी उपासना पांगी तक चली गई जहाँ मिंधल माता जैसे पुरातन मंदिर हैं। इसी प्रकार नाग या सर्प पूजा भी यहाँ रही है। इस क्षेत्र में कई नाग मंदिर हैं।

आठवीं शताब्दी में इस क्षेत्र में हिंदू धर्म के साथ बुद्ध धर्म भी मिश्रित होने लगा। बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया गया। हिंदू और बौद्ध के संगम का अद्वितीय उदाहरण त्रिलोकीनाथ है जहाँ मूर्ति तो अवलोकितेश्वर की है, इसे मानते हिंदू तथा बौद्ध दोनों हैं। हिंदुओं के लिए यह त्रिलोकीनाथ धाम है, बौद्धों के लिए अवलोकितेश्वर।

सत्रहवीं शताब्दी तक लाहौल के क्षेत्रों में कुल्लू तथा चंबा के राजाओं का हस्तक्षेप हुआ जिससे हिंदू धर्म का प्रसार हुआ। राजा चंबा द्वारा मृकुला देवी का मंदिर बनाया गया। चंबा के राजा उदयसिंह (1690-1720) ने लगभग सन् 1695 में इस गाँव का नाम उदयपुर रखा। राजा कुल्लू द्वारा यन्फेल के निकट हिडिंबा देवी

मंदिर बनवाया गया। हर तीसरे वर्ष हर कोठी से याक की बलि दी जाने लगी।

हिंदू धर्म के राजाश्रय के प्रभाव का उदाहरण पांगी है जहाँ सभी बौद्ध पर्वतों की ऊँचाइयों की ओर भागे। यहाँ नीचे हिंदू लोग हैं। बौद्ध पर्वतों की ऊँचाइयों पर रहते हैं जिन्हें 'भटोरी' कहा जाता है।

लाहौल में बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव

लाहौल में बौद्ध धर्म कुषाण काल से आया माना जाता है। कुछ इतिहासकारों का यह भी मत है कि सम्राट अशोक के समय से ही बौद्ध धर्म यहाँ था। फ्रैंके ने त्रिलोकीनाथ और गोंधला मठों को नागार्जुन के समय का माना है।

महात्मा बुद्ध गंधार तथा कश्मीर तक आए। तीसरा बौद्ध सम्मेलन सन् 241 ई०पू० में पाटलिपुत्र में हुआ जो महानिर्वाण के 218 या 236 वर्ष बाद माना जाता है। इस सम्मेलन में भारत तथा एशिया में बौद्ध भिक्षु भेजने का निर्णय लिया गया। इस समय गंधार, कश्मीर तथा हिमवत या हिमालय में भी भिक्षु भेजे गए। हिमवत हिमालय का ही क्षेत्र था जहाँ भिक्षु गए। अतः सम्राट अशोक के समय ही तिब्बत तथा लाहौल-स्पिति में बौद्ध धर्म आ गया था। हिमवत की ओर पाँच भिक्षु भेजे गए।

चौथे बौद्ध सम्मेलन (100 ई०) के समय कुषाण राजा कनिष्क ने हिमाचल में स्तूप तथा मठ बनवाए। यह सम्मेलन कश्मीर या जालंधर में हुआ। ज़िला काँगड़ा के खनियारा, पठियार, चैतड़ू चड़ी, लाखा मंडल में कनिष्क के समय के अवशेष पाए जाते हैं और यहाँ बौद्ध मठों की पुष्टि होती है। अतः यहाँ से बौद्ध भिक्षु लाहौल की ओर आए।

ह्यून सांग ने भारत यात्रा (630-644) के दौरान खनियारा, पठियार के बौद्ध मठों के साथ कुल्लू घाटी के मध्य स्तूप तथा पचास बौद्ध मठों का उल्लेख किया है। त्रिगर्त में पचास मठ तथा कुल्लू में बीस मठ थे। जंस्कर में भी कनिष्क चैत्य मौजूद था।

आठवीं शताब्दी में गुरु पद्मसंभव मंडी के रिवालसर में ठहरे। रिवालसर से कुल्लू होते हुए वे लाहौल गए। पद्मसंभव ने यहाँ तांत्रिक वज्रयान की स्थापना की। फ्रैंके ने त्रिलोकीनाथ और गोंधला मठों को नागार्जुन के समय का माना है। चंद्रभागा के संगम पर मिले बोधिसत्त्व को गुप्तकाल या इससे पहले का माना जाता है। यह माना जाता है कि त्रिलोकीनाथ की प्रतिमा में भी वही कला है जो उस बोधिसत्त्व में थी। त्रिलोकीनाथ की अवलोकितेश्वर प्रतिमा भी उसी काल की हो सकती है। चंद्रभागा संगम पर मिली मूर्ति के साथ एक पात्र (मदिरा पात्र) भी मिला है जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। यह पात्र 1857 में मेजर हे को मिला था। इस पात्र के ऊपर महात्मा बुद्ध की शोभायात्रा दिखाई गई है। पात्र को पहली दूसरी शताब्दी का बताया गया है जिससे स्पष्ट है कि यहाँ उस समय बौद्ध मठ था।

तिब्बत में लंग द्रमा (899-902) के दमन पर बौद्ध लाहौल, चंबा और कुल्लू की ओर भागे। उस समय बहुत से धार्मिक ग्रंथ रिवालसर (जोहार) ले जाए गए। ग्यारहवीं शताब्दी में लाहौल लद्दाख राज्य के अंतर्गत आ गया। अतः पूर्णतया लामा धर्म यहाँ प्रभावी हुआ। इसी समय रिन-चेन-ज़ंगपो द्वारा तिब्बत तथा स्पिति में बौद्ध ग्रंथों का तिब्बती में अनुवाद तथा मठों का निर्माण हुआ। लाहौल में भी गुमरङ् तथा छोस-खोर मठ रिन-चेन-ज़ंगपो द्वारा बनाए बताए जाते हैं।

लाहौल में बौद्ध धर्म फैलने पर पढ़ना-लिखना सीखने की परंपरा भी चली। लामाओं को तिब्बत की भाँति प्रशिक्षण दिया जाने लगा। परिवार में सबसे छोटे पुत्र को मठ का काम सौंपा गया। लामाओं द्वारा मठ से कर्त्तव्यों के निर्वाह के अतिरिक्त अध्यापन, कलाकारी, पुस्तकों के लिए छाया तैयार करने का काम भी किया जाने लगा। कुछ लामा वैद्य या हकीम बने। इस तरह लामा धर्म पूरे सामाजिक जीवन का एक अटूट और अभिन्न अंग बन गया।

लारा

लारा लाहौल के देवताओं की कथा है। यह कथा श्री तोबदन से साभार ली गई है। वैसे इस कथा का मूल तिननी सहित अनुवाद हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी की पत्रिका सोमसी (जुलाई 1979 अंक) में प्रकाशन हो चुका है। मूल कथा तोबदन द्वारा श्री गोपीराम पुजारी देवता ग्युंग्डुल (नाग देवता) से कागज पर उतारी गई। यह कथा भोटी में लिखी हुई थी जो तिनन के खोरपापी गाँव में किसी के पास थी। यह ग्लेशियर में बह गई।

यहाँ इस कथा का केवल हिंदी अनुवाद दिया जा रहा है :

पहले लिंग (लाहौल) में देवता नहीं थे। तब ग्युंग्डुल ने कहा कि हम राज करने के लिए यहाँ जाएँगे। भारत से ग्युंग्डुल के साथ सभी देवता अपने साथ सब कुछ लेकर आए। बारालाचे पर पहुँचे तो ग्युंग्डुल बर्फ के बीच में बैठ गए। वहाँ से शेष देवता नफेन-नुफेन पहुँचे। वहाँ एक राक्षसनी ने उन्हें पकड़ लिया और कहा कि तुम लोग मेरी सारी जायदाद लेकर आए हो। इतना कहने पर गेपंग नंगे हो गए और सारी जायदाद को ढेर लगाकर रख दिया। परंतु तीन दाने जौ (नंगा जौ) और तीन भ्रेस बाँस के डंडे में डालकर सड़क से ऊपर गाड़ कर रखा दिया। वहां फिर वे सभी देवता आए। ज़ेमुग पहुँचे तो वह राक्षसनी टाँग इधर-उधर फैलाए खड़ी मिली और वह बोली, "तुम सबको मेरे नीचे से होकर जाना होगा।" वहाँ पर उन्होंने आपस में गिनती की। अंत में सबको देखने के पश्चात् मालूम हुआ कि ग्युंग्डुल नहीं हैं। उन्हें ढूँढ़ने जाने के लिए आपस में सलाह की। तांगजर बोली अगर मुझे कुछ न हुआ तो मैं ढूँढकर लाऊँगी। वह गई। ग्युंग्डुल बर्फ के बीच बैठे हुए दिखाई दिए। तांगजर ने आगे होकर तीन बार प्रणाम किया और 'उठिए' कहकर बर्फ के बीच से उन्हें निकाला।

ग्युंग्डुल ने पूछा "तुम क्यों आई ?" "हम लिंग में शासन करने जा रहे थे। जब ज़ैमुग पहुँचे तो राक्षसनी ने हमारा रास्ता रोक दिया," तांगजर ने उत्तर दिया।

फिर वे दोनों ज़ेमुग पहुँचे। वहाँ पर ग्युंग्डुल ने हथियार उठाकर राक्षसनी पर वार किया और उसको नौ जोत नौ धार पार भगा दिया। वे फिर वहाँ से चले।

प्यूकर पहुँचने पर आदमी की आवाज़ सुनाई दी। आपस में पूछा कि यहाँ पर कौन बसे हुए हैं। तांगजर यहाँ शासन करने के लिए बैठ गई। शेष रंगचा पर पहुँचे। वहाँ गुले (तिनन) से आदमी की आवाज सुनाई दी। मिलंगतेते शासन करने के लिए

वहाँ पर रहे। वहाँ से चले तो स्रिन्पो थोयर आए। मरगिलिंग (मरम्यद) के आदमी की आवाज सुनाई दी। तब ग्युंग्डुल बोले मैं शासन करने के लिए यहाँ रहूँगा। शेष रोगल में पहुँचे। रोपसंग गाँव में तांगजर दोंग (मेलाघर) बस गए। स्रस्रीन में तिगलोगुर, वज़ीर (यह उसकी उपाधि है) बस गए। यांग लिंग में बस गए।

उस दिन भोजन बनाने वाला कोई नहीं था।

उस समय स्रस्रीन में केवल मोन लोग बसे हुए थे। उन देवताओं ने सलाह करके ग्युंग्डुल को बुलाया। उन्होंने बताया कि इन मोन लोगों को भंग का छंग पिलाओ और बिछाने के लिए बिच्छु बूटी दो। ऐसा करके ग्युंग्डुल ने उन्हें पागल बना दिया और वे सभी मोन भागकर चले गए।

ग्युंग्डुल ने कहा हम बैठकर क्या करेंगे, खाने के लिए कुछ भी नहीं है। तिगलोगुर, वज़ीर से बोले हम दोनों माँ से पूछने चलते हैं। ग्युंग्डुल ने एक सोने की अँगूठी बनवाई और फिर उसे आकाश की ओर फेंककर बोले, "असली माँ है तो होर के गोद में गिरेगा।" वह अँगूठी ठीक होर के गोद में गिरी।

माँ की बुरी दशा हो रही : नाक बह रहा था; मुँह से लार टपक रही थी।

ग्युंग्डुल ने माँ को प्रणाम किया तब लाल गाय के दूध तथा सफेद बकरी के दूध से केसर साथ माँ को नहलाया और स्वर्ग की परी की तरह बनाकर बैठाया।

माँ ने (ग्युंग्डुल) से कहा—"तुम नौ देवताओं के बड़े भाई हो। तीन (तीन) साल बाद नौ देवता तुम्हारे पास तुम्हें प्रणाम करने के लिए आया करेंगे।

"मिलंगतेते, तुम (इनसे) एक वर्ष छोटे हो, तुम्हें इनके पास प्रणाम करने के लिए आना पड़ेगा," मिलंगतेते से बोली।

तिंगलोगुर से बोली "तुम वजीर हो, तुम्हें जरी-लथंग (देवता का कर) माँगने चंबा के राजा के पास जाना होगा।"

"तुम छोटे भाई हो, तुम्हें हर वर्ष नौ देवताओं के घर के द्वार खोलने पड़ेंगे," मेलाघर से कहा।

तिंगलोगुर ने पिरोजे की तकलीदानी (जिस पर तकली चलाई जाती है), सोने की तकली और चाँदी के धागे का गोला बनवाया और चंबा को लरी-लथंग लाने चल पड़ा।

चंबा के जोत पर चम्बा के राजा का ग्वाला मिला। उसने पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो?"

"तुम्हारे राजा के पास लरी-लथंग लाने के लिए जा रहा हूँ," वह बोला। "ऐसे बैठकर क्या करेंगे, हम पासा खेलते हैं।"

ग्वाले ने पूछा, "तुम किस चीज़ की बाजी लगाओगे ?"

"मेरे पास सोने की तकली परोज़े की तकलीदानी और चाँदी के धागे का गोला है, उनकों बाजी में लगाऊँगा।" ग्वाले से पूछा, "तुम क्या लगाओगे ?"

"मेरे पास नौ प्रकार के कपड़े और नौ तरह के भोजन हैं, उन्हीं की बाज़ी लगाऊँगा।"

तब उन्होंने खेलना आरंभ कर दिया। वज़ीर सोने की तकली, परोजे की तकलीदानी और चाँदी के धागे का गोला सब ग्वाले को हार गया।

वज़ीर बोला, "दोबारा खेलेंगे। पैर के अँगूठे से लेकर हाथ के अँगूठे तक चीरने की बाज़ी लगाएँगे।" इस बार वज़ीर जीत गया। वह बार-बार छुरी बाहर निकालने लगा।

ग्वाला बोला, "तुम चाहे देवता हो, चाहे आदमी, मुझे मत मारो। चाहे तो सोने की तकली, परोज़े की तकलीदानी, चाँदी का धागे का गोला, नौ किस्म के कपड़े और नौ तरह के भोजन सब ले जा सकते हो।"

वज़ीर बोला, "तेरे नौ कपड़े और नौ भोजन मुझे नहीं चाहिए। तुम जाकर चंबा के राजा से कहो कि मेरी लरी-लथंग दे दे।"

बाद में जब ग्वाला फिर मिला तो उसमें पूछा—तुमने चंबा के राजा से कहा कि नहीं। उसने उत्तर दिया कि वह भूल गया।

वज़ीर बोला, "आज मैं तुम्हारे साथ एक निशानी भेजता हूँ (यादगार के लिए)" एक गोल-सा पत्थर बकरी की सींग से बाँध दिया। ग्वाला बाहर तक भेड़-बकरियाँ ले गया।

तब चंबा की रानी सोने की दोहनी लेकर बकरी दूहने गई। बकरी ने उस पत्थर के साथ सोने की दोहनी उलटा दी। राजा बोले, "ग्वाले को मेरे पास लाओ।" और ग्वाले को मारने के लिए तलवार मँगवाई।

ग्वाला आकर बोला :

"रहे म्यान में तलवार, और राजा आसन पर।"

आगे बोला, "मेरी प्रार्थना है—यह मेरा विचार नहीं, भोटदेव का विचार था।"

वज़ीर जाकर राजस के पानी के नल पर बैठ गया। वहाँ पनियारिन पानी लेने आई और बोली, "ऐ, भोट! भोट! दूर। पानी छोड़।"

वज़ीर बोला, "मैं भोट नहीं हैं, भोट देव हूँ।"

पनियारिन पानी लेकर भीतर गई। वज़ीर ने उससे कहा, "राजा से बोलना, बाहर न निकलें।"

वज़ीर बोला, "मैं तेरा सत्तू खाने वाला नहीं हूँ। मैं तेरा फटा-पुराना पहनने वाला भी नहीं हूँ। राजा से कहो कि वे बाहर निकलें।"

तब भी राजा बिलकुल बाहर नहीं निकले तो वह बोले कि, "क्या मैं हँसूँ ?"

राजा ने कहा, "उसे कहना, जितना चाहे वह हँस सकता है।"

वज़ीर हँसा तो सात सूर्य निकल आए। जड़ी-बूटी, जंगल और आँगन में सब कुछ जला दिया।

"कृपा करें, मैं आपकी शक्ति को मानता हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ।"

"उसने छह सूर्य छिपा दिए। लेकिन तब भी कुछ पता नहीं लगा। "क्या मैं रोऊँ ?"

राजा ने कहा, "रो सकता है।"

वज़ीर रोने लगा। उसके रोते ही ओले पड़ने लगे और आँधी चलने लगी। जंगल-वृक्ष और आँगन से सब कुछ उखाड़ दिया।

तब राजा ने कहा, "उससे कहना कि वह न रोए।" "मैं मानता हूँ।"

राजा ने तब भी आने की खबर नहीं दी। तब वज़ीर ने कहा, "क्या मैं पलटा लूँ।"

राजा ने कहा, "जैसे चाहो तुम उल्टे सीधे हो जाओ।"

उसने पलटा लिया तो सारा आँगन उलट-पुलट कर दिया।

तब राजा बाहर निकले। "ओहो !" बोले, "क्यों नहीं निकलूँगा ? ग्युंग्डुल बड़ा भाई है (देवताओं का) उसे अठारह हिस्से मिलेंगे, मुझे भी अठारह ही मिलेंगे। बाकियों को तीन, चार, पाँच हिस्से मिलेंगे।"

तब चंबा के राजा गुला की कोठी में आए। यहाँ ग्युंग्डुल ने नौ गज़ बर्फ उतारकर राजा को जाने नहीं दिया। राजा ने पूछा, "आषाढ़-सावन में इस प्रकार बर्फ गिराने वाला कौन है ? और कौन इसको पिघला सकता है ?"

लोगों ने बताया कि यहाँ एक नाग रहता है। उसने यह बर्फ गिराया है और वही इसे पिघला सकता है।

"वह नाग कहाँ रहता है ?" तब राजा ने लोगों से पूछा।

"वह सकर में रहता है," लोगों ने बताया। तब राजा वहाँ आया और प्रार्थना की : "नौ दिन और नौ रात में सारा बर्फ खत्म कर दो, मैं अपनी आधी जगह दे दूँगा।"

नौ दिन और नौ रात में नाग ने सारा बर्फ सुखा दिया। राजा छो (रिवालसर) से घूमकर वापस आए। फिर ग्युंग्डुल के पास आकर प्रार्थना की, "तुम बड़े देवता हो, तुम में शक्ति है। अपनी आधी जगह ग्युंग्डुल को देता हूँ।"

लाहौल के देवताओं की यह कथा एक महत्त्वपूर्ण कथा है जिससे मूल देवताओं या राजाओं संबंधी जानकारियाँ मिलती हैं।

लाहौल का प्रमुख देवता गेपंग या घेपङ् माना जाता है जिसे राजा घेपङ् भी कहा जाता है। लोकास्था के अनुसार लाहौल का घेपङ् मलाणा का जमलू या जमलङ् (जमलङ) किन्नौर का जगथम तीनों भाई-भाई माने जाते हैं।

इस कथा में प्रमुख देवता 'ग्युंग्डुल' है जो घेपङ की भाँति तीन दाने जौ और भ्रेस अपने इलाके के लिए लाया। घेपङ् भी जौ के बीच मुँह में छिपाकर लाया था।

लाहौल में इन देवताओं के आगमन से पूर्व 'मोन' लोग रहते थे, यह भी इस कथा में उल्लेख है। इन देवताओं ने घाटी में आने पर मोन लोगों को भगा दिया और राक्षसों से अपना बचाव कर राज्य स्थापित किया।

ग्युंग्डुल की बहन तांगजर देवी है। अन्य देवता हैं : लुंखोद बल (जागला), ड्राबल (शालिंग), मोग (शूलिंग), बोटी (रोपसंग)। पहले ड्राबला राजा था, मोग स्पिति से आया जो आदमी की बलि लेता था। बोटी एक देवी है।

कथा में जिस ग्वाले का उल्लेख है, वह गद्दी था जिसकी बकरी के सींग से गोल पत्थर याददाश्त के लिये बाँधा गया। देवता के वजीर ने चंबा के राजा से नौ तरह के कपड़े और नौ तरह के पकवानों की माँग की। यहाँ नाग का भी उल्लेख है जिसने नौ दिन और नौ रात में सारी बर्फ पिघला दी, नाग जल स्रोतों के स्वामी रहे हैं।

बौद्ध धर्म के प्रतीक

पद्मसंभव द्वारा यहाँ बौद्ध धर्म की तांत्रिक शाखा की स्थापना की गई। तांत्रिक समुदाय को ञिङ्म-पा या निङ्मा कहते हैं। यह पद्मसंभव और शांतरक्षित द्वारा प्रतिपादित यह सबसे पुराना संप्रदाय माना जाता है। ये लोग लाल रंग के कपड़े पहनते हैं। इन्हें लाल टोपी समुदाय भी कहा जाता है। ये पद्मपाणि को गुरु मानते हैं और निर्वाण में विश्वास रखते हैं।

इसी प्रकार एक दूसरा संप्रदाय है जिसे पीली टोपी संप्रदाय कहते हैं जो पीले कपड़े पहनते हैं। बुद्ध को ये शाक्य मुनि कहते हैं और निर्वाण में विश्वास रखते हैं। लामा ग्येलुक्पा जङ्ख्या इसके संस्थापक हैं। दलाईलामा इसी संप्रदाय के हैं और लाहौल के अधिकांश लामा भी इसी संप्रदाय से संबंधित हैं।

महायान और हीनयान दो शाखाएँ बनने पर महायान को राजघरानों या बड़े घरानों का संरक्षण मिला। महायान की और चार शाखाएँ बनीं-गे-लुगपा, कर-ग्युङ्पा, डुग्पा, सक्यापा।

लाहौल में तिब्बत, भूटान के साथ संबंध से लामा धर्म आया। त्रिलोकीनाथ का राणा गुरु घंटाल तथा त्रिलोकीनाथ, दोनों मठों का कारदार था। उसका गुरु भूटान नरेश नवाङ् नमग्याल था। अतः भूटान से लामा आकर इन गोन्पाओं की देखभाल मुख्य लामा के रूप में करता था। दूरी के कारण यह व्यवस्था न चल पाने पर लद्दाख के एक लामा को यह अधिकार दिया गया।

लाहौल की ओर पद्मसंभव का नाम गारज़ा (लाहौल), ज़ोहार (रिवालसर) और गुरुघंटाल (गोंधला) के साथ जोड़ा जाता है। इन गोन्पाओं का उल्लेख उनकी जीवनी पेमा कातङ में हुआ है।

गोम्पा

गोन्पा या गोनपा बौद्ध मठ को कहा जाता है। गोन्पा का एक निश्चित आकार-प्रकार होता है। इस की बनावट भी एक-सी होती है। यद्यपि निचले क्षेत्रों में ऊपर पेगोडा का आकार दिया जाता है जबकि लाहौल स्पिति में छत सपाट ही रहती है।

एक गोन्पा में कई कक्ष होते हैं। गो-खङ, जैलमा, सेर-खङ्, क्यलखोर खङ, कारएब्यून ल्हा-खङ्, ब्रोम-तोन ल्हा-खङ् आदि कक्षों में विभाजित गोन्पा पूरे विधि

विधान से बनाया जाता है। इसमें बज्रधातु मंडल की स्थापना भी उसी निश्चित विधान से होती है। (विस्तृत विवरण ताबो मठ में)।

एक गोन्पा में शाक्य मुनि या बुद्ध प्रतिमाओं सहित प्रमुख लामाओं की गच् प्रतिमाएँ रहती हैं। ये प्रतिमाएँ मिट्टी द्वारा बड़ी कलात्मकता से बनाई जाती हैं। कुछ धातु प्रतिमाएँ भी होती हैं। दीवारों पर आकर्षक चित्रकारी होती है। सहस्रबुद्ध के साथ अनेक बौद्ध देवी-देवताओं के चित्र दीवारों पर उकेरे जाते हैं। कुछ थंका चित्र भी मठों में देखे जा सकते हैं।

पुस्तकालय गोन्पा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक गोन्पा में एक बड़ा पुस्तकालय होता है जिसमें बौद्ध ग्रंथों का भंडार सुरक्षित रहता है। ये ग्रंथ मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—कंग्यूर तथा तंग्यूर। कंग्यूर में 108 तथा तंग्यूर में 200 खंड होते हैं। ताबो के शुग-ल्हा खङ् में फ्रैंके ने पाँच फुट ऊँचा पोथियों का ढेर देखा।

यूँ तो गोन्पा में कई लामा होते हैं किंतु एक मुख्य या गुरु लामा होता है। मुख्य लामा को खाम्पो कहा जाता है। खाम्पो के दो सहायक होते हैं—उज़त और ग्योपा। उज़त का स्थान नंबर दो का है जो खाम्पो की अनुपस्थिती में मठ का कार्यभार संभालता है। ग्योपा मठ की सम्पत्ति की रक्षा करता है।

एक गोन्पा में कई लामा तथा ज़ोमो (भिक्षुणी) रहते हैं। लामाओं को गैरिक वस्त्र पहनने होते हैं तथा सिर मुंड़ाकर रखना पड़ता है। भिक्षुणियाँ भी इसी वेशभूषा में रहती हैं। लामा लोग कई बार अपने घरों में भी चले जाते हैं। भिक्षुणियाँ भी घरों में रहती हैं जहाँ मठों में रहने के लिए स्थान नहीं होता।

मंदिरों की भाँति गोन्पा के नाम भी अपनी भूमि होती है। इस भूमि से प्राप्त आय के साथ ग्रामीण भी अनाज देते हैं। एक गोन्पा के अधिकार क्षेत्र में कुछ गाँव होते हैं जो अनाज देते हैं। श्रद्धालु भी अन्न धन दे जाते हैं। यदि कोई लामा या ज़ोमो किसी कारण मठ छोड़ दे, गृहस्थ बन जाए, तब भी जुर्माना देना पड़ता है। कई बार लामा या ज़ोमो के परिवार जन भी सहायता करते हैं।

गोन्पा में प्रातः और सायं पूजा की जाती है। पूजा के समय छोटी-छोटी कटोरियों में पानी रखा जाता है और सैंकड़ों दीपक जलाए जाते हैं। 'ऊँ मणि पद्मे हूं' के जाप के साथ पानी, मक्खन और जौ के दाने चढ़ाए जाते हैं। मुख्य लामा वज्र तथा घंटी बजाता है। एक बहुत लंबा शहनाईनुमा यंत्र बजाया जाता है और बुगजाल की ध्वनि की जाती है। इन वाद्यों की मधुर ध्वनि के साथ लामा लोग पोथियों से मंत्रोच्चारण करते हैं।

लामा बनने के लिए घर के छोटे लड़के को प्रस्तुत किया जाता है। एक सादे समारोह में मुख्य लामा के समक्ष शपथ दिलाई जाती है। इस समय यह शिशु मात्र पाँच-छह वर्ष का होता है। शपथ के बाद इसे 'ग्याछुल' कहा जाता है। पाप न करना, झूठ न बोलना, हिंसा न करना आदि शपथ टूटने पर ग्याछुल को निकाल दिया जाता

है। दस बारह वर्ष तक ठीक उतरने पर उसे 'गेलोङ्' की उपाधि दी जाती है। गेलोङ (धर्म पर चलने वाला) को लामा बनने में कई वर्ष लगते हैं।

दुङ्ग्युर

'दुङ्ग्युर' भोटी शब्द 'दुङ्-फ्युर' से बना है जिसका अर्थ है दस करोड़। धर्मचक्र या प्रार्थना चक्र में बौद्ध धर्म का मूल मंत्र 'ऊँ मणि पद्मे हूं' भरा होता है। कागज़ों में दस करोड़ मंत्र लिखकर दुङ्ग्युर में भरे जाते है। इसी कारण प्रार्थना चक्र को 'दुङ्ग्युर' कहते हैं।

दुङ्ग्युर को धर्मावलंबी सदा हाथ में घुमाते रहते हैं। जब भी किसी को अवकाश मिलता है, वह इसे घुमाता रहता है। कई धर्मचक्र बहुत भारी होते हैं। चक्र पूरा करने की सूचना के लिए इसमें एक घंटी टँगी रहती है और एक लोहे की छड़। लोहे की छड़ को टकराकर घंटी बज उठती है। अतः चक्र पूरा होने पर घंटी बजती है। घंटी की ध्वनि के साथ-साथ मंत्रोच्चारण भी किया जाता है।

कई जगह घराट की भाँति पानी से चलने वाले दुङ्ग्युर भी बनाए गए हैं। ये निरंतर चलते रहते हैं। इनमें भी चक्र पूरा होने पर घंटी बज उठती है।

हाथ से घुमाने वाले चक्र ताँबे की चादर के बने होते है। इनके ऊपर चाँदी, पीतल की पट्टियाँ लगी होती हैं। रत्न जड़े होते हैं और भी कई तरह की कलात्मक चित्रकारी इसमें की होती है।

ल्हा-खङ्

ल्हा-खङ् का अर्थ देवस्थान है। जहाँ देवता का वास हो उस कक्ष को ल्हा-खङ् कहते हैं। इसीलिए गोन्पा में शुग-ल्हा-खङ् आदि कक्ष होते हैं। पूरा गोन्पा न होने पर ल्हा-खङ् अवश्य वर्तमान होता है।

लवरङ्

गोन्पा में लामा के आवास की व्यवस्था होती है। कई बार स्थानाभाव के कारण गोन्पा में लामा के रहने का प्रबंध नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में लामा गाँव में कोई मकान लेकर अलग रहते हैं। इस आवास को लवरङ् कहा जाता है।

छोरतेन

छोरतेन एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक है जो मठों के पास, गाँव में या गाँव से बाहर देखा जा सकता है।

छोरतेन या छोस्तेन एक बौद्ध स्तूप का ही रूप है जो देखने में बहुत आकर्षक

लगता है। नीचे से वर्गाकार और ऊपर से पिरामिड के आकार के स्तूप के ऊपर चंद्र, सूर्य तथा रत्न की आकृति बनाई जाती है।

एक छोरतेन के निर्माण में बहुत व्यय आता है। यह उस स्थान पर बनाया जाता है जहाँ एक अवतारी लामा का दाह-संस्कार हुआ हो। यदि आम व्यक्ति के दाह-संस्कार के स्थान पर यह बनाया जाए तो उसे 'डुङ्गतने' कहा जाता है।

अतः यह एक प्रकार का समाधि स्थल ही होता है। इसे बनाने के लिए सबसे पहले हथियार डाले जाते हैं जैसे चाकू, कुल्हाड़ी, खुँखरी आदि। इसके बीचोबीच प्राणदंड या मेरुदंड खड़ा किया जाता है। नाड़ियों के रूप में एक ओर कुशा तथा दूसरी ओर खोशंग घास की जड़ें बाँधी जाती हैं। हथियारों के बाद प्राणदंड के साथ अनाज, सूखे मेवे, जड़ी-बूटियाँ भरी जाती हैं। इसके बाद गच या मिट्टी से बनाई प्रतिमाएँ डाली जाती हैं जिनकी संख्या ग्यारह हज़ार तक हो सकती है। बौद्ध धर्म की मूर्तियाँ-बुद्ध अवलोकितेश्वर, पद्मसंभव, तारा आदि मूर्तियाँ इसमें स्थापित की जाती हैं। मूर्तियों को पीले वस्त्र से ढककर धूप की पत्तियाँ डाल दी जाती हैं। इस के बाद बौद्ध ग्रंथ इसमें डाले जाते हैं। कंग्यूर, तंग्यूर तथा अन्य ग्रंथों का संग्रह इसमें भर दिया जाता है। इसके बाद कुछ मुद्राएँ डालकर धूप की पत्तियाँ भरकर जगह पूरी की जाती है। ग्रंथों में चंदन, कपूर, केसर का लेप लगाकर छोरतेन में रखा जाता है।

यह सब डालने के बाद ऊपर से मिट्टी का लेंटर डाल इसे अच्छी तरह बंद कर दिया जाता है। इसके ऊपर तेरह चक्रों वाला 'चुसम खुरलो' बनाकर कलश स्थापित किया जाता है। कलश के ऊपर चंद्र तथा सूर्य की आकृति।

इस प्रकार छोरतेन एक वास्तुकला का प्रतीक ही नहीं अपितु एक भंडार बन जाता है बौद्ध संस्कृति के प्रतीकों का। यह परंपरा एक लामा के प्रति समर्पण भावना के साथ संग्रहण की प्रक्रिया की ओर भी इंगित करती है।

ऊँ मणि पद्मे हुँ

ऊँ मणि पद्मे हुँ—बहुत ही पवित्र मंत्र माना जाता है। संभवतः जब रिन-चेन-ज़ंगपो द्वारा तिब्बती में अनुवाद किया गया तो कुछ ऐसा मूल मंत्र बनाया होगा। संस्कृत से अनुवाद के समय सभी ग्रंथों का रूपांतर तिब्बती या भोटी में हुआ।

यह मंत्र धर्म चक्र, पताकाओं तथा पत्थरों पर लिखा मिलता है। इस मूल मंत्र का उच्चारण पूजा के समय किया जाता है।

बड़े-बड़े पत्थरों पर, दीवारों पर यह मंत्र मोटे अक्षरों में लिखा जाता है। इसके साथ समतल पत्थरों पर यह मंत्र लिखवाकर लोग रखते जाते हैं। इस तरह एक बड़ा ढेर लग जाता है। ऐसा ढेर बौद्ध मठों के साथ देखा जा सकता है। इसे 'मने' कहते हैं।

लाहौल में बौद्ध मठ

ज़िला गणना पुस्तिका 1981 के अनुसार लाहौल में कुल 29 मठ गिनाए हैं जो लामा परंपरा के बाद यहाँ स्थापित हुए।

केवल एक ओठङ् मठ को छोड़कर, जो गे-लुग-पा संप्रदाय का है, शेष सभी डुग्पा संप्रदाय के हैं। सन् 1150 में लाहौल में लद्दाख का आधिपत्य समाप्त हुआ और पश्चिमी तिब्बत में डुग्पा संप्रदाय का उदय हुआ। अतः लाहौल में भी डुग्पा संप्रदाय फैला। लाहौल का अधिक संबंध अब तिब्बत से रहा क्योंकि तिब्बत आना-जाना सुगम था। लामाओं द्वारा (तिब्बती) इस ओर प्रचार नौवीं शताब्दी में ही प्रारंभ हो गया था। भरमौर में तिब्बती शिलालेख इस बात के प्रमाण हैं कि तिब्बती प्रचारक चंद्रभागा घाटी से भरमौर तक पहुँचे। मंडी के जौहार (रिवालसर) में बहुत से धार्मिक ग्रंथ ले जाए गए। बुद्ध धर्म की एक पुरातन पुस्तक में भी गोंधला, जालंधर, नगरकोट, ज्वालामुखी, धूमताला (पाकिस्तान) तीर्थ गिनाए हैं।

गुरुघंटाल गोन्पा

चंद्रभागा संगम तांदी के ऊपर गुरुघंटाल गोन्पा है। तांदी से लगभग चार किलोमीटर चढ़ाई के बाद यह गोन्पा आता है। यह गोन्पा गोंधला गाँव में है।

गोंधला तथा आसपास का क्षेत्र बौद्ध धर्म का एक पुराना केंद्र रहा है। तांदी में अवलोकितेश्वर प्रतिमा का एक सिर भी मिला था। मेजर हे (1857) को यहाँ एक पुराना मदिरा पात्र भी मिला था।

गुरुघंटाल मठ संभवतः लाहौल का सबसे पुराना मठ है। यह पद्मसंभव द्वारा आठवीं शताब्दी में निर्मित बताया जाता है। किंतु मठ का पुननिर्माण होता रहा। तांदी में मिला अवलोकितेश्वर का सिर पहले मठ में स्थापित था। पद्मसंभव ने इस मठ में साधना की। कहा जाता है कि पद्मसंभव ने यहाँ सिद्धि प्राप्त की। 'गोंधला' का तिब्बती में अर्थ 'पवित्र घर' है। गुरु गोंधला ही विकृत होकर गुरु घंटाल बना ऐसा भी विश्वास है क्योंकि गुरुघंटाल का प्रयोग हिंदी में व्यंग्यात्मक ही है।

इस मठ में भी लाहौल के अन्य मठों की तरह डुग्पा संप्रदाय के लामा हैं।

मठ में बुद्ध की काष्ठ प्रतिमा के साथ वज्रेश्वरी देवी, जिसे दोरजेल्हामो कहा जाता है, की प्रतिमा है। यह किन्नौर के रिन-चेन-ज़ंगपो द्वारा स्थापित मानी जाती है।

मठ का स्वरूप निरंतर बदलता रहा है। विसलर ने 19वीं शताब्दी में इसमें

लकड़ी की छत देखी जो मनाली के हिडिंबा मंदिर की भाँति थी। स्नेलग्रूव ने सन् 1958 में इसे लाहौल की सबके उपेक्षित मोनेस्ट्री बताया। सन् 1959 में मठ का जीर्णोद्धार हुआ।

इस समय मठ दो मंज़िला है। निचली मंज़िल में दुःखङ् है। दुःखङ् के पीछे दो छोटे कमरे हैं जो बंद हैं। प्रथम मंज़िल में दुःखङ् के ऊपर लामा का आवास है।

जून के मध्य यहाँ गुरुघंटाल उत्सव मनाया जाता है।

गोंधला गोन्पा के ऊपर एक पवित्र चोटी है जिसे ड्रिल-बु-री कहा जाता है। ड्रिल-बु का अर्थ घंटा है। सिद्ध घंटपा चौरासी बौद्ध सिद्धों में से एक है। अतः गुरु-घंटाल सिद्ध घंटपा माना जा सकता है। गोंधला एक तिब्बती नाम है जिसका अर्थ है बौद्ध गया। अतः गुरु-घंटाल सिद्ध घंटपा और गोंधला बौद्ध गया के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

कारदंग गोन्पा

कारदंग गोन्पा केलांग के सामने भागा नदी के पार है। केलांग से सीधा नीचे उतरकर और भागा नदी पार कर चढ़ाई चढ़ने पर गोन्पा में पहुँचा जा सकता है। अब तांदी से होकर सड़क भी बन गई है किंतु जब मैं वहाँ गया था (1971) तो केवल पैदल मार्ग ही था।

लगभग 3500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित कारदंग गोन्पा का निर्माण उत्तर मध्यकाल में हुआ। निर्माण के बाद सदियों तक यह मठ उपेक्षित रहा। सन् 1912 में कारदंग वासी नोरबू के मन में विरक्ति पैदा हुई और उसने संसार त्याग दिया। उसी ने इस गोन्पा का पुनर्निर्माण किया। सन् 1946 तक नोरबू लामा यहीं गोन्पा में रहे। तिमंजिले गोन्पा में अलग-अलग मूर्तियाँ स्थापित हैं। प्रथम मंज़िल में पद्मसंभव की मुख्य प्रतिमा के साथ अन्य मूर्तियाँ स्थापित हैं। कई कलाकृतियाँ भी यहाँ रखी हुई हैं। दूसरी मंज़िल में पद्मसंभव के साथ नोरबू लामा की समाधि है। तीसरी मंज़िल में बुद्ध स्थापित हैं। मठ में तारा तथा कुछ दूसरे लामाओं की मूर्तियाँ भी हैं। अवलोकितेश्वर की मूर्ति, जिसके ग्यारह सिर, हज़ार हाथ हैं, आकर्षित करती हैं। दीवारों पर बुद्ध के जीवन चरित के कुछ दृश्य तथा तांत्रिक चित्र हैं। यहाँ बौद्ध पोथियों तथा पांडुलिपियों का अथाह भंडार है। कंग्यूर और तंग्यूर सहित अनेक तांत्रिक पोथियों का भंडार यहाँ रखा हुआ है। इतनी पोथियाँ लाहौल के किसी दूसरे गोन्पा में नहीं हैं।

कारदंग गोन्पा एक बौद्ध विहार है जिसमें बाईस लामा तथा आठ जोमो के आवास की व्यवस्था है।

शाशुर गोन्पा

केलांग से लगभग तीन किलोमीटर ऊपर शाशुर गोन्पा स्थित है। इस गोन्पा को सत्रहवीं शताब्दी में लद्दाख के लामा गायत्सो ने स्थापित किया। गोन्पा में

संस्थापक गायत्सो की मूर्ति स्थापित है। मठ के भीतर भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के साथ गुरु पद्मसंभव मैत्रेय दीवंकर की मूर्तियाँ हैं। दो राजकुमारों के मूर्तियों के अतिरिक्त बुद्ध प्रतिमा के साथ डरावनी आकृतियाँ भी बनाई गई हैं। बुद्ध की प्रतिमा बड़े आकार की है। दूसरी मंज़िल में पूजा गृह है जहाँ कंग्यूर और तंग्यूर के ग्रंथ विद्यमान हैं। थंका चित्र भी यहाँ रखे हुए हैं।

यह गोन्पा डुग्पा संप्रदाय का है जिसमें पचास के ऊपर लामा लोग रहते हैं। इस संप्रदाय के लामा लाल टोपी पहनते हैं। गायत्सो की प्रतिमा में उनके सिर पर एक टोपी है। 'ग्रोमचा' या यह टोपी यदि प्रतिमा के सिर से गिर जाए तो कोई विपत्ति आती है। टोपी गिरने पर अशुभ होने की सूचना लामा लोग देते हैं। विपत्ति से बचने के लिए लामा कई तरह का टाणा-माणा भी करते हैं।

तायूल गोन्पा

मनाली-लेह मार्ग पर चढ़ाई चढ़ने के बाद तायूल गोन्पा आता है। यह स्टींगरी के ठीक ऊपर है। लगभग 3,900 मीटर (12,792 फुट) की ऊँचाई पर स्थित तायूल गोन्पा डुग्पा संप्रदाय का है। यह भी सत्रहवीं शताब्दी में संरजंङ् रिंचेन द्वारा स्थापित किया गया। शाशुर गोन्पा की भाँति यहाँ भी चमत्कारी प्रतिमा है। पीतल की इस प्रतिमा को देखकर लामा भावी विपत्ति का पता चलाते हैं। चमत्कारी टोपी की भाँति यह प्रतिमा भी विपत्तियों के प्रति सावधान करती है, ऐसा विश्वास है।

गोन्पा में पद्मसंभव की एक विशाल प्रतिमा है। लगभग पाँच मीटर ऊँची। कमलासन में स्थित मूर्ति छत को छूती है। पद्मसंभव का तांत्रिक रूप इसमें दर्शाया गया है क्योंकि पद्मसंभव ने ही बौद्ध धर्म में इस ओर तंत्रयान स्थापित किया था। पद्मसंभव ने वज्र और मुंडमाला सहित त्रिशूल पकड़ रखा है। पद्मसंभव की भव्य मूर्ति के साथ कुछ छोटी मूर्तियाँ स्थापित हैं। चारों ओर प्रदक्षिणा पथ है जिसमें मणिचक्र बने हुए हैं। मठ में कंग्यूर की पोथियाँ रखी हुई हैं। छम्म नृत्य में प्रयुक्त कुछ मुखौटे भी मठ में विद्यमान हैं।

लाहौल में मठ

क्र०	गाँव	मनाली से दूरी	टिप्पणी
1.	लिंडुर	119	ग्राम मठ
2.	केलांग	115	शैशुर गोन्पा
3.	बोकार	118	ग्राम मठ
4.	गुमरंग	120	रिन-चेन-ज़ंगपोद्वारा स्थापित माना जाता है
5.	तायुल	123	पद्मसंभव द्वारा स्थापित
6.	तिन्नो	130	ग्राम मठ

7.	केलोंग	130	ग्राम मठ
8.	खंगसर	131	ग्राम मठ
9.	गैमूर	132	ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी का मठ
10.	जिस्पा	139	ग्राम मठ
11.	तिंगल	139	ग्राम मठ
12.	दारचा दोंगमा	141	ग्राम मठ
13.	लपचांग	117	ग्राम मठ
14.	ठोला प्यासु	119	ग्राम मठ
15.	ठोलिंग	120	रिन-चेन-ज़ंगपो द्वारा स्थापित माना जाता है
16.	प्युकर	121	ग्राम मठ
17.	गाजंग	113	ग्राम मठ
18.	कारदंग	114	लामा नोरबू लामा द्वारा 1912 में पुनर्निर्मित।
19.	टुपचिलिंग	108	पद्मसंभव द्वारा स्थापित गुरु-घंटाल मठ
20.	दालंग	100	ग्राम मठ
21.	गोंधला	96	ग्राम मठ
22.	खिनंग	96	ग्राम मठ
23.	शाशीं	86	घेपन मठ
24.	जगदङ्	86	घेपन मठ
25.	लबरङ्	86	ग्राम मठ
26.	चोखुर	87	ग्राम मठ
27.	टेलिंग	80	ग्राम मठ
28.	दम्फुङ्	71	ग्राम मठ
29.	ओठंग	131	लाहुलघाटी में गे-लुग-पा का एक मात्र मठ

स्पिति घाटी में मठ

क्र०	गाँव	मनाली से दूरी	टिप्पणी
1.	लोसर	146	ग्राम मठ
2.	हंसा	162	नया मठ जिसके आधार तल में जमलू का मंदिर है
3.	रंगरिक	194	द्रोमतोन द्वारा स्थापित मठ के अवशेष

4.	की	206	विशाल मठ
5.	किब्बर	214	ग्राम मठ
6.	काज़ा	202	ग्राम मठ (साक्या पा संप्रदाय)
7.	कोंग	197	ग्राम मठ
8.	केलिंग	202	ग्राम मठ
9.	कोमिक	207	ग्राम मठ
10.	हिकिम	210	साक्या पा समुदाय मठ, नोनो द्वारा स्थापित
11.	लांग्जा	216	ग्राम मठ
12.	लारा	205	ग्राम मठ
13.	लिदंग	210	ग्राम मठ
14.	डोमाल	222	ग्राम मठ
15.	संगलुंग	224	ग्राम मठ
16.	रामा	229	ग्राम मठ
17.	ल्हा-लुन	226	रिन-चेन-ज़ंगपो द्वारा स्थापित
18.	ढंक्खर	232	प्राचीन मठ
19.	माने गोन्पा	227	ग्राम मठ
20.	माने गोन्पा	229	ग्राम मठ
21.	ताबो	244	रिन-चेन-ज़ंगपो द्वारा स्थापित
22.	ग्यू	245	ग्राम मठ
23.	कैरिक	257	ग्राम मठ

पिन घाटी में स्थापित सभी मठ निंगमा-पा संप्रदाय के हैं जो पद्मसंभव द्वारा स्थापित माने जाते हैं :

24.	तंगटी	234	ग्राम मठ
25.	फार	236	ग्राम मठ
26.	गुंगरी	236	ग्राम मठ (प्राचीन मठ)
27.	सगनम	239	ग्राम मठ
28.	तोदगम	295	ग्राम मठ
29.	टिलिंग	247	ग्राम मठ
30.	मद	251	ग्राम मठ

स्पिति घाटी के सभी मठ गे-लुग-पा संप्रदाय के हैं।

महत्त्वपूर्ण स्थल

वारालाचा ला

वारा लाचा दर्रा जिंगजिंगबार तथा लिंगटी के बीच 16,221 और 16,500 फुट के बीच है। यह जून से अक्तूबर के बीच खुला रहता है। इस दर्रे में अंतिम पड़ाव 14,400 फुट की ऊँचाई पर जिंगजिंगबार है।

जांस्कर ला

जांस्कर ला या शिंगो ला 16,772 फुट की ऊँचाई पर है। यह लाहौल तथा जांस्कर के बीच व्यापारियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता था।

गोंधला तथा केलांग के बीच गूंथल दर्रा है जो 14,993 फुट ऊँचा है। गोंधला की ओर से चढ़ना सुगम है किंतु केलांग की ओर उतरना कठिन है।

चंद्रभागा घाटी से नदी के बाईं ओर बड़ा भंगाल तथा कुगति दर्रे हैं। दोनों दर्रे 17,000 फुट ऊँचे हैं। बुशहर के सुमरा तथा स्पिति की लरी के बीच का दर्रा 14,000 तथा 15,000 फुट के बीच ऊँचा है। एक दर्रा बुशहर तथा स्पिति के गाँव मनी के बीच है जिसे मनीरंग दर्रा कहते हैं जो मई तथा अक्तूबर के बीच खुला रहता है। वांगतू से स्पिति के प्रथम गाँव (पिन घाटी) के बीच भी दर्रा है जो मई से अक्तूबर तक खुला रहता है। इसका प्रयोग बुशहर तथा स्पिति के व्यापारी करते थे।

पुरंग ला 19,132 फुट की ऊँचाई पर है। कनिंघम ने इसकी ऊँचाई 18,502 फुट बताई है। यह बहुत कठिन दर्रा है। यह स्पिति के गाँव खैबर और लद्दाख के बीच है। यह दर्रा लद्दाख, बुशहर और स्पिति के व्यापारियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता था। शिमला से ले जाने वाले यात्री भी यहीं से जाते थे। यह जून से अक्तूबर तक खुला रहता है किंतु बहुत खतरनाक है। यहाँ तूफान आता है और जानलेवा हवाएँ चलती हैं।

कुंजम-ला

कुंजम-ला या कुंजम-दर्रा लाहौल घाटी से स्पिति को जोड़ने वाला दर्रा है। किंतु अपनी 4,590 मीटर की ऊँचाई के कारण यह ज़िले के दो भागों को जुलाई से अक्तूबर तक मात्र चार महीनों के लिए ही जुड़ने देता है। इसकी ऊँचाई रोहतांग (3,976 मीटर) से कहीं ज़्यादा है।

माना जाता है कि कुंजम नाम 'किम' अर्थात् आई बैक्स और 'जोम्म' अर्थात् झुंड से पड़ा। आई बैक्स यहाँ बहुतायत में होते हैं। आई बैक्स बर्फ का जीव है। लाहौल में यह बहुतायत में पाया जाता है। लाहौल में इसे 'किन' कहा जाता है। यह बर्फ की ऊँचाइयों वाले प्रदेश में रहता है।

कुंजम-ला के ऊपर कुंजम देवी का मंदिर है। पहले यह मंदिर खुले में था। जैसे रोहतांग दर्रे पर पहले व्यास कुंड खुले में था, बाद में मंदिर बन गया। वैसे ही यहाँ अब कुंजम देवी का मंदिर बन गया है। मंदिर में सिक्के चढ़ाए जाते हैं। कहा जाता है जिस व्यक्ति का चढ़ाया सिक्का देवी की काले पत्थर की मूर्ति में चिपक जाए, वह धर्मात्मा होता है। कुंजम देवी को द्रौपदी भी कहा जाता है। हर बर्फ भरे दर्रे पर यह विश्वास है कि पांडवों सहित द्रौपदी यहाँ बर्फ में गलकर मरी होगी। अतः देवी का मंदिर बना।

रोहतांग की भाँति कुंजम पास के आसपास भी बर्फ पिघलने पर कई तरह के रंग-बिंरगे फूल खिलते हैं। हरी-हरी कोमल घास निकलती है। कई तरह की जड़ी-बूटियाँ यहाँ पाई जाती हैं।

चंद्रताल

चंद्रताल, जहाँ चंद्रा नदी पास से निकलती है, कुंजम से लगभग सात किलोमीटर है। कुंजम से ही दाईं ओर चंद्रताल के लिए मार्ग है। झील के दर्शनों के लिए गर्मियों में कई यात्री आते हैं। गद्दी लोगों का तो यह रास्ता ही है। उनकी भेड़ें गर्मियों में यहाँ की नर्म और ताकतवर घास चरती हैं।

चंद्रताल झील का पानी स्वच्छ और पवित्र है। झील के पानी में साफ प्रतिबिंब दिखता है। सर्दियों में यह झील जमी रहती है। चंद्रा नदी झील से निकलकर पास ही बहती है। झील किलोमीटर के लगभग लंबी है और आधा किलोमीटर चौड़ी। इतनी बड़ी झील इतनी ऊँचाई पर होना एक आश्चर्य है। झील 4,280 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।

लोक विश्वास है कि इस निर्मल झील में परियाँ नहाने आती थीं। एक बार एक गद्दी एक परी के प्रेम में डूब गया। परी भी उसे प्रेम करने लगी। दोनों प्रेमी कई दिनों तक झील में रहे। झील के मध्य वे 'समुंदरी टापू' में रहते थे। समुंदरी टापू झील के भीतर है जहाँ पहुँचा नहीं जाता।

शिगड़ी हिमनद

कुंजम की उतराई में महत्त्वपूर्ण स्थान है शिगड़ी हिमनद। यहाँ बड़े-बड़े हिमनद हैं जो सदियों से अजगर की भाँति गहरी नींद सोए हैं। आसपास के हिमनदों में शिगड़ी सबसे बड़ा है। यह ग्यारह किलोमीटर लंबा है और 3,960 मीटर से 4,570 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। इस हिमनद को सन् 1906 में एच० वाकर और ई०एच०

पासको ने देखा। ये भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग से संबंधित थे। इस हिमनद को चीनी यात्री ह्यूनसांग ने देखा। हारकोट ने भी इसका उल्लेख किया है। इस क्षेत्र में एक छोटा शिगड़ी है, एक बड़ा। बड़ा शिगड़ी न जाने कब से जमा है और नीलम या मणियों में बदल गया है किंतु इसे पूरी तरह देखा किसने!

वास्तव में इस क्षेत्र में कई छोटे बड़े ग्लेशियर हैं जो कभी टूटते हैं तो नदी के बहाव को रोक लेते हैं। कभी चंद्रा नदी रुककर झील भी बन जाती है। हारकोट ने अगस्त 1869 में शिगड़ी ग्लेशियर के ऊपर 3,648 कदम गिनकर यात्रा की। उनके अनुसार ग्लेशियर धीरे-धीरे नीचे होता जा रहा था।

बारालाचा से ही चंद्रा नदी निकलती है। बारालाचा की ऊँचाई 4890 मीटर है। यह केलांग से लगभग 76 किलोमीटर है। बारालाचा के एक ओर दक्षिण-पूर्व से चंद्रा, उत्तर पश्चिम से भागा और उत्तर से यनम नदी निकलती है।

गोंधला किला

केलांग से अट्ठारह किलोमीटर पहले चंद्रा के दाएँ किनारे गोंधला है। यहाँ गोंधला किला नाम से भव्य भवन है जो ठाकुरों का निवास रहा है। कुछ वर्ष पहले तक यहाँ ठाकुर फतेहसिंह रहते थे। वे बताते हैं कि यह बीस पुश्तें पहले बना है।

'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में उल्लेख है कि सन् 1780 के लगभग राजा मानसिंह बारालाचा की ओर बढ़ा और लद्दाख में लिंगटी तक सीमाएँ बढ़ाईं। उसने गोंधला किला बनवाया और गोंधला परिवार की कन्या से विवाह किया।

हारकोट ने इस भव्य बिल्डिंग का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि यह लाहौल का सबसे बड़ा भवन है और बनावट में विशिष्ट है। यह मिट्टी, पत्थर और लकड़ी द्वारा मजबूती से बनाया गया है। भवन में इतने कमरे हैं कि इसमें सौ आदमी रह सकते हैं। भवन एक टावर की भाँति जिसमें छह या सात मंज़िलें हैं। इसमें एक कमरा हारकोट को दिखाया गया जो राजा मानसिंह (1720) द्वारा त्रिलोकीनाथ की यात्रा के समय रसोई के रूप में प्रयोग किया जाता था। इस कमरे की एक कड़ी में नागरी लिपि में एक लेख था जो धुएँ से काला होने के कारण पढ़ा नहीं जा सका। दो कमरे भगवान् बुद्ध को समर्पित हैं। एक बाहरी कमरा हारकोट के आने के समय खूब साफ कर रखा था। इसमें दीवारों पर चित्र (संभवतः थंका) थे और एक जोड़ी ढोल रखे थे। भीतर का कमरा भी साफ-सुथरा था जिसमें खूब धूप जलाया हुआ था। यहाँ पर्दे के पींछे मूर्तियाँ रखी थीं।

गोंधला का यह किला गोंधला तथा आसपास के क्षेत्र पर राज्य करने वाले गोंधला शासकों द्वारा आवास तथा किले के रूप में प्रयुक्त होता रहा।

यह चैहणी कोठी के टावर की तरह निर्मित है, नीचे से ऊपर तक एक समान चौड़ाई और सबसे ऊपर एकमात्र छत।

हारकोट ने किले में एक खुली अलमारी भी देखी जिसमें संभवतः टेराकोटा आकृतियाँ थीं। यह बहुत ही कलात्मकता और उत्कृष्टता का नमूना थीं। यह कलाकृति स्थानीय न होकर ल्हासा से लाई गई प्रतीत होती थीं। बौद्ध धर्म में पूजा के समय प्रयोग होने वाली घंटियाँ तथा काँसे के उपकरण लद्दाख के रास्ते नेपाल से लाए गए होंगे। बाद में इसे हारकोट ने खरीद लिया और इंग्लैंड संग्रहालय में रखवा दिया।

गोंधला किला 3160 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। ऐसी भव्य बिल्डिंग इस क्षेत्र में और कहीं नहीं है। किले की सात मंज़िलें हैं जिनमें पाँच ज़मीन के ऊपर नज़र आती हैं। किला वास्तु शिल्प की दृष्टि से अद्वितीय है। पाँचवीं मंज़िल में ठाकुर स्वयं रहा करते थे जहाँ से वे प्रजा की पुकार सुन न्याय करते थे।

ठाकुर के पास एक तलवार है जिसे 'बुद्धिमत्ता की तलवार' कहा जाता है। यह ठाकुर फतेहसिंह के पूर्वजों को दलाईलामा ने दी है।

किले का मुख्य द्वार अब बंद कर दिया गया है। कई स्थानों पर इसकी कलाकृतियों से भरपूर काष्ठ गिर रहे हैं। जगह-जगह से लकड़ी, मिट्टी गिरने लगी है।

किले में 'कंग्यूर' की पोथियों के अतिरिक्त पुराना फर्नीचर, हथियार और कई दस्तावेज हैं। मंदिर में कई पुरानी मूर्तियाँ हैं जो तिब्बत और ल्हासा से लाई गई हैं।

अब यह किला खंडहर हो गया है जिसमें कोई नहीं रहता। वर्ष 2005 में इसे प्रदेश के भाषा-संस्कृति विभाग द्वारा खरीद लिया गया।

गोंधला गाँव में एक गोन्पा भी है। गोन्पा में लकड़ी पर सुंदर नक्काशी की गई हैं। जुलाई मास में यहाँ मेला लगता है। गोंधला के देवता का रथ घेपङ् के रथ की भाँति एक लंबे शहतीर के रूप में हैं। देवता का नाम मिलान लेते है।

राहुल सांकृत्यायन ने लाहौल के प्राकृतिक दृश्य तथा नदी पर्वतों का उल्लेख इस प्रकार किया है :

"लाहुल का प्राकृतिक दृश्य अद्‌भुत है, जहाँ चंद्रभागा के किनारे हरे-भरे जंगल हैं, वहाँ हरेक गाँव के पीछे दूर या नज़दीक हिमानियाँ और सनातन काल से हिमाच्छादित शिखर हैं। यहीं पर घास की ढलानें हैं, जिनको देखने के लिए स्विट्ज़रलैंड जाने की जरूरत नहीं है। वृक्ष-वनस्पति वाले भू-भाग में तरह-तरह के वृक्ष और झाड़ियाँ हैं।

चंद्रा और भागा नदियाँ लाहुल के सबसे निम्न स्थान (पट्टन) में मिलती हैं, तब से उनका नाम चंद्रभागा पड़ जाता है। चंद्रभागा की उपत्यका लाहुल का सबसे उर्वर और आबाद इलाका है। भागा नदी बड़ा लाचा जोत से निकलकर दक्षिण की ओर कितनी ही दूर तक बह लेने के बाद दक्षिण-पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। इसकी ऊपरी उपत्यका नंगी, वृक्ष-वनस्पतिहीन है, दार्चा (दार्-चै), यो-चै तथा कादोदोक्पो (ज़ांस्कर छू) के संगम पर 11500 फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। बड़ा-लाचा से

उतरने के बाद यही पहला गाँव मिलता है। इसके अधिकतर खेत नदी के बाएँ किनारे हैं। आगे अपनी शाखाओं को दोनों किनारों पर लेते भागा कोलंग और क्येलंग गाँवों के पास से गुज़रती तांदी में चंद्रा से मिल जाती है। इसके बाएँ किनारे से आ मिलने वाली बारबोग और करदङ् की नदियाँ है। भागा 40 मील लंबी है और प्रतिमील 125 फुट के हिसाब से नीचे गिरती है। लाहुल का सदर मुकाम तथा उसका सबसे बड़ा गांव क्येलंग इसी के दाहिने किनारे है। घंटाल (गुरुघंटाल) से कुल्लू-लद्दाख-सड़क पहले भागा के बाएँ किनारे फिर क्येंलंग के पास दाहिने किनारे हो जाती हैं। क्येलंग से ऊपर जिस्पा और पत्सेव के डाकबंगले हैं। चंद्रा नदी बड़ा लाचा जोत की दक्षिण-पूर्वी विशाल हिमानियों से निकलती है और अपने उद्गम से एक मील पर ही इसकी धार इतनी गहरी और बड़ी हो जाती है कि उसे पैदल पार नहीं किया जा सकता। आगे स्पिति की सीमा बनाने वाली कुन-जोम पर्वतश्रेणी को बाएँ छोड़ती दक्षिण की ओर चलती है। बाएँ किनारे पर घास की ढलानें हैं, जो वर्षा के दिनों में मेषपालों से आबाद हो जाती हैं। कुछ नीचे जाने के बाद घास के मैदान में अवस्थित 6 फर्लांग लंबा और 3 फर्लांग चौड़ा चंद्रा-ताल मिलता है। इसका पानी चन्द्रा में जाता है। फिर दक्षिण-पश्चिम की ओर 30 मील जाने के बाद यह एकदम पश्चिम की ओर मुड़कर 40 मील तक जा तांदी में भागा से मिल जाती है। चंद्रा के बाएँ तट के पहाड़ सीधे खड़े और नंगे हैं, लेकिन दाहिने किनारे खोक्सर तक बहुत-सी अच्छी-अच्छी घास की चरागाहें हैं। खोक्सर से 14 मील ऊपर यारी खोक्सर का एक गाँव था, जो अब उजड़ गया है। खोक्सर में चंद्रा के बाएँ किनारे तट से कुछ ऊपर डाकबंगला है, और यहीं कुल्लू से आने वाले चंद्रा को पुल से पार करते हैं। यही चंद्रा का पहला पुल है। आगे दाहिने किनारे तक कितने ही गाँव हैं, जिनमें से कुछ रास्ता छोड़कर ऊपर पड़ते हैं। सीसू से गोंदला तक की ज़मीन बड़ी उर्वर और खेती के योग्य है, लेकिन बायाँ किनारा नंगा और वृक्ष-वनस्पतिहीन है। गोंदला के नजदीक जाते गाँव बड़े-बड़े और घर भी अच्छे-अच्छे मिलने लगते हैं। गोंदला के सामने दक्षिण में सारी पर्वतश्रेणी (20000 फुट) है। एक जगह नदी से पहाड़ 4000 फुट सीधा खड़ा है। संसार में यह अपनी तरह का अद्वितीय पहाड़ है। गोंदला के सामने के बाएँ किनारे में कुछ कैल के दरख्त दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि वह जंगल का रूप नहीं लेते। दोनों नदियों के संगम के पास की पहाड़ी पर सड़क के ऊपर लाहुल का सबसे बड़ा बौद्ध विहार (गुरुघंटाल) है। चंद्रा-शिगरी का संगम दाहिने किनारे होता है, हिमानियों से निकलकर दो नदियाँ शिगरी से नीचे आकर चंद्रा से मिलती हैं।

चंद्रभागा नदी-इस नाम को सुनते ही पालि भाषा का पद्य याद आता है– 'चंद्रभागाय नदिया अहोसिं किन्नरी तदा।' चंद्रभागा नीचे जाकर चनाब के नाम से मशहूर है, लेकिन ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दी के आसपास इस श्लोक की किन्नरी मैदान की नहीं, बल्कि पहाड़ की किन्नरी थी। कनौर या कनावर (महासू की चिनी

तहसील), कुल्लू के रूपी वाले कनावर तथा कुल्लू-लाहुल और चंबा-लाहुल की बुनन, मनचद आदि भाषाएँ यदि किन्नर से अपना संबंध बतलाती हैं, तो लाहुल के पुराने लोग किन्नर के नाम से परिचित थे। यहाँ संगम पर चंद्रभागा 9500 फुट की ऊँचाई पर बहती है और लाहुल की सीमा में बहती 16 मील की दूरी में 500 फुट नीचे उतर जाती है। चंद्रभागा की उपत्यका ही यहाँ की सबसे आबाद भूमि है। इसके दोनों किनारों पर बहुत-से गाँव और खेत हैं। 'चकमा नाला' उत्तर से आकर खिरौत गाँव के पास चंद्रभागा में मिल जाता है।

भूतत्त्व की दृष्टि से चंद्रा के दक्षिण-वाहिनी होने के समय दोनों ओर के पहाड़ पुराजीवक या कैंब्रिय-युग के हैं, जो बड़ा लाचा से आगे तक चले गए हैं। चंद्रा जहाँ उत्तर-पश्चिम वाहिनी है, वहाँ चंबा के कितने भागों को लिए पुरा-पाषाण या प्राक्‌कैंब्रिय युग के पहाड़ हैं। बीच में स्फटिन या सबसे पुराने चट्टानों की एक पट्टी कुल्लू से आकर रोटंग डांड़े के उत्तर कोलंग से होती पतसेव को दाहिने छोड़ती चली गई है।

एक विशेष बात यह कि लाहुल में बहुत तरह की खनिज-संपदा की संभावना है। चंद्रा और चंद्रभागा के बालू को धोकर सोना तो निकाला ही जाता है। ये दोनों नदियाँ लाहुल के भीतर से ही निकलती हैं, इसलिए सोने की मातृका भी यहीं कहीं होगी।

उत्तुंग हिमालय की रुकावट के कारण बरसने वाले बादल यहाँ बहुत कम पहुँच पाते हैं, इसलिए वर्षा की यहाँ कमी है। जून से सितंबर तक के सारे वर्षाकाल में, जब भारत की दूसरी जगहों पर सौ या इनसे अधिक इंच वर्षा होती है लाहुल के हिस्से में सिर्फ 6 इंच वर्षा होती है। इसका बदला जाड़ों और बसंत में ज़रूर मिलता है, जबकि दिसंबर से मई तक 16 इंच के करीब हिमवृष्टि होती है।"

लाहौल स्पिति के लोकनृत्य

लाहौल स्पिति तथा किन्नौर के लोकनृत्यों में यद्यपि समानता है तथापि स्पिति तक आते आते कुछ भिन्नता आती जाती है। स्पिति का क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से पूर्ण मरुस्थल है तो धार्मिक दृष्टि से भी पूर्णतः बौद्ध है। वेशभूषा में अंतर के साथ लोकवाद्यों में भी अंतर आता जाता है। स्पिति आकर लोकवाद्य कम हो जाते हैं। लाहौल में मुख्य साज बाँसुरी और नगाड़ा या ढोल रह जाता है। लाहौल से आगे पांगी तक पहुँचते बस एक ढोल ही वाद्य शेष रह जाता है। लाहौल में बाँसुरी तथा नगाड़े के साथ ही नृत्य चलता है जबकि किन्नौर में साज बाज अधिक हैं।

लाहौल के कुछ लोकनृत्यों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है :

ज़ोमे नृत्य

यह महिलाओं द्वारा किया जाने वाला नृत्य है। महिलाएँ घेरा बनाकर नृत्य करती हैं। स्थानीय वाद्यों की धुन पर एक दूसरे का हाथ थामे नृत्य किया जाता है। महिलाओं के साथ युवा व बालक भी नृत्य करने लग जाते हैं।

शैनि और शब्बू नृत्य

शैनि नृत्य वास्तव में बौद्ध विहारों में किया जाता है। महात्मा बुद्ध की प्रतिमा के आगे यह नृत्य होता है जबकि शब्बू नृत्य बौद्ध विहारों के बाहर भी किया जा सकता है। इस नृत्य में बौद्ध विहारों में रखा कोई वाद्य नहीं बजता, केवल बाँसुरी और नगाड़ा बजाया जाता है।

मकर नृत्य

मकर नृत्य तिब्बती नृत्य की भाँति है जिसमें नर्तक लंबे चोगे पहनते हैं जिनके बाजू लंबे और आगे लटके हुए होते हैं। इस नृत्य में नर्तक का पूरा शरीर ढका रहता है। नर्तक पग संचालन के साथ वाद्यों की धुन पर नृत्य करते हैं।

यह नृत्य एक कथा पर आधारित है। स्पिति में लंगदर्मा एक अत्याचारी शासक था जो बौद्ध धर्म का विरोधी था। लंगदर्मा ने कई बौद्ध विहार नष्ट किए, भिक्षुओं को मार डाला। राजा ने एक विजय उत्सव मनाया जिसमें मकर नृत्य हुआ। एक नर्तक ने अपने कपड़ों में छुरा छिपा रखा था। अवसर मिलते ही उसने राजा को मार डाला।

शैन नृत्य

इस नृत्य की विशेषता यह है कि इसमें संगीत नहीं होता। बिना किसी वाद्य यंत्र के नर्तक धीमी गति से नृत्य करते हैं। नृत्य में एक दूसरे का बाजू पकड़कर गोलाकार नाचा जाता है।

शीनी नृत्य

शीनी नृत्य शैन नृत्य की ही तरह है। यह नृत्य नाचते हुए और गाते हुए जोर से ताली बजाई जाती है।

मूकर नृत्य

इस नृत्य में महिला तथा पुरुष अलग-अलग नाचते हैं। यह नृत्य बहुत धीमी गति का है। नृत्य में लोकनाट्य के प्रयोग के साथ गीत भी गाए जाते हैं। यह नृत्य घर में तथा बाहर दोनों जगह किया जाता है।

बुकुम नृत्य

बुकुम नृत्य लामाओं द्वारा किया जाता है। लोकवादकों के साथ इस नृत्य में लोक गीत तथा नृत्य गीत भी गाए जाते हैं।

जबरू नृत्य

यह नृत्य लोकवादकों के बिना ही चलता है। पीठ पीछे हाथ पकड़े नर्तक पंक्ति में नाचते हैं। नृत्य में पुरुष तथा महिलाएँ आधी-आधी पंक्तियाँ बनाकर नाचते हैं। गीत की एक पंक्ति महिलाओं द्वारा गाई जाती है, पुरुष इस गीत का उत्तर देते हैं।

ग्रीफी नृत्य

ग्रीफी नृत्य में भी महिला तथा पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं। एक गोल घेरे में नृत्य किया जाता है। लोकवादकों के रूप में ढोल और बाँसुरी बजाए जाते हैं। यह एक पुराना नाच है।

बुछैन

बुछैन एक धार्मिक परंपरा है जो लोक नाट्य कहा जा सकता है। बुछैन परंपरा दूसरे स्थानों में अब कम हो गई है किंतु सगनम में विद्यमान है। सगनम स्पिति की पिन घाटी में है। सगनमवासी स्पिति के मूल वासी माने जाते हैं। यह घाटी बिलकुल कटी हुई है और इसी कटाव के कारण ये लोग आज भी आदिवासी प्रतीत होते हैं। सगनम गाँव में ही आसपास के लोगों को मिलाकर आठ-दस बुछैन ही शेष हैं जो यह

परंपरा निभा सकते हैं।

बुछैन नाट्य केवल इन्हीं लोगों द्वारा किया जाता है अतः बुछैन नाट्य कहा जाता है इसमें मुखौटा नृत्य के साथ-साथ धार्मिक या तांत्रिक अनुष्ठानों सहित कुछ चमत्कारिक नृत्य दिखाए जाते हैं।

बुछैन का आरंभ शंख ध्वनि से होता है। यह नाट्य गाँव में किसी खुले स्थान में किया जाता है। शंख ध्वनि से पहले प्रार्थना भी की जाती है। खुले में एक ऊँचे स्थान पर 'थाङ्-स्तोङ् ग्यालपो' की मूर्ति रखी जाती है। ये मूर्ति अष्टधातु की होती है। अमृत पात्र थामे यह मूर्ति बुद्ध की होती है। इस मूर्ति के साथ दो मूर्तियाँ और रखी जाती हैं, एक अवलोकितेश्वर क़ी और दूसरी दोर्जे-छङ् की। एक त्रिशूल तथा घंटी भी रखी जाती है। मूर्तियों के आगे सात कटोरियों में जौ, धूप, पुष्प, जल आदि रखकर दीप प्रज्वलित किया जाता है।

शंख ध्वनि के बाद मंच के बीचों एक भारी पत्थर रख दिया जाता है। पत्थर की पूजा कर उसे धूप दीप दिया जाता है। अब लामाओं का नृत्य आरंभ हो जाता है। विभिन्न मुखौटे पहने लामा लोग नृत्य करते हैं। यह नृत्य धीमी गति का और छम्म नृत्य की भाँति होता है। इन लोगों के वस्त्र लामाओं की तरह आकर्षक या चमकदार नहीं होते। नृत्य के बीच मजाक द्वारा दर्शकों को रिझाया जाता है। इन द्वारा पहने गए मुखौटे बहुत आकर्षक होते हैं। कुछ मुखौटे 'स्वांग' में प्रयुक्त मुखौटों की तरह होते हैं।

मुखौटा नृत्य के बाद 'हाथी नृत्य' होता है। एक बहुत बड़ा हाथी बनाकर नृत्य किया जाता है। हाथी नृत्य आजकल लामाओं या तिब्बती नर्तकों द्वारा किए जाने वाले सिंह या याक नृत्य की तरह होता है। हाथी एक पूरे हाथी के आकार का बनाया जाता है जो यहां के शिल्प का प्रतीक है। हाथी विभिन्न मुद्राएँ बनाता हुआ लामाओं को गिराता उठाता है। हाथी की मार खाया व्यक्ति विभिन्न मुद्राएँ बनाता है। कुछ हाथी की पूँछ से खेलकर जोकर की भूमिका निभाते हैं।

इसी हँसी-मजाक में नृत्य के बाद जब 'लो-छेन' मूर्तियों की पूजा करने लगता है, 'पुहाल' की भूमिका होती है। पुहाल या चरवाहा ऊनी चोगा-पाजामा, ऊँची टोपी पहने आता है। चोगे से बोतल निकाल छंग पीता है और दर्शकों का मनोरंजन करता है। लो छेन और पुहाल में मजाकिया सवाल जबाव होते हैं।

पुहाल के इस खेल के बाद वास्तविक खेल आरंभ होता है। लो छेन कमर तक नंगा होकर बीच में पड़े पत्थर तक आता है और वहाँ रखी दो तलवारें उठाकर तलवारों के साथ नृत्य करता हुआ पत्थर की परिक्रमा करता है। वाद्य यंत्रों के शोर के बीच लो छेन गालों के आरपार सूई गुजार देता है। इसके बाद तलवार की नोक पर झूलना, छाती पर भारी पत्थर तोड़ना आदि करतब दिखाए जाते हैं।

पुरातन कथा

एक बार तिब्बत के एक निर्दयी शासक ने बुद्ध धर्म पर रोक लगा दी, लामा मार दिए गए। राजा की निर्दयता से तंग आकर एक देवता राजा के घर अवतरित हुए। इस शिशु का नाम ग्यालपो रखा गया। ग्यालपो धार्मिक प्रकृति का था। जब उसे धर्मरक्षा का कोई उपाय नजर नहीं आया तो वह घर छोड़कर बुछैन बन गया। बुछैन बनकर लोगों को धर्म के प्रति आकर्षित करने के लिए उसने अद्‌भुत करिश्मे दिखाने आरंभ किए। इससे लोग पुनः धर्म के प्रति आकर्षित हए। इस प्रकार कई लामा भी बुछैन बनने लगे। यह परंपरा जारी हुई। ये लोग अपने बाल नहीं कटवाते और गाँव-गाँव ये चमत्कार दिखाते हैं जो शारीरिक करिश्मे होते हैं।

संभवतः बुछैन के जन्मदाता ग्यालपो की मूर्ति ही इस नाट्य परंपरा में अधिष्ठाता देवता के रूप में रखी जाती है।

बुछैन का मुख्य गुरु

बुछैन नाट्य या अनुष्ठान में एक मुख्य गुरु होता है जो सारे नाट्य के करतबों का निर्देशक होता है। मुख्य गुरु पूर्णतया लामा होता है जिसने लामा होने के पूरे संस्कार निभाए हों। सात वर्ष की आयु से वह लामा बनने का प्रशिक्षण बौद्ध विहार में प्राप्त करता है। गैरिक वस्त्र पहने वह अविवाहित रहता है। शराब न पीने, चोरी या छल-कपट न करने, झूठ न बोलने, हिंसा न करने की शपथ लेता है। पूर्ण 'गेपलोङ' या लामा बनने के साथ गुरु को खेल में प्रयोग होने वाले वाद्य यंत्रों और नृत्य शैलियों का ज्ञान भी दिया जाता है।

गुरु आध्यात्मिक रूप से, मानसिक रूप से और शारीरिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए। उसे भोटी भाषा का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिये।

पिन घाटी में, जहाँ बुछैन प्रचलित है, लामा लोग विवाह कर लेते हैं किंतु बुछैन विवाह नहीं करते। वे गाँव-गाँव घूमकर अपने खेल दिखाते हैं। लामाओं जैसे परिधान पहनते हैं किंतु सिर नहीं मुँड़ाते बल्कि लंबे बाल पीछे की ओर गूँथकर रखते हैं।

वाद्य यंत्र

इस नाट्य या खेल में प्रमुख वाद्य 'बुगज़ल' है। काँसे का बना यह वाद्य मंजीरे की तरह बड़े आकार का होता है। यह वाद्य गोम्पा में पूजा के समय तथा छम्म नृत्य में भी बजाया जाता है। दूसरा वाद्य 'ट्रिल व दोर्जे' है जो घंटी की तरह का होता है। घंटी का ऊपरी भाग चौड़ा होता है और बाहर तांत्रिक किस्म के चित्र बने होते हैं।

नाट्य की सूचना के लिए शंख ध्वनि की जाती है। जिसे 'तुंग' कहा जाता है। एक यंत्र 'कोपों' है जो अखरोट की लकड़ी का वीणा के आकार का होता है। जिसमें धागे, घोड़े के बाल या लोहे की बारीक तारें तूंबे के साथ लगाई जाती हैं।

एक महत्वपूर्ण वाद्य 'कंगलिंग' है जो गर्भवती मृत महिला की टाँग की हड्डी से बनाया जाता है। यह यंत्र किसी युवा गायक या गायिका की युवावस्था में मृत्यु पर उसकी टाँग की हड्डी से भी बनाया जाता है। महिला की बाईं और पुरुष की दाईं टाँग की हड्डी से यह यंत्र बनता हैं। इस खोखली हड्डी में फूँक मार बजाया जाता है। लियूँ (बाँसुरी), सुल्ना (शहनाई), दामेन (नगारा) भी प्रयोग में लाया जाता है। 'माणे' या चाँदी का निर्मित प्रार्थना चक्र भी प्रयोग किया जाता है।

बुछैन लोगों द्वारा छाती पर पत्थर तोड़ने, दोनों गालों में सूई गुजारने, तलवार के करतब दिखाने के साथ कुछ नाट्य भी दिखाए जाते हैं। इनमें पद्म होतवर, नकसल होतबुभ, राजा डिमेद कुंदन, लाचिग कोंगज़ोर का स्वयंवर, सूर्यमुखी रानी आदि हैं।

पद्म होतवर एक व्यापारी था। व्यापारी होने के साथ बौद्ध धर्म के लिए समर्पित यह युवा अग्नि को समर्पित हो गया। नकसल होतबुभ एक राजा की सुंदर-सुशील और धार्मिक पुत्री थी। वह बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए प्रसिद्ध हुई और देवी बनी। इसी प्रकार इन सभी नाट्कों में बौद्ध धर्म के प्रति समर्पण ओर प्रचार का उपदेश है।

बुछैन लोगों की वेशभूषा बहुत आकर्षक होती है। गुरु लामा सिर पर पंचरंगी टोपी पहनता है। ये पाँच रंग (सफेद, लाल, नीला, पीला, हरा) पाँच दिशाओं पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाश को दर्शाते हैं। कानों में एक आभूषण पहना जाता है जिसे 'पंदप' कहते हैं। छम्म नर्तकों की भाँति एक लंबा रंगीन रेशमी चोगा पहना जाता है जिसके बाजू लंबे-लंबे होते हैं जिनमें हाथ छिपे रहते हैं। नीचे एक घाघरा पहना जाता है जो ऊनी होता है। कमर को 'किरा' से बाँधा जाता है। यह कमरबंद रंगीन धागों से बना होता है। पैरों में याक की खाल के जूते पहने जाते हैं। ऊपर से यह रंगीन ऊनी धागों से बना होता है। गले में एक सौ आठ मनकों की माला पहनी जाती है। माला के साथ हार भी पहना जाता है।

एक मुख्य आभूषण 'दोर्ज फुरफा' भी पहना जाता है जो अष्टधातु का बना तांत्रिक आभूषण होता है। इस के ऊपरी भाग में तीन देवियाँ, नीचे भैरव की मूर्ति होती है। चाँदी और शंख से निर्मित एक 'थोंगा' भी पहना जाता है।

गुरु लामा या लो-छेन की ही भाँति दूसरे बुछैन भी वेशभूषा पहनते हैं। अन्य बुछैन लोगों द्वारा सभी आभूषण नहीं पहने जाते।

जब बुछैन तलवार की मूठ धरती पर टिकाकर नोक नाभि पर सटा पूरे शरीर का भार डाल हवा में झूलता है या छाती पर बड़ा पत्थर रख तुड़वाता है, उस समय दर्शक हैरानी से 'ऊँ मणि पद्मे हुँ' का जाप करते रहते हैं। इन प्रदर्शनों के समय प्रार्थना के रूप में एक गीत भी गाया जाता है।

विवाह परंपरा

लाहौल में विवाह परंपरा में अनोखे तौर तरीके हैं। लड़की के माता पिता लड़की के विवाह के लिए चिंतित नहीं होते, न ही वे योग्य वर ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। जो कोई विवाह का प्रस्ताव लाए भी, उसे भी सामान्यतः ठुकरा दिया जाता है। अपने लिये कन्या ढूँढ़ने का काम वर पक्ष का है। लाहुल में मुख्यतः तीन प्रकार से विवाह होता है :

1. धर्म विवाह

यह विवाह आपस की रजामंदी से, माता-पिता की इच्छा से होता है। दो या तीन व्यक्ति, जिनमें वर का मामा अवश्य होता है, कन्या के घर में छंग की बोतल लेकर आते हैं। प्रायः कन्या के माता-पिता इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते और इन व्यक्तियों को खाली हाथ लौटना पड़ता है। किंतु स्वीकृति की स्थिति में छंग पीकर प्रस्ताव मान लिया जाता है।

2. चोर विवाह

वर पक्ष द्वारा विवाह का प्रस्ताव न मानने की स्थिति में कुछ दिनों बाद लड़की को बलपूर्वक उठा लिया जाता है। यदि प्रस्तावित लड़की न मिले तो कोई दूसरी भी उठाई जा सकती है। ऐसा करते समय लड़की चिल्लाती है, भला-बुरा कहती है। इसी समय वर पक्ष के कुछ खास लोग वधू पक्ष के घर भेजे जाते हैं। लड़की के माता पिता इस घटना से बहुत नाराज होते हैं जिन्हें धीरे-धीरे मनाया जाता है। इसी तरह वर के घर लाई कन्या को भी अच्छा खाना, कपड़े, गहने देकर मनाया जाता है। यदि लड़की एक कौर खाना भी खा ले तो उसे विवाह के लिए सहमत माना जाता है। किंतु अंतिम निर्णय तो उसके माता-पिता के हाथ में रहता है। माता-पिता उसे जबरदस्ती घर भी ले जा सकते हैं बेशक वह विवाह के लिए सहमत हो।

लाहौल में बहुत-सी लड़कियाँ अविवाहित रहती हैं, किंतु घर के लिए योग्य बहू लाना उतना ही कठिन है। लड़की की सहमति पर भी माता-पिता विवाह के लिए आसानी से नहीं मानते। घर में काम करने के लिए अविवाहित लड़की को एक बहुमूल्य संपत्ति माना जाता है।

माता-पिता की सहमति लेने और पूरे उत्सव में लड़के के मामा की महत्त्वपूर्ण

भूमिका रहती है। वही वर की ओर से प्रस्ताव लेकर जाता है। लड़की की ओर से भी लड़की का मामा भी ऐसी ही भूमिका निभाता है। लड़की जब चुराई गई तो भी लड़की के मामा की सहायता बातचीत के समय ली जाती है।

जब किसी लड़के को कोई लड़की पसंद आ जाए तो वह लड़की को लेकर भाग जाता है और दोनों घर से बाहर रहते हैं और संतान होने पर ही घर लौटते हैं।

बहुपति प्रथा

लाहौल में भी किन्नौर की भाँति बहुपति प्रथा है। यद्यपि बहुपत्नी प्रथा भी है किंतु बहुत कम। पढ़े-लिखे और नौकरी में आए लोग अब एक पत्नी, एक पति प्रथा में विश्वास करते हैं।

बहुपति प्रथा के कारण यहाँ भी किन्नौर की भाँति सामाजिक तथा आर्थिक हैं। भूमि के न बँटने, संपत्ति के न बँटने में भी बहुपतिप्रथा छिपी है।

लाहौल में कन्या के माता-पिता विवाह के प्रस्ताव को बार-बार अस्वीकार करते हैं, अंत में लड़की को बलपूर्वक उठाकर विवाह किया जाता है। माता-पिता का बार-बार प्रस्ताव अस्वीकार करना भी बहुपति प्रथा का कारण है। माता-पिता चाहते हैं कि उनकी लड़कियों का विवाह न हो और वे घर का काम करें। क्योंकि मर्द अधिकतर बाहर रहते हैं, लाहौल में खेतों का सारा काम औरतें करती हैं। यदि लड़कियाँ घर में बनी रहें तो उन्हें इस काम में सुविधा रहती है।

संतान होने पर सभी पति बच्चों के पिता माने जाते हैं। बड़े भाई को बड़े पिताजी कहा जाता है। ऐसे संबोधन की यह परंपरा महासू में भी है।

राहुल जी ने लाहौल में विवाह परंपरा तथा मृतक संस्कार का वर्णन इस प्रकार किया है--

"हिमाचल के स्पिति, चंबा, काँगड़ा आदि की तरह लाहुल की भी सामाजिक स्थिति और रीति-रिवाज है। अगर अन्तर है भी तो बहुत मामूली-सा। विवाह-प्रथा यहाँ ऐसी है कि और देशों की तरह लड़कीवाले नहीं बल्कि लड़केवाले यहाँ कन्या की खोज में निकलते हैं। लड़के का बाप या मामा छङ् (कच्ची शराब) का बरतन लेकर लड़की के बाप के पास जाता है, और वहाँ उसे लड़की पसंद करती है, इस पर माँ लड़की से पूछती है कि उसे पसंद है या नहीं। अगर लड़की पसंद करती है, तो उसके माँ-बाप छङ् ले लेते है। छङ् पीने से इंकार करने का मतलब है, नाता पसंद नहीं करना। दो-तीन बार इस तरह से और भी छङ् भेजी जाती है, और तीसरी बार एक रुपए की छङ् स्वीकृत कर लेने पर ब्याह तै हो जाता है। लड़की लेने के लिए रात के वक्त जाते हैं। वर अपने 8-10 साथियों के साथ देने पर जब ससुर के दरवाजे पर पहुँचता है, तो घर के नौकर अपना नेग माँगते हैं, जिसके दे देने पर वर घर के

भीतर जा अपने साथ लाई हुई चीजों को दिखलाता है। उसकी लाई हुई शराब और रोटी को कन्या वाले खाते-पीते हैं। रोटी, जो कि सत्तू का बना गोला होता है, जिसमें मक्खन और भेड़ का सूखा माँस भी रहता है।

फिर कन्या को भेंट दी जाती है जिसमें 8 या 10 जोड़े कपड़े होते हैं, कुछ पैसा और खाने-पकाने के लिए आवश्यक सारे बरतन, एक गाय या जौ, एक या दो टट्टू होते हैं। वर कन्या को अपने घर ले जाता है। वहाँ भी दरवाजे पर कुछ रस्म अदा की जाती है। भूत भगाने के लिए देवताओं को मनाया जाता है। एक जिंदा भेड़ छत के ऊपर से बरात के सामने फेंकी जाती है, उसे जिंदा या मुर्दा पकड़कर लोग तुरंत टुकड़े-टुकड़े करके कच्चा खाने लगते हैं। इसी समय लामा भी मंत्र पढ़कर भूत भगाने में लगा रहता है। काल्पनिक भूत का एक पुतला बनाकर वह उसे तोड़ता है, इसके बाद बराती घर के भीतर प्रवेश करते हैं, जहाँ खूब भोज होता है। ब्याह की उमर कोई निश्चित नहीं है। साधारण लोग बड़ी उमर में लड़के-लड़कियों की शादी करते हैं, लेकिन जो (ठाकुर) के परिवार-बारबोग, गुङ्-रङ्-छै, कोलङ् (खङ्-सर) तीन ही हैं, जिन्हें आपस में शादी करनी पड़ती है, इसलिए वह 8 या 9 वर्ष को लड़कों का भी ब्याह कर देते हैं। यदि आगे पटरी नहीं खाती है तो छूट (तलाक) देने के लिए वह स्वतंत्र है। आमतौर से लाहुल में छूट बहुत नहीं होती। अगर कोई पुरुष अपनी स्त्री को छोड़ना चाहता है, तो सौ या अधिक रुपया स्त्री को देना पड़ता है। अगर स्त्री छूट देना चाहती है, तो उसे कुछ रुपया देना पड़ता है। छूट की रस्म अदा करने के लिए ऊन के एक पतले सूत को अपनी कानी अँगुलियों में पकड़कर स्त्री-पुरुष यह कहते हुए खींचकर तोड़ देते हैं कि अब से हमारा कोई संबंध नहीं है, इसे कुद्-पार (चद्-चे) सूत तोड़ना कहते हैं। पांडव-विवाह का यहाँ भी आम रिवाज है। दायभाग की व्यवस्था कुछ इस प्रकार है कि ठाकुरों में सिर्फ सबसे बड़े लड़के (गागा) को संपत्ति का अधिकार है, उसके छोटे भाई नोनो उसके साथ रह सकते हैं। यदि वह अलग अपना घर बसाना चाहे, तो उन्हें कुछ गढ़पन (खोरिश) के रूप में जमीन मिलती है। दो-तीन पीढ़ियों के बाद छोटे लड़कों की औलाद साधारण लोगों जैसी हो जाती है।

मृतक-संस्कार में लाहुल के लोग अपने मुर्दों को जलाकर राख को पास की नदी में फेंक देते हैं। या राख से मृत पुरुष का पुतला बनाकर बड़े लोग अपने खानदान के छौरतन (स्तूप) में रख देते हैं। पट्टन में स्मारक के तौर पर पत्थर रास्ते पर रखा जाता है, या यात्रियों के ठहरने की मढ़ियों में। इस पत्थर पर कुछ आकृतियाँ खुदी रहती हैं। कनैत या ऊँची जात के मृतकों का शरीर लामा के आने से पहले नहीं छुआ जाता। वह आकर मृतक की चोटी हिलाकर कुछ मंत्र पढ़ता है, और इस प्रकार मृतक का प्राण अब पूरी तौर से निकल गया समझा जाता है। इसके लिए लामा को एक रुंपया मिलता है। गरीब लोग अपने मुदे को तुरंत जलाकर राख को नदी में फेंक

देते हैं, लेकिन धनी लोग अधिक-से-अधिक समय तक मुर्दे को रख जलाने के बाद राख को चंद्रा और भागा के संगम (तंदी) में ले जाकर फेंकते हैं। गरीब लोग मुर्दा जलाने के लिए हर घर से लकड़ी माँग लाते हैं। धनी लोग अपने मुर्दे को तुरंत नहलाकर रेशम के कपड़े को पास के गोन्पा से लाकर पहनाते हैं, और उसे लोहे की तिपाई पर आसन मारकर बैठा देते है। रात-दिन सामने दीपक जलाया जाता है, और लामा धर्म-पुस्तक पढ़ते हैं।

स्पिति में विवाह और दायभाग का वही रिवाज चालू है, जो कि तिब्बत में। सभी भाइयों का एक स्त्री से ब्याह होता है, यदि संतान न हो तभी दूसरी स्त्री लाई जाती है, और वह भी सबकी सम्मिलित पत्नी होती है। घर का सबसे बड़ा लड़का ब्याह करता है। वह स्त्री को परिवार के महागृह (खङ्-छेन) में लाता है। बड़े घर में रहने वाले व्यक्ति को खङ्-छेनपा (बड़े घरवाला) कहते हैं। बड़ा लड़का जब काम सँभाल लेता है, तो माँ-बाप खासतौर से बने हुए छोटे घर (खङ्-छुङ्) में चले जाते हैं, और उन्हें खङ्-छुङ्पा कहा जाता है। बूढ़े माँ-बाप के निर्वाह के लिए कुछ खेत दे दिया जाता है, और वह परिवार के प्रबंध के बोझ से मुक्त हो जाता है। आम तौर से यहाँ के सभी छोटे भाई गोन्पा (विहार) में साधु बनने के लिए भेज दिए जाते हैं, और वह वहीं रहते हैं। हाँ, यदि खङ्-छेनपा (बड़ा भाई) निस्संतान हुआ, और वंश चलाने की आवश्यकता पड़ी तो मठ का कोई भिक्षु का वेश छोड़ घर में आकर बड़े भाई की जगह लेता है। स्पिति की जोती हुई जमीन का बहुत भारी भाग इस प्रकार खङ्-छेनपा के हाथ में अविभाज्य होता है। बहुत थोड़ी-सी इससे बाहर रहती है, जो यंगछुङ्पा या दुद्-थुल्पा (कमकरों) की जमीन होती है।

यद्यपि सभी छोटे भाई साधु बनकर गोन्पाओं में चले जाते हैं, लेकिन पैतृक संपत्ति में से कुछ खेत दा-ज़िङ् (भिक्षु-क्षेत्र) के नाम के अलग किया रहता है जिसकी उपज उनके पास मठ में पहुँचती है। इसके अतिरिक्त यह डा बा (भिक्षु) श्राद्ध और दूसरे अवसरों पर जो दक्षिणा गृहस्थों से पाते हैं, वह भी उनकी होती है। यदि एक से अधिक छोटे भाई गोन्पाओं में जाते हैं, तो दा-ज़िङ् के अलावा कुछ और भी सहायता घर से पाते हैं, जिसके बदले वह गर्मियों के दिनों में घर में आकर कुछ खेती का काम कर देते हैं—गोन्पा में जो बड़े भिक्षु हैं, वही इस समय वहाँ रह जाते हैं, बाकी अपने घरों में काम करने के लिए चले जाते हैं। ग्ये-छुल् (श्रामणेर) और ग्येलोङ् (भिक्षु) के रूप में मठों के दो प्रकार के साधु होते है। जब तक वह ग्येलोङ् नहीं हो जाते, तब तक वह बोझा ढोने, खेत जोतने आदि का सारा काम कर सकते हैं। यदि ग्लेलोङ् है, तो वह अपने घर में आकर ख़ाना पकाने जैसे घरेलू तथा पशुओं और भेड़-बकरियों को चराने का काम कर सकते हैं, वह बोझा नहीं ढोते। यह बतला, चुके हैं कि बड़े भाई के निस्संतान होने पर गोन्पा से छोटा भाई आकर गृहस्थ हो जाता है वह अब घर की स्त्री का पति है, और अगर आवश्यकता पड़े तो निर्वंश न होने देने के लिए

और भी ब्याह कर सकता है। यदि घर में लड़की ही हो, तो उस पर घरदामाद लाने का भी रिवाज है। भिक्षु का कपड़ा छोड़ने के लिए गोन्पा को कुछ पैसा दंडस्वरूप देना पड़ता है। यदि गोन्पा से लौटने के लिए छोटा भाई तैयार न हो, तभी घरजमाई (गो-रि-गो-ठोन्) लाने का अधिकार पिता का विधवा माँ को होता है। उस उपत्यका के निम्न भाग का रिवाज है, उपरले भाग इसे नहीं मानते। ब्याह इस प्रकार स्पिति में पांडव-विवाह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अधिकार होने पर भी छोटे भाई गोन्पा में जाकर रहते हैं, और निस्सन्तान होने की अवस्था छोड़कर दूसरी स्त्री से ब्याह भी नहीं किया जा सकता। हाँ, दुद्-थुल्पा (कमकरों) और बो-जेन् (भिक्षु से गृहस्थ हुए भिक्षुओं के वंशजों) में पांडव-विवाह जरूर प्रचलित है। बो-जेन् पिन् गोन्पा से संबंध रखते हैं, जो कि विवाहित लामा (डुग्पा) लोगों के अनुयायी हैं।

स्पिति में विवाह-विधि कुछ इस प्रकार है कि वर अपने साथियों को लेकर कन्या को लाने के लिए उसके पिता के घर जाता है। जब लाहुल के प्रकरण में वर्णित तरीके से छङ् स्वीकार करके कन्या का पिता उसे मंजूर कर लेता है। वर और उसके साथियों को रास्ते में कन्या वाले रोक देते हैं, और वहाँ नकली लड़ाई लड़ी जाती है, और बरातियों के ऊपर खूब कीचड़ उछाली जाती है। इसके बाद लड़की को ले जाकर वर के घर में ब्याह हो जाता है। लड़की के लिए लड़के के पिता को दो या तीन टट्टू (30 खल = 7 1/2 मन) अनाज और माँ के लिए छह या अधिक रुपया नगद देना पड़ता है। लेकिन, साथ ही वर का पिता कन्या के लिए सौ या अधिक रुपए की पोशाक और जेवर देता है। भोज पर भी आज से 40 वर्ष पहले 50 रुपए खर्च होते थे।

यहाँ तलाक की व्यवस्था भी कुछ स्थितियों में है। यदि पुरुष तलाक देना चाहता है, तो पत्नी जो भी दहेज अपने साथ लाई हो, उसे तथा एक या दो खेत खोरिश के लिए देने पड़ते हैं। यदि स्त्री छूट लेना चाहती है, और इसमें पति को कोई दोष नहीं है, तो वह अपने दिए हुए जेवरों को ले सकता है। अगर दूसरा पुरुष किसी स्त्री को भगा ले जाता है, तो उसे भी पूर्व पति को छूट लेने के लिए हरजाना देना पड़ता है। सूत तोड़ना (कुद्पा छद्चे) का यहाँ भी रिवाज है। सूत के दोनों छोर को स्त्री-पुरुष पकड़ते हैं, और फिर कहते हैं—एक माँ-बाप देते और एक माँ-बाप लेते हैं। यह हमारे भाग्य में नहीं है, इसलिए हम अपनी राजी-खुशी से अलग होते हैं। और फिर बीच में आग लगाकर सूत को दो टक कर दिया जाता है। यह छूट की रस्म हमेशा नोनो, पाँच गद्पो-छेन्मो और गाँव के गद्पो-छुंगुन् के सामने ही अदा की जाती है। इसके बाद स्त्री किसी के भी साथ ब्याह करने के लिए स्वतंत्र है। अगर उसके माता-पिता धनी हैं, तो लड़की के दूसरे विवाह को भी पहले विवाह की तरह ही बड़े ठाट-बाट से करते हैं।

मृतक संस्कार में लाहुल के लोग मुर्दों को जलाकर राख को पास की नदी में फेंक देते हैं। या राख से मृत पुरुष का पुतला बनाकर बड़े लोग अपने खानदान के

छोर तन (स्तूप) में रख देते हैं। धनी अपने मुर्दे को तुरंत नहलाकर रेशम के कपड़े को पास के गोन्पा से लाकर पहनाते हैं और उसे लोहे की तिपाई पर आसन मारकर बैठा देते हैं। रात दिन सामने दीपक जलाया जाता है और लामा धर्म पुस्तक पढ़ते हैं। भूत आकर शरीर में प्रवेश न कर जाए, इसलिए रात-भर सावधानी रखी जाती है। अंत में गोन्पा वाले कपड़े को हटा मृतक पुरुष को अच्छे कपड़े पहना देते हैं। अर्थी के साथ गरा लोग बाजा बजाते चलते हैं, और लामा तथा गृहस्थ जुलूस में शामिल होते हैं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर अर्थी को जमीन पर रख दिया जाता है। ढोनेवाले तथा गरा उसकी प्रदक्षिणा करते हैं और उसको एक-दो आना दिया जाता है। श्मशान में पहुँचकर लामा मंत्र पढ़ चिता में घी डालता है, फिर आग लगा दी जाती है। अगले दिन फिर बाजे-गाजे के साथ लोग शमशान में जाते हैं। अर्थी को ढोनेवाले चार आदमी हड्डियाँ जमाकर लामा को देते हैं, जो उसे एक थैले में डाल देता है, और औरत हुई, तो उस मृतक की शकल बना सारे जेवरों के साथ मंदिरों में रखते हैं। मृतक के घर में चार से सात दिन सबेरे से शाम तक लामा धर्मग्रंथ पढ़ते हैं। पाठ समाप्त होने के बाद लामा के बतलाए हुए शुभ दिन पुतले को एक टट्टू पर चढ़ाया जाता है, आदमी उसके ऊपर छत्ता लगाता है, फिर बाजे के साथ एक छोटा-सा जुलूस तंदी में चंद्राभागा के संगम पर पहुँचता है। वहाँ लामा मंत्र पढ़ते हुए मुट्ठी-मुट्ठी करके राख और हड्डी को नदी में फेंकता है। मरने के 48 वें दिन धनी लोग पुण्यदान (गेवा) करते हैं। इसके बाद उबले हुए चावल या सत्तू का पिंड हरेक पड़ोसी के घर में भेजा जाता है, गेहूँ की रोटी खाई और छङ् पी जाती है। गरीब लोगों का पिंडदान कम सरसों के तेल मे पकी दो पूड़ियाँ होती हैं, गोन्पा को एक-दो रुपया दिया जाता है। त्रिलोकनाथ की पूजा भी इस वक्त लोग भूलते नहीं, और जैसे ही समय मिलता है, वह 16 सेर घी या गरीब लोग कुछ कम लेकर वहाँ चढ़ाते हैं। शिपी लोग अपना मृतक-संस्कार स्वयं करते हैं। गरा इस काम के लिए शिपी को बुलाते हैं। गरा लोग अब लामा को भी बुलाने लगे हैं। शिपी आकर लाश को घर से बाहर रखकर उसके चारों और दूध छिड़कता है फिर एक भेड़ के बच्चे को लेकर तीन बार उसके चारों तरफ घुमाता है, पहले बाएँ से दाहिने और फिर दाहिने से बाएँ। ऐसा करते समय वह बाजा भी बजाता जाता है। जब तक लाश जला नहीं दी जाती, तब तक बाजा बजता रहता है। लाश को लाल या सफेद कपड़े से ढाँककर अर्थी पर रख पास की नदी के किनारे ले जाकर जला दिया जाता है। घर लौटने पर शिपी एक उस भेड़ के बच्चे को मारता है, जिसे उसने लाश के चारों तरफ घुमाया था। खून को घर की दीवारों पर छिड़कता है। इन सेवाओं के लिए शिपी को मृतक के कपड़े, टोपी, कमरबंद और जूते दिए जाते हैं। गरा अपनी जाति में गेवा (दानपुण्य) करता है।

मृतक-संसार की स्पिति में अपनी एक अलग पद्धति भी है। वैसे लाहुल की तरह स्पिति में भी मुर्दे को अकसर जलाया जाता है। लेकिन, यहाँ लकड़ी की कमी है,

इसलिए तिब्बती रिवाज के अनुसार लाश को जानवरों के खाने के लिए किसी पहाड़ के ऊपर रख दिया जाता है, या उन्हें काट-काटकर गिद्धों को खिला दिया जाता है। किसी-किसी गोन्पा में लामा (महंत) को पद्मासन पर बैठाकर उसकी मोमयाई बना दी जाती है, और कभी जलाकर उसकी राख-हड्डी को मिट्टी में मिला मूर्ति बनाकर स्थापित कर दी जाती है। जाड़ों में मरने वाले बच्चों को घर की दीवार में ही दबा दिया जाता है। यह रिवाज नवपाषाण-युग में दुनिया के और देशों में भी देखा गया है।"

लाहौल की बोलियाँ

डॉ० ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में लाहुल की बोलियों को चार भागों में विभक्त किया है; बुनन, मनचाती, तिनन और लाहुली।

यहाँ इन बोलियों को पाँच भागों में विभक्त करना उचित होगा-गारी, तोद-रंगलोई, तिननी, पटनी और चनाली।

गारी

गारी बोली को ग्रियर्सन और फ्रैंके ने बुनन माना है। बुनन में उन्होंने तोद-पा को भी सम्मिलित किया है। बुनन संभवतः तिब्बती शब्द है। बुनन या पुनन गुमरंग कोठी के साथ का क्षेत्र है।

लाहुल तथा कुल्लू के क्षेत्र में गहर, गौहर, गार शब्द प्रचलित है। इसकी अर्थ संस्कृत में 'गह्वर' से लिया जाता है। गह्वर अर्थात् गहरा, घना, दुर्गम, सुदूर या कटा हुआ। अर्थात् दुर्गम, पहाड़ी या भीतरी क्षेत्र।

गारी, लाहुल के गार क्षेत्र में बोली जाती है। गार क्षेत्र भागा नदी की घाटी को क्षेत्र है जिसमें कारदंग, बारबोग, कोलंग और गुमरंग कोठियाँ आती हैं।

गारी बोली में सत्तर से अस्सी प्रतिशत शब्द तिब्बती के हैं। यह बोली तिब्बती के समान ही कही जा सकती है। कुछ शब्द तिब्बती से मामूली भेद के साथ बोले जाते हैं। उदाहरण के तौर पर तिब्बती-मेतोग, गारी-मेनलोग (फ़ल) तिब्बती-प्या, गारी-प्याची (चिड़िया), तिब्बती ग्यलपो-गारी ग्यपो (राजा) तिब्बती खाशा-गारी शा (हिरण) आदि।

गारी में हिंदी तथा पहाड़ी के शब्द यथा : तोपि (टोपी) हटि (हाट), कोट आदि शब्द भी प्रचलित हो गए हैं। कुछ शब्द लाहुल की अन्य बोलियों पटनी आदि के भी हैं किंतु मुख्यतः यह तिब्बती के करीब है।

गारी में लिंग भेद तथा वचन अपनी तरह का है जो न तिब्बती और न संस्कृत से मेल खाता है।

तोद-रंगलोई

तोद (स्तोद) का अर्थ 'ऊपर का भाग' है। लाहुल के उच्च शिखरों को तोद कहा जाता है। भागा नदी के स्रोत का ऊपरी भाग तोद कहलाता है। इसके साथ

चंद्रा नदी का क्षेत्र रांगलो है।

ग्रियर्सन ने इस बोली को 'लाहुली' कहा है। तोद-रंगलोई क्षेत्र में दारचा और जिसपा गाँव आते हैं। इस क्षेत्र में लद्दाख और जंस्कर क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली का प्रभाव है। यहाँ रोगलो की बोली में स्पिति का प्रभाव है तो तोद में लद्दाख-जंस्कर का।

यह लाहुल के ठाकुरों की बोली रही है अतः ग्रियर्सन ने इसे लाहुली कहा होगा।

तिननी

ग्रियर्सन ने इसे 'तिनन' ही कहा है। यह चंद्रा नदी का प्रमुख भाग है जिसमें कोखसर, शिशु, गोंधला ओर गोशाल कोठियाँ आती हैं।

इस बोली में तिब्बती शब्दों की संख्या कम है और पटनी बोली के शब्द अधिक हैं।

पटनी

चंद्रभागा घाटी पट्टन घाटी कहलाती है। यह क्षेत्र चंद्रभागा के संगम स्थल तांदी से लेकर उदयपुर तक फैला है। इसे क्षेत्र का 'मनचात' अर्थात् निचला क्षेत्र कहा जाता है। संभवतः इसी कारण से ग्रियर्सन ने इसे 'मनचाली' कहा है।

पटनी एक आम और सभी क्षेत्रों-गारी, तोद-पा रंगलोई, तिननी; द्वारा समझी जाने वाली भाषा है। यह क्षेत्र लाहौल का एक विकसित क्षेत्र है। अतः यहाँ लोग शिक्षित रहे हैं। इसी कारण पटनी में हिंदी तथा पहाड़ी के शब्द बहुतायत में हैं। यहाँ तिब्बती शब्द कम होते गए हैं। इस बोली में हिंदी पहाड़ी, तिब्बती, चनाली और किन्नौरी के शब्दों का सम्मिक्षण हुआ है।

उदाहरणतः रोटी, कलम, काम, कोट, धरती सरग (हिंदी); बूटा, पुहाल, ध्याड़ा, पाहुणा (पहाड़ी) मी, सिंग, मे, क्रा, शा (तिब्बती); ती, खुई, गुड़ (किन्नौरी); चम, बा, मुथु (कणाशी); अतेग, पेहता, रौऊ, दाह (चनाली)।

चनाली

चनाल (हरिजन) लोगों द्वारा बोली जाने वाली बोली चनाली कहलाती है। यह बोली संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों से बनी है। इस में तिब्बती आदि भाषाओं के शब्दों की संख्या बहुत कम है, यद्यपि इन बोलियों की विशिष्ट ध्वनियाँ इसमें आई हैं।

इस बोली के शब्द निचले क्षेत्र की पहाड़ी से भी अधिक मिलते हैं जो सीधे संस्कृत से आए हैं। उदाहरणतः शूकर > सूंगुर, चिंता > चिंढ, दंत > दंद, शाक > शाग आदि।

चनाली में आज भी संस्कृत की भाँति तीन लिंग हैं; पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग। नपुंसक लिंग में उकारांत होते हैं। वचन भी हिंदी की भाँति दो हैं,

लाहुल की बोलियों की तरह एक नहीं।

चनाल लोग जो लाहौल से लेकर पांगी तक पाए जाते हैं, संभवतः निचले क्षेत्रों में जाकर वहाँ बसे।

राहुल जी ने लाहौल में तिब्बती (भोट) भाषा के अतिरिक्त किन्नर किरात भाषा की तीन बोलियाँ गिनाई हैं। पूनन, मनचत् और तिनन।

तिब्बती भाषा कोखसर तथा कोलंग कोठी में, पूनन गारा की कोठियों में, तिनन, गोंधला और शीशु की कोठियों में और मनचत् पट्टन क्षेत्र में बोली जाती थी। गारी को राहुल जी ने पूनन कहा है, मनचत् या मनचात् पट्टनी है।

भोटी

भोटी भाषा सातवीं शताब्दी में तिब्बत के शासक स्रों-त्सन-गम्पो (617-650) के समय में अस्तित्व में आई मानी जाती है। स्रों-त्सन-गम्पो का विवाह चीन तथा नेपाल की राजकुमारियों से हुआ जिससे यहाँ बौद्ध धर्म का पक्ष प्रबल हुआ। दोनों रानियों ने यहाँ मठ बनवाए। राजा ने लगभग सन् 632 में अपने मंत्री (या मंत्री पुत्र) संभोट का सोलह छात्रों के साथ कश्मीर तथा नालंदा भेजा। इनके आमंत्रण पर पद्मसंभव तथा शांतरक्षित जैसे बौद्ध विद्वान् यहाँ आए।

यह माना जाता है कि संभोट ने संस्कृत के आधार पर भोट वर्णमाला की रचना की। उन्होंने व्याकरण के आठ प्रकरण बनाए। आठ में से दो प्रकरण-'सुम-चु-प' (त्रिशंत) तथा 'तग्स-क्यि-जुग-प' (लिंगावतार) ही अब उपलब्ध हैं।

भोटी भाषा चीनी तिब्बती परिवार की भाषा है। इसे तिब्बती भी कहा जाता है। संस्कृत संपूर्ण बौद्ध वाङ्मय भोटी में रूपांतरित हुआ जिसका श्रेय महालोचावा (महाअनुवादक) रिन-चेन-जंगपो (रत्नभद्र) को जाता है।

भोटी की वर्णमाला मे चौंतीस वर्ण हैं जिनके संस्कृत या हिंदी की भाँति दो भेद हैं—आलि और कालि।

आलि या स्वरों के लिए भोटी में अलग चिह्न नहीं हैं। इसमें 'अ' पर ही मात्राएँ लगाकर काम चलाया जाता है जैसे अे (इ), अु (उ) अे (ए), ओ (ओ)।

कालि में तीस व्यंजन हैं। ये संस्कृत वर्णमाला की तरह ही हैं। इनमें संस्कृत वर्णमाला के चौथे (घ, झ, ध, म) वर्णों तथा मूर्धन्य (ट, ठ, ढ, ण, श) को नहीं रखा गया है। 'अ' स्वर को भी व्यंजनों में रखा गया है।

भोटी में दो लिपियाँ हैं। पहली 'द्बु-चन' जिसका प्रयोग साहित्यिक दृष्टि से होता है। दूसरी लिपि 'द्बु-मेद' है। यह परंपरागत शैली है। इसे शीघ्रलेखन लिपि के लिए प्रयोग किया जाता है।

संयुक्त वर्ण जैसे ख्य, ग्य, सु का प्रयोग, अधिक होता है। इस भाषा में 73 संयुक्त वर्ण हैं।

पर्व उत्सव

लाहौल के पर्व उत्सव हिंदू तथा बौद्ध दोनों संस्कृतियों का संगम प्रस्तुत करते हैं। इन उत्सवों के माध्यम से अपने मूल देवताओं की स्मृति, कुल्लू की भाँति खोगल या फागली उत्सव का आयोजन, जोगनियों की पूजा, लामाओं द्वारा निर्धारित पौरी जैसे उत्सव एक साथ मनाए जाते हैं। त्रिलोकीनाथ मंदिर का कारदार गाँव का राणा है, जो हिंदू है किंतु पुजारी बौद्ध है। इस प्रकार हिंदू बौद्ध का एक समन्वय इस ओर देखने को मिलता है। गर्मियों के कुछ दिन काम के दिन होते हैं। अतः अधिकांश त्यौहार सर्दियों में होते हैं।

खोगल

खोगल पट्टन घाटी का प्रमुख त्यौहार है जो नव वर्ष के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। इसे लोसर भी कहते हैं। 'लो' अर्थात् वर्ष 'सर' नया। किन्नौर की भाँति यहाँ भी लोसर नए वर्ष के आगमन का त्यौहार है। लोसर वास्तव में तिब्बत का त्यौहार है। यह त्यौहार पूर्णमासी को मनाया जाता है। अतः त्यौहार की तिथि पूर्णमासी आने पर भी निर्भर करती है। पूर्णमासी के निश्चित दिन के कारण यह जनवरी या फरवरी में मनाया जाता है।

त्यौहार के एक-दो दिन पहले रात्रि जलाई जाने वाली मशालें तैयार की जाती हैं। देवदार की बड़ी लकड़ियाँ चीरकर बारीक टुकड़े बनाए जाते हैं। छोटी-छोटी मशालें बनाने के लिए अलग और बड़ी मशालों के लिए अलग लकड़ी काटी जाती है। छोटी मशालों को 'सदलह' और बड़ी मशालों को 'नमलह' कहते हैं। इसी दिन घर के एक कमरे में, जहाँ सर्दियों में रहते हैं, सूर्य-चाँद, भेड़-बकरी तथा गेहूँ की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। इन आकृतियों को 'बुराजा' कहते है। जिनकी त्यौहार के दिन पूजा की जाती है।

त्यौहार के दिन ग्रामीण इकट्ठा होकर घर-घर जाते हैं। हर घर में उन्हें 'चकती' नाम देसी शराब और खाने को दिया जाता है। आधी रात तक लोग ऐसे ही घर-घर बैठते हैं जब तक कि चाण लोग किसी घर की छत पर नगाड़ा-बाँसुरी नहीं बजा देते। यह वाद्य खोगल मनाने की सूचना है।

वाद्यों की आवाज सुनते ही लोग देवदार की लकड़ियों की मशालें लिए घरों से बाहर निकल आते हैं। मशालें लिए हुए वे जोर-जोर से आवाजें भी निकालते हैं।

लोकास्था है कि नमलह (बड़ी मशाल) के साथ जोर से शोर मचाने से भूत-प्रेत तथा प्रेतात्माएँ भाग जाती हैं। इस तरह सभी ग्रामीण मशालें लिए एक स्थान पर इकट्ठा होकर मशालें एक जगह रख देते हैं। इस तरह बहुत-सी आग का अलाव-सा जल उठता है जिसके चारों ओर लोग नृत्य करते हैं। नृत्य गायन के बाद वापस आकर घर में पूजा अर्चना के बाद खाना खाया जाता है।

खोगल दीवाली की तरह मनाया जाता है। पुराने समय में प्रदेश के निचले क्षेत्रों में दीवाली को दीप न जलाकर मशालें ही जलाई जाती थीं। यद्यपि प्रेतात्माओं के भगाने की परंपरा इस त्यौहार में विशिष्ट है।

फागली या कुंह

खोगल के पंद्रह दिन बाद फागली मनाई जाती है। इसे 'कुंह' भी कहा जाता है। यह त्यौहार भी नव वर्ष के आगमन के उपलक्ष्य में है। कुल्लू में भी फागली नव वर्ष के आने की खुशी में ही मनाई जाती है। फागुन मास में यहाँ कई जगह फागली मनाई जाती है। फागली से पहले पट्टन घाटी में घरों की लिपाई-पुताई की जाती है। इस दिन पहले 'कुह्य' मनाया जाता है। जिसमें भटूरे घी में तले जाते हैं। लड़कियाँ गेंदे के फूलों की सूखी पत्तियों को आकर्षक ढंग से सजाती हैं। लोग एक दूसरे के घरों में जाते हैं और आर्शीवाद देते लेते हैं। इसी दिन एक किलटे में कूट-कूटकर बर्फ भरी जाती है जिसे छत पर उलटा रख दिया जाता है। जो शिवलिंग की तरह बन जाता है।

फागली के दिन प्रातः शिवलिंग से बने बर्फ की पूजा की जाती है। लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे को फूल बाँटते हैं। बच्चों को नए कपड़े पहनाए जाते हैं।

दूसरे दिन ग्रामीण नए कपड़े पहनते हैं। हाथ में तलवार, गंडासा और टोकरी ले एक स्थान पर इकट्ठा होते हैं। टोकरी में काठू के आटे का बकरा रखा जाता है। वाद्य दल के साथ ये सभी खेत में जाकर देवी देवताओं की पूजा करते हैं। यहाँ काठू के आटे के बकरे की बलि दी जाती है।

शेचुम

पट्टन घाटी में अगस्त मास में शेचुम या शेकचुम त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार फसल पकने पर मनाया जाता है। इस ओर अगस्त मास में फसल पक जाती है। इस त्यौहार से पूर्व घरों की दीवारें बाहर से लीपी-पोती जाती हैं।

उतन

यह त्यौहार सर्दियों के आरंभ में मनाया जाता है।

पौरी उत्सव त्रिलोकीनाथ

प्रसिद्ध त्रिलोकीनाथ धाम में पौरी उत्सव मनाया जाता है। उत्सव के दिन त्रिलोकीनाथ की मूर्ति को दूध और दही से स्नान करवाकर मंदिर की परिक्रमा की जाती है। परिक्रमा सभी वाद्यों-ढोल-नगारे-रणसिंगा के साथ की जाती है। परिक्रमा में मंदिर का एक घोड़ा भी शामिल होता है। समझा जाता है कि एक स्वयं त्रिलोकीनाथ इस घोड़े पर सवार हैं। इस घोड़े को शोभायात्रा के साथ राणा के घर ले जाया जाता है।

त्रिलोकीनाथ मंदिर का कारदार स्थानीय राणा है, जो हिंदू है। मंदिर का पुजारी बौद्ध है। राणा अपने घर में शोभायात्रा का स्वागत करता है। राणा सज-धजकर इस घोड़े पर सवार होकर शोभायात्रा के साथ मेले के मैदान में जाता है। मेले के मैदान के पास एक दो-मंजिला घर में राणा मेले के दौरान पूरा दिन बैठता है। यह पौरी उत्सव बौद्ध तथा हिंदू संस्कृति का मिश्रण है।

छेशू मेला

बौद्ध विहारों में मनाया जाने वाला छेशू या छेश्चू उत्सव एक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। भागा (गाहर) घाटी के शशूल गाँव में छेशू उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। यह उत्सव बौद्ध धर्म के कट्टर शत्रु लंगदरमा की याद में मनाया जाता है। लंगदरमा एक कट्टर शासक था जो लामाओं और बौद्ध अनुयायियों को मौत के घाट उतार देता था। उसने कई लामाओं का वध कर दिया। एक बार वह दरबार में बैठा नृत्य देख रहा था। नर्तक लोग ऐसी पोशाक पहने थे कि उनके सब अंग ढके हुए थे। बल्कि हाथों के आगे कुरते की बाँहें लटकी हुई थीं। उनके चेहरे भी ढके हुए थे। एक नर्तक इस वेशभूषा में राजा के करीब पहुँच गया। उसने एक तलवार छिपा रखी थी। राजा के पास पहुँचते ही उसने राजा का वध कर दिया।

इस घटना की याद में यह उत्सव जून में यहाँ मनाया जाता है और नर्तक वैसी ही पोशाक पहनते हैं। ढीली-ढाली रेशमी पोशाक पहनकर मुँह में कई प्रकार के मुखौटे लगाए जाते हैं। यह मुखौटा नृत्य डेविल डांस भी कहा जाता है।

स्थानीय बोली में इसे 'छम्म' नृत्य कहा जाता है। मुखौटे पहन लामा तरह-तरह के नृत्य करते हैं। मुखौटे दुष्ट आत्माओं या प्रेतात्माओं को भगाने के लिए भी पहने जाते हैं।

छम्म नृत्य कई बौद्ध मठों में किया जाता है।

गोची

गोची नामक त्यौहार केलङ् देवता की पूजा से संबद्ध है। लाहौल के मुख्यालय केलड़् में केलङ् देवता पूजा जाता है। जिसे केलङ् सद् भी कहते हैं। गोची उत्सव में

केलङ् देवता की पूजा की जाती है। केलङ् यहाँ का आदि देव है।

गोची का त्यौहार जनवरी-फरवरी में मनाया जाता है। जब चारों ओर बर्फ ही बर्फ होती है। त्यौहार के अवसर पर केलङ् देवता की पूजा की जाती है। जिस घर में पुत्र उत्पन्न हुआ हो, वह परिवार देवता को छंग, घी, सत्तू, देवदार की हरी टहनियाँ चढ़ाता है। सत्तू को ढेर लगाकर घी ऊपर रख देते हैं। देवदार की पत्तियों का धूप जलाया जाता है। नगारा बजाने के साथ पुजारी द्वारा मंत्र पढ़ा जाता है।

केलङ् देवता एक खेत में देवदार के वृक्ष में रहता है। इसके ऊपर तथा नीचे केलङ् की बस्ती है। केलङ् बलि नहीं लेता। सत्तू, घी छंग और देवदार की टहनियाँ ही स्वीकार करता है। पूरा वर्ष यह देवता सुप्तावस्था में रहता है। गोची के अवसर पर ही इसे जगाया जाता है।

पुराने समय में यह देवता मानव बलि भी लेता था। फसल का देवता होने के कारण यह अच्छी फसल के लिए हर गाँव से बारी-बारी मानव बलि लेता था। गाँव के लोग बलि पुरुष को शोभायात्रा के साथ ले जाते। वहाँ उसे बलि किया जाता था या एक कमरे में बंद कर दिया जाता जहाँ वह कुछ दिनों बाद मर जाता। एक बार एक बुढ़िया के एकमात्र पुत्र की बारी आ गई। बुढ़िया रो रही थी तो वहाँ एक लामा आ गया। लामा से बुढ़िया ने बताया कि तीसरे दिन उस के पुत्र की बलि होगी। लामा ने अपने को उसके पुत्र के स्थान पर जाने के लिए प्रस्तुत किया। बुढ़िया ने तीन दिन तक लामा को खूब खिलाया पिलाया। निश्चित दिन लामा को वहाँ ले जाया गया। लामा ने बलि से पूर्व देवता से विनती की कि वह स्वयं उसके प्राण ले अन्यथा लामा उसे मार देगा। देवता की ओर से कुछ नहीं हुआ तो लामा ने कुल्हाड़ी से देवता की लकड़ी की मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और भागा नदी में फेंक दिया। कहानी के दूसरे रूपांतर में देवता एक जंगली गुलाब की झाड़ी में था। लामा ने झाड़ी उखाड़कर फेंक दी।

वास्तव में यह कथा पुरातन देवता की बलि प्रथा बंद करने के लिए बौद्ध धर्म के प्रभावी होने की सूचक है।

भगवान् बुद्ध से संबंधित त्यौहार

बौद्ध मठों में कुछ त्यौहार बुद्ध के जीवन से संबधित मनाए जाते हैं। बुद्ध के जीवनक्रम से संबंधित ये त्यौहार निम्न हैं–

सागा दावा

भगवान् बुद्ध के जन्म, ज्ञान प्राप्ति और मुक्ति के उपलक्ष्य में यह त्यौहार मनाया जाता है।

द्रुग्पा सेसी

बुद्ध ने सारनाथ में अपने पाँच शिष्यों को उपदेश देकर प्रचार आरंभ किया था, इस दिवस की याद में त्यौहार मनाया जाता है।

लबांब दुच्छेन

इस दिन भगवान् बुद्ध देवलोक से पुनः पृथ्वी पर आकर उपदेश देते हैं।

छोरुल दावा

बुद्ध ने इस दिन चमत्कार दिखाए। अपने छह शिक्षकों के कहने पर बुद्ध ने दो सप्ताह तक चमत्कार प्रदर्शन किया।

राहुल जी ने स्पिति के कुछ त्यौहार इस प्रकार गिनाए हैं–

"अगस्त या सितंबर में दन्खर में 'नम्गन्' छैनम (महोत्सव) होता है, जिसमें घुड़दौड़ होती है। 'तालसी छैन्मो' (महागणन) नवंबर के महीने में दन्खर के गढ़ में होता है, जबकि वार्षिक हिसाब-किताब की जाँच होती है।

ऊपर के त्यौहार के पाँच दिन बाद क्यी, तबो, दन्खर और पिन की चारों गोन्पाओं में 'गुड़-तोर' उत्सव होता है, जिसमें छम् (लीला) की जाती है, जिसे यूरोपीय लेखक भूतनृत्य कहते हैं। इससे एक महीने पहले थंग-ग्युत गोन्पा में जिग्-जैत् (भैरव) का एक महोत्सव भी इसी तरह का होता है। नमगन् कुङ्गुन् (लघु उत्सव) हरेक गाँव में खेत काटने से पहले कुछ दिनों तक मनाया जाता है। जिसमें स्थानीय देवता-जैसे दन्खर का छो-तर् माने का छो-बेरंग, पोग् का कुला-क्युंग, क्यीवर का दुङ्-वाचन्, लोसर का अंग-बो, ग्यब्जिन और संगनम् (पिन) का गंवा-ल्हा पूजे जाते हैं। नव वर्ष के त्योहार 'डम्-छोड्' के दिन दीपमाला की जाती है। इनके अतिरिक्त मनबहलाव के लिए स्पिति के लोग गर्मियों में घुड़दौड़ करते हैं। स्त्रियाँ पंक्तिबद्ध आगे-पीछे झुकती गान करती नाचती हैं।"

यात्रा : मनाली से स्पिति

नदी की यात्रा पर्वत से आरंभ होती है और पर्वत की नदी से। नदी सबसे घुलने-मिलने को आतुर रहती है, अपने किनारों से लेकर जंगल, गाँव, शहर और समुद्र तक। पर्वत कभी खुद आगे नहीं बढ़ते। उनसे मिलने वहीं जाना पड़ता है जहाँ वे रहते हैं। घर से बाहर निकलना उनकी नियति नहीं है। हाँ, नदी के रास्ते पर्वतों से मिला जा सकता है। हर नदी की अपनी-अपनी यात्रा है जिसकी विपरीत दिशा में चलकर उसके मूल तक पहुँचने का प्रयास किया जा सकता है। यद्यपि ऋषि और नदी के मूल को नहीं जाना जा सकता। ऊँचा पर्वत है जो नदियों के पानी को बाँटता है। पर्वत के एक ओर का पानी कहीं जा मिलता है, दूसरी ओर का कहीं। एक ही स्रोत से निकला पानी अलग-अलग समुद्रों में गिरता है। हर ऊँचे पहाड़ को देखकर लगता है, मानव इसे प्रणाम कर लौट गया है। दूसरी ओर जीवन शेष नहीं है। पृथ्वी बस यहीं समाप्त हो गई है। कुछ ऐसा ही अनुभव होता है। रोहतांग शिखर को देखकर। जैसे यहाँ आकर सागर से शुरू हुई पृथ्वी समाप्त हो गई है। संभवतः इसीलिए लेडी चेटवुड ने अपनी पुस्तक में कुल्लू को नाम दिया है : 'द एंड ऑफ हैविटेबल वर्ल्ड' यानी जनबस्ती का अंत।

वास्तव में ऐसा नहीं है। पृथ्वी का अंत कोई नहीं खोज पाया आज तक। रोहतांग के उस ओर एक अलग और अद्‌भुत संसार है–चंद्रा और भागा का संसार। इसी अनोखे संसार में बसा है हिमाचल प्रदेश का जनजातीय ज़िला लाहुल स्पिति जो क्षेत्रफल (13,835 स्क्वेयर किलोमीटर) में तो सबसे बड़ा है, आबादी (32,100) में सबसे कम।

यह बर्फ का रेगिस्तान है जिसका अपना सौंदर्य है, अपनी विभीषिका है। अपनी विशेषताएँ हैं, अपनी कठिनाइयाँ हैं। रोहतांग के पार बर्फ-भरी चोटियाँ दिखती हैं, दूर-दूर तक फैली। नीचे बहती है चंद्रा और भागा। चंद्रा नदी बारालाचा से निकलती है, भागा सूरजताल से। दोनों का संगम तांदी में होता है। चंद्रा घाटी 2600 स्क्वेयर किलोमीटर में फैली है जबकि भागा घाटी लगभग 1550 स्क्वायर किलोमीटर में। ऊपर की चोटियों, ढलानों के बीच बर्फ के दरिया जमे रहते हैं बारह महीने।

जो प्राकृतिक सौंदर्य प्रदेश के इस भूभाग में है, अन्यत्र कहीं नहीं। कुल्लू प्रदेश का स्विट्ज़रलैंड है। व्यास घाटी का आकर्षण अद्‌भुत है। सतलुज घाटी कहीं खुश्क है, कहीं नीची है, कहीं ऊँची। सतलुज का पानी गंदला रहता है। रावी नदी बहुत

गहराई में बहती है। व्यास इतनी सतह पर बहती है कि कोई भी राहगीर उसे छू सकता है। पानी है कि बारह महीने नीला और स्वच्छ। मंडी से ऊँचाई धीरे-धीरे बढ़ती है। व्यास के किनारे-किनारे कुल्लू से मनाली पहुँचते-पहुँचते यह पता नहीं चलता कि हम 1926 मीटर की ऊँचाई पर पहुँच गए हैं।

पहाड़ की ऊँचाई की यह विशेषता है कि एक ऊँचाई पर जहाँ भी चले जाओ, किसी भी स्थान पर चले जाओ, एक-सा माहौल मिलेगा। वही वनस्पति, वही पेड़, वही हवा, वैसी ही मिट्टी, वैसी ही चट्टानें। ऊँचे शिखरों पर जितना ऊँचा जाओ, वातावरण उतना ही शांत और एकांत। बर्फ-भरी चोटियाँ जैसे मौन महानाद करती हुईं। जितनी अधिक चुप्पी, उतना ही गंभीर स्वर निकालते प्रतीत होते शिखर।

रोहतांग

मनाली के ऊपर ताज-सा खड़ा है रोहतांग। ऊँचाई 3955 मीटर। तिब्बती भाषा में रोहतांग का अर्थ है 'शवों का ढेर'। यह दर्रा जून या जुलाई में खुलता है और अक्तूबर-नवंबर में बंद हो जाता है। मनाली में व्यास के पार से सड़क दीपक प्रोजेक्ट के पास है। लोग फिर भी अप्रैल से नवंबर के अंत तक आते-जाते रहते हैं, जब तक कि बहुत बर्फ न गिर जाए। ऐसे में इस दर्रे से निकल पाना जोखिम-भरा काम है। निश्चित समय से पहले इसे पार करना होता है अन्यथा तेज़ हवाएँ और तूफान जानलेवा हो जाता है। हर साल तूफान में लोग फँस जाते हैं जिनके शव मौसम खुलने पर ही निकल पाते हैं। पुराने समय में पैदल ही आना-जाना होता था। यह रास्ता बहुत खतरनाक था और बर्फ पिघलने पर शवों के ढेर निकलते थे।

रोहतांग शिखर पर ही है व्यास कुंड जहाँ व्यास बूँद होकर निकली है, जो मैदानों में जाकर दरिया बनी। रोहतांग के दूसरी ओर उतराई है खोकसर तक। घुमावदार सड़क से नीचे उतरते हैं तो इस ओर नंगे पहाड़ नज़र आते हैं जबकि दूसरी ओर ऊँचे देवदार, रंग-बिरंगे फूल, झाड़ियाँ हैं। इस ओर मानसून नहीं पहुँचता इसलिए बारिश नहीं होती। रोहतांग का शिखर मानसून की दीवार बन रोकता है। रोहतांग की दूसरी ओर बारिश नहीं, सिर्फ बर्फ गिरती है।

उतराई में आधार पर सबसे पहले आता है खोकसर। यहाँ से कुंजम-पास होकर काजा जाने के लिए सड़क जाती है। काज़ा से यह सड़क समदो तथा पूह होती हुई किन्नौर निकलती है।

खोकसर

खोकसर में चंद्रा नदी के बाईं ओर एक गोन्पा है। लाहुल में मिट्टी तथा लकड़ी से बने गोन्पा अद्‌भुत काष्ठ कला लिए हुए हैं। लाहुल में कुल अट्ठारह मंदिर तथा गोन्पा हैं। तिब्बती में गोन्पा का अर्थ है भगवान का घर।

चीनी यात्री ह्यूनसांग ने लाहुल को लो-यू-लो नाम से पुकारा है और इसे कुल्लू से 1800 या 1900 ली उत्तर में बताया है। लाहुल तथा तिब्बत के लोग लाहुल को गार्जा पुकारते हैं। तिब्बती में लाहुल का अर्थ 'दक्षिण देश' तथा 'देवताओं का देश' भी है।

ज़िले के मुख्यालय केलांग की ओर जाते हुए खोकसर तथा तांदी के बीच महत्त्वपूर्ण मंदिर है घेपन देवता का। चंद्रा नदी के दाएँ किनारे 3130 मीटर की ऊँचाई पर बसा है शाशन गाँव, जिसे अब शिशु कहा जाता है। घेपन लाहुल का प्रमुख और धनवान देवता है। यह देवता लाहुल की समस्त प्रजा का रक्षक माना जाता है। घेपन देवता का प्रतीक एक लंबा लक्कड़ है जिसे रंग-बिरंगे कपड़ों से सुसज्जित रखा जाता है। देवता अपने भाई जमलू से मिलने जाता है। इसी सांस्कृतिक यात्रा ने मलाणा की कणाशी बोली में तिब्बती तथा भोटी के शब्दों का समावेश किया है।

शीशु से गोंधला तक भूमि बड़ी उपजाऊ है। गोन्धला 3160 मीटर पर बसा गाँव है। जिसमें गोंधला किला है। किले के स्वामी ठाकुर फतेह सिंह बताते हैं, "ये किला बीस पुश्तों पहले बना है।" वास्तव में यह किला लगभग 1700 में कुल्लू के राजा मानसिंह द्वारा बनवाया गया। सात मंज़िला यह किला पहाड़ी वास्तुकला का अनूठा नमूना है। पाँचवीं मंज़िल में ठाकुर रहा करते थे जहाँ से वे प्रजा की पुकार सुनकर न्याय करते थे। किले में कुछ हथियार, मूर्तियाँ, पुराना फर्नीचर आदि हैं। ठाकुर के पास एक तलवार है जिसे बुद्धिमत्ता की लतवार कहा जाता है। यह तलवार ठाकुर फतेह सिंह के पूर्वजों को दलाईलामा ने दी है। ठाकुर फतेह सिंह इस किले को प्रदेश के भाषा-संस्कृति विभाग को देना चाहते थे जिसकी बात अंतिम नहीं हो पाई। अब केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग से संपर्क किया जा रहा है।

हाल ही में (वर्ष 2005) यह किला प्रदेश के भाषा-संस्कृति विभाग द्वारा खरीद लिया गया है और इस के जीर्णोद्धार के प्रयास किए जा रहे हैं।

केलांग

केलांग से सात किलोमीटर पीछे चंद्रभागा के संगम की पहाड़ी पर लाहुल का सबसे बड़ा गोन्पा गुरुघंटाल गोन्पा है। यह बौद्धमठ पद्मसंभव द्वारा आठवीं शताब्दी में बनवाया गया बताया जाता है। मठ में महात्मा बुद्ध, पद्मसंभव की मूर्तियाँ हैं। एक मूर्ति बज्रेश्वरी की भी है। गोन्पा की काष्ठकला आकर्षित करती है। जून के मध्य घंटाल नाम से उत्सव मनाया जाता था।

लाहुल का मुख्यालय है केलांग। ऊँचाई 3165 मीटर। केलांग पहुँचकर एक अजीब-सा अहसास होता है। मिट्टी के घर बाहर से देखने में जितने छोटे, भीतर उतने ही खुले और बर्फ की मार से सुरक्षित। वातावरण में घास की अजीब-सी गंध फैली रहती है। छोटा-सा बाजार। कुछ कार्यालय। छोटा-सा गाँव।

केलांग के ठीक ऊपर बर्फ-भरे शिखर पर एक नारी आकृति बनी हुई है। इसे

'लेडी ऑफ केलांग' कहा जाता है। बर्फ के ऊपर यह नारी आकृति सदा बनी रहती है, चाहे जितनी भी बर्फ क्यों न गिर जाए। इसे देवी माना जाता है।

ठहरने के लिए एक सर्किट हाऊस, रेस्ट हाऊस है। सीज़न में पर्यटन विकास निगम द्वारा टेंट भी लगाए जाते हैं। यह क्षेत्र विदेशी पर्यटकों के लिए भी खुला है इसलिए सीज़न में काफी विदेशी पर्यटक आते हैं। केलांग से लेह के लिए भी अब सड़क मार्ग है। कुछ उत्साही ट्रेकिंग पर जाते हैं। अब नया सर्किट हाऊस, पर्यटन निगम का होटल बन गया है।

ज़िला मुख्यालय होने के कारण यहाँ जिलाधीश बैठते हैं। एक ज़िले में जितने कार्यालय होते हैं, उतने यहाँ हैं। अधिकांश कर्मचारी बाहर के हैं जो इस जनजातीय क्षेत्र में नियुक्ति को सजा के तौर पर लेते हैं। रास्ता खुलते ही कर्मचारी छुट्टियाँ लेकर घर की ओर भागते हैं। सर्दियाँ उतरने पर घर जाने वाले लोग घर बैठे इंतज़ार करते हैं कि बर्फ गिर जाए और रोहतांग बंद हो जाए। वे मजबूरी के कारण वापस न जाएँ।

कार्यालय और पुरानी बिल्डिंगों के बीच रासबिहारी बोस की प्रतिमा चौंकाती है।

कर्मचारी अक्तूबर में ही छह-सात महीने की खाद्य सामग्री, मिट्टी का तेल आदि इकट्ठा कर रख लेते हैं, कई घरों से सब्जियाँ सुखाकर लाते हैं जिनका उपयोग दालों के ऊब जाने पर होता है। स्थानीय वासियों के घरों में स्वागत छंग (स्थानीय सुरा) और नमकीन चाय से किया जाता है। पहले यहाँ से लोग तिब्बत आते-जाते थे और व्यापार किया करते थे। अब कई भोट लोग अपने घोड़ों के साथ निचले क्षेत्रों में आ जाते हैं। आलू, जीरा, फर्न, कुठ तथा जड़ी-बूटियाँ यहाँ की मुख्य फसलें हैं।

सितंबर तक पूरी घाटी में हरियाली रहती है। गर्मियों में गोभी-आलू की सब्जी भी उगाई जाती है। पहाड़ियों में काला जीरा बहुतायत में पाया जाता है। सूखे पहाड़ों को ढाँपने के लिए व्यूंस जाति के पेड़ उगाए गए हैं जो लकड़ी तथा चारे के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

बर्फ से घिरे होने के बावजूद यहाँ त्योहार और उत्सव अपने ढंग से मनाए जाते हैं जिसमें बर्फ के खेल खेले जाते हैं। जनवरी में हालड़ा, फरवरी में फागली, गोची जैसे उत्सवों में लोग अपने पारंपरिक वस्त्राभूषणों में निकलते हैं चाहे फुटों के हिसाब से बर्फ गिरी हो। बौद्ध मठों में छेशु उत्सवों में मुखौटा धारण कर लामा लोग नृत्य करते हैं।

केलांग में एस०डी०एम० मेरे मित्र थे। उनसे मिलने गया तो वहाँ एक दिलचस्प मुकद्दमे की सुनवाई हो रही थी। एक व्यक्ति दूसरे पर आरोप लगा रहा था कि उसने उसकी गुफा पर कब्ज़ा कर लिया है। पहले गुफा का नाम स्थानीय भाषा में लिया गया, जो समझ नहीं आया। तब उसने बताया कि वह एक गुफा से नाजायज़ कब्ज़ा हटाना चाहता है।

सभी लोग वहाँ गुफाओं में वास करते हों, ऐसी बात नहीं है। लाहुल के एक गाँव से कई आई.ए.एस. और प्रथम श्रेणी अधिकारी हैं। जो पहले व्यापारी रहे, उनके

घरों के कालीन और साज-सज्जा भी देखते ही बनती है।

कारदंग-शाशुर मठ

केलांग के ऊपर तथा सामने दो गोन्पे हैं। कारदंग गोन्पा केलांग के सामने भागा नदी के पार है। कहा जाता है कि इसका निर्माण उत्तर मध्यकाल में हुआ। इसके बाद सदियों तक यह मठ उपेक्षित रहा। 1921 में कारदंग-वासी नोरबू के मन में विरक्ति पैदा हुई और उसने संसार त्याग दिया तथा इस गोन्पा का पुनर्निर्माण किया। मठ में इस समय चार पूजाघर हैं, दाईं ओर के मठ में तारा तथा पद्मसंभव की मूर्तियाँ हैं। दूसरे में कुछ गुरु लामाओं की मूर्तियाँ हैं, एक नोरबू (जो रिमपोछे बन चुका था) की समाधि है।

मठ में अवलोकितेश्वर की मूर्ति है जिसके ग्यारह सिर हैं तथा हज़ार हाथ हैं। सिर एक के ऊपर एक रखा गया है। दीवारों में बुद्ध चरित के विभिन्न दृश्यों को अंकित किया गया है। कुछ चित्र तांत्रिक पद्धति के हैं। वास्तव में यह एक बौद्ध-विहार है जिसमें बाईस लामा तथा आठ जोमों (भिक्षुणी) के रहने की व्यवस्था है। मठ-बौद्ध ग्रंथों तथा पांडुलिपियों का अथाह भंडार है।

केलांग के ऊपर शाशुर गोन्पा है। इसे सत्रहवीं शताब्दी में लद्दाख के लामा देव गायत्शो द्वारा स्थापित किया गया। गोन्पा में इसके संस्थापक की मूर्ति स्थापित है। लामा लोग मठ के साथ बने घरों में रहते हैं। मठ के भीतर बुद्ध-प्रतिमा के साथ-साथ डरावनी आकृतियाँ बनाई गई हैं। बुद्ध की मूर्ति भी बहुत बड़े आकार की है।

मृकुला देवी

केलांग से उदयपुर का सफर एक दूसरी दुनिया का सफर है। इस ओर की घाटी का नाम पट्टन घाटी है जो चंबा से जा मिलती है। इसलिए इस क्षेत्र को चंबा लाहुल कहा जाता है। कुछ वर्ष पूर्व केलांग से थरोट तक ही बस जाती थी। थरोट के साथ ही है उदयपुर, केलांग से 54 किलोमीटर।

मियाड़नाला तथा चंद्रभागा के संगम पर स्थित है उदयपुर जिसे सन् 1695 के लगभग राणा उदय सिंह के समय उदयपुर नाम दिया गया। इसी गाँव में काली मंदिर है जिसे मृकुला देवी मंदिर भी कहा जाता है। बाहर से देखने में साधारण, भीतर पुरातत्त्व कला का खजाना सँजोए हुए। मंदिर 1028 और 1063 के बीच निर्मित हुआ माना जाता है। हालाँकि इसमें अलग-अलग समयों में अलग-अलग काष्ठ कलाकृतियाँ जुड़ती रहीं।

मंदिर में महिषासुर मर्दिनी की चाँदी या फिर अष्टधातु की लगभग साठ सेंटीमीटर की प्रतिमा है। मूर्ति पर खुदे शारदा लिपि के लेख के अनुसार इसे भद्रवाह के एक कलाकार द्वारा 1569-70 में बनवाया गया। मूर्ति ठाकुर हिमपाल को समर्पित है।

मंदिर तथा इसके भीतर हुई उत्कृष्ट काष्ठकला का काल-निर्धारण पुरातत्त्ववेत्ताओं

द्वारा अलग-अलग किया गया है। मंदिर का मंडप तथा स्तंभ प्रारंभिक समय का माना जाता है। जबकि द्वारपाल तथा अन्य काष्ठकला बाद की। लोकास्था है कि मनाली का हिडिंबा देवी मंदिर तथा मृकुला देवी मंदिर एक ही कलाकार द्वारा बनाए गए। ऐतिहासिक तथ्य इसे सिद्ध नहीं करते क्योंकि हिडिंबा देवी मंदिर राजा बहादुर सिंह के समय 1553 में बनाया गया।

मंदिर के भीतर अद्‌भुत काष्ठकला हुई है। यूँ तो प्रदेश के अन्य काष्ठ मंदिरों में भी कला-दर्शन होते हैं। हिडिम्बा देवी मनाली, पराशर मंदिर (कमांद) कुल्लू, पराशर मंदिर मंडी, त्रिजुगी नारायण दयार, दक्षिणेश्वर महादेव, निरमंड में भी उत्कृष्ट काष्ठकला है किंतु मृकुला देवी की काष्ठकला जितनी अधिक मात्रा में है, उतनी ही अद्वितीय है।

भीतर जाते ही आकर्षक मंडप चौंका देता है। इसके साथ रामायण तथा महाभारत के दृश्य जो उकेरे गए हैं, वे दर्शक को किसी दूसरे ही लोक में ले जाते हैं। कौरव-पांडव, कर्ण, दुर्योधन, द्रोपदी स्वयंवर के साथ राम, लक्ष्मण, संजीवनी लाते हनुमान, राक्षसों से घिरी सीता, कुंभकरण को जगाना आदि दृश्यों को कलात्मकता से उकेरा गया है। अमृत-मंथन, वामन, बलि, शिव-पार्वती, कार्तिकेय, नारद तथा गंधर्वों के चित्रों के साथ बैल, घोड़े तथा ऊँट तक चित्रित किए गए हैं।

त्रिलोकीनाथ

चंबा लाहुल का प्रमुख मंदिर है त्रिलोकीनाथ मंदिर, जिसे त्रिलोकीनाथ धाम भी माना जाता है। उदयपुर के पार लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है यह मंदिर। चंद्रभागा घाटी का यह एकमात्र शिखर शैली का मंदिर है। पत्थरों से बने इस मंदिर की ड्योढ़ी में काष्ठकला हुई है। मंदिर के बाहर अब एक दीवार बना दी गई है।

मंदिर में सफेद संगमरमर की लगभग नब्बे सेंटीमीटर की शिवमूर्ति है जिसे बोधिसत्व अवलोकितेश्वर माना जाता है। आसन मुद्रा में बैठे बोधिसत्व का एक वरद हस्त है तो दूसरे में कमल है। मूर्ति के सिर पर 'अमिताभ' की छोटी मूर्ति है। छह भुजाओं वाली यह आकर्षक मूर्ति बोधिसत्व त्रिलोकीनाथ के नाम से भी जानी जाती है।

बौद्ध और हिंदू, दोनों द्वारा पूजित यह मंदिर एक धाम के रूप में प्रतिष्ठित है। मंदिर का पुजारी बौद्ध है जो त्रिलोकीनाथ के राणा द्वारा नियुक्त किया गया है। यहाँ पौरी उत्सव मनाया जाता है।

ऐसा भी विश्वास है कि यह मूल रूप में एक हिंदू मंदिर था जिसे आठवीं शताब्दी में पद्‌मसंभव द्वारा बौद्ध मठ में बदल दिया गया।

स्पिति घाटी यूँ तो ज़िला लाहुल-स्पिति का भाग है किंतु बीच में कुंजम जोत के कारण दोनों अलग-अलग हैं। जैसे कुल्लू के बाद केलांग है, कुछ उसी तरह किन्नौर के बाद स्पिति। स्पिति किन्नौर से ज़्यादा करीबी रिश्ता किए हुए है तथापि ज़िला लाहुल-स्पिति है। स्पिति जाने के लिए खोकसर से सड़क मुड़ती है। कुल्लू से

सीधे केलांग को आ जाएँ तब भी केलांग से स्पिति (या काज़ा) खोकसर से होकर जाना होगा।

कुंज़म की ऊँचाई (4,590 मीटर) रोहतांग से अधिक है अतः यह रोहतांग से बहुत कम समय के लिए खुलता है। रोहतांग तो अब एक व्यस्त पर्यटन स्थल बन गया है। यहाँ गर्मियों में कभी एक चाय वाला भी बैठने से कतराता था। लोग पंद्रह मिनट से ज़्यादा रुकते न थे।

3,140 मीटर ऊँचे खोकसर को यहाँ नीचा माना जाता है। रोहतांग का आधार, कुंज़म का एक प्रकार का बेस-कैंप।

खोकसर से चंद्रा नदी का साथ है। पुल पार करने के बाद चंद्रा की दिशा बदलती है। चंद्रा बारालाचा से निकलती है, 4,890 मीटर की ऊँचाई से। बारालाचा छतड़ू से आगे बातल से जाया जा सकता है। बातल तक का सफर चंद्रा के करीब का सफर है। बातल से आगे शिगरी या शिगड़ी ग्लेशियर है जो एशिया का सबसे बड़ा और विश्व का दूसरा बड़ा ग्लेशियर माना गया है। यह हिमनद बहुत बड़े अजगर की तरह ग्यारह किलोमीटर लम्बा है। ग्लेशियर अब पृथ्वी ही बन गया है। चार हज़ार मीटर की ऊँचाई पर। शिगड़ी ग्लेशियर अकेला ग्लेशियर नहीं है, यहाँ नालों-ढलानों में ऐसे कई ग्लेशियर हैं। इस हिमनद का उल्लेख कई यूरोपीय यात्रियों ने किया है।

कुंजम ला

शिगड़ी से सीधे कुंज़म जोत पहुँचते हैं। यह दर्रा लाहौल और स्पिति की सीमा पर प्रहरी-सा खड़ा है। रोहतांग से कहीं ऊँचे इस दर्रे के खुलने की अवधि रोहतांग से कम है। जोत में देवी का मंदिर है जैसा कि सभी दर्रों में होता है। यहाँ देवता या देवी का स्थान बन जाता है जो यात्रियों को मनोबल प्रदान करता है, विशेषकर ऐसे यात्री जो असमय में बर्फानी तूफानों से जूझते पैदल चलते हैं। यहीं से चंद्रताल को रास्ता जाता है।

कुंज़म पास से उतरते ही स्पिति घाटी में प्रवेश होता है, जैसे रोहतांग से उतरते ही लाहौल घाटी पहुँचते हैं। नीचे खोकसर की भाँति स्पिति का पहला गाँव लोसर आता है। लगभग 4085 मीटर की ऊँचाई पर बसे लोसर में एक बौद्ध मठ है।

लोसर के बाद हंसा, क्याटो, सुमलिंग, रंगरीक तक आते-आते पहाड़ का मैदान आरंभ हो जाता है। रंगरीक रोंगटोंग नाले में बाँध बनाया गया है।

यहाँ आकर पिति नदी से मिलते हैं। व्यास, चंद्राभागा और पिति-पर्वतों के पेट में अँतड़ियों-सी छाई हैं।

काज़ा, स्पिति का मुख्यालय एक अद्भुत भौतिक संरचना लिए हुए है, जिसमें कई प्रकार की चट्टानें हैं। कुंज़म से 76 किलोमीटर, केलांग से 187 किलोमीटर, काज़ा से आगे की तथा ढंक्खर मठ हैं। ताबो मठ यहाँ से 47 किलोमीटर है।

बीत गए सहस्र वर्ष

हिमालय में बौद्ध मठ

हिमालय की ऊँचाइयों में सर्वप्रथम बौद्ध विहार स्थापित करने का श्रेय पद्मसंभव को दिया जाता है। कहते हैं पद्मसंभव ने 779 ई० में तिब्बत में पहला बौद्ध मंदिर सेम-यास या समय स्थापित किया। इससे पूर्व चीन और नेपाल से ब्याही दो रानियों द्वारा दहेज में लाई गई अक्षोभ्य और शाक्य मुनि की प्रतिमाओं के लिए तिब्बत की इन रानियों ने मंदिर बनवाए।

बौद्ध धर्म के प्रबल समर्थक तिब्बत के शासक स्रोङ्त्सन गम्पो (617-650) ने अपने दूत नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय भेजे ताकि वे बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु कुछ विद्वानों को तिब्बत ला सकें। ये दूत बौद्ध दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् शांतरक्षित को तिब्बत लाने में सफल हुए। शांतरक्षित ने रिम्पोचे पद्मसंभव को आमंत्रित करने का परामर्श दिया। यह आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की बात रही होगी जब बौद्ध धर्म में तंत्रयान का प्रवेश हो चुका था। पद्मसंभव भी तंत्रयान के हिमायती थे जिसकी नींव इन्होंने तिब्बत में रखी। पद्मसंभव की जीवनी पेमा कातङ् में जोहार (रिवालसर), गार्ज़ा (लाहुल) और गुरुघंटाल (गोंधला) का उल्लेख पद्मसंभव के साथ हुआ है।

इस कार्य में दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम रिन-चेन-जंग-पो (रत्नभद्र) है। इन्हें लो-त्स-वा या लोच़ावा कहा जाता है। जिसका अर्थ अनुवादक है।

तिब्बत, लद्दाख और गुगे—इन तीन राज्यों में सतलुज का मानसरोवर तक का ऊपरी क्षेत्र गुगे कहलाता था। गुगे के शासक ये-शेस-ओ या ये-शेस-ओद ने इक्कीस युवाओं को भारत भेजने के लिए चुना। रि-चेन-जंग-पो उनमें एक था जिसने तीन बार भारत भ्रमण किया और सत्रह वर्ष भारत में बिताए। वर्षों तक कश्मीर में अध्ययन किया, भारत के कई स्थानों का भ्रमण किया।

क्या कहते हैं इतिहासकार !

इन मठों के निर्माण में गुगे तथा लद्दाख के शासकों का सीधा योगदान होते हुए भी, निर्माता रिन-चेन-जंग-पो को माना जाता है। यह एक आश्चर्यजनक बात है। प्रायः मठ-मंदिर के निर्माण से शासक अपना नाम जोड़ते हैं। यहाँ ऐसा नहीं हैं।

रिन-चेन-जंग-पो (950-1055) को एक धर्मप्रचारक, महानुवादक ही नहीं एक

कला-प्रेमी और मंदिर निर्माता भी माना जाता है। कहा जाता है उसने एक सौ आठ के लगभग बौद्ध विहार बनाए। गुग्गे और लद्दाख के शासकों से इन्हें प्रश्रय मिला। रिन-चेन-जंग-पो कश्मीर में बत्तीस कश्मीरी बौद्ध कलाकार साथ लाए और मठों का निर्माण करवाया। कानम, चिनी, नाको, गैमूर जैसे मठों के साथ ताबो एक महत्त्वपूर्ण मठ है जिसका निर्माण 996 ई० में हुआ।

ताबो मठ में उपलब्ध लेख में इसकी स्थापना का उल्लेख है। टूची के "द टेंपल्ज़ ऑफ वेस्ट्रन तिब्बत एंड देयर आर्टिस्टिक सिम्बॉलिज्म" में इस लेख का मूल व रूपांतर दिया गया है जिसके अनुसार मंदिर का निर्माण दादा बौद्धिसत्व (ये-शेस-ओ) द्वारा हुआ। छियालीस वर्ष बाद पोते ल्हा-सुम-पा द्वारा मंदिर पुनः बनवाया गया। ये-शेस-ओ का कार्यकाल 967-1040 माना जाता है।

ए०एच० फ्रैंके ने 'एंटिक्विटीज़ ऑफ इंडियन तिब्बत' में लेख की तिथि 1050 निश्चित करते हुए इसमें से पूर्व निर्माण के 46 वर्ष घटाकर 1004 निर्माण काल माना है।

जीर्णोद्धार या पुनर्निर्माण के समय रिन-चेन-जंग-पो की भेंट भारतीय विद्वान् दीपंकर श्रीज्ञान (अतिशा) में हुई। अतिशा का गुगे में लगभग तीन वर्ष का प्रवास रहा (1024-1045)। इसमें से 46 वर्ष घटाने पर 996-999 की अवधि आती है। तिब्बती कैलेंडर के अनुसार 'फायर-ऐप वर्ष' में ताबो का निर्माण हुआ जो 996 ई० है।

ताबो छोस खोर

शिमला में 365 किलोमीटर दूर ताबो छोस खोर स्पिति का एक महत्त्वपूर्ण मठ है। स्पिति के विहारों की यह विशेषता है कि वे ऊँचे पर्वतों पर किलानुमा ढंग से बने हैं। की तथा ढंक्खर मठ ऐसे ही हैं। वे दूर से देखने पर मठ कम और किले अधिक लगते हैं। की और ढंक्खर का वास्तु शिल्प एक-सा है। दोनों जैसे ऊँचे पहाड़ खोदकर बनाए गए हों, या इन्हें बनाकर पडाड़ की शक्ल दी गई हो।

ताबो एक ऐसा मठ है जो पहाड़ की गोद में 3050 मीटर ऊँचे मैदान में स्थित है। स्पिति नदी के बाईं ओर बिलकुल खुले में इसकी अवस्थिति तत्कालीन शासकों के संरक्षण की प्रतीक है।

ताबो पहुँचने के लिए शिमला से चलने वाले यात्री को किन्नौर के मुख्यालय रिकांग पियो में या उससे आगे पूह में ठहरना पड़ेगा। शिमला से पियो 206 किलोमीटर है और पूह 274 किलोमीटर। पियो वन-वनस्पति से भरा है, पूह से प्रकृति से एकदम बदलाव आ जाता है और वनस्पतिरहित बर्फ का रेगिस्तान आरंभ हो जाता है। पूह से आगे सतलुज और स्पिति नदी के संगम से आगे स्पिति नदी के ऊपर और बहुत ऊपर होती हुई सड़क एक दूसरे संसार में ले जाती है। जहाँ बस पर्वत ही पर्वत नज़र आते हैं। उस ओर 3274 मीटर ऊँचे यंगथङ् से दूसरी ओर उतराई आरंभ होती है। नीचे आने पर घाटी खुलती है और ताबो एक मैदान में प्रकट होता है।

यह रास्ता मई से नवंबर तक खुला रहता है। आगे-पीछे मौसम पर निर्भर करता है। दूसरा रास्ता मनाली से होकर है जो दो दर्रों पर निर्भर है। पहला दर्रा रोहतांग है मनाली से 51 किलोमीटर 3976 मीटर, दूसरा कुंजम 4545 मीटर ऊँचा। मनाली से 248 किलोमीटर का यह रास्ता जुलाई से अक्तूबर तक ही खुलता है।

अद्भुत कला संग्रहालय

ताबो पहुँचने पर मिट्टी के कुछ घर नज़र आते हैं जो बाहर से अति साधारण प्रतीत होते हैं।

रेस्ट हाऊस के ठीक सामने वर्तमान ताबो का नया मुख्य द्वार है। वर्तमान ताबो इसलिए कि इस द्वार के भीतर का मठ नया बना है। अब इसी भवन में पूजा-अर्चना होती है। भीतर आकर्षक व सुंदर थंका चित्र हैं। अन्य प्रतिमाओं के अतिरिक्त ताबो के पूर्व लामा की प्रतिमा भी है। ऊपरी मंज़िल में लामा जी के आवास के साथ एक बैठक बनी है। यहाँ दलाईलामा के ठहरने के लिए भी एक अलग कमरा बना रखा है। यह भवन 1981-83 के मध्य बना और 1983 में ही यहाँ कालचक्र समारोह हुआ जिसमें दलाईलामा पधारे थे।

इस मठ के दाईं ओर एक सुंदर छोरतेन और एक बड़ी सराए है। दोमंज़िली इस सराय में यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था है।

नए मठ के पीछे पुराने मठ का मुख्य द्वार है। द्वार के भीतर लामा और लामा छात्रों के लिए पेंटिंग का एक स्कूल चलता है। इस स्कूल की उत्तर दिशा में प्राचीन मठ आता है।

प्राचीन मठ

प्राचीन मठ 84.70 × 74.30 मीटर के परिक्षेत्र में फैला हुआ है। जिसके चारों और दो मीटर ऊँची दीवार है। इसके भीतर नौ मंदिर माने जाते हैं। इनमें से एक दीवार के बाहर है। इसमें ज़ेलामा और गो-खङ् दक्षिणाभिमुखी हैं, शेष सब पूर्वाभिमुखी। नौ मंदिरों में से पाँच प्राचीन माने जाते हैं।

बौद्ध दर्शन बहुत गहरा होता गया है। 'सर्व तथागत-तत्त्व' संग्रह में योग की 'समय' शाखा है। 'समय' तीन मुख्य तांत्रिक शाखाओं से एक है। तंत्र में अभी समय, वज्र समय, धर्म समय, कर्म समय हैं। इसी प्रकार पाँच तथागतों में विरोचन, अक्षोभ्य, रत्नसंभव, अमिताभ तथा अमोघसिद्धि हैं। इन सबके अपने-अपने मंडल हैं। इस तरह 24 मंडल हैं। जिनमें मूर्तियों की स्थिति अपने-अपने ढंग से रहती है।

द्वार मंडप के भीतर मुख्य मंदिर में जिसे शुग-ल्हा-खङ् कहते हैं, ऐसे ही मंडल में व्यवस्थित मूर्तियाँ हैं। बीच में महाविरोचन की चार ऐसी मूर्तियां एक दूसरे की ओर पीठ किए हुए हैं। मुख्य मूर्ति पूर्वाभिमुख है। महाविरोचन की सभा में यहाँ रखी कुछ

महत्त्वपूर्ण पोथियों के अतिरिक्त बत्तीस अन्य आदमकद गच मूर्तियाँ हैं। कमलदल पर आसीन और प्रभामंडल से युक्त मूर्तियाँ दीवार में लकड़ी गाड़ हवा में रखकर उभारी गई हैं।

मूर्तियों के अतिरिक्त दीवारों पर भित्ति चित्र ध्यान आकर्षित करते हैं। जातक कथाएँ, महात्मा बुद्ध की की कथा एक हजार बुद्ध जैसे चित्र अपने में अनोखे हैं।

गो खङ् महाकाल वज्र भैरव मंदिर है। जेलमा में सुंदर भित्ति चित्र हैं। ल्हाखङ् चेम्पो में बोधिसत्व मैत्रेय विराजमान हैं। सेर खङ् को स्वर्ण मंदिर कहा जा सकता है। यहाँ भी आकर्षक भित्ति चित्र हैं। क्यिलखोर-खङ् में रहस्यमय मंडल हैं। इसमें जीव-जन्तुओं के चित्रों के अतिरिक्त गंधर्व किन्नर के चित्र हैं। कार एब्यून ल्हा-खङ् श्वेत मंदिर है जिसे देवी का मंदिर भी कहा जाता है। ब्रोम-तोन ल्हा खङ् में शाक्य मुनि की प्रतिमा है।

ताबो में सड़क से ऊपर पुरातन गुफाएँ है जिसमें कभी लामा लोग रहा करते थे। इनमें से अधिकांश गुफाएँ अब क्षतिग्रस्त हो गई हैं। इनमें एक अभी सलामत है। इस गुफा में, जिसे फो-गोन्पा भी कहा जाता है, अभी भी भिति चित्र देखे जा सकते हैं।

ताबो के मुख्य मंदिर शुग-ल्हा-खङ् में बौद्ध ग्रंथों का विपुल भंडार है। इस निधि का उल्लेख टूची तथा फ्रैंके दोनों ने किया है। फ्रैंके ने यहाँ पाँच फुट ऊँचा पोथियों का ढेर देखा था। एक-एक ढेर में सैंकड़ों खुले पृष्ठ संभवतः प्रज्ञापारमिता के तिब्बती अनुवाद के थे।

एक बौद्ध मठ को समझने के लिए ताबो मठ के अतिरिक्त दूसरा सुंदर उदाहरण नहीं हो सकता। अतः ताबो मठ का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

ताबो छोस खोर : संरचनात्मक विवरण

प्राचीन ताबो 84.70×74.30 मीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है। चारों ओर दो मीटर ऊँची दीवार बनी है। इस परिक्षेत्र के भीतर नौ मंदिर हैं जिनमें से पाँच मंदिर मूल संरचना के पुराने मंदिर माने जाते हैं। ये पाँच-शुग-ल्हा-खङ् (gTsug-Lha-khang), सेर-खंङ् (gser-Khang), क्यिलखोर-खङ (dkyil-Khor-khang), द्रोम-तोन-ल्हा-खङ् (Drom-ston-Lha-Khang), व्यामस-पा चैंप ल्हा-खङ् (Byams-pa chemp Lha-Khang), हैं। शेष चार बाद में जोड़े गए।

प्रवेश द्वार के भीतर कुछ खंडित प्रतिमाएँ दोनों ओर नज़र आती हैं। दीवारों में भित्ति चित्रों के अवशेष हैं। टूची ने 'द टैंपल्ज़ ऑफ वैस्ट्रन तिब्बत एंड देअर आर्टिस्टिक सिंबॉलिज़्म' में इन प्रतिमाओं में लेख होने का उल्लेख किया है। टूची ने मंदिर के बहुत क्षतिग्रस्त होने की बात भी की है और कहा है कि यदि ब्रिटिश अधिकारी स्पिति के नोनो पर दबाव न डालें तो यह शीघ्र ही खंडहर हो जाए। मठ दो लामाओं के वश में है जो मंत्र का अर्थ समझने के लिए रुके बिना यंत्रवत् पाठ करते

हैं। ताबो की उत्तर दिशा में चट्टानों में बनी कोठरियाँ, जो सर्दियों में भिक्षुओं के रहने के काम आती हैं, छोड़ दी गई हैं और अब टूटने-गिरने लगी हैं।

प्रवेश द्वार जिसे गो-था कहते हैं, 6 मीटर लंबा और 2.5 मीटर चौड़ा है।

शुग-ल्हा-खङ् (gTsug-Lha-khang)

शुग ल्हा-खङ् ही ताबो में प्रमुख और महत्त्वपूर्ण मंदिर है। प्रवेश द्वार से भीतर जाते ही यहां एक अद्भुत संसार दिखता है। यह संसार है उत्कृष्ट कलात्मक गच प्रतिमाओं का, रंगीन भित्ति चित्रों और बौद्ध ग्रंथों के अनूठे वैभव का।

मुख्य भवन या सभागृह से सामने दिखते हैं महाविरोचन। यह भवन जिसे दु-खङ् कहा जाता है, 12.40×10.90 मीटर है।

कहा जाता है कि तिब्बत में 'विरोचन' मत की स्थापना रिन-चेन-ज़ंग-पो ने की। यह मत पद्मसंभव के वज्रयान से घुल-मिल गया।

सभा में मुख्य प्रतिमा महाविरोचन की है। धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में महाविरोचन पूर्वाभिमुख हैं, महाविरोचन की एक आकार की चार मूर्तियाँ हैं जो एक दूसरे की ओर पीठ किए बैठी हैं। मुख्य मूर्ति के दोनों ओर दो मूर्तियाँ हैं जिन्हें रिन-चेन- ज़ंग-पो और अतिशा की माना जाता है।

महामंडल

बौद्ध धर्म समय के साथ-साथ गूढ़ होता गया। जितनी शाखाएँ बनीं, उतनी ही गहरी प्रक्रिया बनती गई। सर्वतथागत तत्त्व संग्रह में योग की 'समय' शाखा है। इसमें कौल, मिश्र तथा समय तीन मुख्य तांत्रिक शाखाएँ हैं। 'समय' शाखा को सबसे बड़ा माना गया है। अभी समय, वज्र समय, धर्म समय, कर्म समय—ये चार समय तंत्र के महाकल्पराजा हैं।

तथागत, वज्र, मणिरत्न, पद्म, कर्म के पाँच परिवारों के पाँच ही तथागत माने जाते हैं जो विरोचन, अक्षोभ्य, रत्नसंभव, अमिताभ, अमोघ-सिद्धि हैं। यही पाँच परिवार वज्रधातु मंडल बनाते हैं।

वज्रधातु मंडल के पाँच वृत्त इस प्रकार होंगे—

1. महाविरोचन	: सत्ववज्री	रत्नवज्री	धर्मवज्री	कर्मवज्री
2. अक्षोभ्य	: वज्रसत्व,	वज्रराज	वज्रराग	वज्रसाधु
3. रत्नसम्भव	: वज्ररत्न	वज्रतेज	वज्रकेतु	वज्रहास
4. अमिताभ	: वज्रधर्म	वज्रविक्षणा	वज्रहेतु	वज्रभाष
5. अमोघसिद्धि	: वज्रकर्म	वज्ररक्षा	वज्रयक्ष	वज्रसंधि

(कुल पचीस)

6. बाहरी परिक्रमा में आठ देवियाँ होंगी—

वज्रलास्या,वज्रमाला,वज्रगीता,वज्रनृत्य,वज्रधूपा,वज्रपुष्पा,वज्रलोका,वज्रगंधा।

7. चार द्वारपाल होंगे : वज्रांकुश, वज्रपाश, वज्रस्फुट, वज्रवेश।

इस प्रकार वज्रधातु मंडल में कुल 37 देवता होंगे। इस मंडल को महामंडल कहा जाता है। इसे महामंडल इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि इसमें भद्रकल्प के सभी हज़ार बुद्धों को दर्शाया जाता है।

सर्व तथागत तत्त्व संग्रह में चार समय हैं। प्रत्येक समय में छह मंडल हैं। अतः कुल चौबीस मंडल माने जाते हैं। एक समय के छह मंडलों को दो कर्मों-उत्पत्ति कर्म और उत्पन्न कर्म में बाँटा जाता है। वज्र धातु के पहले चार मंडल उत्पत्ति कर्म में आते हैं। अंतिम दो मंडल अपने अस्तित्व को शनैः-शनैः केंद्रीय देव विरोचन में लीन करते दर्शाते हैं अतः वे विरोचन में समाहित होने की प्रक्रिया को प्रकट करते हैं।

इसी तरह से इन चौबीस मंडलों की अपनी-अपनी निश्चित संरचना है। तथागत तत्त्व संग्रह में वज्रशेखर योग की अट्ठारह प्रणालियाँ हैं।

दुखङ् में वज्रधातु महामंडल

सभागार में समाधिस्थ महाविरोचन की सभा वज्रधातु में है। इस मंडल के अनुसार समस्त देवताओं की प्रतिमाएँ सुव्यवस्थित रखी गई हैं। यद्यपि कुछ प्रतिमाओं की स्थिति महामंडल के अनुसार सही नहीं है।

जैसा कि पहले कहा गया है दु-खङ् में वज्रधातु मंडल के अनुसार पाँच तथागत हैं।

1. विरोचन या महाविरोचन
2. अक्षोभ्य
3. रत्नसंभव
4. अमिताभ
5. अमोघसिद्धि

इन पांचों के साथ अपने-अपने देवी-देवता हैं। विरोचन सहित यहाँ तैंतीस देवता हैं जबकि वज्रधातु मंडल के अनुसार सैंतीस होने चाहिए थे। समय-समय पर कुछ प्रतिमाएँ खंडित होती और कई बनती रही हैं अतः यह कमी इसी कारण से रही होगी।

विरोचन के साथ की सभी देवियाँ-सत्ववज्री, रत्नवज्री, धर्मवज्री और कर्मवज्री इसमें नहीं हैं, इसी कारण सैंतीस के स्थान पर पैंतीस प्रतिमाएँ हैं।

अक्षोभ्य के साथ वज्रसत्व, वज्रराज, वज्रराग, वज्रसाधु हैं। रत्नसंभव के साथ वज्ररत्न, वज्रतेज, वज्रकेतु, वज्रहास हैं। अमिताभ के साथ वज्र धर्म, वज्रतीक्षणा, वज्रहेतु, वज्रभाष हैं। अमोघसिद्धि के साथ वज्रकर्म, वज्ररक्षा, वज्रयक्ष और वज्रसंधि हैं।

इसी तरह वज्रलास्या, वज्रमाला, वज्रगीता, वज्रनृत्य, वज्रधूपा, वज्रपुष्पा, वज्रलोका

वज्रगंधी देवियाँ और वज्रांकुश, वज्रपाश, वज्रस्फुट, वज्रवेश द्वारपाल हैं।

टूची ने अपने वर्णन में इन सभी देवताओं की दिशाएँ, मुद्राएँ तथा रंग भी दिए हैं। जैसे विरोचन समाधि मुद्रा और सफेद रंग में, रत्नकेतु वरद मुद्रा और गहरे नीले रंग में, शाक्य मुनि धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा और पीले रंग में, वज्रसत्व सफेद रंग में, वज्रराज पीले, वज्रराग लाल, वज्रसाधु हरे, वज्ररत्न पीले, वज्रतेज लाल-पीले, वज्रकेतु नीले, वज्रहास सफेद, वज्रवीक्षण गहरे नीले, वज्रहेतु पीले, वज्रभाष लाल, वज्रकर्म रंगीन, वज्ररक्षा पीले, वज्रयज्ञ काले, वज्रसंधि पीले, वज्रलास्या सफेद, वज्रमाला पीले, वज्रगीता लाल, वज्रनृत्य हरे, वज्रधूपा सफेद, वज्रपुष्पा पीले, वज्रलोका पीला-लाल, वज्रगंधा हरे, वज्रांकुश सफेद, वज्रपाश पीले, वज्रस्फुट लाल और वज्रगंधा हरे रंग में होंगे।

इस महामंडल की दूसरी विशेषता हज़ार बुद्धों का चित्रण है। महात्मा बुद्ध का एक-एक चित्र बहुत कलात्मकता के साथ चित्रित किया गया है। भित्ति चित्रों में महात्मा बुद्ध के जीवन की झलकियाँ, जातक कथाएँ, बुद्ध उपदेश आदि हैं।

मठ की छत लीक करने के कारण बहुत-से चित्र क्षतिग्रस्त हो गए हैं। भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग द्वारा इनका जीर्णोद्धार करवाया जा रहा था।

दीवारों में बहुत से लेख हैं। इसी में से दो फ्रैंके ने ढूँढ़े थे जिनमें ताबो की स्थापना के बारे में उल्लेख है।

दु-खङ् के गर्भगृह में अमिताभ की प्रतिमा है। अमिताभ के एक ओर पद्मपाणि और दूसरी ओर लोकेश्वर हैं।

ज़ेलमा (Zhalma)

ज़ेलमा या जेलामा में बहुत बाद के भित्ति चित्र हैं जिनमें बुद्ध का चित्रण प्रमुख है। 6.60×6 वर्गमीटर के कमरे में लकड़ी के चार स्तंभ हैं। इस भवन को जनवरी, 1975 के भूकंप में क्षति पहुँची थी। यहीं से गों-खङ् और ल्हा-खङ् के लिए द्वार हैं।

गों-खङ् (Gon-Khang)

गों-खङ् के भीतर महाकाल वज्रभैरव है। यह टाणा-माणा या गुप्त तांत्रिक विधि के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस मंदिर में आम आदमी नहीं जा सकता। महिलाएँ भी भीतर प्रवेश नहीं कर सकतीं।

द्रोम-तोन-ल्हा-छेम्पो (Brom-Ston-Lha-chempo)

इस मंदिर को, जिसे खङ् छेम्पो भी कहा जाता है, द्रोम तोन (Dromton) (1008-1064) की याद में बनाया गया है। इस मंदिर में भी प्रवेश द्वार, सभा मंडप और गर्भगृह विद्यमान हैं। यह मंदिर भी ज़ेलमा की भाँति सत्रहवीं शताब्दी का माना जाता

है। मंदिर के भीतर शाक्य मुनि की विशाल प्रतिमा है। छत में पशु-पक्षी तथा पुष्प चित्रित हैं।

सेर खङ् (gser Khang)

इस मंदिर के भित्तिचित्रों में स्वर्ण का प्रयोग हुआ है। संभवतः इसीलिए इसे सेर खङ् या स्वर्ण मंदिर कहा जाता है। मंदिर में भगवान् बुद्ध चतुर्मुख विरोचन, अमिताभ आदि के चित्र हैं। छत में फूल-पत्ते और गंधर्व चित्रित हैं। ये भित्तिचित्र भी सत्रहवीं शताब्दी के माने जाते हैं। मंदिर की दीवारों में महाकाल, बोधिसत्व, अमिताभ आदि को चित्रित किया गया है। शाक्य मुनि, मंजुश्री, विरोचन, तारा आदि के चित्र दर्शनीय हैं।

क्यिल-खोर-खङ् (dkyil-Khor-khạng)

इस मंदिर में केवल मंडप शेष बचा है। भीतरी दीवारों में रहस्यमय मंडप चित्रित किए गए हैं। वास्तव में यह मंदिर रहस्यमय मंडलों का मंदिर ही है। यह पूरी तरह तांत्रिक पद्धति पर आधारित है। मंदिर में मुख्य देव विरोचन है जो ध्यानावस्था मुद्रा में है। विरोचन के चारों ओर वज्रधातु मंडल की भाँति देव चित्रित हैं। छत में अनेक पशु तथा पक्षी अंकित हैं। गंधर्व और किन्नरों का चित्रांकन भी हुआ है।

कर-अब्यून-ल्हा-खङ् (dkar-abyun lha-khang)

इस मंदिर को छैम्पो ल्हा-खङ् भी कहा जाता है। श्वेत मंदिर और देवी मंदिर के नाम से जाना जाने वाला यह मंदिर ताबो की सीमा से बाहर है। कमरानुमा इस मंदिर की दीवारों पर भूमिस्पर्शमुद्रा में बुद्ध, मैत्रेय, मंजुश्री आदि के चित्र हैं। बहुत से चित्र खराब हो चुके हैं। इस मंदिर का निर्माण 'ज़ोमो' या भिक्षुणियों के लिए बाद में हुआ।

द्रोम-तोन-ल्हा-खङ् (Dron-ston-lha khang)

इस मंदिर का समय-समय पर जीर्णोद्धार या पुनर्निर्माण होता रहा है। इस मंदिर का नाम भी द्रोम-तोन (Dromton: 1008-1064 ई०) पर पड़ा है। यहाँ शाक्य मुनि को बड़े आकार में चित्रित किया गया है।

दीवारों पर भित्तिचित्र हैं। मंदिर में कोई मूर्ति नहीं है। भित्ति चित्रों में विरोचन, अमिताभ, तारा आदि के चित्र हैं।

ब्यमस-पा-छेम्पो-ल्हा-खङ् (Byams-pa-chempo lha-khang)

यह मंदिर मैत्रेय को समर्पित है। मैत्रेय कमलासन पर विराजमान हैं। धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में मैत्रेय अपनी पूरी विशालता के साथ इसमें विराजमान हैं। मंदिर में प्रवेश द्वार,

सभागृह तथा गर्भगृह हैं।

पाँच मीटर से ऊँचे मैत्रेय के साथ छत में सुरुचिपूर्ण चित्रण हुआ है। पशु-पक्षियों की आकृतियों के अतिरिक्त भगवान् बुद्ध, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के साथ पद्मसंभव, विरोचन आदि का चित्रण भी हुआ है। कहा जाता है यहाँ कुछ चित्रांकन सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी का है। कुछ काम नमग्याल (1590-1620) के समय हुआ।

काष्ठ प्रतिमाएँ

महाविरोचन प्रतिमा के नीचे शुग-ल्हा-खङ् में फ्रैंके (1909) ने दो काष्ठ प्रतिमाएँ देखीं जो टूची (1933) के समय से बेहतर थीं। ये दोनों प्रतिमाएँ देवदार से बनाई गई थीं। दोनों बुद्ध प्रतिमाएँ त्रिभंग मुद्रा और अभय मुद्रा में थीं। अब काष्ठ प्रतिमाएँ ताबो में नहीं हैं।

गुफाएँ

ताबो मठ की ऊपरी पहाड़ी में भिक्षुओं के आवास के लिए गुफाएँ थीं। यह शीतकाल में उनके अध्ययन व साधना के लिए सुरक्षित स्थान था। लगभग उन्नीस गुफाओं में भिक्षु रहा करते थे। समय के अनंतर ये गुफा निवास नष्ट होते गए।

सड़क से ऊपर अभी भी एक ऐसी बड़ी गुफा विद्यमान है जिसे अब फो-गोन्पा कहा जाता है। कुछ स्थानीय लोग इसे ही वास्तविक मंदिर मानते हैं, यद्यपि इस समय यहाँ कोई नहीं रहता। न ही किसी प्रकार की पूजा-अर्चना होती है। ताबो आने वाले लगभग सभी इस गुफा तक अवश्य पहुँचते हैं।

सड़क से दो-तीन मिनट चलने पर गुफा आती है जिसे दु-खङ् कहा जाता है। इसमें चार कमरे हैं। प्रवेश द्वार भी एक कमरा ही है जिसके एक ओर दूसरा कमरा है। दुःखङ् या सभागृह 7.50×4.20 मीटर है। यहाँ आकर्षक भित्ति चित्र हैं जिनमें बुद्ध, शाक्यमुनि, विरोचन, तारा आदि को चित्रित किया गया है। अंत में चट्टान है। दु-खङ् के अधिकांश चित्र क्षतिग्रस्त हो चुके हैं।

ताबो में पांडुलिपियाँ

फ्रैंके ने (1909) ताबो में पांडुलिपियों का उल्लेख किया है। उस समय लगभग पाँच फुट ऊँचे पांडुलिपियों के दो ढेर थे। एक ढेर में सुंदर लिखावट में सैकड़ों खुले पृष्ठ थे। ये पृष्ठ प्रज्ञापारमिता की बारह पुस्तकों का तिब्बती अनुवाद प्रतीत होता था। फ्रैंके ने सेनापति जोरावर सिंह द्वारा ताबो को क्षति पहुँचाए जाने से इनकार किया है।

टूची (1933) ने लिखा है : "दुर्भाग्यवश जो पुस्तकालय कभी मंदिर के पास था, उसमें से अब कुछ अवशेष ही बचे हैं। बाईं दीवार के साथ एक बेकार से शेल्फ में, एक

सौ हज़ार पद्यों में प्रज्ञापारमिता के खुले पृष्ठों में कोई निश्चित क्रम नहीं है जिसकी महत्ता के बारे में फ्रैंके ने पहले इशारा किया है। यह संभावना है कि मंदिर तिब्बती हमले के समय जोरावर सिंह द्वारा लूटा गया। मुझे यह लगभग निश्चित ही लगता है कि वह की और काज़ा जाते हुए ताबो से होकर गया। फ्रैंके ने इस संभावना से इसलिए इनकार किया है क्योंकि इस विनाश में केवल ताबो का मंदिर ही खड़ा रहा है। किंतु हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि ताबो मैदान में बना और इसे गिराना आवश्यक नहीं था जैसा कि दूसरे मठों के साथ करना आवश्यक था जो वास्तविक किले थे और कठिन पहुँच में ऊँची पहाड़ियों पर बने थे।"

टूची ने आगे लिखा है कि पांडुलिपियाँ पुरातन लिपि में हैं, जैसा कि ठोलिंग या पश्चिमी तिब्बत के दूसरे मठों में हैं। ये पांडुलिपियाँ न केवल धार्मिक अनुष्ठान में पढ़ी जाती होंगी बल्कि इन पवित्र प्रतियों की प्रतिलिपियाँ भी की जाती होंगी। ये पवित्र पुस्तकें प्रज्ञापारमिता के तिब्बती अनुवाद के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। ये वही पुस्तकें हैं जिनमें मूल अनुवाद है और प्रथम अनुवादकों के हाथों से निकली हैं। यह संभव है ये रिन-चेन-ज़ंग-पो या उसके सह अनुवादकों की ही प्रतियाँ हों। अतः ये हमें साहित्य की मूल विधा दर्शाती हैं जो बौद्ध धर्म तथा इसके रहस्यवादी अनुभवों को समझने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

टूची द्वारा दी गई पुस्तकों की सूची निम्न है–

1. अथसमयालंकार-लोक
2. विनय संग्रह
3. पंचसहस्रिका प्रज्ञापारमिता
4. सतसहस्रिका प्रज्ञापारमिता
5. अष्टसहस्रिका प्रज्ञापारमिता
6. बौद्धिचर्यावतार
7. सद्धर्मपुष्टिका
8. सत्यदयावतार
9. संक्षिप्तमंडल सूत्रावृत्ति

अब भी ये पुस्तकें सभागृह दुःखङ् में विद्यमान हैं। इनमें क्या है, यह खोज आवश्यक है।

पर्वतों ने देखा सहस्राब्दी समारोह

ताबो के हजार वर्ष पूरे हुए

स्पिति के हजारों वर्ष बूढ़े पर्वत कछुए की तरह पैर जमाए ताबो के 3050 मीटर ऊँचे मैदान में हो रहे इस सहस्राब्दी समारोह को निहार रहे हैं…पर्वत देखते हैं एक विशाल तंबू कालोनी, पुलिस छावनी, हाट बाजार। क्षण-क्षण में रोमांचकारी घटनाओं पर पर्वत अपनी धूल झाड़ते हैं। कभी धूल उड़ाते हैं, हुंकार भरते हैं।

कभी बौद्ध मंत्रों की गंभीर ध्वनि गूँजती है, मधुर पूजा वाद्य बज उठते हैं तो पर्वत आँखें मूँदे ध्यानमग्न हो जाते हैं। जब विशालकाय पक्षी-सा हेलिकाप्टर शिमला से 365 किलोमीटर के खतरनाक सड़क मार्ग को छोड़कर एक घंटे में अपने डैने घुमाता घाटी में प्रवेश करता है तो पर्वत एकाएक कान उठा जाग उठते हैं। कभी शाम को ढोल ढमाका होता है तो आँखें मलते हुए देखते हैं। जब कभी तम्बोला वाले लगातार चीखते हैं तो पर्वत उठकर भागने को हो जाते हैं।

सड़क के पास सबसे ऊपर पुलिस जनों के टेंट लगे हैं। यहाँ से रेस्ट हाऊस तक मैदान समतल किया गया है। पुलिस टेंट कालोनी के आगे 'शिला कलाकृतियाँ' हैं जिन पर लोग साधारण चट्टान समझ कपड़े धोते या सुखाते हैं। केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग ने इन महत्त्वपूर्ण शिलाओं पर सफेदी से क्रास का चिन्ह लगाकर अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। ये अब आठ दस शिलाएँ ही शेष हैं जिन पर बौद्ध धर्म से पहले के बों-छोस धर्मावलंबी बोंपा लोग आकृतियाँ बनाते थे। सुखाने के लिए डाली पैंट कमीज़ के नीचे स्वास्तिक चिह्न, सूर्य, घोड़े की आकृतियाँ देखने को मिलीं। एक शिला पर किसी मनचले ने इन आकृतियों के बीच अपना नाम भी अंग्रेजी में जोड़ दिया है। शिलाओं के इस मैदान के सामने डीज़ल से चलने वाला एक बड़ा हिंडोला लगा है जिस पर बैठने के लिए लोग नहीं मिलते। इसके साथ 'गधा सर्कस' है जो कभी-कभी अपना लाउडस्पीकर पंचम में लगा देते हैं।

शिलाओं के आगे हिमाचल पर्यटन विभाग के महँगे आवास यूनिट हैं, डीलक्स से लेकर हेंगर तक। फिर तिब्बती दुकानें और आगे पर्यटन विकास निगम के अपेक्षाकृत कम महँगे टेंट। फिर रेस्ट हाऊस के ऊपर विभिन्न विभागों की प्रदर्शनियाँ। मठ को जाती बीच की सड़क के दूसरी ओर स्थानीय स्कूल के ओपन एयर थिएटर में प्रत्येक सायं सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं।

उत्सव का यह भाग अलग से है जो दलाईलामा के उपदेश के समय सुनसान

हो जाता है। ड्यूटी पर तैनात सरकारी लोग जमुहाई लेते हुए दोपहर से शाम तक उदास हो जाते हैं और अपने अफसरों को कोसते हैं जो सरकारी उद्घाटन के बाद मैदान से भाग खड़े हुए हैं।

प्राचीन बौद्ध मठ, जिसमें हज़ार वर्ष पुराने भित्ति चित्र, गच प्रतिमाएँ हैं तथा महाविरोचन विराजमान हैं, भी अपेक्षाकृत सूना है। यहाँ गेट पर सशस्त्र पुलिस जन खड़े रहते हैं जो मेटल डिटेक्टर से जाँच करने के बाद भीतर जाने देते हैं। अधिकांश लोग इस भय से नहीं जाते कि यहाँ भी नए मठ की तरह प्रवेशपत्र आवश्यक होगा। इस ओर जाने वाले अधिकांश सैलानी किस्म के लोग हैं देशी और विदेशी, कैमरे और वीडियो वाले जिन्हें भीतर आकर फोटोग्राफी की मनाही के कारण निराशा होती है। कुछ बौद्ध अभी भी यहाँ ध्यान लगाने का हठ कर बैठ जाते हैं। महापावन दलाईलामा ने अपने भाषण में कहा कि ताबो मात्र संग्रहालय था, आज इसमें जीवन प्रवेश हुआ है। लोग मुख्य मंदिर के अतिरिक्त पिछली ओर के मंदिरों में कम जाते हैं जबकि पीछे की ओर शुभेन्द्र कौशिक की अद्‌भुत छायाचित्र प्रदर्शनी लगी हुई है।

मुख्य आकर्षण

समारोह का मुख्य आकर्षण और केंद्रीय स्थल है नया मठ जहाँ पूजा गृह है। कालचक्र का मंडप बन रहा है। नित्य पूजा होती है और दोपहर बाद महापावन उपदेश देते हैं। दलाईलामा की उपस्थिति के कारण यह स्थान पुलिस घेरे में है। मुख्य द्वारों से बिना प्रवेशपत्र के भीतर नहीं जा सकते। रेस्ट हाऊस के दूसरे गेट के सामने का द्वार आम जनता के लिए खुला है जहाँ उपदेश से एक घंटा पहले ही लंबी कतार लग जाती है। दलाईलामा के उपदेश के समय पूरा पंडाल भर जाता है। सबसे आगे बौद्ध भिक्षु बैठते हैं, बाईं ओर करुणा फाउंडेशन के प्रतिनिधि तथा विदेशी, सामने साधारण जनता। सहस्राब्दी समारोह जैसे उसी परिसर में सिमट गया है।

ताबो की धूप बहुत तीखी और तेज़ है। चमड़ी जला देती है। तापमान दिन में 35 डिग्री तक पहुँच जाता है। उस पर धूल उड़ती रहती है। स्थानीय लोग तो अभ्यस्त हैं। बाहर से आए लोगों की आँखें लाल हैं, चेहरे झुलस गए हैं। बहुतों ने सिर पर टोपी, आँखों पर ऐनक और मुँह पर जैन साधकों की तरह पट्टी बाँध रखी है। दिन गर्म है तो रात भी एक कंबल में आराम से कट जाती है। शिमला, किन्नौर जैसे वन वनस्पति भरे स्थानों की अपेक्षा यहाँ नंगे पहाड़ गर्म हैं।

उद्‌घाटन समारोह

यूँ तो कालचक्र समारोह 21 जून 1996 से आरंभ हो गया था जो 30 जून तक चलना था। दलाईलामा भी पहले आ चुके थे। भूमि पूजन, भूमि नृत्य, प्रज्ञा रेखा और रंग संयोजन के बाद 24 जून, दोपहर दो बजे महापावन का उपदेश आरंभ होना था। किंतु सरकारी तौर पर 24 जून, 1996 प्रातः 11.00 बजे प्रदेश के मुख्यमंत्री,

श्री वीरभद्र सिंह ने शिक्षा तथा संस्कृति मंत्री (स्व० श्री नारायण चन्द पराशर सहित पुराने मठ में पूजा अर्चना के बाद दलाईलामा की उपस्थिति में दीप जलाए। नए मठ में हुए उद्घाटन समारोह में दलाईलामा उपस्थित नहीं हुए। यहाँ सरकारी समारोह में स्मारिका का विमोचन, हिमाचल अकादमी द्वारा प्रकाशित तीन पुस्तकों (ताबो, रत्नभद्र, अंतराभव श्रुतविमुक्ति) के विमोचन के साथ स्वागत तथा उद्घाटन भाषण हुए तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश किया गया।

कालचक्र

"टुङ् खोर" अर्थात् कालचक्र एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है जो बौद्ध धर्म में दीक्षा के लिए किया जाता है। कालचक्र कुछ समय के अनंतर होता रहता है और बौद्ध बार-बार दीक्षा ग्रहण करते रहते हैं। 24 जून से ही दलाई लामा के उपदेश आरंभ हुए जो 27 जून तक चलने थे। दीक्षा या अभिषेक की तैयारी हेतु ये उपदेश दिए जाते हैं। 28 जून को मंडल पूरा होने के उपलक्ष्य में मंदिर के भीतर छम्म नृत्य तथा 29 जून को अभिषेक की तैयारी जिसे 'तागुन' कहा जाता है। 30 जून तथा प्रथम जुलाई को महाभिषेक जो पूर्णमासी को होता है। इस समय ग्यारह अभिषेक किए जाते हैं। द्वितीय जुलाई को दीर्घायु प्रार्थना और मंडल के दर्शन करने के साथ तीन जुलाई को मंडल को नष्ट किया जाना था।

24 जून को सरकारी उद्घाटन के बाद दोपहर महापावन का उपदेश आरंभ हुआ। इस उपदेश में उद्घाटन समारोह से कहीं ज्यादा भीड़ थी। यद्यपि आज के दिन अधिकृत सूचना के अनुसार तीन सौ विदेशी और पाँच हज़ार देशी लोग ही ताबो आए थे। शेष स्थानीय या आस-पास के गाँव के थे।

महापावन के आते ही सभी लोग खड़े हो जाते हैं। भिक्षु बार-बार भूमि स्पर्श कर उन्हें प्रणाम करते हैं। वे भावनाक्रम की तिब्बती में रची पोथी खोलकर मंत्रोच्चारण आरंभ करते हैं। भिक्षु उनके पीछे मंत्रोच्चारण करते हैं। महापावन के आगे दर्जन भर वीडियो वाले तथा इससे अधिक फोटोग्राफर अपना काम आरंभ कर देते हैं। दलाईलामा तिब्बती में बोलते हुए कभी मुस्कराते हैं, कभी हँसते हैं। अति आधुनिक यंत्रों से लैस विदेशी श्रद्धा से सामने खड़े रहते हैं। भिक्षु बने विदेशी आँखें मूँद लेते हैं। कुछ की आँखों से आँसू झरते हैं।

दलाईलामा के बोलते ही तुरंत अंग्रेजी में अनुवाद किया जाता है जो एक ओर बैठे विदेशियों के लिए है। विदेशियों के कानों में यंत्र लगे हैं। बहुतों के पास ट्रांज़िस्टरनुमा यंत्र है। कुछ आँखें मूँद सुनते हैं, कुछ नोटबुक में लिखते जाते हैं। इसके बाद हिंदी में अनुवाद सर्वसाधारण के लिए किया जाता है।

भावनाक्रम की पोथी पढ़ने के साथ-साथ दलाईलामा व्यावहारिक बातें भी बताते जाते हैं। संभवतः भिक्षुओं में इस तिब्बती मंत्रोच्चारण का वही प्रभाव होता है

जो वैदिक ऋचाओं के गायन का किसी हिंदू पर होता है। दलाईलामा के प्रथम उपदेश के साथ ही स्पिति में बारिश हुई।

आचार्य कमलशील द्वारा लिखित भावनाक्रम से करुणा, विपश्यना, शमथ बौद्धिचित्त पर उपदेश 28 जून तक चलते हैं। 27 तथा 28 जून को प्रातः 9.00 बजे दलाईलामा द्वारा बौद्धिचित्त उत्पत्ति विधि पर दीक्षा के साथ प्राणी मात्र के कल्याण हेतु शपथ भी दिलाई गई। 29 जून को पात्र-कुपात्र की पहचान और दीक्षा की तैयारी के साथ 30 जून को कालचक्र इनिशियेशन का दिन हुआ।

बौद्ध धर्म में कई संप्रदाय बन गए हैं जिनमें ञिङ्मथा पुराना माना जाता है। गे-लुगपा, कर ग्युङ् पा, डुग्पा आदि अन्य शाखाएँ हैं। दलाई लामा ने अपने उपदेश में स्पष्ट किया है कि जो लोग उपदेश सुनने या दीक्षा लेने के इच्छुक न हों उन्हें यहाँ से चले जाना चाहिए। कालचक्र में कुपात्र का अभिषेक आवश्यक नहीं।

बौद्ध हाथ में धर्मचक्र घुमाते रहते हैं। मठ की बाहरी परिक्रमा में भी ये चक्र लगे रहते हैं। इसी कालचक्र के प्रति सचेत अपनी दीक्षा के लिए कालचक्र समारोह में महापावन दलाईलामा की उपस्थिति अनिवार्य है। नए मठ में आसन जमाए, तरह-तरह की मुद्राएँ बनाते, मंत्रोच्चारण करते लामा गुरु आसन जमाए बैठे रहते हैं। जापान, कोरिया, रूस, आस्ट्रेलिया और न जाने किन-किन देशों से आए भिक्षुओं ने भी सिर मुंडा रखे हैं। गैरिक और पीत वस्त्र पहने भिक्षु शांत भाव और धैर्य के साथ घंटों बैठे रहते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार

नए मठ की सामने वाली सराय में करुणा फाउंडेशंस दिल्ली का शिविर लगा है। फाउंडेशन के अध्यक्ष अट्ठाईस वर्षीय कग्पुर रिन्पोचे 'कग्युर' के तीसरे अवतार हैं। तिब्बत में हुए दो अवतारों के बाद तीसरे अवतार का जन्म 18 मई, 1978 को लाहुल में हुआ। यहाँ से पाँच वर्ष की आयु में इन्हें लाया गया। इनके अवतारी होने की घोषणा देवता 'ने-चुन' और अंततः दलाईलामा ने की। कर्नाटक में शिक्षा-दीक्षा के बाद इन्होंने घेशे ल्हारंपा अर्थात् पी०एच०डी० के समकक्ष उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रथम आकर प्राप्त की। एक वर्ष तक ऑक्सफोर्ड में भी पढ़े। फिर दलाईलामा के आदेश पर जनकल्याण हेतु करुणा फाउंडेशन की दिल्ली में मुख्यालय के साथ नींव रखी। यह संस्थान की ओर से उनका पहला सेमिनार था।

28 जून को सेमिनार का उद्‌घाटन सायं तीन बजे मठ में महापावन ने किया। इन अवसर पर महानुवादक रत्नभद्र का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा कि आज ऐसे धर्म को सुरक्षित रखने के लिए तिब्बत की जो दुर्दशा हुई है, उस पर लोगों का ध्यान जाना चाहिए। भारतीय विद्वानों से उन्होंने आग्रह किया कि इसे सुरक्षित रखे जाने की ओर इन्हें ध्यान देना चाहिए। पर्यावरण की रक्षा हेतु उन्होंने सुन्दरलाल बहुगुणा

का भी स्मरण किया। ताबो अब उज्जैन बनता जा रहा है इस पर उन्होंने संतुष्टि जाहिर की।

केंद्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान सारनाथ वाराणसी के निदेशक समदोङ् रिन्पोचे ने की नोट एड्रेस में अपने को विज्ञान और विकास का विरोधी बताया। विज्ञान और तकनीक के नाम पर सामाजिक न्याय नहीं मिल पा रहा है। हमारे पूर्वजों ने ताबो के हज़ार वर्ष मनाने का हमें अवसर दिया। क्या हम इसे अगले हज़ार वर्ष में भी ले जा पाएँगे।

उद्घाटन के बाद दलाईलामा भीतर पूजागृह में चले गए। मंदिर के भीतर पूजन के बाद कालचक्र मंडल के आगे छम्म नृत्य प्रारंभ हो गया।

सेमिनार में प्रतिदिन प्रातः नौ बजे से बारह बजे तक रत्नभद्र की जीवनी, स्पिति के इतिहास तथा बौद्ध धर्म पर भारत के अतिरिक्त जापान, कोरिया, अमेरिका, जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रांस आदि देशों से आए विद्वानों ने अपने पत्र प्रस्तुत किए। सेमिनार का समापन भी दो जुलाई को महापावन द्वारा हुआ।

करुणा फाउंडेशन द्वारा इस अवसर पर रत्नभद्र की जीवनी तथा भावनाक्रम के हिंदी अनुवाद का निःशुल्क वितरण किया गया। कालचक्र के समय जलपान तथा दूसरी व्यवस्था भी इन्हीं के ज़िम्मे थी।

महागुरु लामाओं की उपस्थिति

वाराणसी के निदेशक समदोङ् रिन्पोचे, करुणा फांउडेशन के कग्युर रिन्पोचे के अतिरिक्त कोरिया मंदिर के गुरु लामा भी यहाँ उपस्थित थे। की मठ के लोचन रिन्पोचे भी दिल्ली से आए थे। 1961 में किन्नौर के शलखर गाँव में जन्मे लोचन रिन्पोचे जिन्हें टुल्कु लामा भी कहा जाता है, रत्नभद्र के 19वें या 21वें अवतार माने जाते हैं। 18वें अवतार एक जोमो को उत्पन्न हुए जो बचपन में ही मार दिए गए। 19वें अवतार की घोषणा से पूर्व बाल्यकाल में मृत्यु हो गई इसलिए दो अवतारों की गणना में मतभेद रहा है। चार वर्ष की आयु में इन्हें अवतारी माना गया। रत्नभद्र की अधिष्ठात्री देवी दोरजे छेमो की कृपा से इन्हें मठ में ले जाया गया। अंतिम मान्यता दलाईलामा के कहने पर हुई। रत्नभद्र के 16 अवतार नाको में 17वें, 18वें सुमरा में माने जाते हैं।

टुल्कु लामा ने विवाह कर लिया है अतः वे लामाओं की भाँति गैरिक वस्त्र नहीं पहनते।

कालचक्र के अंत में अभिषेक के बाद दीर्घायु के लिए प्रार्थनाएँ की जाती हैं। शिष्य अपने गुरु की दीर्घायु की कामना करते हैं ताकि गुरु प्राणीमात्र का कल्याण कर सकें। लोक कल्याण हेतु गुरु अपने शिष्यों की दीर्घायु की कामना करते हैं। हम दीर्घ जीवी होवें, कालचक्र को जीतें। लोक कल्याण करें...।

की में कालचक्र

की मठ में कालचक्र समारोह 3 अगस्त से 16 अगस्त तक सन् 2000 में हुआ। यहाँ ताबो मठ की तरह सहस्राब्दी समारोह वाली बात नहीं थी तथापि महापावन दलाईलामा के आगमन का आकर्षण दूर-दूर के बौद्ध अनुयायियों के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण था। की मठ में यह पहला कालचक्र समारोह था और महापावन द्वारा सहस्राब्दी के अंतिम वर्ष का पच्चीसवाँ।

समारोह की व्यवस्था सरकार की ओर से उतनी ही थी जितनी की ताबो में, तो बौद्ध अनुयायियों का उत्साह भी कम नहीं था। की मठ नीचे तक दूर से देखने पर शिविर सा लग रहा था। कितने ही टेंट, कितनी ही दुकानें तो कितने ही बौद्ध भिक्षु। ताबो में स्थान कम था और सारा समारोह मठ के आसपास ही केंद्रित था। यहाँ काजा से लेकर की मठ तक सब जगह समारोह फैला हुआ था। की मठ के नीचे समतल जगह में टेंट और दुकानें बनी हुई थीं तो पर्यटन विकास निगम ने काज़ा के पास ग्राउंड में आवासीय टैंट कालोनी बनाई हुई थी। स्थानीय दो तीन होटल तो पहले से ही बुक थे।

स्पिति तथा की मठ जाने के लिए दो मार्ग हैं। एक तो शिमला से किन्नौर और ताबो होते हुए और दूसरा मनाली से रोहतांग तथा कुंजम दर्रे पार कर के। हम मनाली होकर गए। रोहतांग से नीचे समदो से जो सड़क काज़ा जाती है, वह अच्छी नहीं है। रोहतांग के दूसरी ओर चंद्रा नदी के विपरीत कुंजम की ओर जाने वाली सड़क कच्ची है। सड़क कंकड़ पत्थरों से भरी है अतः छोटे वाहन धीरे-धीरे चलाने पड़ते हैं। कुंजम जोत के आधार तक पहुँचना भी कठिन लगता है। गाड़ी हिचकोले खाती धीमे-धीमे चलती है। आधे रास्ते में पर्यटन विकास निगम की ओर से भोजन के लिए एक अस्थायी होटल बना हुआ था। एक तिब्बती ढाबा कुंजम जोत के आधार पर भी था। हमने पर्यटन निगम के होटल में खाना खाया।

स्पिति जाने के लिए यह मार्ग कठिन है और कुंजम जोत ही एकमात्र मार्ग है जो रोहतांग (3955 मीटर) से भी ज़्यादा 4,590 मीटर ऊँचा है। अतः जून से नवंबर तक ही खुलता है। स्पिति हालाँकि ज़िला लाहौल स्पिति में है, यह अपने ज़िला मुख्यालय केलांग से छह सात महीने ही जुड़ता है।

कुंजम जोत पर अभी बर्फ थी। आसपास के ऊँचे पहाड़ तो बर्फ ओढ़े खड़े थे। जोत के ऊपर कुछ ढाबे थे। एक ओर कुंजम की देवी का मंदिर है। देवी के मंदिर में कई सिक्के जड़े हुए थे। मंदिर के विषय में यह आस्था है कि यदि कोई मूर्ति की ओर कोई सिक्का फेंकता है तो वह वहीं चिपक जाता है।

कुंजम जोत तक सफर अच्छा रहा। जोत से नीचे कुछ वाहन रुके हुए थे। वहाँ एक नाला था जो बहुत तेज़ी से बह रहा था। जोत को बारह बजे से पहले लाँघने की सलाह दी जाती है। बारह के बाद बादल छा जाते हैं और छोटे-छोटे नालों में पानी बढ़ जाता हैं जो शाम तक ही शांत होता है। नाले पर पुल भी था किंतु अभी बस

लकड़ी के तख्ते रखकर चालू किया था। तख्तों तक पहुँचने के लिए व्यवस्था नहीं थी। नाले की थाह नहीं लगती फिर एक-दो गाड़ियाँ वहाँ से पार हुई। हमारे ड्राइवर ने भी गाड़ी नाले में डाली जो बीच में पहुँचने से कुछ पहले पानी में बंद हो गई। उसने फुर्ती से पुनः स्टार्ट कर पीछे ले ली। अब बड़ी मेहनत के बाद कुछ स्लीपर रखकर गाड़ी पुल पर चढ़ाई और पार लगे।

काज़ा में मेले-सा माहौल था। हम दिन रहते ही पहुँच गए थे किंतु आवास व्यवस्था के चक्कर में अँधेरा घिर आया। आखिर लामा छोसपेल जोत्पा काम आए। यहाँ एक अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार भी रखा गया था जिसके आयोजक लामा जोत्पा थे। की मठ के मुख्य लामा टुल्कू उन दिनों अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष थे जो इस पूरी व्यवस्था से जुड़े हुए थे। लामा जोत्पा ने हमें एक स्कूल में ठहराया जहाँ सेमिनार के सभी विद्वान् ठहराए गए थे। भोजन की व्यवस्था भी नहीं थी। सेमिनार के कारण ही हमारी ताबो में भी आवास तथा भोजन व्यवस्था हो गई थी। वहाँ यह व्यवस्था करुणा फांउडेशंस की ओर से थी।

3 अगस्त को महापावन दलाईलामा द्वारा उद्घाटन के बाद अगले दिन कालचक्र मंडल का निर्माण आरंभ हुआ। 4 से 7 अगस्त तक कालचक्र मंडल की तैयारी के बाद 11 अगस्त से दलाईलामा के प्रवचन आरंभ होने थे।

दिन में तरह-तरह के सांस्कृतिक आयोजन थे जिसमें स्थानीय तथा लद्दाख के लोकनृत्य, घुड़दौड़ और स्पिति की पिन घाटी का बुछैन नृत्य प्रमुख आकर्षण थे।

हमें भी महापावन दलाईलामा के प्रवचनों का मुख्य आकर्षण था। वे मठ के साथ बने मंच से प्रवचन करते थे। नीचे ग्राउंड में हज़ारों बौद्ध भिक्षु तथा अनुयायी बैठते थे। लामा जोत्पा ने सेमिनार में भाग लेने वालों के लिए विशेष पास बनवाकर दलाईलामा के करीब मंच पर बैठने की व्यवस्था करवा दी। इस जगह पर प्रमुख लामा लोग ही बैठ सकते थे कुछ विशेष मीडिया चैनल वाले थे जो करीब से फोटो या वीडियो बना रहे थे।

काज़ा और की में भी आक्सीजन की कमी है। एक विदेशी महिला को कुंजम दर्रे के नीचे यह समस्या हो गई। कुछ स्कॉलर जो दिल्ली से आए थे, साँस की तकलीफ से पीड़ित हो गए। इन्हें महामहिम राज्यपाल के लिए शिमला से आई गाड़ियों में वापिस भेजा गया।

लामा जोत्पा की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। वे एक-एक विद्वान् का ध्यान रखते थे। बाद में ये राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग के उपाध्यक्ष भी रहे।

दलाईलामा भोटी में अपना प्रवचन देते हैं, किंतु अनुवादक द्वारा तुरंत ही अनुवाद भी प्रस्तुत किया जाता है। जब दलाईलामा बोलते हैं तो कुछ तो आँखें मूँदे बैठ जाते हैं। कुछ अवाक् सी स्थिति में हो जाते हैं। कुछ यंत्रवत् हाथ बाँधे खड़े रहते हैं।

कालचक्र में 13 अगस्त को प्रारंभिक और 15 अगस्त को दीक्षा का मुख्य समारोह हुआ।

महालोचावा (Rin-chen-bzang po)
रिन-चेन-ज़ंग-पो

लामा या भिक्षु थे इन मठों के निर्माता

ताबो छोस खोर का निर्माण लामाओं द्वारा हुआ। लामा भी ऐसे जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए राज-पाट छोड़ दिया। संभवतः इसलिए इस मठ के साथ किसी राजा का नाम नहीं जुड़ा। बौद्धिसत्व ये-शेस-ओद (ज्ञानप्रभ) (967-1040), जिसे लो-चेन (Lo-chen) या पंडित या गुरु कहा जाता था, ने अपने दो पुत्रों नागराज (Naga-ra-dza) और देवराज (Dba-ra-dza) सहित राजपाट छोड़ दिया। ये-शेस- ओद के भिक्षु बनने पर उसका भाई या भतीजा स्रोन-ने (Sron-ne) राजा बना। ये-शेस-ओद (ताबो का संस्थापक) के बाद उसका पौत्र चंग-छुब-ओद (Chang-chub-od) जिसने ताबो का पुनर्निर्माण या पुनर्स्थापना की, भी अपने भाई ज़ी-बा- ओद (Zi-ba-od) सहित भिक्षु बन गया।

इस प्रकार ताबो के निर्माण, पुननिर्माण के साथ ये-शेस-ओद, चंग-छुब-ओद (भिक्षु बने लामा), रिन-चेन-ज़ंग-पो और दीपंकर श्रीज्ञान के नाम जुड़े हुए हैं। इन्हें भिक्षुओं के भाई या भतीजों द्वारा, जो शासक थे, आश्रय मिला।

महालोचावा रिन-चेन-ज़ंग-पो

रिन-चेन-ज़ंग-पो या रत्नभद्र को लो-त्सा-वा (Lo-tsa-va) या लोचावा कहा जाता है, जिसका अर्थ है अनुवादक।

महानुवादक रिन-चेन-ज़ंग-पो की कुछ जीवनियों (प्रकाशित तथा पांडुलिपियाँ) में टूची तथा फ्रैंके के अनुसार इनके जन्म के विषय में विभिन्न मत हैं। भू-पुरुष अश्व वर्ष, सन् 958 में इसके जन्म के विषय में निम्न धारणाएँ हैं–

1. खा-से (Kha-tse-or Khva-stre) का ल्हा-लुन (Lha-lun) गाँव, जिसे काज़ा के समीप माना जाता है। कुछ इसे कश्मीर में मानते हैं।
2. रदनी (Radnis) गाँव, जो शिपकी के उत्तर-पूर्व में गुगे राज्य में था।
3. हंगरंग घाटी का सुमरा (Sumra) गाँव, किन्नौर में प्रचलित लोकगीत या लोकश्रुति के आधार पर।

रिन-चेन-ज़ंग-पो को अन्य सिद्ध लामाओं की भाँति 'अवतारी पुरुष' भी मानते हैं जिसके अनुसार इसके कई जन्म हुए। अपने इस अलग-अलग शरीर से अलग-अलग स्थानों में जन्म लेकर इन्होंने अपना काम पूरा किया। यह विश्वास गुरु लामाओं के पुनः-पुनः जन्म लेने की तरह है।

इनका बचपन का नाम रिन-चेन-ज़ंग-'फ्युग' या 'छुग' (Rin-chen-bzang-phyug) था। तेरह वर्ष की आयु में गुरु लेगस्-पा-ज़ंग-पो (Legs-pa-bzang-po) से दीक्षा ग्रहण कर रिन-चेन-ज़ंग-पो बने।

शैशव से ही इनकी बुद्धि विलक्षण थी और पठन-पाठन की ओर रुचि थी। कहा जाता है कि सत्रह वर्ष की आयु में इन्हें भविष्यवाणी या आकाशवाणी हुई या नींद में आदेश हुआ कि वे उत्तर दिशा में कश्मीर जाकर तथा भारत भ्रमण कर बौद्ध ग्रंथों का, तिब्बती या भोटी में अनुवाद करें।

पहली कश्मीर तथा भारत यात्रा

अपनी अंतरप्रेरणा से या ये-शेस-ओद द्वारा भेजने पर रिन-चेन-ज़ंग-पो ने कश्मीर तथा भारत की यात्राएँ कीं। सन् 979 में 18 वर्ष की आयु में इनके साथ एक धर्मयात्री क्रा-शिस (bkra-shis) तथा कुल्लू से एक अन्य युवक मोम्पा भी था जो कश्मीर की भूमि से वाकिफ था किंतु मोम्पा कारिका से आगे नहीं जा सका। कारिका किलाड़ (पांगी) हो सकता है।

कश्मीर में अपने सात वर्ष के प्रवास (876-983) में ये तांत्रिक योगी रत्नसिद्धि के संपर्क में आए। इसके बाद पंडित गुणमित्र से अनुवाद तथा व्याकरण सीखा। विद्वान् धर्मशांत से अनुवाद तथा वज्रधातु मंडल आदि का अध्ययन किया। श्रद्धाकर वर्मन से साधना व योग तथा बुद्धश्री से योग के गूढ़ रहस्यों का अध्ययन किया। नारोपासिद्ध से परामुद्रा साधना और पंडित पद्मगुप्त से तांत्रिक साधना सीखी।

कश्मीर से इन्होंने भारत की यात्रा की। भारत के विभिन्न विहारों में भ्रमण के साथ जनमित्र, जननश्री, ज्ञान, शीलेन्द्रबोधि आदि विद्वानों से ज्ञान अर्जित किया। कुछ बौद्ध ग्रंथों का भोटी में अनुवाद भी किया। इस तरह बहुत-से मूल ग्रंथों तथा अनुवादों सहित छह वर्षों बाद (983-989) ये पुनः कश्मीर पहुँचे। कुछ ग्रंथ कश्मीर में छोड़कर ये 989 में वापस लौट आए।

दूसरी यात्रा

गुग्गे के शासक ये-शेस-ओद ने इक्कीस युवाओं को कश्मीर भेजने के लिए चुना। कहा जाता है कि इनमें केवल (तीन) या दो ही अध्ययन पूरा कर पाए। एक रिन-चेन-ज़ंग-पो तथा दूसरे लेक-पई-शे-राप (Lek-pai-she-rap)। कश्मीर में छह वर्ष बिताने के बाद रिन-चेन-ज़ंग-पो 1005 ई० में वापस आए और अपने साथ बत्तीस

कश्मीरी बौद्ध कलाकारों को भी लाए।

इन बत्तीस कलाकारों ने यहाँ आकर ताबो सहित कई मंदिरों में कलाकृतियों का निर्माण किया, ऐसा विश्वास है। मंदिरों का निर्माण, गच प्रतिमा निर्माण, भित्ति चित्र, काष्ठ कला, पाषाण प्रतिमाएँ आदि सभी शिल्पों में ये कलाकार दक्ष थे।

कश्मीर से वापसी पर रिन-चेन-ज़ंग-पो को थोलिंग में वज्राचार्य बनाया गया। यहाँ पचहत्तर विद्वान् कार्य कर रहे थे। अब इन्होंने अनुवाद का महत्त्वपूर्ण कार्य आरंभ किया।

सन् 1042 में इनकी भेंट तंत्र के महान् भारतीय विद्वान् दीपंकर श्रीज्ञान (982-1054) से हुई।

इनकी कश्मीर तथा भारत यात्राओं, वापसी पर किए गए कार्यों पर विस्तृत प्रकाश नहीं पड़ता। क्या पहली यात्रा के बाद ही ये वज्राचार्य बना दिए गए, मठ निर्माण और अनुवाद कब-कब किए गए, यह ज्ञात नहीं है। ऐसा कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। अतः ये घटनाएँ उतनी ऐतिहासिक नहीं कही जा सकतीं।

अपने अंतिम दिन इन्होंने पुरंग में झेर-पा (Zher-pa) में बिताए। साधना में लीन रहने के कारण अनुवाद कार्य इन्होंने लेग-पई-शेस-राप (Leg-pai-she-rap) को सौंप दिया था। अंततः सन् 1055 में इनका देहावसान हुआ।

रत्नभद्र द्वारा बनवाए गए 108 बौद्ध मंदिरों को पूरा-का-पूरा किसी इतिहासकार ने नहीं गिनाया। छिटपुट संदर्भों के आधार पर ताबो छोसखोर के अतिरिक्त खात्से (गुग्गे) गो-खार तथा पुर खार, लद्दाख में यंरमा, लाहुल में जो-लिंग, स्पिति में लरि, किन्नौर में नाको, पूह, कानम, रोपा, सुन्नम, चारङ्, मोने आदि बौद्ध मंदिर हैं जिन्हें रत्नभद्र के साथ जोड़ा जाता है।

बहुत-से बौद्ध बिहार अब नष्ट हो चुके हैं जैसे ताबो के पास लरि, छितकुल तथा मोने (कामरू) आदि।

जीवनी तथा जनश्रुति के आधार पर ढंक्खर, रंगरीक, ल्हा-लुन (स्पिति), रारंग, रिब्बा, चुलिङ् (किन्नौर) तथा लद्दाख के कुछ मठों को भी रत्नभद्र द्वारा बनवाया माना जाता है।

मंदिरों के अतिरिक्त स्तूप-निर्माण में भी रत्नभद्र का उल्लेख किया जाता है यद्यपि ये स्तूप कहाँ थे, यह ज्ञात नहीं है।

महालोचावा का अनुवाद कार्य

महालोचावा रत्नभद्र ने विशिष्ट बौद्ध ग्रंथों के भोटी अनुवाद के साथ इनका संकलन, संपादन भी किया। यह सही है कि इन महान कार्यों में उनके साथ अन्य विद्वान् भी सहयोजित रहे होंगे। किंतु संस्कृत के मूल ग्रंथों को लाना और उन पर कार्य आरंभ करने का श्रेय इन्हीं को जाता है। दीपंकर श्रीज्ञान (अतिश), सुभाषित,

श्रद्धाकरवर्मन, धर्मश्रीभद्र जैसे भारतीय विद्वानों ने इनका इस कार्य में सहयोग दिया।

टूची की सूचना के अनुसार अकेले रत्नभद्र ने निम्न अनुवाद कार्य किए–

1. **कांग्युर में सूत्र और तंत्र के तीन ग्रंथ** : लघुसंवरतंत्र मायाजाल, महातंत्र राज तथा श्री चंद्रगुह्यतिलक महातंत्र राज।

2. **तंत्र में व्याख्या के ग्यारह ग्रंथ–**

1. बुद्धाभिषेक नाम स्तोत्र
2. मुखागम
3. प्रियसाधना
4. ज्ञानसिद्ध साधनोपायका
5. तत्त्वसंग्रह टीका
6. मायाजाल टीका
7. त्रैलोक्य विजय मंडलोपायका
8. वृत्तिप्रदीप
9. जलबलिविधि
10. महामुद्रायोगावतार पिंडार्थ
11. वज्रविदारिणीमंडलविधि

अन्य विद्वानों के साथ सहयोजित रत्नभद्र द्वारा किए अनुवाद कार्य :
कांग्युर में सूत्र तथा तंत्र ग्रंथ -

1. अभिधानोत्तर तंत्र : दीपंकर श्रीज्ञान, रत्नभद्र
2. सर्वतथागतकायवाकचित्तरहस्यगुह्यसमाज : श्रद्धाकरवर्मन रत्नभद्र
3. सर्वरहस्यतंत्रराज : पद्‌माकरवर्मन, रत्नभद्र
4. श्रीपरमादिमहायानकल्पराज : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
5. अर्थवज्रपाणिनीलांबरधरणीलोकविजय : दीपंकर श्रीज्ञान, रत्नभद्र
6. अष्टसाहसिका प्रज्ञापारमिता : सुभाषित, रत्नभद्र
7. अष्टसासिका प्रज्ञापारमिता (संशोधित) दीपंकर श्रीज्ञान, रत्नभद्र
8. महापरिनिर्वाण सूत्र : कमल गुप्त, रत्नभद्र
9. नैरात्मयपरिपृच्छा : कमल गुप्त, रत्नभद्र
10. घंटीसूत्र : धर्म श्रीभद्र, शीलगुण, रत्नभद्र
11. अभिनिष्क्रमण सूत्र : धर्म श्रीभद्र, शीलगुण, रत्नभद्र
12. सुभागधावदान : धर्म श्रीभद्र, शीलगुण, रत्नभद्र
13. चंद्रप्रभावदान : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र, सुप्रज्ञ
14. श्रीसेनावदान : धर्म श्रीभद्र, सुप्रज्ञ, रत्नभद्र
15. सर्वतथागततत्त्वसंग्रह : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र

सूत्रों की व्याख्या

1. अभिसमयालंकारलोक (अनुवाद संशोधित) सुभाषित, रत्नभद्र
2. अभिसमयालंकारलोक : दीपंकर, रत्नभद्र
3. अभिसमयालंकार की दुबौधालोक टीका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
4. प्रज्ञापारमितानवश्लोकपिंडार्थ : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
5. प्रज्ञापारमितानवश्लोकपिंडार्थ : कमल गुप्त, रत्नभद्र
6. हस्तबल प्रकरण : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
7. बोधिचर्यावतार : धर्मश्रीभद्र, शाक्य-लो-रोस, रत्नभद्र
8. संवृत्ति बोधिचित्तभावनोपदेशवर्ण संग्रह : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
9. परमार्थबोधिचित्भावनाक्रमवर्ण संग्रह पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
10. ध्यानसद्धर्म व्यवस्थान : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
11. ध्यानसद्धर्म व्यवस्थान टीका : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
12. बोधिसत्वचर्यासंग्रह प्रदीप रत्नमाला : प्रज्ञाकरवर्मन, रत्नभद्र
13. विमल प्रश्नोत्तरमाला : कमल गुप्त, रत्नभद्र
14. सत्तगुण परिवर्तन कथा : गंगाधर, रत्नभद्र
15. संभारपरि कथा : गंगाधर, रत्नभद्र
16. चतुर्विपर्यायपरिहार कथा : बुद्धभद्र, रत्नभद्र
17. पंचविध कामगुणोपलंभ निर्देश : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
18. ध्यानसद्धर्म व्यवस्थान : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
19. योगावतार : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
20. सप्तगुणवर्णन कथा : कमल गुप्त, रत्नभद्र
21. त्रिशरणगमनसप्तति : अतिशा, रत्नभद्र
22. प्रतिमोक्षभाष्यसंप्रमुक्तिस्मरणमात्र लेख : जनार्दन, रत्नभद्र
23. योगावतारापदेश : जनार्दन, रत्नभद्र
24. सुवर्णवर्णावदान : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
25. सप्तगुणवर्णन कथा : गंगाधर, रत्नभद्र
26. सुपथदेशनापरिकथा : अतिशा, रत्नभद्र
27. दृष्टांतमाल्य : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
28. अष्टांगहृदयसंहिता : जनार्दन, रत्नभद्र
29. पदार्थचंद्रिका : जनार्दन, रत्नभद्र
30. धूपयोगरत्नमाला : जनार्दन, रत्नभद्र
31. अष्टपरीकृत धूपयोग : जनार्दन, रत्नभद्र
32. शालिहोत्रीयाश्वायुर्वेदसंहिता : धर्म श्रीभद्र, बुद्ध श्री शांति, रत्नभद्र

तंत्रों की व्याख्या

1. विशेषस्तव टीका : जनार्दन, रत्नभद्र
2. देवातिशयस्तोत्र टीका : जनार्दन, रत्नभद्र
3. कायत्रयस्तोत्रविवरण : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
4. वर्णनार्हवर्णने भगवतो बुद्धस्य स्तोत्र : अशक्यसत्व (13वाँ अध्याय) परमाकरवर्मन, रत्नभद्र
5. एकोत्तरीयकस्तोत्र : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
6. सुगतपंचविंशस्तोत्र : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
7. देशनास्तव : बुद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
8. बुद्धाभिषेकनामस्तोत्र : बुद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
9. पंचतथागतस्तव : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
10. सप्ततथागतस्तोत्र : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
11. श्री चतुसंबर शूरमोनोज्ञा (टीका सहित) : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
12. श्री भगवदभिसमय : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
13. भगवच्छी चतुसंवरमंडल विधि : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
14. भगवच्छ्रीचक्रसंवरमंडल विधि : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
15. हेरुकसाधन : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
16. हेरुकविशुद्धि : श्री श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
17. श्री चक्रसंवरसाधन : अतिशा, रत्नभद्र
18. भगवदभि समय : अतिशा, रत्नभद्र
19. चक्रसंवरविस्तर प्रबंध : अतिशा, रत्नभद्र
20. वज्रयोगिनी स्तोत्र : अतिशा, रत्नभद्र
21. चतुः पीठयोगसाधनतंत्रसाधनोपायिका : कमल गुप्त, रत्नभद्र
22. तत्त्वोपदेश : कमल गुप्त, रत्नभद्र
23. सर्वबुद्धसमायोग तंत्रपाणिका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
24. सर्वबुद्धसमायोग : श्रद्धाकरवर्मन, धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
25. मृत्युवंचनोपदेश : अतिशा, रत्नभद्र
26. प्रदीपोद्योतन : (गुह्यसमाज टीका) श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
27. शडंगयोगटीका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
28. वज्रजापटीका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
29. ज्ञानवज्रसमुच्चयतंत्रोद्भवसप्तांकारविमोचन : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
30. पिंडीकृतसाधन : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
31. सूत्रमेलापक : गुह्यसमाजटीका : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र
32. गुह्यसमाजमंडलविधि : सुभाषित, रत्नभद्र

33. पंचक्रम : कमल गुप्त, श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
34. स्वच्छिष्ठानक्रमोपदेश : श्रद्धाकरवर्मन, कमल गुप्त, रत्नभद्र
35. अभिसंबोधिक्रमप्रभेद : श्रद्धाकरवर्मन, कमल गुप्त, रत्नभद्र
36. अमृतकुंडलिसाधन : श्रद्धाकरवर्मन, कमल गुप्त, रत्नभद्र
37. महावज्रधरूपथक्रमोपदेशाम तगुह्य : धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
38. होमविधि : श्रद्धाकरवर्मन, धर्म श्रीभद्र, रत्नभद्र
39. गुह्यसमाजमंडलदेवकायस्तोत्र : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
40. श्रद्धापुंलयस्तव : प्रज्ञाश्रीगुप्त, रत्नभद्र
41. गुह्यसमाजविवरण : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
42. समंतभद्रसाधन : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
43. गुह्यसमाजमंडलविधि : परमाकरवर्मन, रत्नभद्र
44. समंतभद्रवृत्ति : वीर्यभद्र, रत्नभद्र
45. समन्भद्रसाधनवृत्ति : रत्नभद्र, श्रद्धाकरवर्मन
46. मुक्तितिलक व्याख्यान : कमल गुप्त, रत्नभद्र
47. गुह्यसमाजमंडलविधि टीका : वीर्यभद्र, रत्नभद्र
48. गुह्यसमाजमिसमयसाधन, मंडलविधि : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
49. अक्षोभ्यवज्रसाधन : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
50. सुविशिष्टसाधनोपायिका : वीर्यभद्र, रत्नभद्र
51. गुह्यसमाज लोकेश्वरसाधन : अतिशा, रत्नभद्र
52. अभिषेक प्रकरण : तथागतरक्षित, रत्नभद्र
53. गुह्यसमाजपंजिका : विजयश्रीभद्र, श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
54. यमारिसाधन : अतिशा, रत्नभद्र
55. वज्रभैरवतंत्रपंजिका : तथागत रक्षित, रत्नभद्र
56. देवीप्रभाधरधिष्ठान : देवाकर, रत्नभद्र
57. वज्रयानस्थूलापत्ति : प्रज्ञाकरवर्मन, रत्नभद्र
58. कोशालंकार : धर्माकर श्रीभद्र, रत्नभद्र
59. वज्रधातुमंडलसर्वदेवव्यवस्थान : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
60. संक्षिप्तमंडलसूत्रवृत्ति : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
61. पद्मादिवृत्ति : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
62. परमादिटीका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
63. मायाजाल टीका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
64. सर्ववज्रोदय : बुद्ध श्री शांति, रत्नभद्र
65. प्रतिष्ठाविधि, करुणोदय : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
66. प्रतिष्ठाविधि : धर्मश्रीभद्र, रत्नभद्र

67. होमविधि : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
68. नामसंगीतिवृत्ति : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
69. मंजुश्रीनामसंगीति टीका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
70. सर्वदुर्गतिपरिशोधनमंडलसाधनोपायिका : सुभूतिश्रीभद्र, रत्नभद्र
71. सर्वदुर्गतिपरिशोधनप्रेतहोमविधि : कनकवर्मन, रत्नभद्र
72. सर्वशुद्धिसंस्कार सूत्रपिंडीतविधि : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
73. महाविरोचनाभिसंबोधिसंबद्धतंत्रपूजाविधि : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
74. वज्रविदारिणीधारिणीव्याख्यान वृहद् टीका : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
75. वृत्ति प्रदीप (अनुवाद व संशोधन) : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
76. आर्यमंजुघोषस्तोत्र : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
77. सहस्रभुजावलोकितेश्वरसाधन : अतिशा, रत्नभद्र
78. स्थिरचक्रभावना : वीर्यभद्र, रत्नभद्र
79. अरपचनसाधन : कमल गुप्त, रत्नभद्र
80. नागेश्वरराजसाधन : अतिशा, रत्नभद्र
81. नयत्रप्रदीप : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
82. तत्त्वसिद्धिप्रकरण : अतिशा, रत्नभद्र
83. तत्त्वावतार : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
84. मंत्रनयालोक : पद्माकरवर्मन रत्नभद्र
85. तत्त्वसार संग्रह : जनार्दन, रत्नभद्र
86. योगानुत्तरतंत्रार्थावतारसंग्रह : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
87. गुह्यपंचशिखा : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
88. मध्यमभागगत्रविधि : श्रद्धाकर वर्मन, रत्नभद्र
89. नागबलिविधि : अतिशा, रत्नभद्र
90. बलिपूजाविधि : अतिशा, रत्नभद्र
91. दंडकभगवच्चक्रसंवरस्तोत्र : वीर्यभद्र, रत्नभद्र
92. वज्रयोगिनीसाधन : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
93. पिंडीक्रमसाधन-: श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
94. नीलांबर वज्रपाणि कर्मसाधन : अतिशा, रत्नभद्र
95. कर्मकरस्तोत्र : श्रद्धाकरवर्मन, रत्नभद्र
96. यमस्साधन : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र
97. भूमिसूत्र : पद्माकरवर्मन, रत्नभद्र

रत्नभद्र द्वारा अन्य विद्वानों के साथ अनूदित ग्रंथों की सूची कम-अधिक उपलब्ध होती है।

भरमौर

कैलास यात्रा

शिवपुरी में प्रवेश

31 अगस्त (1995) को मणिमहेश यात्रा का पहला पड़ाव ढुँढियारा पड़ा।

यात्रा या जातर में पड़ाव को डेरा कहा जाता है। यात्री लोग खुले में ही आग जलाकर चारों ओर बैठ जाते हैं। ज़मीन में त्रिशूल गाड़ा और आग जलाकर बैठ गए। खराब मौसम की आशंका हुई तो किसी चट्टान की आड़ में डेरा डाल दिया। गद्दी तो 'नित मुसाफिर' कहा गया है जो खुले आकाश के नीचे बर्फ में या वर्षा में केवल पट्टू ओढ़कर रात गुजार देता है। जम्मू की ओर से आनेवाले यात्री जन्माष्टमी के स्नान के लिए आते हैं। चौगान में डेरा डाला तो एक ओर बकरा काटकर लटका दिया। ऐसे ही हर डेरे में बकरे कटते हैं। मणिमहेश में भेंट के लिए बकरा या भेड़ा अलग रखा जाता है।

भारतीय मनीषियों ने धर्म के मर्म को पकड़ा और धर्म यात्राएँ स्थापित कीं। पुराने समय में स्वेच्छा से यात्रा तीन प्रकार की रही है। व्यापार यात्रा, विजय यात्रा धर्म यात्रा। इन सब में अधिक उत्साह जनक धर्मयात्रा है। विजय यात्रा में योद्धा थक हार जाते हैं, व्यापारी भी कहीं न कहीं रुक जाते हैं। इन दोनों यात्राओं में बराबर भय बना रहता है। निर्भय होकर उत्साह से केवल धर्मयात्रा ही होती है। जहाँ धर्मयात्री अपने अभीष्ट से पहले नहीं रुकता चाहे उसे प्राण भी छोड़ने पड़ें।

चंबा से भरमौर का क्षेत्र शिवपुरी कहा गया है। चंबा से तीस किलोमीटर आगे रावी के दाएँ किनारे गूं कोठी में शिवमंदिर में एक शिलालेख है। यह शिलालेख मेरूवर्मन (980) के समय का है जिसमें इस मंदिर को शिवपुरी के मध्य में स्थित कहा गया है। शिव का वास मणिमहेश कैलास में माना जाता है तो भरमौर का पूरा क्षेत्र शिवपुरी। शिव के त्रिशूल के चिह्न इस क्षेत्र के हर मंदिर में मिलते हैं, चाहे मंदिर देवी का हो या नाग का। ये त्रिशूल पांगी से होते हुए त्रिलोकी नाथ तक हर जगह पाए जाते हैं।

हमारा डेरा रेस्ट हाऊस बना। शिमला से सुबह साढ़े आठ बजे जीप द्वारा चलने पर चंबा के करीब रहने का इरादा था, शायद चंबा में जगह न मिले। ढुँढियारा में लगभग साढ़े नौ बजे पहुँचे तो सौभाग्य से सारा रेस्ट हाऊस खाली मिला। चौकीदार ने बड़ा स्वागत सत्कार किया। देर रात होने पर भी ताज़ा खट्टी दाल और भात बनाया।

ढुँढियारा रेस्ट हाऊस बहुत अच्छी जगह में है। नैणी खड्ड से ऊपर जाकर मोड़ से आगे पहाड़ खुलता है। ठीक मोड़ पर ही टूरिज्म का रेस्तरां है जो इस समय किसी प्राईवेट आदमी को दिया है। ऊपर रेस्ट हाऊस है, बिलकुल एकांत में। नीचे नैणी खड्ड, दूसरी ओर बेढल गाँव। एक ओर बकलोह कैंट तो सामने डलहौजी। सुबह सारा दृश्य साफ था। संयोग से लगातार वर्षा के बाद पिछले दिन मौसम खुला था। आज भी उतना ही साफ धुला हुआ।

पहली सितंबर की खुली सुबह हम तैयार हो गए। दोपहर तक हड़सर पहुँचने की जल्दी थी। इसी शाम मणिमहेश पहुँचने का इरादा था। दो सितंबर सुबह चार बजे पवित्र स्नान था।

चंबा से सोलह किलोमीटर रावी के पार बाईं ओर मैहला गाँव है। यहाँ मैहला जातर लगती है जिसके बारे में लोकगीत मशहूर है। छोटे से लकड़ी के पुल से गाँव तक जीप जाती है। गाँव में हिडिंबा का मंदिर है। इतिहास बताता है कि हिडिंबा का यह मंदिर सन् 1641 में राजा पृथ्वी सिंह के समय राजा की धाय बाटलू ने बनवाया। गाँव में एक लड़के से पूछा तो उसने कहा : "हम गद्दी नहीं हैं। गद्दी ऊपर रहते हैं। पहाड़ के ऊपर रहने वाले गद्दी होते हैं, नीचे वाले नहीं।" वास्तव में भरमौर-चंबा के इतिहास में जितने भी युद्ध हुए हैं उन में गद्दी-सेना का उल्लेख हुआ है चाहे वह चंबा की सेना हो या भरमौर की। भरमौर से राज्य विस्तार चंबा और फिर चुराह की ओर बढ़ा है।

मैहला से आगे राख में हमने खाया। चावल और मधरा बना था। मधरा चंबा का एक विशेष खाद्य है जो धाम या भोज में चावल के साथ बनाया जाता है। दाल-खट्टा के अतिरिक्त मधरा विशेष व्यंजन है। यहाँ होटलनुमा मधरा राजमाह का था। चंबा, काँगड़ा में सामूहिक भोज में प्याज-लहसुन के बिना भोजन पकता है। माँसाहारी रसोई अलग पकाई जाती है। राख में सेब और अखरोट भी बेचने के लिए रखे थे। यहाँ बाज़ार के साथ ही एक छोटा रेस्ट हाऊस भी है।

चंबा से चालीस किलोमीटर लुणा पुल में एक सड़क छतराड़ी को जाती है। लुणा पुल के साथ ही पुल के पार भरमौर का जनजातीय क्षेत्र आरंभ होता है। यहाँ दुर्गठी में भरमौर का पहला रेस्ट हाऊस है।

खड़ा मुख में रावी और बुढल मिलते हैं। बुढल हड़सर से आती है। रावी होली की ओर से। होली यहाँ से पच्चीस किलोमीटर है, दूसरी ओर बुढल के साथ सड़क जाती है। यह संगम पूह से आगे सतलुज और चंद्रभागा के संगम की तरह है। वहाँ भी नमग्या की ओर से सतलुज आती है, दूसरी ओर से चंद्रभागा। चंद्रभागा के साथ स्पिति को सड़क जाती है। यहाँ भी लगभग वैसी ही सड़क पहाड़ी चट्टानें काटकर बनाई हुई। वैसी ही चढ़ाई। अंतर इतना वहाँ ऊँचाई काफी न होने के कारण नंगे पहाड़ हैं, यहाँ हरे-भरे। ऊँचे पहाड़ों की चोटी तक यहाँ आबादी और खेत नज़र आते

हैं। यही असली गधेरन है। जहाँ ऊँचाइयों में गद्दी लोग वास करते हैं।

भरमौर का बस अड्डा अब दूसरी ओर बन गया है, चौरासी मंदिर के ठीक नीचे। बस अड्डे के आस-पास लगभग पचास से ऊपर बसें खड़ी थीं। ये सब बसें जम्मू की थीं। जम्मू के यात्री जन्माष्टमी को आते हैं, ऐसा कहा जाता है। किंतु इस बार मणिमहेश यात्रियों में अस्सी प्रतिशत जम्मू के थे। भरमौर के आगे हड़सर से दो किलोमीटर पीछे सड़क जाम हो गई थी। पता चला कि सुबह से रास्ता जाम हो गया था। दो सिपाही बसें, टैक्सियाँ किनारे लगाने का असफल प्रयास कर रहे थे। बहुत से लोग भरमौर से पैदल चले थे। हमें भी जीप वहीं छोड़ आगे पैदल जाना पड़ा। हमारी पद यात्रा यहीं से आरंभ हो गई।

यात्रा अन्वेषण का नाम

यात्रा नाम है अन्वेषण का। यात्रा जहाँ नए-नए दृश्य उपस्थित करती है, वहाँ नई खोज की एक दिशा भी निर्धारित करती है। भारतीय चिंतन में यात्रा का विशेष महत्त्व रहा है। पुरातन ऋषि-मुनि यात्राओं द्वारा अनेकानेक अनुभव खंडों से गुजरते हुए नाना प्रकार के भूदृश्य और आश्चर्यों से भरी पृथ्वी के दर्शन किया करते थे। यात्रा अपने अनेकानेक उद्देश्य के साथ नई दिशाओं की खोज करती है। यही परंपरा विद्यमान है आज ऐसी पर्वत कंदराओं में।

यात्राएँ जारी हैं, एक परंपरा और धर्मयात्रा के रूप में। हिमाचल प्रदेश में ये यात्राएँ, जो दुर्गम हैं, शिव के मूल निवास की ओर अग्रसर होती हैं। किन्नर कैलास परिक्रमा, मणिकर्ण यात्रा और फिर मणिमहेश यात्रा। मणिकर्ण तो अब सड़क मार्ग से सुगम हुआ, मणिमहेश अभी भी दुर्गम है।

शिव मंदिर हड़सर

हड़सर इस यात्रा का आधार या बेस-कैंप है। एक छोटा-सा गाँव। सड़क के नीचे ज्यादा घर हैं। चंबा से अस्सी किलोमीटर के लगभग हड़सर में ही वह प्राचीन शिव मंदिर है जिसका उल्लेख वोगल ने किया है।

सड़क के निचली ओर साधारण छत वाले इस मंदिर में कुछ साधु लोग डटे थे। आँगन में धूणा जल रहा था। बीच में शिव मूर्ति। एक ओर काले पत्थर की और दूसरी ओर संगमरमर की नई मूर्ति।

शिव मूर्ति के नीचे लिखा था..."इस मूर्ति का निर्माण हड़सर के पुजारियों द्वारा 30.3.94 को किया गया मूर्तिकार हाकम सिंह।"

वोगल ने जो लेख उद्धृत किया था, वह इसमें नहीं था। वोगल ने लिखा है कि हड़सर के शिव मंदिर में अद्‌भुत शिव प्रतिमा है। दो भुजाओं वाले शिव के 'बस्ट' में एक लेख है। लेख की दो पंक्तियों की लंबाई $8^{1/8}$ और $6^{1/8}$ है लेख में संवत् 58 खुदा

है। लेख की भाषा स्थानीय है। लेख का मूल पाठ यूँ दिया है :

मूल पाठ

ओं श्री संवत् 58 ज्येष्ठ प्रविष्ट 14 भगस्याणि नथ रे पुत्रे गंगु-ए तथा किसनुए। एह महादेव अडसरे थाप्या।

संवत् 58 ज्येष्ठ प्रविष्टे 14 को भगस्याणि नत्थु के पुत्र गंगु तथा किसनू ने हड़सर में यह महादेव स्थापित किया।

पुजारी ने बताया पुरानी मूर्ति, जिसमें लेख था और जिसे कोई नहीं पढ़ सकता था, पाँच छह साल पहले चोरी हो गई। एक मूर्ति हमने दोबारा बनवाई, वह भी चोरी से गई। यह तीसरी मूर्ति है जो पिछले साल ही बनवाई है।

हड़सर में ब्राह्मणों के तीस-चालीस टोले हैं जो यहाँ बारी से पूजा करते हैं। यहीं से पुजारी मणिमहेश पूजा के लिए आते हैं।

हड़सर में एक रास्ता मणिमहेश को चढ़ता है। तो दूसरा कुगति को। कुगति की ओर से आने वाले दरिया में मणिमहेश का नाला मिलाता है और बुढल नदी बनती है। कुगति इस ओर का आख़िरी गाँव है। यहाँ से तेरह किलोमीटर पैदल इस गाँव में केलंग का मंदिर है। कुगति दर्रे से लाहुल के गोशाल में पहुँचते हैं।

यात्रा प्रारंभ

जीप, वैन, बसों के काफिले को छोड़ शुरू होती है मणिमहेश यात्रा। लगभग अढ़ाई बजे हमने चढ़ाई प्रारंभ की। पहली सीढ़ी से लेकर ऊपर दूर तक यात्रियों की एक लंबी पंक्ति चढ़ती नज़र आ रही थी। कहीं भी रास्ता खाली न था। चींटियों की तरह रेंगते लोग रंग बिरंगी पोशाकों में दिख रहे थे। यहाँ से पहला पड़ाव पाँच किलोमीटर पर धणछो आएगा। धणछो तक एक ऊँचा पहाड़ है। जगह-जगह पीने का पानी है। आगे सीधी चढ़ाई। नीचे श्रद्धालुओं द्वारा लगाए गए दो लंगर, जहाँ ताजा खाना परोसा जा रहा था।

बहुत लोगों के साथ चलने पर रास्ता लंबा नहीं लगता। चढ़ाई भी उतनी नहीं लगती। थकान कम महसूस होती है। जिस रास्ते पर बच्चे, बूढ़े, औरतें चली जाती हों, वहाँ एक उत्साह बना रहता है। नाले के पार गिर रहे झरनों को देखते हुए तरोताज़ा होने के कारण धणछो तक की चढ़ाई बिना थके पाँच बजे तक चढ़ ली।

धणछो, रोहतांग की चढ़ाई में मढ़ी की तरह आता है। कुछ समतल जगह जहाँ तिब्बती लोगों के ढ़ाबे, कुछ दुकानें और टेंट लगे थे। समतल जगह समाप्त होने पर यहाँ एक बड़ा जलप्रपात है–धण छो। 'छो' प्रपात या झरने को कहते हैं। जैसे मढ़ी के सामने भी एक बड़ा प्रपात 'सागूछो' है। धणछो में ऊँचाई से बड़ी तेजी से पानी गिरता है। इस के वाष्पकण दूर तक जाते हैं। जिनमें लोग स्नान करते हैं। वाष्पकणों में

स्नान कई रोगों की मुक्ति का कारण माना जाता है।

धणछो के ऊपर कुछ चढ़ाई के बाद छोटे पुल से धणछो नाले को पार कर दूसरे पर्वत में प्रवेश होता है।

मणिमहेश यात्रा में एक कमी है जो यात्रियों को ज्यादा थकाती है। हड़सर में चढ़ते ही ऊपर तक लोग सीधी चढ़ाई चढ़ते नजर आते हैं। इसी तरह धणछो के पार भी सीधी चढ़ाई नज़र आती है दूर तक। अंत में गौरी कुंड तक यह चढ़ाई दिखती है। जिस से सामने दिखता है कि अभी बहुत ऊपर चढ़ना है। यदि सामने पूरा रास्ता नज़र न आए तो एक आसरा रहता है कि बस अभी पहुँचे या आगे बेहतर रास्ता आएगा। बस अब कुछ दूर और¨! मनुष्य की यह मानसिकता है कि अज्ञानता और अनजाने में जीना चाहता है। आगे क्या होगा, वह जानना नहीं चाहता। शायद अच्छा हो, बेहतर हो, यह आशा बनी रहनी चाहिए।

धणछो से लगभग एक किलोमीटर ऊपर कुछ चाय की दुकाने थीं। इससे आगे कदम भारी पड़ने लगे। इस पहाड़ पर रंग-बिरंगे फूल खिले थे जैसा कि एक खास ऊँचाई पर प्रत्येक पहाड़ में होता है। रंग-बिरंगे फूलों से आगे का सफर इतना भारी लगेगा, यह सोचा न था।

अभी गौरी कुंड दूर था कि शाम हो गई। अब आधा किलोमीटर चढ़ने के बाद सुस्ताना ज़रूरी हो गया। सुंद्ररासी में भी कुछ दुकानें लगीं थीं। यहाँ एक औरत बेहोश हो गई थी। एक बूढ़ा यात्री बेहाल हो लेट गया था और उठ नहीं पर रहा था। कई बुजुर्गों को दो-दो आदमी पकड़कर लगभग उठाकर ही ले जा रहे थे।

यात्रा में¨"या" धातु गमन के अर्थ में आती है। गमन का अर्थ चलते रहना है। इस तरह की यात्रा एक दृढ़ भावना के साथ की जाती है। असंख्य यात्री पहाड़ माप रहे हैं। कदम-कदम आगे बढ़ना है। कई बूढ़े हैं। कई बीमार हैं। कईयों को पकड़कर चलाया जा रहा है। औरतों ने छोटे बच्चे उठा रखे हैं। इतना सामान उठाया हुआ है। गिरने पर खड़ा होना है, खड़े होकर ऊपर चढ़ना है। यह सब एक भावना, एक इच्छा शक्ति के कारण है। एक अज्ञात प्रेरणा ऊपर पहुँचने को कहती है। वरना एक बार हिम्मत हारने पर कौन आगे बढ़ता है। कई बार तो पास-पड़ौस में जाने से भी टलते हैं। कौन जाए ! कौन चढ़े! ऐसी क्या पड़ी है? यात्रा में ऐसा नहीं है। यहाँ जाना ही है, चढ़ना ही है, चाहे कुछ हो।

ऐसी दुर्गम यात्रा में मौत भी संभव है। कई यात्री थककर नीचे पड़ जाते हैं। सुबह तक न उठे तो ठंड से भी मर सकते हैं। ऐसी मौतें हर साल होती हैं। आती बार पता चला था कि एक आदमी रात यहाँ मर गया। एक बच्चा गिर गया। यहाँ मरना भी तो भाग्य की बात है। गया जैसे तीर्थों में लोग (विशेषकर बूढ़े) मोक्ष की इच्छा से पत्थर बाँधकर पानी में कूदते हैं। स्वर्गारोहण तो है ही, जिंदा न चढ़ पाएँ तो मरकर जाएँगे।

अब ऊपर से उतरने वाले यात्रियों की संख्या बढ़ गई थी, कई जगह ऊपर से आने वालों के लिए रुकना पड़ रहा था। सभी यात्री 'जय शंकर की' बोल चढ़ते रहने, चलते रहने को कह रहे थे। बात बात में पता चला, ऊपर रहने का कोई प्रबंध नहीं है, इसीलिए लोग वापस लौट रहे हैं।

गौरी कुंड की रोशनी सामने थी, रास्ता दूर था। आखिर आठ बजे के करीब जब हम गौरी कुंड पहुँचे तो अँधेरा हो चुका था।

जो रोशनी में बिलकुल साफ नज़र आता है, अँधेरा होने पर तिलिस्मी हो जाता है। अँधेरे में कुछ पता नहीं चलता, हम मंज़िल के चारों ओर घूमकर भी उसे नहीं पाते। इसी तरह हम सभी टेंटों, दुकानों में रात का ठिकाना ढूँढ़ने लगे। मणिमहेश पहुँच जाने की हिम्मत नहीं थी। दूसरे वहाँ से लोग वापस जा रहे थे। वहाँ ठिकाना मिल पाना कठिन था।

एक मेहरबान ने रोशनी के पास जाने को कहा, शायद रात के लिए आसरा मिले। रोशनी एक चारदीवारी के दरवाजे पर थी जहाँ लोग भीतर झाँक रहे थे। एक यहाँ सराय थी जो किसी महंत ने बना रखी थी। महंत एक ओर बैठा था। वास्तव में भीतर सभी लोग बैठे थे, सोने के लिए जगह न थी। महंत पहले ही लोगों को लताड़ रहा था कि सौ क्या हज़ार रुपए में भी अब जगहं नहीं मिल पाएगी। जो लोग पैसे की बात कर रहे थे, उन्हें वह और भी डाँट रहा था।

तेरह हजार फुट से ऊपर की बुलंदी पर बाहर ठंड पड़ने लगी थी। इसलिए छत ज़रूरी थी रात गुजारने के लिए। आखिर हारकर हम एक जगह पहुँचे जहाँ आग जली हुई थी। एक आदमी बिलकुल आग के पास चादर ओढ़े सोया था। कुछ चारों ओर बैठे थे। हमने भी कुछ जगह बनाई और डट गए। सामने भी लोग आग जलाने की कोशिश में थे। दोनों ओर आग जल जाए तो रात कट जाएगी, हमने सोचा। सामने बहुत कोशिश के बाद भी आग न जली। कुछ और लोग वहाँ आ गए और हमें हटाने लगे, ये हमारा डेरा है। हमने सौ रूपए की लकड़ी लेकर आग जलाई है। वे पीए हुए थे।

वहाँ से उठकर हम और ऊपर गए। यहाँ लंगर वाले टेंट में आग जली थी। उससे पहले एक दूसरे टेंट में जगह माँगी। साथी बुजुर्गवार को आगे कर जगह माँगी किंतु मना हो गया। हम आग के पास बैठे ही थे कि टेंट में कोई आ गया। "ओ कित्थे गए बुजुर्ग...ओ एह बैठे न, चलो अंदर चलो।" एक सरदार जी ने हमें कहा तो हम हैरान रह गए। ये वही सरदार जी थे जिनसे पनाह माँगी थी। सरदार जी ने लंगर वाले टेंट के साथ दूसरे टेंट में ले जाकर खाली जगह में बिठाया। एक लिहाफ, दो कंबल दिए : "सों जाओ आराम नाल।" वहाँ कुछ और लोग भी सोए थे। भीतर पड़ी कुछ रजाइयाँ गीली थीं।

'कल इत्थे तुफान आया सी। सारी रजाइयाँ गिली हो गई', सरदार जी ने बताया। यह लंगर, टेंट नवांशहर वालों ने लगाया था।

हम आराम से लेट गए। ठंड की अब कोई बात नहीं थी।

'अस्सी पच्चासी तो एह लंगर लगा रहे न।' सरदार जी बता रहे थे।

एक गद्दी भी टेंट के भीतर घुस आया था और सरदार जी से बतिया रहा था। 'मालिक दी मेहर रही ते एत्थे इक सरां बणाणी है।'

खच्चरों पर लादकर टेंट, बिस्तर, बर्तन, गैस आदि सामग्री लाई गई थी। ऐसे ही एक और लंगर भी वहाँ लगा था।

यात्री रास्ते में पहले पूछ लेते थे : 'चा मोल की या लंगर की।' फिर पीते। बहुत से यात्रियों को यूँ लंगर वाले जबरदस्ती खाना, चाय देते थे। ज्यादातर लंगर पंजाब के लोगों के थे।

रात ठीक से नींद तो नहीं आई पर आराम रहा। आधी रात के बाद वर्षा शुरू हो गई। वे सब लोग जो बाहर आग जला रहे बैठे थे, कहाँ गए होंगे!

पवित्र स्थान में पाप छोड़िए

रात सोच रहा था, पवित्र स्थान में जाकर कोई बुराई छोड़नी चाहिए। ये हमारी मानसिकता है। हमारे एक बुजुर्ग एक हरिद्वार गए तो वहाँ बैंगन छोड़ आए। माँस के वे बड़े शौकीन थे। माँस तो छोड़ नहीं सकते थे। बैंगन छोड़ आए। ऐसे ही हम लोग पवित्र स्थानों में अपने पाप छोड़ते हैं। इस बात की पुष्टि सुबह मणिमहेश जाकर हो गई।

पाँच-छह बजे के लगभग आँख तो खुल गई, ऊपर जाने की हिम्मत नहीं हुई। बाहर बारिश हो रही थी। सरदार जी ने अपने छोकरों को चाय बनाने का आदेश दिया और सब ओर हड़बड़ी फैल गई। गद्दी का भाई और औरत भी रात टेंट के भीतर आ घुसे थे। औरत को उल्टियाँ लगी थीं। टेंट में सोए लंगर वालों के ही डॉक्टर ने वहाँ दवाइयाँ बाँटी।

मैं सारे रास्ते बताता आया था कि वहाँ बहुत इंतजाम होता है। सब कुछ मिल जाता है। कुछ साथ ले जाने की आवश्यकता नहीं। यहाँ तो ऐसा कुछ भी न था। यदि लंगर वाले न हों तो लोग भूखे-प्यासे रह जाएँ। सरकारी बैठकों में एक मुद्दा आवास व्यवस्था का भी होता था। यहाँ तो अव्यवस्था ही अव्यवस्था थी।

सात बजे के करीब हम बारिश में ही ऊपर चल दिए। सामने नीले रंग के टेंट दिख रहे थे। रात को किसी ने बताया था कि इनके दूसरी ओर झील है। किंतु इन नीले टेंट के एकदम साथ झील थी। आधे घंटे से कम समय में हम झील में पहुँच गए।

झील के चारों ओर गंदगी फैली थी। झील के पानी में सेब, खीरे, मक्की और न जाने क्या-क्या फेंका था। किनारों पर कच्छे, बनियान, पाजामें और कपड़े पड़े थे। एक ओर झील का पानी बहुत कम था। ऊपर तीन चेले बैठे थे। झील के साथ जहाँ झंडे, झाड़ियाँ गढ़ी थीं, शिव का एक मोहरा और संगमरमर की मूर्ति रखी थी। लोग

यहीं पर स्नान के बाद पूजन कर रहे थे।

हमारे पहुँचते ही बारिश की जगह बर्फ गिरनी शुरू हो गई। एक व्यक्ति नहाने के बाद धूप हाथ में लिए चिल्लाता हुआ पूजन करने आ रहा था। उसे ट्रांस आया हुआ था। वैसे तो झील के ठंडे पानी में नहाने के बाद सभी के हाथ काँप रहे थे। हाथों से बटन बंद नहीं किया जा रहा था। सभी लोग काँपते हाथों से धूप दे रहे थे।

सामने कैलास था जो कभी बादलों से पूरा ढक जाता, कभी कुछ दिखता। कैलास पर्वत वही है जो गौरी कुंड के साथ है। मणिमहेश झील के बिलकुल सामने। कैलास के बारे मणिकर्ण की तरह कोई लोक कथा नहीं है। कहा जाता है जब कैलास के पीछे से सूर्य निकलता है तो मणि की तरह चमकता है।

गौरी कुंड के ऊपर से आरंभ होकर कैलास बिलकुल करीब लगता है। जैसे सुबह चढ़ना आरंभ करो तो दोपहर तक पहुँच जाओ। नीचे ग्लेशियर है, ऊपर बर्फ। किंतु चढ़ना इतना आसान नहीं है। ऊपर जाने की इच्छा लिए एक गद्दी की लोक कथा सुनाई जाती है। कैलास पर पहुँचने के लिए गद्दी ने बहुत से मेमने लिए और चढ़ने लगा। कुछ ऊपर चढ़ता और एक मेमना काटता। कुछ दूर रहने पर मेमने खत्म हो गए। गद्दी का हौंसला टूट गया। वहीं जमकर बर्फ हो गया।

मणिमहेश झील एक अद्भुत स्थान है। झील यद्यपि बहुत बड़ी नहीं है। सामने का दृश्य अनोखा है। साथ के पर्वत पर बर्फ है। कैलास तो बर्फीला है ही। आगे पर्वत ही पर्वत।

सुबह का स्नान तो परसों ही अर्थात् 31 अगस्त को हो चुका है, एक व्यक्ति ने बताया। सब से पहले चेले नहाते हैं उसे 'डल भनणा' कहते हैं। इसके बाद ही लोग स्नान करते हैं। यह प्रक्रिया परसों हो चुकी है। तिथि के विवाद के बारे में अखबारों में आया था, किंतु अंतिम रूप से दो सितंबर ही स्नान बताया गया था।

लोगों का विश्वास है पवित्र स्नान की प्रातः झील का पानी अपने आप चढ़ जाता है। झील में सबसे पहले चेले नहाते हैं। वे बर्फीली झील को तैरते हुए पार करते हैं। चेले के पार पहुँचते ही उसे छूने के लिए लोग दौड़ते हैं। जो सबसे पहले छू ले उसे सबसे पहले 'पुच्छ' लेने का अधिकार होता है। पुच्छ लेने या प्रश्न पूछने में भविष्य जानने या दुःख कष्ट दूर करने के उपाय मुख्य मुद्दे रहते हैं।

हिमाचल प्रदेश की जनगणना रपट 1961 (मेले और त्यौहार) मे उल्लेख है कि रियासती समय में चेले को सबसे पहले छूने का अधिकार राजकुमार को होता था। वही सबसे पहले प्रश्न पूछ सकता था। रियासत की ओर से छत्तीस बकरे काटे जाते थे। बाद में मंदिर कमेटी की ओर से चार बकरे बलि किए जाने लगे। इस बार कोई भी बकरा कटता नहीं देखा यद्यपि कुछ लोग रास्ते में बकरे लिए चले हुए थे। यहाँ पहले बच्चों को यज्ञोपवीत भी डालते थे।

मणिमेहश कैलास में नज़र आने वाली दो मानव आकृतियों को साधु और गद्दी माना जाता है जो ऊपर जाने की चाह में बर्फ हो गए।

ऊपर कैलास, शिव का वास। नीचे गौरी कुंड। कैलास से प्रतिदिन देवी गौरी नीचे स्नान के लिए आती थी। इसी आस्था से महिलाएँ गौरी कुंड में स्नान करती हैं। मणिमहेश झील में भी उनके स्नान के लिए नाममात्र-सी पर्दे की जगह बनी हुई है। गौरी कुंड में पत्थरों की दीवार है जहाँ पहाड़ी के ऊपर से झाँका जा सकता है।

कुछ देर बादल हटने की प्रतीक्षा के बाद साढ़े नौ बजे के करीब हमें वापस आना पड़ा।

'एक चेला कुछ साल पहले डूबकर मर गया था', एक स्थानीय आदमी ने बताया, 'वह छोटा चेला था। डल में छलांग पहले बड़े चेले की लगानी थी। वह छोटा था, इसलिए तैर नहीं पाया और डूब मरा।' उसने स्पष्टीकरण दिया।

गौरी कुंड में नवांशहर के लंगर में हलवा तैयार था। लोग हलवा लिए नीचे उतर रहे थे।

गौरी कुंड में मणिमहेश झील से निकला पानी और कैलास के ग्लेशियर से आता पानी तेज और गहरा था। यही पानी धण छो बनता हड़सर में कुगति से मिलकर बुढल नदी बनता है। इस पर बने छोटे पुल में रात हम बड़ी आसानी से पार हो गए थे। इस समय पुल के पास बहुत दूर तक लोगों की भीड़ वन-वे ट्रेफिक बनी हुई बहुत धीरे-धीरे रेंग रही थी। वर्षा से कीचड़ हो गया था, इसलिए पुल के पास कुछ फिसलन बन गई थी।

यहाँ पुलिस के सिपाही के रूप में पूरी यात्रा में पहली और आखिरी बार किसी सरकारी आदमी के दर्शन हुए। हमारी पुलिस ट्रेफिक छोड़ती कम रोकती ज्यादा है। कल हड़सर में ट्रेफिक कंट्रोल न कर पाने की वजह पूरी सड़क रुक गई थी। आज यहाँ आदमी रोके हुए थे। पाँच-पाँच आदमी पार भेजे जा रहे थे जिससे पीछे धक्म-धक्के में कीचड़ और भी फिसलन भरा हो रहा था। पुल के पास खड़ा एक बूढ़ा कमज़ोर सिपाही पार से आने वालों को रोके था। इधर का तगड़ा सिपाही एक-एक, दो-दो आदमी पार कर रहा था। यहाँ हमें आधे घंटे से ज्यादा समय लग गया। यहाँ एक और 'तरंगड़ी' पर पुल भी बनाया जाता था। इस बार एक पुल होने से भी ज्यादा भीड़ थी।

गौरी कुंड से नीचे उतरते-उतरते बारिश थम गई। हम सीधे रास्ते से नीचे उतरने लगे जो पुराना रास्ता था। यह वास्तव में भैरों घाटी और बंदर घाटी की याद दिलाता है। जहाँ बंदर की तरह हाथ-पैरों का प्रयोग कर ही चढ़ा जा सकता था। उतराई तो फिर भी आसान है।

नीचे से ऊपर वाले रास्ते में लोग ही लोग दिख रहे थे। पूरा रास्ता ऊपर से नीचे तक भरा हुआ था। यहाँ से धणछो का पड़ाव भी दिख रहा था। इतने सारे लोग पूरे रास्ते में भरे हुए, कहीं भी रास्ता खाली नहीं। एक अनुपम दृश्य था। यात्री इतने थे कि धणछो, उससे ऊपर खाना, चाय सब खतम हो गया। केवल हड़सर के पास लंगर

में खाना बचा था।

हमारे आगे छड़ी उठाए कुछ चेले चले हुए थे। कानफटे साधु डमरू तथा छड़ियाँ लिए उतर रहे थे।

छड़ी यात्रा राधा अष्टमी से एक सप्ताह पूर्व आरंभ होती है। एक बार संयोग से मैं चंबा था जब छड़ी यात्रा आरंभ हुई। लक्ष्मीनारायण मंदिर के नीचे चरपट मुहल्ले में चरपट नाथ मंदिर से यह यात्रा आरंभ होती है। चरपट नाथ मंदिर का पुजारी छड़ी लेकर चलता है। साथ दसनामी अखाड़ा के स्वामी और साधु भी चलते हैं। चरपट नाथ मंदिर पुजारी और अखाड़े के साधुओं में कई बार इस यात्रा मे पहल करने के लिए झगड़ा भी रहता है। दसनामी अखाड़े में साधुओं के पास मेहला, भरमौर में ज़मीन जायदाद है। यह यात्रा जुलाकड़ी, राख, दुर्गठी, भरमौर, हड़सर, धणछो में रुकती हुई मणिमहेश पहुँचती है।

कुछ लोग जन्माष्टमी को स्नान करते हैं जो जम्मू भद्रवाह के होते हैं। पवित्र स्नान राधा अष्टमी को होता है जो श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के पंद्रह दिन बाद आती है। इस बार पवित्र स्नान में भी जम्मू के लोग अधिक लोग थे।

चढ़ने के बाद पहाड़ उतरना भी आसान नहीं। जब सारा भार टाँगों और पिडंलियों पर पड़ता है तो टाँगें काँप उठती हैं। दोपहर तक हम कठिनाई से धणछो पहँचे। वहाँ कुछ देर रुकने के बाद चार बजे ही हड़सर हुँच पाए।

हड़सर से चंबा पहुँचना कठिन नहीं था। थके हो के कारण चौरासी मंदिर में कुछ देर रुके। ऊपर ब्रह्माणी मंदिर में कुंड में स्नान आव यक है। कुछ लोग हड़सर से भरमौर और आगे तक भी पैदल चले हुए थे।

चंबा में रात को फिर वर्षा शुरू हो गई। संग्रहालय देखने के बाद सायं चार बजे वहाँ से हम डलहौजी के लिए चल दिए।

पहली सितंबर को जब हम ऊपर गए तो लगभग उतने ही यात्री वापस आए। कोई पचास हज़ार से ऊपर यात्री होंगे। जब हम नीचे पहुँचे तब भी हज़ारों यात्री अभी उतर रहे थे। कितने ही गौरी कुंड, मणिमहेश में थे। आज से चालीस बरस पहले मात्र दो तीन हज़ार यात्री जाते थे। अब ये संख्या बहुत बढ़ गई है। अनुमान के अनुसार इस वर्ष लगभग डेढ़ लाख यात्री मणिमहेश यात्रा पर गए।

खजियार झील

चंबा पठानकोट मुख्य सड़क को छोड़ डलहौजी के लिए रावी के पुल के पार छोटी सड़क जाती है। चंबा से बाईस किलोमीटर और डलहौजी से छब्बीस किलोमीटर ठीक बीच से आती है खजियार झील। घने जंगल के बीच कटोरे-सी जगह में छोटी झील। चारों ओर हरे भरे आकाश को छूते जंगल, बीच मैदान में झील।

यद्यपि झील अब सिकुड़ गई है और कहने भर को झील है। एक किनारे सरकंडों से भरा भूखंड है जो जम गया है। कहते हैं पहले यह भूखंड रिवालसर झील

की भाँति तैरता था। घास, सरकंडों और मिट्टी जमा होने से झील का पानी सूखता जा रहा है।

मैदान के ऊपरी सिरे पर खज्जी नाग का लकड़ी का मंदिर है। मंदिर के भीतर नाग की मानवाकार प्रतिमा है। बाहर बरामदे में लकड़ी की पाँच आदमकद मूर्तियाँ हैं जिन्हें पाँच पांडव माना जाता है। मंदिर के दरवाजे, गर्भगृह की छत में सुंदर नक्काशी हुई है। पहले बरामदे में कच्चा फर्श था, जिसे अब पक्का कर दिया गया है। गर्भगृह आगे टायलें बिछा दी गई हैं जो मंदिर को प्राचीन रूप को विकृत करती हैं।

खज्जी नाग के आगे हिडिंबा मंदिर नाम मात्र को रह गया है, छोटा शिव मंदिर भी विलीन-सा हो गया है। यहाँ दो नए होटल बना दिए गए हैं। एक होटल बिलकुल नाग मंदिर के साथ लगता है। दो वर्ष पूर्व जो यहाँ एक प्राचीन पुट था, वह एकदम समाप्त हो गया है।

$32^0$26 उत्तर और $76^0$32 पूर्व में लगभग 6300 फुट की ऊँचाई पर यह झील गगनचुंबी देवदारों और हरे मैदान के कारण अधिक आकर्षित करती है। मैदान में घुड़सवारी करवाई जाती है। ऊपर टूरिज़्म का होटल है।

खज्जी नाग और हिडिंबा का यह मंदिर राजा पृथ्वी सिंह (1641) की धाय बाटलू ने बनवाया।

आतंक से आतंक तक

डलहौजी सारी रात वर्षा होती रही। सुबह भी बंद नहीं हुई। सुबह ग्यारह बजे तक वर्षा के इंतजार के बाद हम चल दिए। जीप में कुछ खराबी आ गई थी। बणीखेत में पता चला आगे रास्ता बंद हो गया है। अतः कुछ देर इंतजार के बाद हम चले। बणीखेत के आगे पहाड़ी खिसक गई थी जो घंटा भर इंतज़ार के बाद छोटी गाड़ियों के लिए खुल गई। ढुँढियारा के आगे नैणी खड्ड पहुँचने पर जीप ज़वाब दे गई। सौभाग्य से वहाँ एक वर्कशाप मिल गई। मैकेनिक की कोशिश के बाद शाम तक जीप ठीक न हो सकी। वर्कशाप में पानी घुस रहा था। अतः हम पुनः ढुँढियारा रेस्ट हाऊस लौट आए। चार सितंबर की रात पुनः रेस्ट हाऊस खाली मिला। वही चौकीदार।

पिछली बार रात जब ठहरे थे सोने में पहले चौकीदार ने बताया था 'एक बुरी खबर है साहब।' 'बुरी खबर ! बुरी खबर क्या ?' हम चौंके थे। 'आज पंजाब के मुख्यमंत्री बेअंत सिंह को मार दिया¨उनकी गाड़ी बम से उड़ा दी।' हम हैरान रह गए। अभी रास्ते में हम पंजाब की शांति की बात कर रहे थे। खबर हमने न देखी, न सुनी। चौकीदार के घर टी०वी० था। कमरे में एक आतंक-सा फैल गया था।

मणिमहेश यात्रा में इस बात को हम भूल गए। इतने दिन न अखबार मिला, न खबरें सुनीं।

आज रेस्ट हाऊस पहुँचने पर चौकीदार ने बताया चंबा को रास्ता बिलकुल बंद

हो गया। आगे भी कहीं रुका है। कोई बस नीचे से नहीं आई।'''यहाँ पहले बहुत एक्सीडेंट होते थे। रास्ता खराब रहता था। एक बार एक ट्रक गिर गया जिसमें कुछ गूजर बैठे थे। ड्राइवर मर गया। हम गए तो कोई दबा पड़ा था, कोई मर गया था। उसने बताया।

इस रात भी वर्षा होती रही। पहली सितंबर की रात से चार सितंबर रात तक यह लगातार वर्षा थी।

सुबह गाड़ी ठीक हो गई। मौसम भी खुल गया। हम दस बजे चले। रास्ते में एक जगह पहाड़ गिरा था जो दो बजे तक बुलडोज़र ने साफ कर दिया।

इतने दिनों बाद पहली बार 6 ।सितंबर को पंजाब केसरी पढ़ा : "भारी वर्षा और भू-स्खलनों के कारण चंबा ज़िला में करोड़ों की क्षति हुई है तथा अब तक सात लोगों के मरने की सूचना प्राप्त हुई है। मणिमहेश गए हज़ारों श्रद्धालु धणछो, हड़सर, भरमौर में फँसे हैं।'''दो यात्री मणिमहेश से आते हुए भारी सर्दी के कारण मर गए।"

8 सितंबर को जनसत्ता की खबर थी : "मणिमहेश की यात्रा के बीच फँसे हुए हज़ारों यात्रियों को निकालने की कोशिशें जारी हैं, पर हेलिकाप्टर वहाँ नहीं उतर सका। चंबा में फँसे यात्रियों व तीर्थयात्रियों के लिए हेलिकाप्टर से दवाइयाँ, भोजन व कंबल गिराए गए।"

10 सितंबर तक अखबारों से चंबा-मणिमहेश की खबर गायब हो गई। जनसत्ता के फ्रंट पृष्ठ में छपा था : "चंडीगढ़, 9 सितंबर। पंजाब के मुख्यमंत्री हरचरण सिंह बराड़ ने अपने मंत्रिमंडल के पहले चरण में सिर्फ पाँच कैबिनेट मंत्रियों को शामिल किया है।"

चंबा शहर के पास रावी नदी का पानी नए और पुराने पुलों के ऊपर से बहने लगा। आसपास के खोखे, दुकानें, होटल बह गए। सड़क में कई जगह मलवा तो गिरा ही, पुल के आगे परेल नामक स्थान में लगभग दो किलोमीटर सड़क साफ हो गई और चंबा का सड़क मार्ग महीने भर के लिए बंद हो गया। कहते हैं मणिमहेश झील में एकदम ऊफान से पानी बढ़ा था। मणिमहेश में लंगर लगाए लोग और यात्रियों का क्या बना, भरमौर में फँसे यात्री कब निकले, कितने मर गए, कितने साफ बच निकले, यह कहना कठिन है। मणिमहेश झील के नीचे तंग पुल पर आदमियों की ट्रैफिक कंट्रोल करते एक मरियल बूढ़े सिपाही और एक तगड़े सिपाही की याद हो आई जो हमें एकमात्र सरकारी कर्मचारी दिखे थे।

एक तरह से यह महाप्रलय का आलम था। प्राकृतिक प्रकोप या महाप्रलय के समय क्या पुण्यात्मा या धर्मात्मा लोग ही बच पाते होंगे, यह कहना उतना ही भ्रामक है जितना कि वी०आई०पी० के साथ मरने वाले अंगरक्षकों का कसूर खोजना।

प्रकृति के आगे आज भी मनुष्य उतना ही निरीह है जितना कि पाषाण युग में रहा होगा।

सुगंध की यादें

चंपा के सुगंधित वृक्षों से सुवासित रहा होगा कभी चंबा। आज भी लोक कवि "चंबे दा फुल्ल" का वर्णन करते हैं। "चंबे दी कली" की सुगंध पंजाब तक फैली और गीतों के बोल बनी। क्या यही वह चंपा का फूल था जो कालांतर में चंबा बना!....हो सकता है।

आज चंबे के फूलों की जगह यहाँ कंकरीट के फूल भरे पड़े हैं। चौगान सिमटा। महल उजड़े। मंदिरों और साथ-साथ हाट-बाजार बने। रानी सूही के नीचे जो कंकरीट का जंगल उगा है, उसने चंपावती के फूलों के महकने पर रोक लगा दी है।

1839 में विगने ने चंबा की जनसंख्या चार हजार से पाँच हजार आँकी थी। वोगल ने 1911 में इसे छह हजार बताया। उस समय सबसे महत्त्वपूर्ण बिल्डिंग महल की थी जिसका सबसे पुराना भाग अट्ठारहवीं शताब्दी में मध्य में बना।

आज इस शहर की जनसख्या 21,214 है। दूर से देखने पर महल आज भी भव्य दिखता है। लक्ष्मीनारायण मंदिर भी नजर आता है। किंतु ऐसा, जैसे झाड़ियों के बीच कोई पुराना ठूँठ।

छह मंदिरों का लक्ष्मीनारायण मंदिर समूह, चमेसणी मंदिर, हरिराय मंदिर आज उस ऐतिहासिक वैभव की याद दिलाते हैं जो इस राजधानी के अतीत के साथ जुड़ा हुआ है। इस समय लक्ष्मीनारायण मंदिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के पास है। मंदिर समूह राज्य के अधीन। चमेसणी मंदिर प्रदेश सरकार के भाषा एवं संस्कृति विभाग के अधीन राज्य संरक्षित स्मारक था। अब भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग के पास है।

यह स्मारक हमें दस शताब्दियाँ पीछे ले जाते हैं जब इस सुंदर स्थान पर साहिल वर्मन की राजकुमारी चंपावती की नजर पड़ी।

ऐतिहासिक तथ्य

इतिहासकारों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं मत है कि चंबा की पुरातन राजधानी राजा साहिल वर्मन द्वारा बसाई गई।

कहा जाता है कि चंबा नाम राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चंपावती के नाम पर रखा क्योंकि उसी की इच्छा से इस राजधानी की स्थली चुनी गई थी। दूसरा मत है कि यह नाम चंपक वृक्ष से पड़ा जो आज भी यहाँ होता है और अपनी सुगंध बिखेरता है।

वोगल ने स्वीकार किया है कि चंबा की स्थापना साहिल वर्मन द्वारा ही की गई क्योंकि साहिल वर्मन के पुत्र तथा पौत्र द्वारा दो ताम्र पत्र जारी किए गए थे जो राजधानी चंबा से किए गए। इनमें चंबा को 'चंपक' लिखा गया है। चंबा की स्थापना दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की गई होगी। वोगल ने प्रोफेसर डेविड की इस बात को नकारा है कि अंग की राजधानी चंपा का नाम रावी के किनारे वैसी चंपा नगरी के नाम पर रखा गया था। अंगदेश में चंपा मध्य देश की प्राचीनतम नगरियों में से एक था, जिसका संस्कृत साहित्य में प्रचुर वर्णन है। किंतु रावी के किनारे चंपा का उल्लेख दसवीं शताब्दी से पहले नहीं किया गया। चंपा का सर्वप्रथम उल्लेख राजतरंगिनी में कश्मीर के राजा अनन्तदेव (1028-1063) के समय आता है। अतः जब रावी के किनारे चंपा की स्थापना हुई, अंग की चंपा समाप्त हो चुकी थी, या महत्त्व खो चुकी थी।

राजा साहिल वर्मन ने 920 ई० में राज्य संभाला। चंबा गजेटियर तथा हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स में साहिल वर्मन के समय में कुल्लू के साथ लंबे युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में चंबा की सेना को 'गद्दी सेना' कहा गया है। साहिल वर्मन ने निचली रावी घाटी को जीत लिया। युद्ध में चर्पटनाथ, रानी तथा राजकुमारी भी साथ थे।

साहिल वर्मन के राजगद्दी संभालने के बाद ब्रह्मपुर में चौरासी सिद्ध आए और राजा की सेवा में प्रसन्न होकर दस पुत्र होने का वरदान दिया। जब तक वे ब्रह्मपुर में रहे, राजा के दस पुत्र और एक कन्या हुई, जिसका नाम चंपावती रखा।

चंपावती को स्थान पसंद आने पर राजा ने यहाँ राजधानी बसाने का निर्णय लिया। यहाँ के राणा ने सारी भूमि ब्राह्मणों को दी थी जो इसे बेचना नहीं चाहते थे। आखिर राजा और ब्राह्मणों से समझौता हुआ और राजा ने नगर में प्रत्येक विवाह अवसर पर चार चकली (मुद्राएँ) देने का वचन दिया। राजा ने राजधानी बनाई और चंपा नाम रखा।

त्रासद रही चंबा की स्थापना

चंबा की स्थापना के विषय में दो त्रासद घटनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। चंबा में आज भी चंपावती का मंदिर हैं, जिसे चमेसणी मंदिर कहा जाता है। राजकुमारी चंपावती बहुत धार्मिक विचारों की थी। वह एक योगी के पास नित्यप्रति धर्मचर्चा के लिए जाती थी। राजा को उस पर संदेह हो गया और एक दिन वह उसके पीछे चल दिया। राजकुमारी कुटिया में अदृश्य हो गई और राजा ने उसकी स्मृति में चंपावती मंदिर बनवाया।

दूसरी कथा और भी अधिक करुणाजनक है। नगर में पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। राजा के बहुत प्रयत्न करने पर भी व्यवस्था नहीं हो पाई। अंत में उसने नगर के पीछे से सरोता नहर में पानी लाया। पानी उस नहर में नहीं आया और इसे किसी

दैवी शक्ति का प्रकोप माना गया। ब्राह्मणों से सलाह करने पर बताया गया कि यदि राजा, रानी या पुत्र की बलि दे तभी पानी आएगा। दूसरे मत के अनुसार राजा को स्वप्न आया कि यदि वह अपने पुत्र की बलि दे तभी पानी आएगा। ऐसा जानने पर रानी ने पुत्र की अपेक्षा अपने को बलि के लिए प्रस्तुत किया। रानी ने सती वेश धारण कर प्रस्थान किया और नहर के मूल स्थान में दफन होकर बलिदान दिया। कहा जाता है कि रानी के दफन होते ही पानी बहने लगा। इस हृदयग्राही प्रसंग का वर्णन आज भी लोकगीतों में किया जाता है।

रानी के बलि स्थान पर मंदिर बनाया गया और हर वर्ष मेला मनाया जाने लगा। आज भी पंद्रह चैत्र से पहली वैशाख तक मेला लगता है और इसे रानी सूही मेला कहा जाता है।

युगाकर वर्मन, साहिल वर्मन के उत्तराधिकारी पुत्र ने एक ताम्रपत्र में अपनी माता के नाम "नीनादेवी" का उल्लेख किया है, जो संभवतः यही रानी थी। ताम्रपत्र में 'चंपक' का नाम भी आता है। 'चंपक' नगर का उल्लेख 1649 के लक्ष्मी नारायण मंदिर लेख में भी है। कुछ दूसरे दस्तावेजों में भी चंपक नाम लिखा गया है।

जिस पुत्री के नाम राजधानी बनाई, जिस रानी का वहाँ बलिदान हुआ, उस राजधानी में राजा की क्या सहानुभूति रही होगी, यह विचारणीय विषय है। किंतु गजेटियर या अन्य इतिहासकार कहते हैं कि राजा ने लक्ष्मी नारायण का मंदिर बनवाया। जिसके लिए राजा ने अपने पुत्रों को विंध्याचल में संगमरमर लाने भेजा। इन्हें वापस आते हुए लुटेरों ने मार डाला। अंत में राजा ने युगाकर वर्मन को भेजा जिस पर भी लुटेरों ने हमला किया किंतु संन्यासियों की सहायता से उसने लुटेरों को मार भगाया। युगाकर वर्मन द्वारा लाए गए संगमरमर से विष्णु की प्रतिमा बनाई गई। साहिल वर्मन ने योगी चर्पटनाथ के सम्मान में चकली सिक्के में फटा हुआ कान बनवाया, जिसमें बाद के राजाओं में विष्णु पाद भी जोड़ा।

साहिल वर्मन के समय का कोई ताम्रपत्र नहीं मिलता है, संभवतः इसीलिए यह लोकश्रुतियाँ अधिक मात्रा में प्रचलित हैं। साहिल वर्मन ने कीर, त्रिगर्त और कुल्लू को भी हराया ओर इलाके छीने।

वर्तमान

चंपा या वर्तमान चंबा वैदिक नदी रावी के किनारे एक ऊँचे स्थान पर बसा है। इस राजधानी की स्थली व बनावट बहुत कुछ वैसी ही है जैसी कुल्लू, सुजानपुर की है। मुख्य द्वार और चौगान इन राजधानियों की विशेषता है। चंबा का मुख्य द्वार अब जिस स्थान पर है, शहर के लिए प्रवेश उससे ठीक दूसरी ओर बन गया है। बस रस्सों के पुल द्वारा दूसरी ओर प्रवेश करती है। अब नए पुल का निर्माण भी हो गया है। पुराने मुख्य द्वार के साथ सुंदर चौगान है जो द्वार के सामने सड़क के कारण दो भागों में बँट गया है। यह सड़क सीधी लक्षमीनारायण मंदिर और महलों को जाती है।

चौगान, जो कभी लंबा चौड़ा रहा होगा, सड़क के निचली ओर अभी सुरक्षित है। इसके अंतिम सिरे पर खुला मंच बना है। मंच से आगे सड़क पार कर सर्किट हाऊस है। ऊपर का चौगान समाप्त सा हो गया है। सड़क के साथ दुकानें तथा खोखे हैं। दूसरी ओर भी बाजार है जो सर्किट हाऊस से होता हुआ बस स्टैंड तक जाता है। खोखों की लाइन में ही ऊपर की ओर अंतिम छोर में 14 सितंबर, 1908 को स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय है, जिसे नए भवन में बदल दिया गया है जो पुरानी बिल्डिंग के साथ ही है।

मुख्य द्वार के साथ बाईं ओर पहला मंदिर है हरिराय मंदिर। यह भगवान विष्णु को समर्पित है। मंदिर में राजा सोम वर्मन द्वारा दिया गया ताम्रपत्र है। जिससे ज्ञात होता है कि मंदिर का निर्माण ग्याहरवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लक्ष्मण वर्मन द्वारा हुआ जो राज्यपरिवार का ही सदस्य था।

चौगान के दूसरी ओर बाजार के ऊपर चमेसणी माता का मंदिर है। शिखर शैली का यह मंदिर राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चंपावती की याद में बनवाया।

महल के उत्तर में एक पंक्ति में छह प्रस्तर मंदिर खड़े हैं जो इस समय चंबा की पहचान बने हुए हैं। इनमें तीन विष्णु को समर्पित है, तो तीन शिव को। सबसे पहला मंदिर लक्ष्मीनारायण का है और इसे ही मुख्य मंदिर माना जाता है। मंदिर साहिल वर्मन ने बनवाया। चंद्रगुप्त और त्रिमुख, जो शिव समर्पित हैं साहिल वर्मन द्वारा, गौरी शंकर मंदिर युगाकर वर्मन द्वारा बनवाया माना जाता है।

रंग महल अब नाम का महल है जिसमें सरकारी कार्यालय हैं। अखंडचंडी महल, जनाना महल इसके बाद बनाए गए, जो अपनी वास्तुकला से आज भी आकर्षित करते हैं। इस समय अखंड चंडी महल में राजकीय महाविद्यालय है। जनाना महल में अभी भी राजपरिवार के सदस्य रहते हैं।

चंबा इस समय चंबा रूमाल, चंबा चप्पल और मिंजर मेले के लिए प्रसिद्ध है। सन् 1908 में स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय भी चंबा की शान है। यह संग्रहालय देश में सबसे पहले स्थापित चार संग्रहालयों में एक है।

मिंजर महोत्सव

प्रदेश के अधिकांश भागों में फागुन के आगमन के साथ ही मेले-उत्सवों का आयोजन प्रारंभ हो जाता है। वर्ष भर ये उत्सव तथा मेले अच्छी फसल आने की संभावना में, फसल की कटाई के बाद तथा फुरसत के क्षणों में मनाए जाते हैं। ऐसा ही एक मेला मिंजर मेला।

चंबा नगरी प्रदेश की पुरातन राजधानी नगरी है। काँगड़ा (सुजानपुर), कुल्लू, मंडी, नाहन, रामपुर की भाँति यहाँ भी राजमहल हैं। नगर के बीच श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर, चंपावती मंदिर तथा हरिराय के पुरातन मंदिर हैं। बीच में सुंदर चौगान है। यहीं मिंजर का उत्सव मनाया जाता है।

राजा साहिल वर्मन (920) ने ब्रह्मपुर से बदलकर चंबा में राजधानी बसाई और अपनी पुत्री के नाम पर 'चम्पा' या 'चंबा' नाम रखा। साहिल वर्मन के सिंहासनारूढ़ होने के बाद ब्रह्मपुर में चौरासी योगी आए जिन्होंने उसे दस पुत्र होने का आर्शीवाद दिया। इन जोगियों में एक चरपटनाथ था। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मणिमहेश यात्रा तथा मिंजर आदि उत्सवों का श्रीगणेश उसी समय हुआ। साहिल वर्मन के समय ही नगर में पानी लाने के लिए रानी सूही की बलि दी गई।

सुनहरी धागों से बनी नवमंजरी या मिंजर उत्सव के प्रथम दिन मिठाई फलों के साथ बाँटी जाती है। सर्वप्रथम यह नवमंजरी श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्री रघुनाथ जी को भेंट की जाती है। श्रावण मास के द्वितीय रविवार से तृतीय रविवार तक मिंजर बाँधी जाती है। इसके बाद इसे नदी में विसर्जित कर दिया जाता है।

मिंजर मेला मनाये जाने के विषय में विभिन्न धारणाएँ हैं। 'मंजरी महोत्सव' नामक एक पुस्तिका में इस उत्सव का आरंभ दसवीं शताब्दी बताया गया है। राजा साहिल वर्मन के समय उनके गुरु चरपटनाथ ने इस उत्सव की योजना बनाई। एक अन्य धारणा है कि उत्सव वरुण देवता की पूजा के लिए मनाया जाता है।

किंवदंती यह भी है कि सदियों पहले इरावती नदी वर्तमान चंबा के चौगान से बहती थी। नदी की दाईं ओर चंपावती का मंदिर था तो बाईं ओर हरिराय मंदिर। एक साधु, जो चंपावती नगरी में रहता था, प्रतिदिन नदी पार कर हरिराय के दर्शन करने जाया करता था। तत्कालीन राजा साहिल वर्मन तथा नागरिकों ने साधु से आग्रह किया कि वे ऐसा उपाय करें जिससे सभी लोग सुगमता से हरिराय के दर्शन कर सकें। साधु ने सभी को चंपावती मंदिर के पास एकत्रित होने को कहा। वहाँ उन्होंने

कुछ ब्राह्मणों को साथ लेकर एक यज्ञ किया जो सात दिन तक चला। सात रंग के धागों को मिलाकर एक रस्सी बनाई गई। इस सप्तवर्णी धागे को मिंजर कहा गया।

एक अन्य मान्यता के अनुसार चंबा का राजा प्रताप सिंह वर्मन (1559) काँगड़ा के राजा पर विजय प्राप्ति के बाद वापसी पर भटियात आया तो वहाँ के लोगों ने उसका स्वागत मक्की अथवा धान की मंजरियाँ भेंट कर किया। राजा ने इस भेंट को सँभाल कर रखा। इस विजय में राजा को अपार संपत्ति प्राप्त हुई थी। विजय की खुशी में उत्सव मनाने की प्रथा आरंभ हुई। 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्टेट्स' में उल्लेख है कि राजा प्रताप सिंह वर्मन ने कटोच सेना को हराया और चड़ी तथा घ्रो को अपने अधीन कर लिया।

रियासती समय में इस उत्सव का प्रारंभ राजा द्वारा ही होता था। अब मिंजर स्थानीय प्रशासन द्वारा भेंट की जाती है। 1955 से स्थानीय प्रशासन द्वारा ध्वजारोहण के साथ इस उत्सव का आरंभ किया जाने लगा।

इस समय चंबा के चौगान में विभिन्न विभागों द्वारा प्रदर्शनियाँ लगाई जाती हैं। दिन में खेलों व खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। मेले में बाहर से व्यापारी, छोटे दुकानदार तथा खेल-तमाशा दिखाने वाले भी आते हैं।

चौगान के एक किनारे भूमिगत कलाकेंद्र का निर्माण हुआ है जहाँ रात्रि के समय सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। प्रदेश तथा देश के सांस्कृतिक दल यहाँ कार्यक्रम देते हैं।

अंतिम दिन लोग अखंड चंडी महल में एकत्रित होते है। जहाँ से एक शोभा यात्रा निकलती है। श्री रघुवीर की प्रतिमा को पालकी में रखा जाता है जिसके साथ परंपरागत वादक, आधुनिक बैंड, प्रशासनिक अधिकारी तथा गणमान्य नागरिक चलते हैं। शोभायात्रा पुलिस लाइन से होती हुई रावी नदी के किनारे पहुँचती है। यहाँ सभी लोगों को एक-एक पान तथा इत्र भेंट किया जाता है। लाल रंग के कपड़े में नारियल, एक रुपया, फल और मिंजर रख करवा नदी में प्रवाहित किया जाता है। सभी लोग यहाँ अपनी-अपनी मिंजरों को जल में प्रवाहित कर देते है। मिंजर प्रवाहित करने के बाद शोभा यात्रा चौगान में वापस लौट आती है। रियासती समय में मिंजर विसर्जन के समय भैंसा भी प्रवाहित किया जाता था और चंपा के फूलों का इत्र बाँटा जाता था। अब यह परंपरा समाप्त हो गई है।

मिंजर के दिनों पूरे सप्ताह घरों में 'कूंजडी' और 'मल्हार' के स्वर गूँजते हैं। सायं सांस्कृतिक कार्यक्रम से पूर्व भी ये गीत गाए जाते हैं। चंबा के गीत कर्णप्रिय हैं। इन दिनों इनकी स्वरलहरी पूरे नगर की हवा में समा जाती है।

प्रवासी पंछी

भेड़ा ता केरिया पाहलणुआं तू घरा जो ईएं हो जानी।
घरा जो कियां ईणा भेड़ा सो लगूरा हो जानी।।
तिन सो सूई बाकरियां ते तिन सो सूईयां भेड़लियां।
सो सठ सूइयां बाकिरयां ते सो सठ सूइयां भेड़लियां।।
सुंघड़ लग्गा हो संघड़ैणा मने बुरी लग्गी हो जानी।
घरा जो कियां ईणा भेडा सो लगूरा हो जानी।।
दोई बल्ला अक्खें हंडू रिझे केली कियां खाणा हो जानी।
दोई बल्ला सेजे मंजलू मुं केली कियां सोणा हो जानी।।

भेड़ों के पुहाल ! घर आ जाओ !
घर कैसे आऊं। यहां भेड़ों ने बच्चे जने हैं!।
तीन सौ बकरियां और तीन सौ भेड़े सूई हैं।
सौ साठ बकरियां और सौ साठ भेंड़े सुई हैं।
सुंघड़ (विरह की उदासी) लगा है, मन बुरा-बुरा हो रहा है।
घर कैसे आऊं। यहां भेड़ों ने बच्चे जने हैं।
दो खानों वाली हण्डिया में साग पक रहा है, मैं अकेली कैसे खाऊं।
दो सेज वाली खाट सजी है, मैं अकेली कैसे सोऊं।

ऐसे-ऐसे मन को छू लेने वाले गीत उस विरह वेदना को प्रकट करते हैं जो एक गद्दी अपने प्रवासी जीवन में और एक गद्दण अकेली अपने घर में सदा झेलती है। जो गद्दी (प्रायः युवा) भेड़-बकरियों के साथ जाता है, उसे 'पुहाल' कहा जाता है। एक परिवार से एक पुहाल तो अवश्य बनता ही है। पुहाल अपने गाँव-घर से दूर भेड़-बकरियों का धण लिए सदा चला रहता है। इसका एकमात्र साथी गद्दी कुत्ता होता है और खदेड़ने को भेड़-बकरियों का धण। अपनी संगिनी बाँसुरी में जब वह विरह की तान छेड़ता है, शिखर घाटियों में, तब पपीहे जैसे पक्षी उसका उत्तर देते हैं। कभी बर्फीले जोत पर शंकर से अपनी भेड़ों की खैर माँगता है तो कभी गहरे नालों से वह जोर से गा उठता है।

उसका जीवन तो बीतता है शिखर-घाटियों में। उधर घर में पत्नी बिछुड़ने की व्यथा को गीतों के माध्यम से बाहर निकालती है। विरह की वेदना से निकले आँसुओं से वह घर में भीगती है तो प्रियतम परदेश में :

असे तो सिज्जे घरे अपणे, प्यारू सिज्जू परदेस हो।

…हम तो अपने घर में भीग गए, प्यारू परदेस में भीगा। 'प्यारू' एक नाम भी है, प्रियतम के लिए संबोधन भी।

प्यारी प्यारी हो क्या लान्दा मेरेया प्यारूआ।
बाईं पुर भाले हो तेरे दोस्त मेरेया प्यारूआ।।
जोता री खजूरी जो मत छेड़े मेरेया प्यारूआ।
जोता पुर भाले हो मेरी पतलिया भाखा प्यारूआ।।
अज छतराड़ी हो डेरा राखा मेरेया प्यारूआ।
मंगले खण्डोरे हो बुरे बारे मेरेआ प्यारूआ।।
काति रे बिछड़े हो असां मिलणा क्धाड़ी प्यारूआ।
काति रे बिछड़े हो असां मिंजरा जो मिलणा प्यारूआ।।

तुमने 'प्यारी प्यारी' क्या लगा रखा है मेरे प्यारू।
तुम्हारे दोस्त बाबड़ी पर बैठे तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।।
मैं जोत की (चढ़ाई) थकी हुई हूं मुझे मत छेड़ना।
जोत के उमर मेरी पतली (सुरीली) आवाज का इंतजार करना।।
आज छतराड़ी हैं तो कल राख में होंगे।
मंगल को बिछड़े हैं यह बुरा (अशुभ) बार होता है।।
कार्तिक मास के बिछुड़े हम कब मिलेंगे!
कार्तिक मास के बिछुड़े हम मिंजर में मिलेंगे।

इन गीतों के साधारण अर्थ में भावार्थ बहुत गहरा है। गीत की एक-एक पंक्ति से यहाँ व्यथित जीवन और विश्वासों की कड़ियाँ जुड़ती हैं। एक-एक पंक्ति लंबी व्याख्या की माँग करती है।

चंबा, विशेषकर भरमौर के गीतों में जो विरह है, कसक है, मिठास है उसका यही कारण है। गीत सुनते हुए मन में एक हूक सी उठती है।

छह ऋतुएँ बारह महीने चला रहने वाला एकमात्र आदि कबीला है हिमाचल प्रदेश का गद्दी समुदाय। गद्दियों का मूल पड़ाव 'गधेरन' है। जहाँ से ये अपना सफर शुरू करते हैं। गर्मियों में गधरेन एक बार पूरा बसता है।

सूने घर गीतों से गूँजते हैं। इन दिनों पुहाल भी घर आते हैं और मंगल मनाते हैं। जिला काँगड़ा से प्रवास के बाद गद्दी परिवार भी अपने घर लौटते हैं। घर में 'सुर' लगाई जाती है और उत्सव मनाया जाता है। इन दिनों बसो या बसोआ 'वैशाखी' का

त्यौहार विशेष रूप में मनाया जाता है। जब सारा परिवार अपनी जमीन, अपने घर में इकट्ठा होता है।

अपने घर में इनका प्रवास ही कहा जा सकता है। यह समय बहुत कम होता है। मार्च-अप्रैल तक गधेरन वापसी और सितंबर तक किसी तरह फसल इकट्ठी कर पुनः जालंधर जाने की तैयारी। सर्दियों में यहाँ रहना कठिन है इसलिए कुछ मजबूर लोग ही रहते हैं।

भरमौर की सीमा रावी नदी के किनारे लूणापूल से मानी जाती है। लूणा, फाटी, औरा से खड़ामुख तक ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। लूणापुल से रणहूकोठी को सड़क जाती है। छत्तराड़ी भी इसी ओर है। रावी नदी के बाईं ओर होली है। इस ओर सुंदर खेत बनाए गए हैं और खेती होती है। चण्होती, बुड्ढल के साथ कुगति, तुंदाह घाटियाँ हैं।

होली क्षेत्र के लोग 'जालसू' जोत से होकर बैजनाथ, छत्तराड़ी-रण्ह् कोठी से बलेणी-गिरझाट जोत से शाहपुर रिहलू पहुँचते हैं। जालसू जोत से भेड़-बकरियों के साथ पशु भी जा सकते हैं। दूसरे जोतों से पशु नहीं लाँघ सकते। पशु लाने वाले सड़क मार्ग से होकर सफर करते हैं। लंबी यात्रा के दौरान इन्हें घोड़ों, बैलों पर आवश्यक सामान लिए चलते हुए देखा जा सकता है।

काँगड़ा क्षेत्र को ये लोग 'जान्धर' कहते हैं और यहाँ के वासियों जान्धरा। काँगड़ा में पहले ये गोशाला या घरों के किसी अलग कमरे में रहा करते थे। पुरुष मजदूरी करते, औरतें धान कूटतीं। अब बहुत से लोगों ने जमीनें खरीद ली हैं और घर बना लिए हैं। धौलाधार की गोद में धर्मशाला, पालमपुर, बैजनाथ के ऊपरी क्षेत्रों में अधिकांश लोग अब स्थाई तौर पर बस गए हैं और भरमौर की तरह राख, बिंद्रावणी, दियोल जैसे नाम भी उन गाँवों दे को दिए गए हैं। कुछ स्थायी वासी ऐसे भी हैं जो गधेरन नहीं जाते किंतु इनकी संख्या कम है। प्रायः हर परिवार की जमीन और घर गधेरन में हैं। वैसे भी सरकारी सुविधा के लिए केवल गधेरन वासी गद्दी ही जनजातीय श्रेणी में आते हैं, काँगड़ा वासी नहीं।

जान्धर के लोग गद्दियो को अपना 'मित्र' बनाते हैं। यह मैत्री विवाहादि उत्सवों के समय निभाई जाती है। जान्धर में वैसे भी गद्दी को 'मित्तर' कहकर संबोधित किया जाता है और 'गद्दी मित्तर' अपने भोलेपन के लिए प्रसिद्ध हैं।

पुहाल गर्मियों में भी अपने घर अधिक दिन तक नहीं रह सकता। उसे तो भेड़-बकरियों को लेकर कुगति दर्रा पार कर चंद्रभागा किनारे लाहुल की पट्टन घाटी में पहुँचना है। बर्फ पिघलने पर लाहुल के शिखरों पर नर्म और ताकतवर घास उगती है।

लोग कहते हैं गद्दी जैसा मुसाफिर नहीं। प्रवास के दौरान गद्दी को किसी टेंट या ट्रेकिंग के सामान की आवश्यकता नहीं। किसी गुफा में, किसी बड़े पत्थर के नीचे, पेड़ के नीचे या खुले आकाश के नीचे उसका बसेरा है। अपने मोटे पट्टू के नीचे उकड़ूँ बैठा हुआ भी वह सो लेता है चाहे ऊपर से वर्षा गिर रही हो, ओले गिर रहे हों

या तूफानी हवा हो। पीठ पर उठाए छिक्के में मक्की का आटा पड़ा रहता है। कहीं दो पत्थर लगा आग जलाई और मोटी रोटी बना ली। या बकरी का दूध गरम कर पी लिया। कभी सूती या ऊनी सुथण (पाजामा) या कभी नंगी टाँगें। ऊपर चोला, सिर पर ऊनी टोपू। कमर में गात्री या डोरा। डोरा कस जाने से चोले में कमर के ऊपर दो जेबें बन जाती हैं, जिन्हें 'खोख' कहा जाता है। खोख में कभी कभी भेड़-बकरियों के चार-पाँच नवजात बच्चे भी रहते हैं। कभी गद्दण साथ चली हो तो वह भी पीठ पर बोझा उठाती है। उसके छिक्के के साथ अल्मूनियम के बर्तन अवश्य बँधे रहते हैं। उसकी कमर में भी काला डोरा। ऊपर चोली, नीचे घाघरा, जिसे लुआंचड़ी कहा जाता है, टाँगों में सुथण। गले में कीमती पत्थरों के मणकों की माला, सिर में चक, माथे में मानटिक्का, नाक में लौंग, हाथ में कंगणू और पैरों में मौचड़ू।

गद्दी एक ऐसा आदि प्राणी है जो आज भी आग जलाने के लिए चकमक पत्थर का प्रयोग करता है। डोरे के साथ 'रूणका' लटका रहता है जो लोहे का एक टुकड़ा होता है। चमड़े के बट्टुए में 'भुज़लू' या 'कफ्फी' घास या जंगली वनस्पति के पत्ते। रूणके को चकमक पत्थर से टकराकर भुजलू घास से आग जलाई जाती है।

हालाँकि अब समय बदला है। बचपन में जिन गद्दियों को चोला-डोरा पहने सी-सी कर सीटी बजाते धण हाँकते देखा था, इस बार भरमौर तक कोई गद्दी अपनी वेशभूषा में नहीं दिखाई दिया। भरमौर से आगे केवल एक बृद्ध दंपत्ति चोला-डोरा, लुआंचड़ी पहने जा रहा था। गद्दी लड़के धण के साथ तो चलते हैं, कभी पैंट, कभी जीन पहन लेते हैं। फिर भी विवाह या अन्य उत्सवों पर आज भी उन्हें अपनी वेशभूषा से सुसज्जित देखा जा सकता है। 'सुर' की खुमारी में आज भी गद्दी सीं-सीं करते 'डंडारस' नाचते हैं, स्त्रियाँ 'घुरेई'। लोक गीतों की ताल आज भी गूँजती है। कुंजू चंचलो, सुन्नी-भूंकू, जयचन्द-नोखू के गीत एंचली, घुरेई, चिड़ी, द्रुभड़ी गीत आज भी उसी मनोभावना और मनोयोग से गाए जाते हैं।

भरमौर

अब 'भरमौर' नाम से जानी जाने वाली चंबा की प्राचीन राजस्थानी ब्रह्मपुर! ऊँचे पहाड़ पर स्थित एक सुंदर स्थल जिसे चौरासी भी कहते हैं। सामने और ऊँचा पहाड़, ऊपर मणिमहेश के पर्वत।

पहले बहुत दूर रहा होगा, चंबा में भरमौर। दूर और खतरनाक भी। मणिमहेश यात्रा तो और भी भयंकर। अब सड़क मार्ग से जुड़ा है। भरमौर तक कई बसें आती हैं। भरमौर से आगे हड़सर तक जीप योग्य सड़क जाती है, जहाँ से मणिमहेश के लिए चढ़ाई आरंभ होती है।

लोकाकास्था है कि एक बार शिवजी ने चौरासी सिद्धों सहित ब्रह्माणी देवी के मंदिर के सामने धूणी रमा दी। जब देवी आई और शिवजी सहित समस्त सिद्धों को

वहाँ देखा तो क्रोधित हो उठी। देवी ने उन्हें तुरंत चले जाने को कहा। शिवजी ने आग्रह किया कि यदि सुबह नहीं उठे तो सब पत्थर हो जाएँगे। शिव मान गए। सुबह कोई नहीं उठ पाया अतः पत्थर बन गए। शिवजी ने इसे वरदान समझा और कहा कि जो भी यात्री मणिमहेश जाएँगे, उन्हें ब्रह्माणी सरोवर में अवश्य स्नान करना होगा।

ब्रह्माणी देवी का मंदिर कुछ दूर संचूई गाँव में है। यहाँ शिवजी की उकेरी हुई मानवकार मूर्ति भी है। कहा जाता है ब्रह्माणी का लड़का चकोर से बहुत प्यार करता था। किसी कारण चकोर मर गया। चकोर के गम में लड़का भी मर गया और ब्रह्माणी ने आत्मदाह कर लिया। कालांतर में वह ब्रह्माणी देवी के रूप में पूजी जाने लगी।

शापित सिद्धों के चौरासी मंदिर गिनती में अब पूरे नहीं किए जा सकते तथापि इस परिसर के अन्य मंदिर महत्त्वपूर्ण हैं। अपनी ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक पृष्ठभूमि के कारण ये इस स्थान की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

लखना देवी

लोकनिर्माण विभाग के विश्राम गृह और छोटे से बाजार के ऊपर प्रवेश द्वार की बाईं ओर लखणा या लक्षणादेवी का मंदिर है। काष्ठ कला का अद्‌भुत उदाहरण। बाहरी मंदिर चाहे बाद में मरम्मत किया जाता रहा हो, देवी की मूर्ति अति प्राचीन हैं। यह मेरू वर्मन के समय की बताई जाती है। प्रवेश द्वार विशेष आकर्षित करता है। यहाँ देवी-देवताओं की मूर्तियों के साथ यक्ष, गंधर्व, किन्नर उकेरे गए हैं। भीतर एक छोटा मंडप है। मंडप के भीतर प्रवेश द्वार। कुछ काष्ठ प्रतिमाएँ समय के प्रभाव से मिट रही हैं। फिर भी द्वार पर सुंदर नक्काशी, ऊपर विभिन्न प्रतिमाएँ आज भी अति सुंदर हैं। शिलालेख के अनुसार इसे गुग्गा नामक कलाकार ने बनवाया था। देवी की अद्वितीय मूर्ति गुप्तकालीन होने का आभास देती है। मंदिर केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग के अधीन है।

मणिमहेश मंदिर

मणिमहेश मंदिर शिखर शैली का है। ऊपर गोल छत। प्रायः कुछ पत्र-पत्रिकाओं में छपे चित्रों को देखकर यह भ्रम होता है कि शिव मंदिर ऊपर मणिमहेश झील के पास होगा। नाम से भी ऐसा ही लगता है किंतु यह मंदिर भरमौर मंदिर परिसर में है।

देवी का मंदिर एक किनारे है। मणिमहेश मंदिर बीच में होने से अपना विशिष्ट स्थान लिए हुए है। मंदिर के ठीक सामने ऊँची चोटी है। प्रांगण में अष्टधातु की बड़े आकार की नंदी की मूर्ति है जिसमें मेरू वर्मन के समय का शिलालेख अंकित है। मंदिर के भीतर विशाल शिवलिंग है। मंदिर के शिवलिंग और नंदी के अलावा बाहरी मंदिर बाद में बना हुआ प्रतीत होता है।

दूसरा शिखर शैली का मंदिर नृसिंह का है, जिसके भीतर नृसिंह जी की अष्टधातु की मूर्ति है। कहा जाता है कि मूर्ति का निर्माण साहिल वर्मन के पुत्र युगाकर वर्मन की रानी त्रिभुवन रेखा ने करवाया। गणेश मंदिर में गणेश जी की मूर्ति है। गाँव में अन्य मंदिर है जिसके भीतर शिवलिंग है इसे सूर्य मंदिर भी माना जाता है। इसे राजा की कुलजा भी मानते हैं।

क्या कहता है इतिहास

हैरानी होती है जिस गधेरन के लोग प्रवासी रहे हैं, जहाँ लोग छह महीने भी नहीं रहते थे, वहाँ राजधानी बनाकर किस पर राज किया होगा! राज ही नहीं किया, इतने उत्कृष्ट मंदिर और मूर्तियाँ बनीं। भरमौर में रहना उतना कठिन भी नहीं है जितना कि पांगी में है या लाहुल में है। फिर भी यहाँ पलायन होता रहा। भेड़ पालन के सिवा भी इस प्रवास या पलायन के कुछ कारण हो सकते हैं। कालांतर में क्या उथल-पुथल हुई, यह कहना कठिन हैं।

वैदिक नदी परूषणी की उपत्यकाएँ इतनी समृद्ध रही हैं वास्तुकला, मूर्तिकला की दृष्टि से कि यहाँ वैभवशाली राज्य की परिकल्पना की जा सकती है।

ब्रह्मपुर का संस्थापक शासक मरू या मारू माना जाता है। जैसे कि प्रदेश के अन्य भागों में जनश्रुतियाँ हैं कि यहाँ राजा लोग अवध, बंगाल, राजस्थान से आए। वैसे ही यहाँ भी है। अयोध्या से राजा मारू ने अपने सबसे बड़े पुत्र को वहाँ का राज्य दिया ओर दो पुत्रों सहित इस ओर आया। दूसरे पुत्र को उसने का मीर का शासक बनाया और तीसरे को ब्रह्मपुर का। ऋग्वैदिक नदी परूषणी के बाद स्मृतियों में भी ब्रह्मपुर का उल्लेख मिलता है। पाणिनी ने गधेरन को 'गाब्दिका' कहा क्योंकि भेड़ के लिए गड्डरः शब्द का प्रयोग होता था।

चंबा गजेटियर में उल्लेख है कि ब्रह्मपुर चंबा में ही रहा होगा, जो राज्य की सबसे अधिक सुरक्षात्मक घाटी में स्थित है।

हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स (हचिसन-वोगल) में ब्रह्मपुर के राजाओं की वंशावली दी गई है। प्रथम शक्तिशाली शासक, जिसने राज्य विस्तार किया, मंदिर मूर्तियाँ बनवाईं, मेरु वर्मन (680 ई०) था जो संस्थापक शासक मेरु के तीन पुत्रों- जयस्तंभ, महास्तंभ के बाँद आठवाँ शासक था। इचिसन-वोगल के अनुसार चंबा के इतिहास की ओर कनिंघम ने पहली बार 1839 में ध्यान दिलाया।

यहाँ के शिलालेख सातवीं-आठवीं शताब्दी के हैं जो गुप्तकालीन विशेषताएँ लिए हुए हैं। राजा मेरु वर्मन के समय मूर्तियों पर लेख मिलते हैं। बाद में कुछ शारदा लिपि में, कुछ टांकरी में शिलालेख लिखे गए और उसके बाद ताम्र पत्र तथा पट्टे।

भरमौर में तीन महत्त्वपूर्ण शिलालेख हैं। एक शिलालेख छतराड़ी में है। मणिमहेश मंदिर के बाहर नंदी, लक्षणा देवी और गणेश के ऊपर खुदे शिलालेख मेरु

वर्मन के समय के हैं। लक्षणा देवी और गणेश के शिलालेखों में मेरु वर्मन से पिछले तीन पूर्वजों-दिवाकर वर्मन, बलवर्मन और आदित्य वर्मन का उल्लेख किया गया है। वंशावली में इनके नाम देव वर्मन और आदि वर्मन हैं। तीसरा नाम नहीं दिया है। मेरु वर्मन के शासन काल में कुल्लू से युद्ध हुआ और ब्रह्मपुर के किसी अमर द्वारा कुल्लू का राजा मारा गया।

शक्ति देवी छतराड़ी

चंबा-भरमौर मार्ग के बीच लूणापुल से छतराड़ी को सड़क जाती है। छतराड़ी तक अभी सड़क नहीं बनी है। कुछ किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है।

छतराड़ी एक बड़ा गाँव है। दूर से देखने पर मंदिर अतिसाधारण दिखाई पड़ता है। मंदिर की गोल छत दूसरे मकानों की छतों-सी थी। लोगों का विश्वास है कि मंदिर गोल घूमता था। 1905 के भूकंप में क्षतिग्रस्त हुआ और घूमना बंद हो गया।

प्रवेश द्वार पर देवी-देवता, यक्ष, गंधर्वों की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। विष्णु की मूर्तियों के साथ कई देवी-देवताओं की मूर्तियों का उत्कीर्ण हुआ है। भीतर देवी की अष्टधातु की सुंदर मूर्ति है। चतुर्भुजी देवी के हाथों में फूल और गदा है, दो में घंटी और सोम।

जैसा कि हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स में उल्लेख है कि राजा मेरु वर्मन ने अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाईं और देवी की मूर्ति शत्रुओं के अजेय गढ़ों को पराजित करने के निमित्त बनवाई।

इस मंदिर में मूर्ति निर्माता भी गुग्गा ही माना गया है। शिलालेख में कर्मकार के रूप में गुग्गा का नाम है। गुग्गा को कश्मीर का कलाकार भी माना गया है।

इस मंदिर की दूसरी विशिष्टता यहाँ के भित्ति चित्र हैं। ये भित्ति चित्र बावन भागों में विभक्त हैं। चित्रों में पौराणिक आख्यानों को चित्रित किया गया है। विष्णु के विभिन्न अवतार-वारह, सूर्य, मत्स्य, नृसिंह, परशुराम, राम, कृष्ण, कल्कि आदि का सुंदर चित्रण किया गया है। दुर्गावतार, कृष्णलीला के साथ-साथ शिव-पार्वती के चित्र भी दर्शनीय हैं।

छतराड़ी के शिलालेख का वर्णन वोगल ने 'एंटीक्यूटीज ऑफ चंबा' में किया है। शिलालेख में मेरु वर्मन की कीर्ति का बखान है।

चंबा का जनजातीय क्षेत्र

घर होते हुए भी खुले आसमान के नीचे सोने वाला एकमात्र आदि कबीला है हिमाचल प्रदेश का गद्दी समुदाय। भेड़ों के साथ रहने वाले 'पुहाल' को तो नित-मुसाफिर कहा जाता है। क्योंकि वह छह ऋतुएँ बारह महीने भेड़ों के साथ चला रहता है। गर्मियों के कुछ महीने गद्दी परिवार अपने मूल निवास 'गधेरन' या 'गदेरन' में बिताते हैं। इन दिनों घर-घर में 'सुर' लगाई जाती है, उत्सव मनाया जाता है। बसोआ, वैशाखी का त्यौहार मनाया जाता है। इन परिवारों का सितंबर आते-आते पुनः (गधेरन) से जान्धर (काँगड़ा) की ओर प्रस्थान हो जाता है।

गद्दी शब्द संस्कृत के 'गड्डरः' से जोड़ा जाता है जिसका अर्थ भेड़ है। सभी गद्दी भेड़ पालक हैं।

भरमौर के लोग आज प्रवासी हुए हैं। कोई वहाँ स्थायी रूप से नहीं रहता। किंतु सन् 680 में भरमौर 'ब्रह्मपुर' नाम से जाना जाता था। उस समय वहाँ अद्वितीय मंदिरों, मूर्तियों का निर्माण हुआ। मूर्तियों पर खुदे लेख, शिलालेख, ताम्रपत्र उज्ज्वल अतीत के प्रतीक हैं। मणिमहेश मंदिर, लक्षणादेवी भरमौर, शक्ति देवी छतराड़ी, मृकुला देवी उदयपुर इस अनूठी वास्तुकला के उदाहरण हैं।

इसी के साथ लगता जनजातीय क्षेत्र पांगी है जो वर्ष के मात्र चार महीने पैदल मार्ग के लिए खुलता है। चंबा की ओर बैरागढ़ से चौदह हजार फुट से ऊँचा साच दर्रा, कुल्लू की ओर से तेरह हजार फुट से अधिक रोहतांग दर्रा और उसके बाद ग्लेशियरों का रास्ता। प्रदेश का यह सबसे कठिन क्षेत्र है।

इस दुर्गम और दूरस्थ क्षेत्र में भी सेहली, लुज पनघट शिलालेख, मिंधल माता लेख अपने भीतर इतिहास छिपाए हुए हैं। मिंधल माता लेख वैशाख शुक्ल अष्टमी वि०सं० 1698 (8 अप्रैल, 1641) का है जो चंबा के निर्वासित राजा पृथ्वी सिंह (1641) की मंडी से कुल्लू, रोहतांग पांगी चुराह होते हुए वापसी तथा पुनः चंबा से आधिपत्य की कहानी कहता है।

चंबा गजेटियर (1904) में जिला चंबा की बज़ारतों की जनसंख्या निम्न दी गई है—

बज़ारत	जनसंख्या	क्षेत्रफल	घनत्व	(1901 की जनगणना के अनुसार)
पांगी	5,846	4	1,461	
भरमौर	4,343	18	261	

भटियात	35,115	46	763
चुराह	40,901	48	852
चंबा	41,629	46	905
कुल	1,27,834		

जिला में चंबा ही एकमात्र शहर था (अब भी एकमात्र शहर कहा जा सकता है) जिसकी जनसंख्या 1891 की जनगणना में 5,905 के मुकाबले 1901 में 6,000 हुई।

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि जनजातीय क्षेत्रों पांगी तथा भरमौर की जनसंख्या सबसे कम 5,846 तथा 4,343 है। इससे पहले तो ये और भी कम रही होगी क्योंकि 1901 की जनगणना में 1,27,834 जनसंख्या के मुकाबले 1891 में 1,24032 तथा 1881 में 1,15,773 थी।

गजेटियर में 1901 में 6,382 लोग यहाँ से काँगड़ा, गुरदासपुर, कश्मीर आदि स्थानों में चंबा छोड़कर गए।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भरमौर में जब जनगणना हुई, उन दिनों (सर्दियों में) बहुत से गद्दी अपनी भेड़-बकरियाँ लेकर काँगड़ा तथा गुरदासपुर की ओर मैदानों में चले जाते हैं। तथापि जनजातीय क्षेत्रों में जनसंख्या बहुत कम रही है। गजेटियर में दी गई जनजातीय क्षेत्रों की यह जनसंख्या मैदानों में प्रवास के कारण ठीक नहीं प्रतीत होती क्योंकि सांख्यिकीय पुस्तिका 1995 में यह जनसंख्या निम्न दी हुई है–

क्र०	क्षेत्र	क्षेत्रफल (व०कि)	जनसंख्या		घनत्व	
			1981	1991	1981	1991
1.	पांगी	1,600 (6.7)	12,256	14,960	7	9
2.	भरमौर	1,818 (7.7)	29,944	33,909	16	19

'ए ग्लासरी ऑफ ट्राईब्ज एंड कास्ट्स' में, जो 1883 की जनगणना पर आधारित है, चंबा में गद्दियों की जनसंख्या 11,507 दी है जो सही प्रतीत होती है।

2001 की जनगणना के अनुसार, चंबा जिला की कुल जनसंख्या 4,60,887 है जिसमें से शहरी जनसंख्या 34,542 है। परिवारों की संख्या 79,618 ग्रामीण तथा 7,411 शहरी हैं। अकेले चंबा की जनसंख्या 1,59,399, भरमौर की 22,732 तथा पांगी की 17,598 है जो सबसे कम है। चंबा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों की संख्या कम है। उदाहरणतः भरमौर में 11,734 पुरुष हैं तो 10,998 स्त्रियाँ, पांगी में 9,259 पुरुष हैं तो 8,339 स्त्रियाँ।

भरमौर : भौगोलिक स्थिति

भरमौर क्षेत्र को मुख्यतः आठ इकाइयों में बाँटा जा सकता है–

1. रावी घाटी—भरमौर की सीमा रावी नदी के साथ लूणा निर्धारित होती है। रावी नदी के किनारे लूणा पुल से भरमौर के जनजातीय क्षेत्र की सीमा आरंभ होती है। यहीं छतराड़ी और रणहूकोठी को सड़क जाती है।

रावी के दाहिने किनारे तीन गाँव पड़ते हैं—लूणा, फाटी और औरा। इस क्षेत्र में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। छोटे-छोटे ढलानदार खेत हैं। यहाँ के पहाड़ों में केवल घास उगती है। रावी के बाईं ओर घुडेठ और खड़ामुख है जो अधिक ठंडा क्षेत्र है। खड़ा मुख यहाँ मुख्य स्थान है। दुर्गठी में लोकनिर्माण विभाग का आवासगृह है।

2. होली क्षेत्र—होली क्षेत्र रावी के दाईं ओर है। इसमें सियुर, चन्हेल, भटारड़ा और बजोल आदि गाँव आते हैं। यहाँ भी ऊँचे पर्वत हैं जिनमें घास उगती है। कुछ ढलानदार खेत हैं। बान के वृक्ष भी यहाँ होते हैं। कहीं-कहीं सेब भी उगाए गए हैं। यहाँ चंबा के खड़ामुख, होली होकर, जालसू तथा एहजू निकलने वाली सड़क निर्माणाधीन है। तियूर में वन विभाग का विश्रामगृह है।

रावी के बाईं ओर होली, कुलेठ, दियोल, घड़ाव नयाग्रां आदि गाँव हैं। यहाँ की पर्वतों में गुच्छी पाई जाती है। होली यहाँ प्रमुख स्थान है जहाँ हाई स्कूल, वन विभाग के कार्यालय तथा विश्रामगृह हैं। कुलेठ गाँव में कार्तिकेय का मंदिर है। ऊपर नाग डल या झील है। नएग्रां के आगे बजोला उर्जा, ग्राउंडा और धारड़ी गाँव हैं। अंतिम गाँव खनार है। खनार में गाय-बैल नहीं पालते अपितु खुदाई से ही खेती करते हैं। खनार से पैदल भंगाहल पहुँचा जा सकता है जो जिला काँगड़ा का दूरस्थ और कटा हुआ गाँव है। यहाँ से भंगाहल पहुँचने में पाँच-सात घंटे लगते हैं। यहीं से नएग्रां से होता हुआ जालसू जाने के लिए मार्ग जाता है जो जोगेन्द्रनगर के समीप एहजू से निकलता है।

वास्तव में बड़ा भंगाहल जो खनार के समीप है, जिला काँगड़ा में है। बैजनाथ के बीड़ से वहाँ आने के लिए एक दर्रा पार करना पड़ता है। यह एकमात्र गाँव भरमौर में ही होना चाहिए था। वहाँ की संस्कृति भी पूरी गादी संस्कृति है।

3. गरोला क्षेत्र—रावी नदी के बाईं ओर गरोला, उलांसा, स्वाई, गवाड, चणहौता आदि गाँव पड़ते हैं। यहाँ के पहाड़ जंगलों से ढके हैं। इन जंगलों में देवदार, तोष, कैल के पेड़ हैं। कहीं-कहीं सेब भी लगाए गए हैं। अखरोट के वृक्ष भी हैं। फुल्लण और आलू उगाए जाते हैं। धूप तथा कौड़ की पैदावार भी होती है। चणहौता में केसर भी होता है। मटर भी उगता है।

4. क्वार्सी—क्वार्सी में तीन गाँव हैं—क्वार्सी, हेलंग तथा भरवाली। ये गाँव क्वार्सी नाले के साथ बसे हैं। क्वार्सी गाँव पर्वत श्रृंखलाओं के बीच स्थित है। गाँव के साथ इंद्रुनाग का मंदिर है। सर्दियों में यहाँ के वासी क्वासी पास से जान्धर (काँगड़ा) चले जाते हैं। गाँव में पाँच-सात व्यक्ति ही रहते हैं। क्वार्सी के ऊपर नाग डल या झील है। कुछ आगे धौलाधार में काली का डल है। नाग डल में मणिमहेश के समय

धर्मशाला, खनियारा से लोग आते हैं। इस क्षेत्र में वन्य जंतु अधिक हैं।

5. तुदांह नाला–रावी के दाईं ओर भद्रम, तुंदा और गवाड़ गाँव हैं। यह एक पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। मक्की की फसल के साथ यहाँ चरागाहें हैं। जहाँ गुज्जर लोग अपनी भैंसें चराते हैं। धूप भी यहाँ पैदा होता है। यहाँ बन्नी देवी का प्रसिद्ध मंदिर है। इस क्षेत्र में कालीछो और चोभिया नामक दर्रे हैं जो लाहौल जाते हैं।

6. बुड्ढल नाला क्षेत्र–बुड्ढल नाला खड़ामुख के पास रावी में मिलता है। यहाँ सिरढ़, पालन, चौभिया आदि गाँव हैं। चरागाहें यहाँ बहुतायत में है। देवदार, कैल के घने जंगल हैं। बुड्ढल नाले के बाईं ओर लाहल, खनी आदि कई गाँव है। यहाँ मक्की की फसल और दालें उगती हैं। भरमौर मुख्यालय भी इसी क्षेत्र में है जहाँ एस०डी०एम० बैठता है। खंड विकास, विद्यालय, चिकित्सा केंद्र आदि कार्यालय हैं। मणिमहेश मेला लगता है।

7. रणहू कोठी क्षेत्र–इस क्षेत्र में सामरा, जगती घटोहर तथा उरेई आदि गाँव हैं। यह छतराड़ी के साथ स्थित है। यहाँ शिल्पी (काष्ठ कलाकार) रहते हैं जो लकड़ी में नक्काशी करते हैं। यहाँ से गिरझार तथा बलैणी से काँगड़ा जाने के लिए दर्रे हैं।

8. कुगति क्षेत्र–बुड्ढल नाले के अंतिम छोर पर कुगति आता है। यहाँ केवल दो गाँव हैं–उपरली कुगति और निचली कुगती। यह दुर्गम क्षेत्र है। यहाँ केलांग का मंदिर है। कुगति दर्रे से लाहौल के गोशाल गाँव पहुँचते हैं। यहाँ बड़ी-बड़ी चरागाहें हैं जहाँ के भेड़-बकरियाँ लाहौल जाती हैं।

गद्दी जनजाति

हिमाचल प्रदेश में 'गद्दी' एक विशिष्ट जनजाति है जो शारीरिक संरचना, संस्कृतनिष्ठ भाषा, विशिष्ट वेशभूषा के कारण अपना अलग अस्तित्व रखती है। इस जनजाति का मूल क्या रहा होगा, यह निश्चित तौर से नहीं बताया जा सकता।

गद्दी अपने को मैदानों से आया हुआ बताते हैं। 'ए ग्लोसरी ऑफ द ट्राईब्ज एंड कास्ट्स' में उल्लेख है कि राजा अजय वर्मन के समय कुछ चौहान राजपूत तथा गद्दी ब्राह्मण मैदानों से पलायन कर यहाँ आए। कुछ राजपूत और खत्री औरंगजेब के समय मैदानों से इस ओर भागे। यहाँ अजय वर्मन का समय सन् 850-70 दिया है जो सही नहीं है। 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्टेट' में अजय वर्मन का कार्यकाल सन् 760 दिया है, जो सही प्रतीत होता है, यहाँ भी गद्दी ब्राह्मणों तथा राजपूतों का दिल्ली से आने का उल्लेख है।

यह मान्यता भरमौर (पुरातन ब्रह्मपुर) में गद्दियों की वास्तविक भूमि गधेरन होने से मेल नहीं खाती। ब्रह्मपुर एक संपन्न राज्य था जो यहाँ के मंदिरों, वास्तुकला, मूर्तिकला को देखकर प्रमाणित होता है। ब्रह्मपुर का इतिहास आदित्य वर्मन (सन् 620) तक उसके भी पहले 'मारू' तक जाता है।

ब्रह्मपुर का पुरातन राज्य राजा साहिल वर्मन (सन् 920) के समय राजधानी चंबा स्थानांतरित होने से उपेक्षित हो गया। बाद में गद्दियों की प्रवासी प्रकृति के कारण सूना सूना रहने लगा। संभवतः तभी चंबा गजेटियर में (1904) भरमौर की जनसंख्या 1901 की जनगणना के अनुसार मात्र 4,343 बताई है क्योंकि सर्दियों में सभी गद्दी अपनी भेड़-बकरियों के साथ काँगड़ा या मैदानों में गए होंगे। घरों में बूढ़े लोग ही बचे होंगे। अन्य स्रोत के अनुसार वास्तविक जनसंख्या 33,907 थी।

क्या गद्दी लोग पहले से ही प्रवासी थे और भेड़-बकरी पालन के कारण मात्र गर्मियों में ही भरमौर आते थे। इनके व्यवसाय, रहन-सहन तथा परंपराओं और देवी-देवताओं के अस्तित्व से ऐसा ही प्रतीत होता है। गर्मियों में अपनी भेड़-बकरियों के 'धण' के साथ कुछ धौलाधार से काँगड़ा की ओर आते हैं तो कुछ 'साच' दर्रे, 'कुगति' दर्रे या अन्य मार्गों से पांगी तथा लाहौल की ओर। अतः गद्दियों का पंगवालों और विशेषकर लाहुलों के संबंध रहा है। सुन्नी-भुंकू जैसी प्रेम कथाएँ बनीं, केलांग जैसे देवता यहाँ आए।

गद्दी लोग आज भी आग जलाने के लिए चकमक पत्थर का इस्तेमाल करते हैं।

कुल्लू, किन्नौर तथा लाहौल की भाँति बलि देते हैं, कई प्रकार के विश्वासों (या अंधविश्वासों) मान्यताओं से ग्रसित हैं। अपनी अलग वेशभूषा है, भाषा है। अतः यह जनजाति भी यहाँ की मूल जनजाति है। यदि ये दिल्ली या मैदानों से आए होते तो इनमें इतना कुछ अलग नहीं होता। अलबत्ता बाद में बहुत से लोग मुस्लिम काल में धौलाधार की ओर पलायन करते रहे जो चंबा या आसपास के लोगों में घुल-मिल गए।

जातियाँ

गद्दियों में प्रमुख चार जातियाँ हैं—ब्राह्मण, खत्री, ठाकुर या राठी तथा अन्य। ब्राह्मण तथा खत्री राजपूत यज्ञोपवीत धारण करते हैं। ठाकुर या राठी यज्ञोपवीत नहीं पहनते। अन्य जातियों में कोली, रिहाड़े, लोहार, बाढी, सिप्पी तथा हाली आते हैं जिन्हें गद्दी लोग अपनी तरह गद्दी नहीं मानते।

हर वर्ग कई गोत्रों में विभक्त है। ब्राह्मण, खत्री आपस में विवाह संबंध कर लेते हैं। विवाह के लिए यज्ञोपवीत धारण करने वाली या न करने वाली भी कोई शर्त नहीं है।

अन्य जातियाँ या तो जमीन बोती हैं या शिल्पी हैं। कहीं कोली तथा सिप्पी को एक ही समझा जाता है। कपड़े बुनना और खेती करना इनका कार्य है। रिहाड़े पीतल के बरतन या जेवर बनाते हैं, लोहार लोहे का काम करते है, बाढी लकड़ी का, हाली हल जोतते हैं। ये जातियाँ संभवतः इस ओर बाद में आईं अतः अछूत मानी जाने लगीं। गद्दी वर्ग ने इन्हें अपने भीतर नहीं माना।

ब्राह्मण, खत्री, ठाकुर या राठी ब्राह्मणों के समान अपने गोत्र रखते हैं। कुछ स्थानों के नाम तथा शारीरिक विकलांगता के नामों पर भी गोत्र बने जैसे भटियात के ब्राह्मण 'भाट' हुए, एक हाथ वाला डंडू हुआ। घुलने अर्थात् पहलवानी करने से कोई घुलेटू हुआ तो लूण या नमक का काम करने वाला लूणेसर।

ब्राह्मण, राजपूत, राठी—ये उच्च बने क्योंकि ये लोग यहाँ पहले से रह रहे थे। हल जोतने वाले या शिल्पी जो बाहर से आए, निम्न हो गए। हल जोतने वालों पर राजपूतों या राजाओं का अधिकार रहा, इसलिए वे निम्न कोटि के कामगार किस्म के कहलाए।

भरमौर में या काँगड़ा के ऊपरी भाग, पालमपुर की धौलाधार के नीचे रहने वाले सभी व्यक्तियों को 'गद्दी' ही कहा जाता है। वे चाहे ब्राह्मण हों, राजपूत या राठी हों या खत्री। खत्री और महाजन अब एक व्यापारी जाति है जो दूकानदारी करते हैं। पुरातन खत्री राजपूत बने। यह संभवतः खत्री की 'क्षत्रिय' से व्युत्पत्ति के कारण रहा होगा। गद्दी खत्री, मैदानों से आए खत्री महाजनों से जो व्यापारी हैं, भिन्न हो सकते हैं।

ब्राह्मणों में वशिष्ठ, गौतम, अत्रि, भारद्वाज आदि, खत्रियों में रतनपाल, अत्री, भारद्वाज आदि जातियाँ हैं। किंतु गोत्रों में 'अलों' से वर्गीकरण हुआ और इन्हीं से वे

अपनी जातियाँ समझ बैठे। जैसे जुआरी 'जुक्' चुप रहने वाले 'चुपेटु', नाक में बोलने वाले 'गुन्ना', अफीमची 'अमलेतु' काले रंग वाले 'कपूर', मुक्केबाज, 'मकरातु', कहलाए। डॉ० विलियन निविल ने 'रिपोर्ट आन शैड्यूल कास्ट्स एंड शैड्यूल ट्राईब्ज' में तीन सौ 'अलों' की सूची दी है।

राहुल जी ने लिखा है

"जलंधर खंड में किनौर, स्पिति दोनों लाहुल, पंगी और धेरन के लोगों को उनके निवास स्थान और जातीय-विशेषता के कारण हम सीमांती या जनयुगीन जातियाँ कह सकते हैं। इनमें से कुछ के बारे में विशेष रूप से यहाँ लिखते हैं : गद्दी-गद्दी वस्तुतः एक जात का नहीं, बल्कि एक इलाके के रहने वाले ब्राह्मणों, राजपूतों, क्षत्रियों, ठाकुरों और राठियों का नाम है, जिनमें सबसे अधिक संख्या खत्रियों की है। पंजाब में भी खत्री शब्द क्षत्रिय से वैसे ही बिगड़कर बना है, जैसे नेपाल में खत्री। इसलिए गधेरन के क्षत्रियों के उद्‌गम के लिए हमें पंजाबी खत्रियों की ओर निगाह डालने की जरूरत नहीं। बाहर के लोगों ने गद्दी का जो अर्थ लगा रखा है अर्थात् एक भेड़ चराने वाली हीन जाति, उसके कारण गधेरन के लोग अपने को गद्दी न कहकर ब्राह्मण, राजपूत, खत्री आदि कहते हैं। और जनगणना में भी उसी तरह लिखवाते हैं। वह गद्दी मुख्यतः चंबा जिले के ब्रह्मौर वजारत (तहसील) में मिलते हैं, लेकिन, उनमें से कितने ही चराने का सुविधा के कारण अपनी दक्षिणी सीमा धौलाधार के घाटों को पार कर काँगड़ा जिले के गाइरों (बुकियालों) के लिए उधर भी चले गए हैं। गधेरन (चंबा) के रहने वाली जातियों के गोत्र फकरू, घोरू (राजवंशी), घुलेटू (पहलवान), भजरेटू (भारवाहक), गाहरी (चरवाहे), अदापी, लुनेसर (नमक-रोजगारी), काहनघेरू (कांघी रोजगारी), पालनू आदि होते हैं। गद्दी लोग शरीर से बहुत स्वस्थ, रंग में बहुत गोरे और स्वभाव में सीधे-सादे तथा आत्मसम्मान के पुतले होते हैं। वह उत्सवप्रिय हैं, गाना-नाचना उन्हें बहुत पसंद है। भेड़ों को लेकर वह धौलाधार, पांगीधार या जांस्करधार की ऊँची चरागाहों (गाहरों) में साल के बहुत-से महीने बिताते हैं। उनकी आजीविका का साधन खेती और भेड़-बकरी पालना दोनों हैं। जाड़ों के दिनों मे वह अपनी भेड़-बकरियों को लेकर नीचे की ओर चले जाते हैं। घर के पुरुष बारी-बारी से भेड़-बकरियों के साथ बाहर रहते हैं, बाकी लोग गाँवों में रह खेती और ढोरों को देखते हैं। गद्दी धौलाधार के दोनों तरफ बसते हैं, इसलिए उनके खेत भी चंबा और काँगड़ा दोनों जिलों में हैं। काँगड़े में जाड़े की फसल काटकर ब्रह्मौर (गदरान) में जा अपनी गर्मियों की फसल काटते हैं। वह अक्तूबर-नवंबर में काँगड़े की ओर जाते हैं और अप्रैल-मई में ब्रह्मौर लौटते हैं। गद्दियों की ईमानदारी के लिए कहावत मशहूर है 'गद्दी मित्तर भोला, दिन्दा टोप तो मंगदा चोला'।"

जन्म संस्कार

भरमौर में कन्या के जन्म पर पाँचवें दिन और पुत्र के जन्म पर दसवें दिन शुद्धि की जाती है जिसे गूंतर या गोंत्राला कहा जाता है। इस अवसर पर माता के कपड़ों को धोने के साथ-साथ पूरे घर की सफाई की जाती है। पूरे घर तथा कपड़ों की शुद्धि के लिए गोमूत्र, दूध तथा गंगाजल का छिड़काव किया जाता है। घर के सभी छोटे-बड़े सदस्य इसका पान भी करते हैं। पुरोहित के पास जाकर शिशु के भविष्य के बारे में पूछा जाता है। यदि शिशु का जन्म शुभमूहूर्त या नक्षत्र में न हुआ हो, अपने या दूसरों के लिये कष्टकारी हो तो उसे अष्टधातु रत्ती आदि के साथ कंगन बाँधा जाता है। दूसरे उपाय भी किए जाते हैं जो पुरोहित बताए। सामान्यतः बालक की जन्मपत्री नहीं बनाई जाती। कुछ खाते-पीते घर के लोग जन्मपत्री बनाते हैं।

गूंतर या गोंत्राला होने तक जिस कमरे में शिशु का जन्म हुआ हो, वहां किसी व्यक्ति द्वारा अन्न ग्रहण नहीं किया जाता। शुद्धिकरण तक शिशु की मां को नहलाया भी नहीं जाता। छह महीने का होने पर नामकरण किया जाता है। कुछ लोग स्वयं ही नाम रख देते हैं, कुछ पुरोहित को पूछते हैं। नामकरण के समय गुड़ बाँटा जाता है।

बालक को पहली बार अन्न खिलाने के समय भी कुछ संस्कार किए जाते हैं। बालक को जमीन पर बिठाया जाता है और उसके सामने दराट, कुदाल, कागज, खीर रखी जाती है। यदि वह खीर को पहले छुए तो पेटू होगा, कागज छुए तो विद्वान्, दराट-कुदाल छुए तो अच्छा कृषक या पुहाल होगा। इस अवसर पर पुरोहित तथा कन्याओं को खीर खिलाई जाती है।

शिशु के जन्म के कपड़ों को सँभालकर रखा जाता है। विवाह के समय माँ द्वारा ये कपड़े उसे दिखाए जाते हैं और यह एहसास करवाया जाता है कि वह युवक इतना-सा था। पुराने समय वर माँ को इसके लिए एक से चार रुपए तक देता था।

बालक की मृत्यु हो जाने की स्थिति में जहाँ बालक दबाया गया हो वहाँ उसे नहलाया जाता है। इसे 'घाट न्हौण' कहते हैं। कई बार तीरथ या शमशान न्हौण भी करवाया जाता है। इस अवसर पर चेले को कपड़े तथा पैसे दिए जाते हैं। गर्भ ठहरने के बाद महिला गर्भपात के देवता 'कैठू' के नाम अपना हार तथा चार चकलियाँ (पुराने ताँबे के रुपए) रखती थी। शिशु जन्म के तीन-चार महीने बाद पुरोहित तथा महिला इस देवता की पूजा अखरोट या कैथ के पेड़ के नीचे करते हैं। एक सफेद बकरा या काले सिर वाला सफेद बकरा प्रस्तुत कर उसके दाएँ कान में काति से काट एक कपड़े के ऊपर ख़ून गिराया जाता है। देवता को चार चकलियाँ तथा रोटी दी जाती है। महिला द्वारा गुड़ खाने के बाद कपड़े में रख लिया जाता है। यह कपड़ा तब तक रखा जाता है जब तक फटे नहीं।

विवाह संस्कार

गद्दी समाज में विवाह संस्कार एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। यह एक उत्सव की तरह मनाया जाता है। हर्षोल्लास के इस अवसर पर सभी संबंधित मिलकर खाते-पीते हैं। सुर पी जाती है, बकरे कटते हैं, डंडारस नाचा जाता है। एक पत्नी प्रथा है। दूसरा विवाह पत्नी की मृत्यु होने पर या निःसंतान होने पर पहली पत्नी की अनुमति से किया जाता है।

साधारण विवाह या धर्मपुन्न

वर-वधू के माता-पिता आपसी रजामंदी से विधिवत् किया गया विवाह 'धर्म पुन्न' कहलाता है। सगाई पक्की होने पर वर पक्ष के कुछ लोग एक सेर शुद्ध घी लेकर वधू पक्ष के यहाँ जाते हैं। यहाँ पुरोहित दोनों पक्षों की सुविधानुसार तिथि निश्चित करता है। पुरोहित पूरा कार्यक्रम बनाकर देता है। जिसे 'लखणोतरी' कहा जाता है।

विवाह की लगभग रस्में काँगड़ा की भाँति हैं। यद्यपि स्थानीय परंपरा के अनुसार कुछ अतिरिक्त संस्कार भी जुड़े हैं।

विवाह का आरंभ समूहत से होता है जिनमें वर को बूटणा (उबटन) लगाकर आँगन में नहलाया जाता है। यज्ञोपवीत क्योंकि पहले नहीं होता अतः इसी दिन मुंजमाला, मृगछाला, मुद्रा पहनाकर ब्रह्मचारी बनाने के साथ यज्ञोपवीत पहनाया जाता है। पुरोहित वर को पूछता है वह 'जतेरा जीवन' (सांसारिक जीवन) जिएगा या 'मतेरा जीवन' (संन्यासी जीवन)। वर जतेरा जीवन जीने के लिए कहता है।

तेल संस्कार मामा द्वारा एक कटोरी में तेल डाल वर के सिर पर रख हरी दूब से हिलाने के साथ होता है। दूब से तेल का छिड़काव किया जाता है। सभी संबंधी भी ऐसा करते हैं। मामा द्वारा दिया सेहरा वर द्वारा पहना जाता है। मामी आँखों में सुरमा डाल्रती है। माँ वर को तमोल लगाती है। वर को पालकी में बिठा अन्य लोगों के साथ वधू पक्ष के यहाँ ले जाया जाता है। बारात को जनेत कहा जाता है। बारात बाजे-गाजे के साथ जाती है। वर की पालकी हाली उठाते हैं।

बारात को ठहरने के लिए अलग मकान दिया जाता है। वर के पिता, मामा तथा पुरोहित लुचियों का टोकरा लेकर जाते हैं। वे रात तथा अगले दिनों होने वाले संस्कारों पर बातचीत करते हैं।

रात को बारात को भोजन के लिए निमंत्रण दिया जाता है। वर की ओर से कन्या को 'बरासूही' दी जाती है जो एक पिटारी या ट्रंक में होती है। इसमें वधू के लिए कपड़े, श्रृंगार की सामग्री, गुड़, नारियल, बादाम, लड्डू, केसर, न्हाणी (सुगंधित जड़ी) आदि देते हैं।

बारात के भोजन के बाद मुहूर्त के अनुसार पुरोहित वर को कन्या के घर ले

जाता है जहाँ सास आरती उतारती है। ससुर वर के पैर धुलाता है। कन्या को बाहर लाया जाता है। वर तथा वधू के सिर तीन बार एक दूसरे से लगाए जाते हैं। चीरी संस्कार में मालती की लकड़ी के सात टुकड़े कन्या वर को देती है जिसे वह पाँव के नीचे रखकर तोड़ता है।

कन्यादान तथा लग्न संस्कार काँगड़ा की भाँति किए जाते हैं। कन्या का भाई कन्या का दुपट्टा फैलाता है जिस पर वर केसर के छींटे फेंकता है। कन्या भी वर के पट्टके पर केसर छिड़कती है। पुरोहित कन्या के हाथों में फल, फूल तथा कुछ पैसे रखता है। वर अपने हाथ कन्या के हाथों पर रखता है। पिता भी हाथ लगाकर पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चारण के साथ कन्या दान करता है। कन्या दान के बाद कन्या को घर के भीतर ले जाते हैं। वर कुछ संस्कार अकेला पूरे करता है जिन्हें मनिहार कहते हैं। फिर वर को भीतर ले जाते हैं जहाँ कामदेव की प्रतिमा बनाई होती है। कन्या को वहीं लाकर उसके बाल सँवारे जाते हैं।

'खिलां खलाणी' संस्कार में एक छाज में जौ की खीलें रखी जाती हैं। वर ये खीलें तीन दिशाओं में रखता है, कन्या की बहनें इन्हें पुनः जल्दी से छाज में डालती हैं। यह बार-बार किया जाता है।

वर-वधू द्वारा अग्नि के फेरे लिए जाते हैं जो चार या सात हो सकते हैं। गोत्राचार, में वर-कन्या को अपने गौत्र में सम्मिलित करता है।

बारात वापस आने पर दूल्हे-दूल्हन की आरती उतारी जाती है। सास बहू को कुछ भेंट देती है। वर-वधू से गणपति पूजन करवाया जाता है। दो परिवारों के पुरुष तथा महिला वर-वधू का कंगणा खोलते हैं। पुरुष वर का तथा महिला वधू का कंगणा खोलकर कंगण भाई या बहन बनते हैं। महिलाएँ वधू का मुँह देखकर कुछ भेंट देती हैं।

एक विवाह में कम से कम चार धामें दी जाती हैं। पहली समूहत के दिन, दूसरी बारात जाने के समय, तीसरी बारात वापसी तथा और एक अगले दिन। धाम में बकरे कटने के साथ सुरा पान भी आवश्यक है।

सदनोज

गद्दी जनजाति में बाल विवाह की प्रथा थी। जब बच्चे अभी गोद में ही होते उनका रिश्ता तय हो जाता। खेलने के दिनों विवाह हो जाता। यदि बचपन में विवाह हो जाए तो कन्या के युवा होने पर वर अपने संबंधियों सहित वधू को लेने आता है। यह सदनोज कहलाता है। यह कुछ वर्षों कन्या के युवा होने पर होता है। इस बारात को वधू के घर तीन खाने खिलाए जाते हैं। यदि ये लोग शाम को आए तो अगले दिन दोपहर का खाना खाकर जाते हैं। खाने में बकरे कटना आवश्यक हैं, सुर पी जाती है। वर पक्ष की ओर से भी धाम दी जाती है।

कन्या की विदाई के समय पुराने समय में बीस सेर आटे के बबरू, दो चोलू, दो लुआंचड़ियाँ, दस-पंद्रह चुंडू, एक चादर तथा चार सेर गेहूँ दी जाती थी। दहेज में

चाँदी के आभूषण, भाँडे-बरतन दिए जाते थे।

बट्टा-सट्टा

बट्टा-सट्टा एक लोकप्रिय विवाह पद्धति है। वर किसी कन्या से विवाह करने के बदले अपनी सगी बहन, मामेरी, फुफेरी या ताए-चाचे की लड़की को अपनी भावी पत्नी के भाई को प्रस्तावित करता है। अतः एक परिवार की कन्या या पुत्र का विवाह दूसरे परिवार के पुत्र या कन्या से होता है। इस प्रकार से विवाह भी सुगम रहता है और संबंध भी प्रगाढ़ होते हैं।

झंझराड़ा

झंझराड़ा पद्धति को गुदानी या चोली डोरी भी कहते हैं। पति की मृत्यु के बाद विधवा अपने पति के भाई से विवाह करती थी। किन्हीं स्थानों में विधवा किसी भी पुरुष से विवाह कर सकती है। विधवा स्त्री तथा पुरुष को कुंभ तथा दीपक के पास बिठा दिया जाता है। स्त्री के बाल बनाए जाते हैं। पुरुष की ओर से स्त्री के नत्थ पहनने को दी जाती है। विवाह के बाद भोज दिया जाता है। ऐसे विवाह में पुरोहित का होना आवश्यक नहीं। कोई भी पुरुष किसी विधवा स्त्री से झंझराड़ा कर सकता है।

घर जवांतरी विवाह

घर जवांतरी विवाह या घर जँवाई विवाह की प्रथा भी गद्दियों में कुछ अनोखे ढंग से प्रचलित हैं। वर को विवाह करने की खातिर अपने होने वाले ससुराल में सात से दस वर्ष तक रहना पड़ता है। वह नौकर की भाँति काम करता है। इसे लगातार वहीं रहना पड़ता है। यदि बीच में कहीं चला जाए तो रहने की अवधि बढ़ा दी जाती है। इसे अपने ससुर का हर कार्य करना पड़ता है। ससुर के प्रसन्न होने पर विवाह होता है। अवधि पूरी होने पर जब दूल्हा अपने घर वापस जाता है, विवाह कर दिया जाता है।

ख़ेवत विवाह

'रीत' की भाँति खेवत विवाह गद्दी जनजाति में प्रचलित है। यदि कोई पुरुष स्त्री के पहले पति को विवाह का पूरा खर्चा हरजाने सहित अदा कर दे तो वह उस पुरुष से विवाह कर सकती है। प्रथम पुरुष यदि मान जाए तो स्त्री द्वारा ऐसा दूसरा विवाह किया जाना संभव है। किन्नौर की ओर इसे 'इज्जत' कहते हैं जो मुआवजा पहले पति को दिया जाता है। यह विवाह स्त्री का पति गृह में मान-सम्मान न होने, पति द्वारा किसी अन्य स्त्री के प्रेम आदि के कारण होता है।

बरमाना

इस विवाह पद्धति में कन्या का पिता वर या वर के माता-पिता से कन्या के

बदले रुपए लेता था। यह राशि पाँच सौ रुपए से लेकर हजार रुपए तक हो सकती थी। राशि के भुगतान पर कन्या का विवाह कर दिया जाता।

झिंड फूक विवाह

यदि माता-पिता कन्या का मनचाहे युवक से विवाह न करें तो वह अपने प्रेमी युवक से साथ भाग जाती है। दोनों झिंड अर्थात् झाड़ियाँ जलाकर अग्नि के फेरे लेकर विवाह कर लेते हैं। बाद में इस विवाह को मान्यता तो मिल जाती है किंतु कन्या का घर से भागना एक ग्लानि उत्पन्न कर जाता है। यदि कभी विवाह के पूर्व लड़की मिल जाए तो उसे जबरदस्ती घर भी वापस लाया जाता है।

विवाह विच्छेद

गद्दी जनजति में विवाह एक पवित्र बंधन माना जाता है अतः सामान्यतः विवाह विच्छेद की नौबत नहीं आती। यदि कोई झगड़ा हो जाए तो पंचायत के हस्तेक्षप से दहेज की वस्तुएँ या नकदी पति को वापस देनी पड़ती हैं। विच्छेद होने पर बच्चे पिता के घर रहते हैं। यदि गर्भ में शिशु हो तो वह भी जन्म के बाद पिता को दिया जाता है। स्त्री अकेली दूसरे पति के घर जाती है।

राहुल सांकृत्यायन ने गद्दी विवाह की रस्म का वर्णन यूँ किया है–

"गद्दियों के विवाह की अपनी विशेष रस्में हैं, जिनमे से कुछ अति प्राचीनकाल की मालूम होती हैं। इनमें आम तौर से लड़की के 16 और लड़के के 20 वर्ष का होने पर ब्याह होता है। लड़के वाले अपने पुरोहित को लड़की के लिए बातचीत करने के लिए भेजते हैं। यदि लड़की का बाप राजी हुआ, जो लड़के वाला अपने दो-तीन प्रतिष्ठित आदमियों को भेजकर विवाह ठीक कर लेता है। फिर वर की ओर से पुरोहित के साथ दो आदमी आकर मँगनी की रस्म पूरा करते हैं। यदि ब्याह 'धर्मपूना' हुआ, तो मँगनी में लड़के का बाप पुरोहित को चार या अधिक पैसों के साथ द्रुभ (दूब घास) देकर भेजता है। पुरोहित द्रुभ और पैसे को कन्या के पिता के हाथ में देता है, जो दूब लेकर एक रुपया और मिलाकर पैसे को पुरोहित के हाथ में देता है। रात वहीं बिताकर भोजन करने के बाद पुरोहित लड़के के बाप को आठ पैसा देता है। टोला (परिवर्तन वाले) मँगनी में भी इसी तरह की रस्म अदा की जाती है। अंत में एक चक्की और सिल, तीन या पाँच गुड़ की भेली, सुपाड़ी, बीहन और रोलियाँ (रोली टीका) सामने रखी जाती हैं। पुरोहित सुपाड़ी, बीहन और रोली को लेकर उसे सिल पर रखता है। लोढ़े से सिल पर उनके तोड़े जाने से पहले लड़के का बाप पुरोहित को चार आना देता है, विवाहे जाने वाले लड़के-लड़की का नाम लेता है। इसके बाद सुपाड़ी आदि को एक बरतन में रख दिया जाता है। गुड़ की भेलियाँ तोड़कर लड़की

के बाप को पहले थोड़ा-सा देकर सब में बाँट दिया जाता है—कन्या-परिवार के व्यक्ति गुड़ नहीं लेते। वर का पिता बरतन में सवा रुपया डालता है, जिसे कन्या वाले लेकर लड़की के जेवर बनाने में डाल देते हैं। इसके बाद कन्या वर के पिता के सामने आती है, और वह उसे एक रुपया देता है। मंगल, शुक्र और शनिवार को अशुभ समझ कोई दूसरे दिन ब्याह के लिए निश्चित किया जाता है। पुरोहित द्वारा विवाह-तिथि निश्चित हो जाने पर दो आदमी एक सेर घी लेकर इस तिथि को सूचित करने के लिए कन्या वालों के पास जाते हैं। अगर उन्होंने तिथि स्वीकार कर ली, तो दोनों ओर के दूत पुरोहित के पास जाकर उससे लखनोतेरी (चिट्ठी) लिखवाते हैं। इसके लिए पुरोहित को चंबा का 8 पैसा (4 आना) तथा कुछ लाल सूत और चावल दिया जाता है। विवाह के समय पहले सुमुहूरत की रस्म अदा की जाती है। गणपति, कुंभ और नवग्रह की पूजा करके हल्दी, आटा, तेल, मिलाकर बनाई सुपारी में मंत्र पढ़कर लड़के का उबटना किया जाता है। उसकी दाहिनी कलाई में तीन काले ऊनी धागे बाँधे जाते हैं जिसमें भूत-प्रेत न लगें। माँ अपने लड़के को आँगन में ले जाकर नहलाती है। नहाने के समय काला सूत तोड़कर फेंक दिया जाता है, और माँ लड़के को फिर लौटा ले जाती है। इसके बाद दरवाजे के पास दहके हुए कोयले पर सरसों जलती मिट्टी की बोरसी में डालकर फेंक दी जाती है। कँगना बाँधने से पहले तेलसांघ होता है, अर्थात् देह में तेल-हल्दी लगाई जाती है। पुरोहित लड़के की दाहिनी कलाई में नौ लाल धागों का 'कँगना' बाँधता है, और उसे घी-गुड़ चटाता है। फिर गणपति, ब्रह्मा, विष्णु, कुंभ, दीया (दीपक) और 'नवग्रहों' की पूजा होती है। लड़का नवग्रहों के लिए एक बकरे की बलि चढ़ाता है, जिसके खून को संदोरी (सनडोरी, रस्सी) और मुंजमाला पर छिड़का जाता है। फिर सनडोरी कमरे में फैला दी जाती है। लड़का सफेद धोती पहन कानों में आटे की 'मुन्द्रा' पहन कंधे पर झोली डाल छाती पर काली रस्सी लपेट पशुचर्म से नितंब को ढाँक, काली रस्सी में एक फनानी—(ऊन की धुनकी) टाँग दाहिने हाथ में लकड़ी का डंडा ले, दाहिने अँगूठे में जनेऊ लपेट, वह पूरे योगी या ब्रह्मचारी का रूप ले लेता है। पुरोहित उससे पूछता है—"योगी, तू क्यों आया ?" वह जवाब देता है—"ब्रह्मसूत्र लेने।" फिर पुरोहित उससे पूछता है—"किस तरह का सूत्र चाहिए, ताँबे का, पीतल का, चाँदी का, सोने का या कपास का।" लड़का कपास का सूत माँगता है। इस पर पुरोहित उसे बदरीनारायण, त्रिलोकीनाथ और मणिमहेश में स्नान करने के लिए भेजता है। यह नकली स्नान उसके पैरों, हाथों और मुँह पर पानी छिड़कने से पूरा हो जाता है। जिसके लिए दरवाजे के पास बरतन में पानी भरा रहता है। इसके बाद नकली योगी भिक्षा माँगता है, पहले अपने संबंधियों से, फिर घर से। वह उसे रोटी का एक टुकड़ा दे अपनी शक्ति के अनुसार गाय, बकरा आदि देने का वचन देते हैं। पुरोहित फिर पूछता

है—कि क्या तू 'जतेरो' (गृहस्थ) रहना चाहता है, या 'मतेरा' (साधु) ? लड़का जतेरा रहने की बात करता है। इस पर पुरोहित उसके योगी के कपड़ों को ले लेता है, जिसके लिए उसे चार आना दक्षिणा मिलती है। गाय-बकरी आदि जो मिला है, वह पुरोहित को नहीं बल्कि लड़के का होता है। योगी का अभिनय हो जाने के बाद लड़के को टोकरी या अनाज ढोने की भेड़ की खाल (खलरू) पर बैठाकर उसके सिर पर मुंजमाला में डालकर एक कटार रख दी जाती है। लोग उसके सिर पर दूब से तेल डालते हैं, और उसका मामा या उसके अभाव में उसकी बहन तेल के बरतन को अपने हाथ में लिए रखती है। इसके बाद लड़का फनानी (धुनकी) में तीर लगा कर नवग्रहों के लिए बलि दिए हुए मृत बकरे के सिर पर मारने का अभिनय करता है। लड़के के घी-गुड़ चाट लेने के बाद यह रस्म पूरी हो जाती है। इसके बाद वर को ब्याह की पोशाक पहनाई जाती है। सिर पर सफेद पगड़ी और कूआ लाल लुआँचा (दुपट्टा), सफेद पटका (कमरबंद), गुलबदान, सूथन और कंधे पर जौल (अँगोछा) डाल दिया जाता है। फिर सोहाग पिटारी वाली भेंट तैयार की जाती है, जिसमें एक खरबास (सफेद दुपट्टा), लुआँचेरी, घगरू, नौडोरी (नौ लाल सूत), उंगी (लोह की माँग फाड़नी), चुंदी (सुरमादानी), कंगी, मणिहार, तीन भेली गुड़, खजूर, किसमिस, बादाम, चावल और सात लूची रहती हैं। पुरोहित सोहाग पटारी को लेकर जलूस के साथ कन्या के घर ले जाता है। मामा लड़के के मुँह को सेहरे से ढाँक देता है, भाभी उसकी आँखों में सुरमा डालती है और बहन पंखा झलती है। इसके बाद लड़का खड़ा होता है और पुरोहित उसके सिर पर दाहिने से बाएँ तीन बार आरती करता है, माँ तीन गोल-गोल लूचियाँ (पूड़ियाँ) लड़के के तीन तरफ फेंकती है। आरती में भी वही मंत्र पढ़े जाते हैं, जो दरवाजे में आने के समय पढ़े गए थे। इसके बाद वर का पिता उसे सवा रुपए का तंबोल (भेंट) प्रदान करता है, जिसमें चार आना पुरोहित की दक्षिणा होती है। आँगन में वर डोली पर बैठ जाता है, और माँ उसे अपना स्तन पिलाती है। चार कहार पालकी को उठाते, लड़की के तोरण के नीचे दरवाजे पर ले जाते हैं। वर, उसकी माँ और पुरोहित तोरण-पूजा करते हैं। इसके बाद पालकी ढोने वाले लड़के के सामने पानी से भरा कुंभ रखते हैं, जिसमें वह एक ताँबे का पैसा डाल देता है। बारात अर्थात् घर के पुरुष और मित्र अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर बाजे-गाजे के साथ कन्या के घर को रवाना होते हैं।

इसके बाद विवाह की रस्मों का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। विवाह के प्रकारों में राहुल जी ने कहा है–

"गद्दी लोगों में और भी कितने ही प्रकार के ब्याह प्रचलित हैं। इनमें से एक को 'बुजक्या' कहते हैं, जिसमें सारी रस्म कन्या के घर में अदा की जाती है, जिससे खर्च से बच जाते हैं। गंधर्व विवाह करने वाले तरुण-तरुणी जंगल में झाड़ी फूँककर उसके

चारों ओर हाथ में हाथ दिए या लड़की की चादर को लड़के के कमरबंद में बाँधकर आठ फेरा कर लेते हैं। यह अकसर तब किया जाता है जबकि पहले स्वीकार करके लड़की वाले ब्याह करने से इंकार कर देते है। इस विधि से पुरोहित या संबंधियों की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रथा को 'झिंडफूक' कहते हैं। ब्राह्मणों को छोड़कर चंबा की सभी जातियों में विधवा-विवाह प्रचलित है। इस विधि को 'गुदनी' या 'झंजरारा' अथवा 'चोली-डोरी' कहते हैं। दोनों भावी पति- पत्नी धूप जलाकर दिया सहित कुंभ के सामने बैठकर उसकी पूजा करते हैं। फिर पति एक डोरी (सूत) भावी पत्नी के सिर पर रखता है, और दूसरी स्त्री पत्नी के सिर को कंघी करके इस सूत से बाँध देती है। इसके बाद पति एक बालू (नाक की नथनी) पत्नी के हाथ पर रखता है, जिसे वह पहन लेती हैं उसके बाद भोज दिया जाता है, गीत गाए जाते हैं। यदि पुरोहित नहीं बुलाया जाता, तो कुंभ-पूजा की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन बाल गूँधने का धागा और नाक की नथनी भोज के साथ जरूर दी जाती है। पुराने समय में विधवा अपने पति के छोटे या बड़े भाई से ब्याह करने के लिए मजबूर थी, लेकिन उस पर बहुत पहले ही से जोर देना बंद कर दिया गया है। विवाह-विच्छेद दोनों पक्ष की सम्मति से हो सकता है। और उसके बाद विच्छिन स्त्री फिर से ब्याह कर सकती है।

चंबा में मृतक-संस्कार की प्रथा भी है। चंबा में जब किसी बीमार के बचने की आशा नहीं रह जाती, तो उसके संबंधी आकर उससे अनाज, तेल, घी, गुड़, कपास, फल, मिठाई अथवा इससे भी कीमती चीजें—चारपाई, शय्या, जूता, छाता आदि का दान करवाते हैं। गौ-दान का विशेष महात्म्य माना जाता है। यह दान आमतौर से गुजराती ब्राह्मण लेते हैं। इसे 'अंतरिप्टी' (अंत्येष्टि) कहते हैं। इस संस्कार के बाद फर्श के ऊपर तिल और कुश बिखेर दिया जाता है, और बिस्तरा उस पर रखकर बीमार का सिर उत्तर की ओर और पैर दक्षिण की ओर कर दिया जाता है। गंगाजल पिलाकर उसे गीता का पाठ सुनाया जाता है। अंत में तुलसीदल तथा पंचरत्न (सोना, चाँदी, ताँबा, मोती, मूँगा), उसके मुँह में रख दिया जाता है। मर जाने के बाद नहलाकर उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाए जाते हैं। यदि यह विवाहित है, तो उसके सिर पर सेहरा रख दिया जाता है। परिवार के सभी लोग और हित-मित्र तथा संबंधी लाश के पास आकर उस पर कपड़े का टुकड़ा चढ़ाते हैं। विधवा लाश की परिक्रमा करके उसके पैरों के नीचे रुपया या पैसा रख सिर नबाते उस पर गिर पड़ती है। इसके बाद मृत पुरुष का पुत्र या उसके अभाव में कोई दूसरा नजदीक का संबंधी पिंडदान देता है। लाश को एक लकड़ी की अर्थी—'बहवान' पर रख उसे लाल कपड़े से ढाँककर झंडियों और फूलों से सजा दिया जाता है। स्त्रियाँ जमा होकर ज़ोर से चिल्लाती हुई अपने हाथों से अपने को पीटती हैं। परिवार के छोटे तरुण अपने सिर और मुँह केशों को मुड़ा लेते हैं। फिर संबंधियों और पड़ोसियों के साथ अर्थी को घाट

(श्मशान) में ले जाते हैं, स्त्रियाँ साथ नहीं जातीं। रास्ते में अर्थी के ऊपर से बादाम, किसमिस और पैसे फेंके जाते हैं। शंख और घंटे बजते रहते हैं, कभी-कभी बाजे वाले बाजा भी बजाते हैं। बीच-बीच में ढोने वालों को विश्राम देने के लिए अर्थी को जमीन पर रख दिया जाता है, और ऐसे हरेक स्थान पर पिंडदान दिया जाता है। घाट में पहुँचकर अंतिम बार पिंडदान दिया जाता है।"

देव संस्कृति

शिव पूजा

मणिमहेश कैलास शिव या लिंग पूजा का सशक्त उदाहरण है। मणिमहेश का शिखर एक प्राकृतिक लिंग के रूप में स्थित है। मणिमहेश यात्रा चंबा के साथ-साथ हिमाचल तथा जम्मू के क्षेत्रों में उतनी ही पवित्र मानी जाती है।

चंबा-भरमौर में चेले (देवता के प्रतिनिधि जिन्हें कुल्लू में गूर कहा जाता है) शिव आराधना या आह्वान के लिए डमरू का प्रयोग करते हैं। इस डमरूनुमा वाद्य को, जो पीतल या ताँबे का बना होता है 'पौंहल' कहते हैं।

चेले अपने साथ चाँदी अथवा लोहे की छड़ी तथा साँप रखते हैं। ये तांत्रिक प्रतीक माने जाते हैं और प्रायः छिपाकर रखे जाते हैं। साँप नाग का प्रतीक है। छड़ी त्रिशूल का प्रतीक है। भरमौर तथा पांगी की ओर सभी मंदिरों में चाहे वे देवी के हों, नाग के हों, त्रिशूल गड़े हुए देखे जा सकते हैं। छड़ी, छड़ी यात्रा वाली साधुओं की छड़ी भी हो सकती है। जोगी लोग सींग का वाद्य 'नाद' उठाए रखने के साथ गले में डमरू डाले घूमते हैं। इस डमरू को 'नादी' कहते हैं।

मणिमहेश में प्रातः कालीन सूर्य 'मणि' के समान चमकता है। मणिमहेश या मन महेश में मन स्थिर रहता है आदि अटकलें इस शिखर के नामकरण संबंधी लगाई जाती हैं। कई प्रकार की कथाएँ भी इस विषय में प्रचलित हैं। मान्यता है कि रावण अपनी पूजा के लिये इस शिखर को स्वर्ग से लाया। शिखर स्वर्ग से लाने की यह शर्त थी कि इसे कहीं भी रास्ते में रखा न जाए। रावण को रास्ते में लघुशंका आई। शंका निवारण के लिए उसने शिखर हनुमान के पास थमा दिया। जब रावण काफी समय तक नहीं आया और हनुमान की बाँह थक गई तो उन्होंने आवाज लगाई कि रावण लिंग को सँभालो अन्यथा वे इसे भूमि पर धर देंगे। रावण शीघ्र नहीं आ पाया और हनुमान ने शिखर यहीं रख दिया। अब रावण प्रतिदिन यहाँ पुष्पक विमान पर बैठकर पूजा के लिए आने लगा।

मणिमहेश तो महादेव के अनुयायियों के लिए अभीष्ट बना ही, रास्ते के सभी स्थल भी पूजनीय हुए।

त्रिलोचन महादेव चंबा भरमौर सड़क पर रावी नदी के दाएँ किनारे स्थित हैं। महादेव मंदिर के विषय में त्रिलोचन नाम के एक गद्दी की कथा है। यहाँ भी मणिमहेश की भाँति पर्व मनाए जाते हैं।

मणिमहेश यात्रा में हड़सर, धणछोह, गौरी कुंड, शिवकरोत्री, भरमौर शिव के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। भरमौर को चौरासी भी कहा जाता हैं जो चौरासी सिद्धों से संबंधित है।

शिवालिक पर्वत श्रेणियों में हाथीधार पर कुंजर महादेव का मंदिर है। इस मंदिर के साथ शिव द्वारा पार्वती की रक्षा में पहरे पर खड़े गणेश के वध तथा उन्हें हाथी का सिर लगाने की कथा जुड़ी है। यह मंदिर द्रम्मण-चुआड़ी मार्ग पर टूँडी गाँव से लगभग दस मील दूर पहाड़ी पर स्थित है।

चन्द्रशेखर मंदिर साहो में है। चन्द्रशेखर शिव का ही एक नाम है। यहाँ शिव एक लिंग के रूप में विराजमान हैं। साल नदी के किनारे स्थित यह मंदिर छत को छूते शिवलिंग के लिए प्रसिद्ध है। लोक कथा है कि शिव पार्वती ने कश्मीर से कैलास जाते हुए यहाँ पर्व स्नान किया। प्रातः शिव बिना किसी को बताए यहाँ से जाना चाहते थे। अतः प्रातः ही अपनी उपस्थिति को जताने के लिए वहाँ शिवलिंग छोड़ा। कई दिन यह लिंग वैसे ही पड़ा रहा। एक बार सराहन के राणा को स्वप्न हुआ और वहाँ मंदिर बनाने का आदेश दिया गया। राणा ने लिंग को अपने घर लाना चाहा किंतु जब इसे मंदिर के स्थान पर रखा गया तो दोबारा उठाया नहीं जा सका। अतः वहीं मंदिर बनवाया। यह भी कथा है कि एक बार राजा ने इसे ताँबे की चादरों से ढकना चाहा तो लिंग का आकार बढ़ता गया और राजा को चेतावनी दी कि यदि छत से ढकने का प्रयास किया गया तो उसे कभी कोई ढक नहीं पाएगा। यह भी विश्वास है कि लिंग का आकार बढ़ने से जलहरी छोटी हो गई, उसे उठाकर अलग रख दिया गया और नई जलहरी बनाई गई।

चंबा-भाँदल सड़क पर पुखरी से तीन चार किलोमीटर 'अणैला महादेव' का मंदिर है। यहाँ भी मणिमहेश यात्रा के दिनों 'पर्वी' मनायी जाती है। इस मंदिर की स्थापना के बारे में एक कथा चन्द्रशेखर मंदिर की भाँति शिव द्वारा स्वयं लिंग छोड़े जाने की है। अन्य कथा के अनुसार सिद्धों का एक दल भरमौर से कश्मीर जाता हुआ वहाँ ठहरा। वहाँ पानी नहीं था अतः उन्होंने योग बल से पीने तथा स्नान के लिए वहाँ मणिमहेश का पानी निकाल दिया। इस जल में मणिमहेश की भाँति कृष्ण जन्माष्टमी तथा राधा अष्टमी को स्नान की परंपरा डाली। यहाँ अनेक चमत्कार भी होने लगे जैसे बांझ को पुत्र प्राप्ति, असाध्य रोगों का उपचार, प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा आदि आदि। एक बार चंबा के राजा श्यामसिंह को मंदिर के चेले ने बैशाख में बर्फ गिरा कर चमत्कार दिखाया।

शैव परंपरा में नाथ तथा सिद्धों का प्रभाव इस ओर अधिक रहा। भले ही कुल्लू या मंडी की भाँति बाद में वैष्णव प्रभावी हुए।

चौरासी सिद्धों की याद में भरमौर में समाधियाँ हैं। चरपट नाथ गुरु गोरखनाथ के शिष्य थे। वे ब्रह्मपुर आए जहाँ राजा सहिलवर्मन की पुत्री चम्पावती उनकी शिष्या बनी। चरपटनाथ चंबा वापस आए। कहा जाता है चरपटनाथ बज्रयानी शाखा के थे। बज्रयानी से वे रससिद्ध संप्रदाय में आए और फिर नाथ हुए। चरपटनाथ का राजा के

वैष्णव होने पर यहाँ सम्मान था। भरमौर को शिवपुरी कहा जाता है, ऐसा शिलालेखों में उल्लेख है।

नाथ संप्रदाय में चंबा में कुछ और बाबा भी हुए। इनमें मट्टी वाले स्वामी जूँढ, नागा बाबा जयकृष्णगिरि (जिसकी भरमौर में समाधि है) जमाल शाह, शाहमद्दार, माई बाग पीर, स्वामी ध्यानस्वरूप (ततवाणी), स्वामी हरिगिरि (ककीरा) उल्लेखनीय हैं।

आज भी मणिमहेश यात्रा साधुओं द्वारा ही आरंभ होती है। इसे 'छड़ी यात्रा' कहा जाता है। मणिमहेश यात्रा में दूर-दूर से कई साधू आते हैं।

नाग पूजा

चंबा के क्षेत्र में नाग तथा शक्ति पूजा पुरातन मानी गई है। नाग जल तथा जलस्रोतों के देवता हैं। वर्षा भी उनके नियंत्रण में है।

लाहौल की ओर बौद्ध धर्म प्रभावी होने पर चंबा के जनजातीय क्षेत्र पांगी तथा भरमौर में नागों की रक्षा हुई। इस संबंध में दो कथाएँ बहुत प्रतीकात्मक हैं—केलांग देवता (जो नाग था) बलि लेता था। एक बौद्ध लामा ने उसे अपने को बलि के लिए प्रस्तुत कर भागा नदी में फेंक दिया। यह बहता हुआ चन्द्रभागा में आया तो एक गद्दी ने इस शर्त पर बचाया कि वह मानव बलि नहीं लेगा। केलांग नाग को कुगति में स्थापित किया गया जो भरमौर में है। इसी प्रकार किलाड़ का नाग भी पहले लाहौल में मानव बलि लेता था। एक गद्दी ने बलि के लिए अपने को प्रस्तुत किया उसे चन्द्रभागा में फेंका। किलाड़ में उसे पकड़कर वहाँ स्थापित किया गया।

ऐसी कथाएँ पांगी-भरमौर की ओर नागों के पलायन की ओर इशारा करती हैं।

नागों को दूध-घी चढ़ाया जाता है। पांगी की ओर श्रावण में नागों को दूध चढ़ाने की परंपरा है। भरमौर की ओर नाग मंदिरों में बलि की जाती है। कुछ पुराने उल्लेख मानव बलि के भी हुए हैं। नाग मंदिरों में वृष्टि, अकाल, अच्छी फसल के लिए जागरे किए जाते हैं। नाग पंचमी को भी आयोजन होते हैं। नाग को पशुधन का रक्षक माना जाता है।

कुगति में केलांग, क्वार्सी में इन्द्रु, चणहौता में बणी, सामरा में वासुकि नाग के मंदिर हैं। इसके अतिरिक्त पढ़ौल, मंदौर, काति डल में भी नाग मंदिर हैं। पांगी में कांटू, किलाड़ नाग मंदिर प्रसिद्ध है।

शक्ति पूजा

शिव तथा नाग के साथ शक्ति पूजा भी इस क्षेत्र में विद्यमान है। भरमौर में लखणा देवी, छतराड़ी में शक्ति देवी, पांगी में मिंधल माता, किलाड़ में देवी मंदिर स्थापित हैं। भरमौर में ब्रह्माणी देवी का मंदिर है। इसके अतिरिक्त काली, शीतला, कलहौली, वणास्थ, जालपा, बणखंडी देवियाँ भी पूजी जाती हैं।

वणस्थ और वणखंडी वन देवियां हैं। पशुओं की रक्षा करती हैं। इन्हें धूप दीप,

सिंदूर, लाल कपड़ा और पकवान चढ़ाया जाता है। जालपा के मंदिर नदी या नालों के समीप होते हैं। शीतला देवी बीमारियों को हरती है। बन्नी देवी तुंदाह क्षेत्र में, कलहौली देवी त्रेठा परगना में, आदि शक्ति छतराड़ी और गूं में है।

गणेश, कार्तिकेय

गणेश तथा कार्तिकेय पूजन भी इन क्षेत्रों में प्रचलित है। गणेश के स्वतंत्र मंदिर तो नहीं हैं किंतु मंदिरों के प्रवेश द्वारों में गणेश प्रतिमाएँ स्थापित रहती हैं। कार्तिकेय की मूर्तियाँ शक्ति देवी छतराड़ी तथा लखणा देवी भरमौर के द्वारों में गणेश के साथ उकेरी गई हैं।

भरमौर के होली क्षेत्र में कलेठ में कार्तिकेय का स्वतंत्र मंदिर भी है।

बीर

कुछ 'बीर' देवताओं की भी यहाँ मान्यता है। इन 'बीरो' में गुग्गा, मंडलैक, अजियापाल, लखदाता, कैलु, नारसिंह हैं।

गुग्गा बीर सर्पदंश का देवता है। जादू टोने में भी गुग्गा का स्मरण किया जाता है। कैलु महिलाओं का देवता है। बच्चे के जन्म पर किसी वृक्ष के नीचे गोल पत्थर रखकर इसे पूजा जाता है। लखदाता गद्दी तथा गूजरों में समान रूप से पूजा जाता है।

अन्य देवता

भैरव और नारसिंह भी पूजे जाते हैं। भैरव जादू-टोने का देवता माना जाता है जबकि नारसिंह श्वेत वस्त्र पहने अकेली स्त्रियों की खोज में घूमता रहता है और उन्हें 'लग' जाता है। कुछ राक्षस या दानव किस्म के देवता भी यहाँ माने जाते हैं। जल बताल पानी में रहता है। चुंघू गाय का दूध पी जाता है। लौंकड़ा भी जल में रहता है।

तालंग एक राक्षस प्रकृति का देवता है जिसका मंदिर अंदराल (भरमौर) में है। मतड़ा और जटीधार भी राक्षस देवता हैं। तोरल देवता का मंदिर जोत पर है। जोत पर मंदिर के आसपास कोई गंदगी या जूठन नहीं फैला सकता। जोगनी चुड़ैल आदि का मान्यता भी है।

पनघट शिला देवता

चंबा के विभिन्न क्षेत्रों में पनघट शिलाओं का बहुत महत्त्व है। इन शिलाओं में महत्त्वपूर्ण मूर्तियों के साथ शिलालेख हैं।

जलस्रोतों से लगी शिलाओं में मुख्य मूर्तियाँ वरुण या सूर्य की हैं। इन शिलाओं में विष्णु के दस अवतार, सूर्य, वरुण, नवग्रह, राम-लक्ष्मण, लव-कुश, पाँच पांडव, गंगा-यमुना सहित सात नदियाँ उकेरी गई हैं।

छतराड़ी, बस्सु, तुर (भरमौर) तथा पांगी में लुज, सहेली पनघट शिलाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

देव सेनापति कार्तिकेय

पौराणिक साहित्य में कुछ आख्यान बहुत प्रतीकात्मक हैं। यहाँ तक कि पात्र तो प्रतीक हैं ही, घटनाएँ भी प्रतीकात्मक हैं। ऐसी ही कथा है कार्तिकेय की। देवसेनापति कार्तिकेय का पौराणिक साहित्य में एक पराक्रमी पुरुष के रूप में स्मरण हुआ है जिसमें इन्द्र सहित समस्त देवगणों को हराने की क्षमता थी। कार्तिकेय ने उस महिषासुर का वध किया जिसने ब्रह्मा के वरदान के कारण समस्त देवगणों को आतंकित कर रखा था।

कार्तिकेय का वास्तविक नाम स्कन्द था। इन का जन्म गंगा में हुआ अतः इन्हें गंगापुत्र या गांगेय भी कहा जाता है। इनके जन्म के विषय में पुराणों में अलग-अलग विलक्षण कथाएँ हैं। एक कथा के अनुसार यह छह ऋषि पत्नियों का रूप धारण किए अग्नि पत्नी स्वाहा के पुत्र थे तो दूसरी कथा के अनुसार उमा-शिव के।

एक बार देवराज इन्द्र बार-बार दैत्यों से हारने के कारण बहुत दुखी हुए। दुखी होकर वे मानस पर्वत पर गए और देवसेना के लिए एक पराक्रमी सेनापति पाने के लिए विचार करने लगे। वहाँ उन्हें एक स्त्री के चिल्लाने की आवाज़ आई। उन्होंने देखा केशी नाम का एक दैत्य एक कन्या को बलपूर्वक घसीटे जा रहा है। इन्द्र ने उस कन्या की पुकार पर दैत्य को ललकारा और युद्ध में मार भगाया। उस कन्या ने बताया कि वह प्रजापति की पुत्री है और उसका नाम देवसेना है। उसकी बहन दैत्य सेना को भी यह दैत्य ले गया है। वह तो स्वेच्छा से जाना चाहती थी। किंतु देवसेना को वह बलपूर्वक लिए जा रहा था। कन्या ने यह भी बताया कि उसे ऐसा वर चाहिए जो देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस और दुष्ट दैत्यों को जीतने वाला महान पराक्रमी और बलवान हो।

उस कन्या को ले कर इन्द्र ब्रह्माजी के पास गए और सारा वृत्तांत सुनाया। ब्रह्माजी ने कहा कि अग्नि के द्वारा एक महान् पराक्रमी बालक होगा और वही उस कन्या का पति और तुम्हारा सेनाध्यक्ष होगा।

इन्द्र अब उसे लेकर ब्रह्मऋषियों के पास गए। उन दिनों ऋषिगण यज्ञ कर रहे थे और देवता उस यज्ञ में अपना भाग ग्रहण कर रहे थे। उस यज्ञ में अग्निदेव भी आए। अग्निदेव ऋषि-पत्नियों को देखकर चंचल हो उठे। ऋषि-पत्नियाँ बड़ी पतिव्रता थीं। अतः निराश हो वे शरीर छोड़ने के लिए वन की ओर हो लिए।

अग्निपत्नी स्वाहा को जब इस बात का पता चला तो वह भी वहाँ चली गई और

ऋषि-पत्नियों को रूप धारण कर अग्निदेव को रिझाने की सोची। स्वाहा ने सबसे पहले अंगिरा की पत्नी शिवा का रूप धारण किया। इस तरह छह ऋषि-पत्नियों का रूप धारण कर अग्नि से संसर्ग किया और उनका वीर्य एक स्वर्ण के पात्र में एकत्रित कर लिया। ऋषि-पत्नी अरुंधती का रूप वह धारण नहीं कर पाई। इस तरह एक बालक उत्पन्न हुआ जिसके छह सिर, बारह कान, बारह नेत्र, बारह भुजाएँ, एक ग्रीवा और एक पेट था। इस बालक का नाम 'स्कन्द' हुआ।

दूसरी कथा के अनुसार हिमालय की पुत्री उमा ने शिव को पाने के लिए तपस्या की। शिव भी ध्यानस्थ थे जिन की साधना भंग करने के लिए देवताओं ने कामदेव को भेजा। शिव ने अपने तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया। उमा ने घोर तपस्या की और अंततः शिव से विवाह हुआ। ब्रह्माजी के वरदान के कारण महिषासुर का वध करने के लिए उमा-शिव की संतान चाहिए थी। अतः अग्नि ने रुद्र में और स्वाहा ने उमा में प्रवेश कर पुत्र उत्पन्न किया। एक अन्य कथा में कबूतर रूपधारी अग्नि उमा-शिव का अंश प्राप्त कर सफल हुए किंतु अपनी चोंच में इसे धारण नहीं कर सके। यह गंगा में गिर गया जहाँ कार्तिकेय का जन्म हुआ।

स्कन्द ने दैत्यों का संहार करने वाला शिव जी का धनुष उठा लिया और अपनी गर्जना से समस्त प्राणियों को भयभीत करने लगा। अपने धनुष और शक्तियों से स्कन्द ने बड़े-बड़े पर्वत फोड़ डाले, शिखरों को तोड़ डाला।

स्कन्द का बल और पराक्रम बढ़ने पर देवताओं ने उसे मारने के लिए कहा। न चाहते हुए भी इन्द्र ऐरावत पर सवार हो कर स्कन्द से युद्ध करने आ गए। देवताओं ने भी स्कन्द पर धावा बोल दिया। युद्ध के समय जब स्कन्द ने सिंह नाद किया तो देव सेना अचेत-सी हो गई। अग्निकुमार कार्तिकेय ने अपने मुँह से धधकती ज्वालाएँ छोड़ीं जिससे देवता जलने-भुनने लगे। इन्द्र देवता ने कार्तिकेय को इन्द्र पद प्रस्तुत किया। उन्होंने मुनियों से इन्द्र के कर्त्तव्यों के बारे में पूछा और इन्द्र को उसके उचित मान अपने कर्त्तव्य की जानकारी चाही। इन्द्र ने उन्हें देवसेनापति पद सौंपा और अभिषेक किया। स्वाहा द्वारा ऋषियों ने अपनी पत्नियों को त्याग दिया था। कार्तिकेय ने सभी ऋषि-पत्नियों को निर्दोष सिद्ध किया। इन्द्र ने कार्तिकेय का विवाह देवसेना से करवाया।

देवताओं सहित इन्द्र और शंकर का दानवों से युद्ध छिड़ गया। दानवों की मार से पीड़ित देवसेना भागने लगी। महिष नाम के दैत्य ने पहाड़ के पहाड़ उठा कर देवताओं पर दे मारे जिससे बहुत से देवता पिस गए। क्रोधित महिषासुर शंकर के रथ के पास पहुँच गया। शंकर ने उसी समय कार्तिकेय का स्मरण किया। कार्तिकेय ने रणभूमि में उपस्थित होकर एक प्रज्वलित शक्ति से महिषासुर का सिर धड़ से अलग कर दिया।

महिषासुर वध करने वाले कार्तिकेय का कई दिव्य नामों से स्मरण किया गया

है। यह पूरी की पूरी कथा प्रतीकात्मक है। मानस पर्वत, अग्नि, स्वाहा, देवसेना प्रतीक हैं। कन्या देवसेना का चिल्लाना देवताओं की सेना आर्तनाद है। छह ऋषि-पत्नियों द्वारा एक छह सिरों वाले कार्तिकेय का जन्म भी प्रतीक है। देवसेना से विवाह देवताओं की सेना के सेनापति होने का प्रतीक है।

कार्तिकेय का मंदिर चंबा के जनजातीय क्षेत्र होली के कुलेठ गाँव में है। जीर्ण-शीर्ण मंदिर में कार्तिकेय की बड़े आकार की पाषाण प्रतिमा है। काले पत्थर की इस प्रतिमा में तीन सिर, छह हाथ हैं। हाथों में खड्ग, शक्ति, सर्प, कबूतर, डमरू और ध्वजा है।

मंदिर के निर्माण के बारे में लोकास्था है एक बार एक गड़रिया अपनी भेड़ें नदी किनारे ले गया। नदी किनारे उसने अपना कुल्हाड़ा एक शिला से तेज किया। कुल्हाड़ा तेज करते हुए शिला से खून की धारा निकल आई। उसने घबराकर शिला उलटी कर दी। नीचे कार्तिकेय की मूर्ति थी। वह मूर्ति को उठा वर्तमान मंदिर वाले स्थान में ले गया। जब दोबारा मूर्ति उठानी चाही तो कई व्यक्तियों द्वारा मिलकर भी नहीं उठाई जा सकी। अतः वहीं मंदिर का निर्माण किया गया।

चंद्रप्रभा से चमकता चन्द्रशेखर मंदिर

लोक कवियों का नाम न होते हुए भी बड़ा नाम होता है। बहुत बार लोक कवि ने ऐसी बात कही जो लिखित रूप में सामने न आते हुए भी लोगों ने गा-गाकर स्मरण रखी है। आज किसी अकादमी या उससे भी बड़े पुरस्कार से पुरस्कृत कवि की सुंदर ढंग से छपी कविता कोई नहीं गुनगुनाता (छात्रों को परीक्षा के लिए अवश्य पढ़नी पड़ती है) किंतु उन अनाम कवियों ने जो क... जयी रचनाएँ रचीं, वह आज भी गुनगुनाई जाती हैं।

ऐसे ही लोकगीत हैं चंबा में, जो गायकी के लिए प्रसिद्ध हैं ही, अपने रचना कौशल में भी अद्वितीय है। एक गीत है 'छिम्बी' जो एक महिला की सुंदरता का बखान इस शिल्प से करता है कि बड़े कवियों को मात देता है। उसकी दंत पंक्ति, उसके होंठ काव्यमयी भाषा में अलंकृत किए गए हैं। आज के प्रचलित गीत 'राजा तेरेयां गोरखयां ने' के पुरातन स्वरूप की पंक्तियों में भी ऐसा अनुपम गान है। खिले हुए खटनालू (फूल) की तरह दाँत, सूरज की तरह चमकती आँखें, पान की तरह होंठ लोकगीत में वर्णित हैं।

इसी तरह का सौंदर्य वर्णन सात्यकि ने शिला पर अपनी प्रिया पत्नी सोमप्रभा के लिए लिखवाया, यह जानकारी साहो में जाकर मिली। इस शिलालेख में संस्कृत कवि ने अपनी छंद शक्ति के माध्यम से जो नख-शिख वर्णन किया है, वह अद्भुत है। कवि का नाम हम नहीं जानते। वह अनाम कवि सोमप्रभा को आज भी हमारे सामने साक्षात् प्रस्तुत कर देता है। राजा राणा मर मिटे। सोमप्रभा भी नहीं रही। उसका स्मरण आज प्रस्तर शिला पर मूर्तिमान हो उठता है।

चंबा शहर से पहले पुल पार कर ऊपर की ओर जाने वाली सड़क में लगभग बारह किलोमीटर पर साहो आता है। साहो परगने का साहो गाँव चन्द्रशेखर मंदिर के कारण प्रसिद्ध है और अपने परंपरागत लोकगीत तथा नृत्य के कारण। साहो का एक सांस्कृतिक दल प्रदेश के कई महत्त्वपूर्ण मेलों व कार्यक्रमों में आता रहा है। गाँव के ऊपर एक विश्रामगृह है वन विभाग का। गाँव नीचे है।

विश्रामगृह में स्थानीय लोकगायकों से भेंट हुई, जिन्होंने चंबा के कई गीत सुनाए। चंबा का मधुर संगीत आधुनिकता की चपेट से बचा हुआ है। जबकि कुछ पुराने गीत समय की रफतार को पकड़ने की कोशिश में अपना वास्तविक स्वरूप खो बैठे। ऐसा ही एक बहुत प्रचलित गीत है 'अलबेलुआ हो'''। कुछ लटका लगने के

कारण इस गीत की धुन बहुत बदली है। यहाँ इस गाने की असली धुन सुनने को मिली जो लंबी लय के उतार-चढ़ाव की विशेषता लिए हुए थी। इस धुन में आज की तेजी न होकर धीमी गरिमा थी। लंबी लय और एकदम से उतार-चढ़ाव चंबा के गानों की विशेषता है।

गाँव में वह गायिका थी जिसे हम मिलना चाहते थे।"रेलो देवी एक मशहूर गायिका रही चंबा की। असली गायन सुनना हो तो उसी से सुनिए, किसी ने बताया था।

उस दिन वह बीमार थी। बुखार से पीड़ित होने पर भी उसने हमें कुछ मनभावने गीत सुनाए जिनमें न आज जैसी तेजी थी, न बनावटी लटका। एक गीत गाकर वह बिस्तर में औंधी लेट जाती। गीतों में कुछ लोक से संबंधित थे, कुछ ऐतिहासिक।

एक गीत राजा श्रीसिंह (1844) के बीमार होने के विषय में था—'सीरिसिंघ कसरी सुणादे हो"।' श्रीसिंह बीमार सुना जाता है। उसे ठीक करने के लिए बैद्य बुलाए जाते हैं, आदि-आदि।

हमें राजा लोग गाने के लिए बुलाते थे," उसने बताया। 'कभी कुछ मिल भी जाता था। जब राजा यहाँ आते मंदिर में, तब भी हम लोग गाने के लिए जाते।"

गाँव के एक ओर ही है चन्द्रशेखर मंदिर। बाहर से साधारण स्लेट की छत वाला घर सा। भीतर पुरातन शिवलिंग। शिवलिंग एक बड़ी शिला के भीतर है। मंदिर का मुख्य द्वार आकर्षक है। स्तंभों में घटकलश तथा फूल अंकित हैं। दोनों द्वार स्तंभों में सुंदर नक्काशी हुई है। स्तंभ के निचले भाग से शिव की खड़ी मुद्रा में 2'3" प्रतिमा है। दाईं ओर मुद्रा क्रुद्ध रूप में तो बाईं ओर शांत। दाईं प्रतिमा के तीन मुख छह भुजाएँ हैं।

मंदिर प्रांगण जैसे दब-सा गया है। दूसरी ओर नंदी हैं लगभग 6"4"। लोग कहते हैं यहाँ बाढ़ आई जिससे प्रांगण दब गया, मंदिर को भी क्षति पहुँची। मंदिर का बरामदा और छत सन् 1900 में दुबारा बनाई गई।

लोगों का विश्वास है कि मंदिर साहिल वर्मन द्वारा बनाया गया। ऐसा एक स्थान पर वोगल ने भी लिखा है। यह बात शिलालेख के होने से सही नहीं लगती। यद्यपि लिपि के आधार पर शिलालेख को दसवीं शताब्दी का माना गया है जो साहिल वर्मन के किसी उत्तराधिकारी का समय था।

साहो के ठीक पार सराहन में छोटे से ग्राम मंदिर का महत्त्वपूर्ण शिलालेख इस समय भूरिसिंह संग्रहालय में है।

शिलालेख से स्पष्ट है कि चन्द्रशेखर मंदिर का निर्माण सात्यकि द्वारा किया गया जिसकी रानी का नाम सोमप्रभा था। सात्यकि चंबा के राजाओं की वंशावली में नहीं आता। अतः सात्यकि स्थानीय राणा था। सात्यकि द्वारा स्थापित शिव मंदिर

सराहन स्थित ग्राम मंदिर नहीं बल्कि साहो स्थित चन्द्रशेखर मंदिर माना गया है।

मई, 1908 में भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में सुरक्षित इस शिलालेख में दोनों ओर लेख हैं। 21" चौड़ी $6^{1/4}$" ऊँची शिला में दोनों ओर बाईस पंक्तियाँ हैं। जिनमें 21" लंबी पंक्तियाँ एक ओर $20^{1/2}$" लंबी नौ पंक्तियाँ दूसरी ओर हैं। अंतिम पंक्ति केवल $14^{1/2}$" है। अक्षरों का आकार 3/8" है। सामने का लेख पूरी तरह सुरक्षित है। पिछली ओर के दो ऊपरी कोने टूटे हुए हैं जिससे बारहवीं पंक्ति के पहले और अंतिम दो अक्षर नहीं हैं।

प्रारंभिक मंगलाचरण को छोड़ पूरा शिलालेख संस्कृत काव्य में है जिसमें बाईस छंद हैं। पहला और अंतिम आर्य छंद, दूसरा तथा तीसरा बसंत तिलक। शेष उपजाति छंद हैं। अट्ठारह और उन्नीस इन्द्रबज्र हैं। छंदों का चुनाव काव्य में मूल कथ्य के साथ संगति के लिए किया गया है। काव्यकार छंदों के ज्ञान से भली- भाँति परिचित था यद्यपि भारी विशेषणों को प्रयोग भी किया गया है।

सोमप्रभा से सुसज्जित अर्धनारीश्वर शिव का स्मरण करते हुए कवि ने सात्यकि और किष्किंधा नरेश की कन्या सोमप्रभा का वर्णन किया है। चंद्रमा-सी कांतिमान सोमप्रभा तीनों लोकों की सुंदरता लिए हुए थी। उसकी केशराशि, कपोल, लाल होंठ, हीरे से दाँत, कमल से हाथ, किरणों से नाखूनों का वर्णन करते हुए कवि ने सुंदर उपमाओं का प्रयोग किया है।

अंत में पर्वतपुत्री पार्वती की सोमप्रभा के साथ ओर सात्यकि की चन्द्रशेखर शिव के साथ मैत्री की कामना करते हुए सात्यकि द्वारा निर्मित शिवालय की ख्याति पृथ्वी में फैलने और सात्यकि द्वारा संपूर्ण पृथ्वी को जीतने की मंगल इच्छा की गई है।

विष्णु प्रतिमा

चन्द्रशेखर मंदिर के सामने एक छोटा मंदिर (8'11"×8'6") है। इस मंदिर के भीतर $1'8^{1/2}$" ऊँची विष्णु की पाषाण प्रतिमा है। त्रिमुखी विष्णु मुख के दोनों ओर सिंह और शूकर हैं। अतः यह नृसिंह और वराह अवतार के प्रतीक हैं। विष्णु की मूर्ति के दो हाथ चौरी लिए सेवकों के ऊपर हैं, तीसरे हाथ में कमल है। चौथा टूट चुका है। चौरी लिए सेवकों के पीछे दो सेवक और दिखते हैं। इस मूर्ति में छोटी-छोटी अन्य मूर्तियाँ भी खुदी हुई हैं। विष्णु मुख के दोनों और भी छोटी मूर्तियाँ अंकित हैं। इसके साथ विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियाँ भी दर्शाई गई हैं।

मूर्ति के आधार में चार पंक्तियों में लिखा है। अक्षरों का आकार 3/8" के लगभग है। लेख के अधिकांश अंश मिट चुके हैं। राजा या राणा का नाम भी मिट गया है।

मूल पाठ

···(परम) भट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-1.2 - (राज्य) 'संवत् 6··· 1.3 (नि) क-श्री-उकुकाणिन उकुकाण स्वामि-प्रति 1.4 (मा-प्रति) ष्ठिता रुद्र-संहिता।

In the 6th Year of the reign of the supreme prince, the king of Kings, the supreme lord... (this image of Ukukana Svamin was created by...) the illustrious Ukukana near (the temple of) Rudra.

सराहन प्रशस्ति

मूलपाठ

ओं स्वस्ति।।

जयति शिव एष ईशस्सोमप्रभया विभूषित-शरीरः।
सततानुरक्त-गौरी-देहार्ध-निबद्ध-सद्भावः।।1।।
आसीत्प्रशस्त-गुण-गौरव-वृत्त-यु
1.2 क्त पर्युल्लसद्विमलिमाकर-राजि-शुद्धः।
श्री-भोगटो भुवन-भूषण-भूत-मूर्तिस्सुव्यक्त-मौक्तिक-मणि-प्रतिम पृथिव्याम्।।2।।
तस्मादजा (1.3) यत जयन्त इवामरेन्द्रच्चन्द्रार्ध-शेखर-धरादिव कार्तिकेयः।
श्री-सात्यकि प्रणयि-दैन्य-निराकरिष्णुर्विष्णुर्यथा पृथु-गुणो विजितारि-चक्कः।।3।।
किष्कि (1.4) न्धिकाधीश-कुले प्रसूता सोमप्रभा नाम बभूव तस्य।
देवो जगद्भूषण-भूत-मूर्तिस्त्रिलोचनस्येव गिरीश-पुत्री।।4।।
अपूर्वमिन्दुम्प्रुविधाय वेधास्सदा-(1.5) स्फुरत्कान्ति-कलङ्क-मुक्तम्।
सम्पूर्ण-बिम्बं वदनं यदीयमभूत्तराङ्कण्टकिताङ्ग-यष्टिः।।5।।
नानाविधलङ्कृति-सन्निवेश-विशेष-रम्या गुणशालिनी या।
(1.6) मनोहरत्वं सुतरामवाप सचेतसां सत्कवि-भारतीव।।6।।
शृंगार-सिन्धो X किमियन्नु बेला किं वा मनोभू-तरु-मञ्जरी स्यात्।
वसन्त-राजस्य नु रा (1.7) ज्य-लक्ष्मी स्त्रैलोक्य-सौन्दर्य-सहाहृतिर्नु।।7।।
जगत्त्रयी-वश्य-विधान-दक्षा विद्या मनो-मोहनिकाभिधा नु।
इत्थञ्जनो जात-वितर्क-राशिर्यस्या न निश्चेतुमभू (1.8) त्समर्थः।।8।।
क्षणम्प्रमोदोल्लसया समेतो दृशा क्षणं विस्मय-गर्भया च।
क्षणं वितर्काकुल-रूपया च पश्यञ्जनो याम्बहुभावको भूत्।।9।।
या च द्विरेफ-द्युति-(1.9) केश-पाशम्बिभर्ति धात्रा कुसुमायुधाय।
जगत्त्रयी-मानस-संयमार्थङ्कृतम्प्रियङ्कर्तुमभीप्सुनेव।।10।।
समानत-भ्रू-धनुषा कटाक्ष-विक्षेप-बाणैर्ज (1.10) नता-मनांसि

आक्रान्तवत्या सुतरां विजित्य निराक्षयो कारि यया मनोभूः।।11।।
यस्या X कपोलौ परिपाण्डुराङ्गौ सौन्दर्य-कान्ति-द्रव-निर्भरौ च।
नेत्रोत्पला (1.11) नन्द-विधान-दक्षौ शशाङ्क बुद्धिङ्करुतो जनस्य।।12।।
रागान्वितेनाप्यधरस्य यस्या X काठिन्य-भाजा सुकुमार-मूर्तेः।
न पद्मरागेण रसोज्झितेन सुधा- (1.12) (र) सस्यन्दिन आपि साम्यम्।।13।।
यस्याश्च वज्रोज्ज्वल-दन्त-राजेर्मृणाल-कौमल्य-भुजा-लतायाः।
तुङ्गं स-लावण्य-जलं विभाति कुच-द्वन्दु (र्ग मि) (1.13) वात्मजस्य।।14।।
बाल-प्रवालारुण-भाव-भाजी कराम्बुजे यद्वदनेन्दु-भासा।
योगे पि यस्या प्रविकस्वरत्वन्धत्तो जने विमय-कार्यभूत्तत्।।15।।
(1.14) शुभ्रत्व-भाजा विमलात्मकेन प्रसर्पता याति मनोहरेण।
नखांशु-जालेन विभाति दिक्षु मुक्ता-कलापानिव विक्षिपन्ती।।16।।
यस्या (1.15) श्च मध्यं स्तन-भार-भृत्या मा भूद्विभङ्ग X कृशताकुलस्य।
एतस्य शङ्कामिति बिभ्रतेव धात्रा बली-दाम-चयेन बद्धम् ।।17।।
लीला-विलासादिक-(1.16) रत्न-कोश-सर्वस्व-सारं समवेत्य तत्स्थम्।
तद्रक्षणार्थम्मपकर-ध्वजेन मुद्रेव यस्या विदधे च नाभिः।।18।।
यस्या विशाले च नितम्ब-बिम्बे (1.17) दृष्टिर्भ्रमन्ती वितराम्मुमोह।
ऊरू च धत्ते म्बुज-गर्भ-गौरी सुसङ्गतौ साधु-जनो यथा या ।।19।।
पतेत्सुधासूति-कर-प्रतानो व्याकोश (1.18) ता-शालिनि पङ्कजे चेत्।
तस्यास्सरागे चरणाब्ज-युग्मे नखांशु-जालस्य तदोपमा स्यात्।। 20।।
अप्रच्यवं शैलजया सहा (1.19) स्यास्स्यात्सख्यमित्येतदसौ नरेन्द्रः।
अचीकरद्देककुलङ्कलङ्क-मुक्तेन्दु-लेखाङ्कित-शेखरस्य।। 21।।
जयतु हिमरश्मि-शेखर आ-(1.20) वसुधञ्चेदमस्तु देवकुलम्।
प्रख्याततमञ्जयतु च पृथ्वीं श्री-सात्यकिस्सकलाम्।। 22।।

अनुवाद

ऊँ कल्याण हो!

देवाधिदेव भगवान् शंकर जो चन्द्रप्रभा से भासमान हैं तथा जगज्जननी के पति के रूप में भी अर्धनारीश्वर रूप को धारण करने वाले हैं। उनकी जय हो। (1)

सारे संसार के प्राणियों में सुंदर, पृथ्वी के ऊपर मुक्ता मणि स्वरूप चंद्रमा की किरणों के समान समुज्ज्वल यशवाला श्री भोगट था। (2)

इन्द्र ने जैसे जयन्त को जन्म दिया, भगवान् शंकर से जैसे कुमार कार्तिकेय उत्पन्न हुए, वैसे ही दीन-दुखियों का दुःख हरने वाले एवं शत्रुओं के संहारक उससे

सात्यकि उत्पन्न हुए जो विष्णु से समान पराक्रमी थे। (3)

किष्किंधाधीश की पुत्री सोमप्रभा उनकी पत्नी हुई। जैसे माता गौरी भगवान् शिव की प्रिया और सर्वजगत् का भूषण है इसी प्रकार की थी यह सोमप्रभा। (4)

जब विधाता ने उसके मुखमंडल का निर्माण पूर्ण कर दिया तो चंद्रमा से भी वह सुंदर था क्योंकि कलंकहीन था तथा घटता-बढ़ता नहीं था। समान रूप से एकरस रहता था। तब विधाता का मन भी उस रूप पर मोहित हो गया। (5)

नाना अलंकारों से विभूषित एवं अनेक अलभ्य गुणों से युक्त वह रानी इसी प्रकार सबको आनंदित करती जैसे सुकवि की संस्कृत वाणी सहृदयों को आह्लादित करती है। (6)

क्या वह सौंदर्यसिंधु का प्रवाह थी अथवा कामवृक्ष की मंजरी या सौंदर्य राज्य की राजलक्ष्मी ? क्या तीनों लोकों की सुंदरता उसमें कहीं एक रूप में ही सिमटकर तो नहीं आ गई थी ! (7)

त्रिजगत को वश में करने की शक्ति रखने वाली या विद्या से विद्वानों, विज्ञों का मन मोहने वाली थी वह और जनसमाज इस प्रकार के अनेक तर्क-वितर्कों के कारण कुछ निश्चित न कर सका कि वह क्या है। (8)

जनसमाज कभी आनंद से पूर्ण दृष्टि से तो कभी आश्चर्यमयी दृष्टि से और कभी अनेक तर्क-वितर्कमयी दृष्टि से उसे देखकर अतिशय भावुक हो जाता था। (9)

मानो विधाता ने उसकी केशराशि भ्रमरों के समान अतिशय काली की जिससे कामदेव त्रिजगत का मोहन कर सके। (10)

अपनी झुकाई हुई भौंहों रूपी धनुष तथा दोनों नेत्र रूपी बाणों से जनमानस पर आक्रमण करके उसने कामदेव को भी निराश्रय कर दिया। अर्थात् कामदेव मनोभू या मन में रहता है पर उसने जन-जन के मनों पर अपने भौंहों रूपी धनुष से नेत्र बाणों का प्रहार कर दिया तो काम स्वयं ही निराश्रय हो गया। (11)

सोमप्रभा के कपोल बिलकुल श्वेत थे मानो सौंदर्य की शोभा के रस से उनका निर्माण हुआ हो। परिणामस्वरूप लोगों के नेत्र रूपी कमलों के लिए उसका मुख भ्रम पैदा करने लगा। (12)

सूर्य-कांतमणि या माणिक्य उसके अधरों के सामने कुछ भी नहीं लगते थे क्योंकि माणिक्य का रंग लाल तो होता है पर उसमे सोमप्रभा के होंठों की सरसता तथा कोमलता कहाँ ! (13)

उसके दाँत हीरों के समान चमकदार थे। उसकी भुजाएँ कमलदंड के समान कोमल और उसके स्तन कठोर ऊँचे रस भरे मानो कामदेव का विशाल प्रासाद हो। (14)

उसके कमलरूपी हाथ उसके चंद्र रूपी मुख के सामने जब होते तो लोगों को भ्रम होता कि चंद्र किरणों से कमललिकाएँ खिल रही हों। (15)

जब वह हाथ हिलाती तो ऐसा भ्रम होता लोगों के मन में कि वह मोतियों के समूह को लुटा रही है क्योंकि उसके नाखून मोतियों से भी सुंदर और चमकदार श्वेत-पीत वर्ण के थे। (16)

विधाता को भ्रम हुआ कि कुचभार से कहीं सोमप्रभा की कमर टूट न जाए। इसी कारण शायद उसकी कमर में त्रिवली डाल दी। (त्रिवली कमर में तीन रेखाकार वलियाँ होती हैं, जिसे स्त्री सौंदर्य का विशेष गुण माना जाता है)। (17)

सोमप्रभा के पास सौंदर्य, औदार्य, शील आदि अनेक गुण रूपी रत्न थे। कवि कल्पना करता है कि मानो इन सभी रत्नों को सुरक्षित स्थान में गुप्त रखने के लिए कामदेव ने उसे गुप्त नाभि प्रदान की। (गुप्त अंदर की ओर झुकी हुई नाभि भी सौंदर्य का लक्षण है)। (18)

उसका नितंब भाग विशाल होने के कारण दृष्टिमोहक था। उसकी दोनों जाँघें कमलपुष्प के मध्यवर्ण के समान श्वेत-पीत थीं मानो वे दो साधु पुरुष हों जिनकी दृष्टि में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। (19)

खिलते हुए कमल के ऊपर जब चंद्रमा की किरणों का स्पर्श होता है तो तब जो दृश्य बनता है वही दृश्य सोमप्रभा के चरण कमलों पर जब उसके चरणनख रूपी चंद्रमा की किरणें पड़ती हैं तब बनता है। (ये सब लक्षण सामुद्रिक शास्त्रानुसार महान् सौंदर्य के हैं)। (20)

भगवान् शंकर के मस्तक पर अर्धेंदु अर्थात् आधा चंद्रमा होता है। कवि कल्पना करता है कि क्या दुर्गा और सोमप्रभा की इतनी गहरी मित्रता रही होगी और इसी कारण राजकुमार सात्यकि ने इस मंदिर का निर्माण कराया होगा जिसमें शिव के मस्तक पर केवल अर्धाकार चंद्रमा को अंकित किया गया है, जिसमें कलंक अर्थात् कालापन नहीं। (21)

भगवान् शंकर की जयकार हो जिनके मस्तक पर चंद्रमा शोभायमान है। यह मंदिर सारे संसार में प्रसिद्ध हो। श्री सात्यकि महाराज समस्त भूमंडल के ऊपर विजय प्राप्त करें। (22)

नुआल़ा

'नुआल़ा' गद्दी जनजाति का एक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। इसे गुसैंतण, गुसैंइ या दस्यूंद भी कहा जाता है। गुसैंतण आदि नुआल़े से छोटे स्तर के उत्सव हैं। ये नुआल़े के ही संक्षिप्त रूप हैं।

नुआल़े का सही अर्थ ज्ञात नहीं है। 'नव-आलय' या नया घर बनने के उपलक्ष्य में किया जाने वाला उत्सव नुआल़ा कहलाता है। इस उत्सव में नौ व्यक्ति–पुरोहित, जजमान, जोगी, कोटवाल, बटवाल, चार बंदे (गायक) होते हैं, अतः नुआल़ा कहलाता है। आम बोलचाल में भी कहा जाता है 'नौ मन्ह नुआल़ा' अर्थात् नौ मनुष्यों से नुआल़ा। इस उत्सव में ऊन वाला पशु बलि किया जाता है। बकरे की बलि न दी जाकर ऊन वाले मेंढे की बलि दी जाती है। ऊनी पशु को 'उनालां' कहते हैं। मेंढे का सिर पूजन में रखा जाता है। ऊन की माला बनाई जाती है और पूजन सामग्री में ऊन प्रयोग में लाई जाती है। अतः उनालां से भी नुआल़ा की व्युत्पत्ति मानी जाती है।

उत्सव का आयोजन

नुआल़े का आयोजन नवगृह प्रवेश, पुत्र उत्पत्ति, नई फसल आने पर, किसी मनोकामना की पूर्ति पर, किसी शुभ कार्य के समय पर किया जाता है। कोई सुक्खण करने या कामना करने तथा उसके लिए नुआल़ा करने के संकल्प के बाद नुआल़ा किया जाता है।

यह आयोजन घर के भीतर, मंदिर में या किसी तीर्थ स्थल पर किया जाता है। इसके आयोजन के लिये शुभ घड़ी का मुहूर्त निकाला जाता है। शिवरात्रि इसके लिए पवित्र दिन है। श्रावण मास उपयुक्त महीना है। छोटे होते दिनों (21 जून से 22 दिसंबर) मलमास (जब शुक्र तारा डूब जाता है), काले महीने (भादों, कार्तिक, चैत्र) तथा पंजकों (अशुभ नक्षत्र के पाँच दिन) में नुआल़ा वर्जित है।। जिस घर में किसी की मृत्यु हुई हो, वहाँ भी नुआल़ा नहीं किया जाता।

उत्सव में आवश्यक केवल नौ ही व्यक्ति होते हैं। अतः इसे संक्षिप्त से संक्षिप्त तथा विस्तृत से विस्तृत किया जा सकता है। इसे साधारण से साधारण परिवार भी करवा सकते हैं। बलि के लिए भेड़ा तो सबके पास होता ही है। नुआल़े का आयोजन बड़े से बड़ा भी हो सकता है।

विधि विधान

पर्वत और शिव का अटूट संबंध है। पर्वतीय संस्कृति शैव संस्कृति रही है। हिमाचल में सत्रहवीं शताब्दी के आसपास वैष्णव धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। राज्याश्रय से पनपा वैष्णव धर्म इतनी तेजी से फैला कि शैव उत्सव गौण हो गए। कुल्लू, मंडी सिरमौर तथा चंबा में राजाओं के वैष्णव होने से शैव पृष्ठभूमि में चले गए किंतु इन्हें पूर्णतया पीछे नहीं किया जा सका। चंबा में यद्यपि लक्ष्मीनारायण मंदिर परिसर बना, राजा वैष्णव हुआ तथापि योगी या जोगी जनमानस में छाए रहे।

नुआला शिव पूजन का पर्व है जिसमें शैव तथा नाथ संप्रदाय की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। नाथ पथ के कानफटे योगी कुछ समय बाद 'जोगी' कहलाए। नुआले का दान योगी या जोगियों को दिया जाता था। जोगी न होने की स्थिति में भानजा, भतीजा, पुरोहित या दान लेता है।

नुआले के आयोजन में जोगी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सबसे पहले जोगी अपनी परंपरागत वेशभूषा में आ पहुँचता है। कान में मुद्रा, गले में मेखला सिर पर भगवा पगड़ी, धोती पहने जोगी पहुँच जाता है। जोगी के पास दवात्रा या दपात्रा, कंसी, काहन-पौंहल, नांदी, साँगल, धूपमाला, धूपपात्र आदि सामग्री होती है। उसके पहुँचते ही मंडप बनाने का कार्य प्रारंभ हो जाता है।

नुआले के दिन सभी नौ व्यक्तियों-आयोजक या जजमान, पुरोहित, जोगी, कोरवाल, बटवाल तथा चार बंदे (गायक) को व्रत रखना होता है। जोगी, पुरोहित तथा गायकों के आते ही पैर धुलवाए जाते हैं। उन्हें उचित स्थान पर बिठाकर दान-दक्षिणा दी जाती है। जोगी नांद बजाता है, शिव की जय जयकार करता है और मंडप बनाने के लिए सामग्री लेता जाता है।

मंडप को 'मंदला' कहते हैं। पुरोहित आटे की रेखाएँ बनाकर मंडप बनाता है। मंडप में 32, 36 या 84 खाने या 'कोठे' बनाए जाते हैं। लगभग एक वर्ग गज भूमि को पहले से गोबर से लीप-पोतकर तैयार रखा जाता है। मंडप के बीचोबीच कैलास बनाया जाता है। बीच में छत के ऊपर एक ऊनी डोरी लटकाई जाती है जो पुष्पमाला लटकाने के लिए होती है। आटे के कैलास, चार वेद बनाए जाते हैं। कैलास के आगे शिव-पार्वती की प्रतिमा और मेवे आदि रखे जाते हैं। कोष्ठों में चावल, माश, नमक, बब्बरू रखे जाते हैं। छत से फूलमालाएँ लटकाई जाती हैं।

मंडप के दाईं ओर दस्यूंद का पात्र रखा जाता है। दस्यूंद में दस माणी, दस अंजली या दस मुट्ठी अन्न दान के लिए रखा जा सकता है। माणी लकड़ी का एक पात्र होता है जिसमें लगभग दो किलो अनाज आता है। जजमान अपनी श्रद्धा तथा शक्ति अनुसार दस्युंद में अन्न डालता है। दस्यूंद के साथ दीपक तथा खुवात्रा रखते हैं। धूप पात्र में धूप जलाया जाता है। दस्यूंह तथा दूसरे पात्रों का दान सिर को ढाँपकर, दाहिना घुटना भूमि में लगाकर, मुँह में हरा तिनका रखकर किया जाता है।

मंडप बनाते हुए महिलाएँ मंगलगान गाती हैं। वाद्य बजाए जाते हैं। मंडप बनने पर पुरोहित इसे जीवन दान देता है।

मंडप की प्रथम आरती के बाद मेंढे की बलि दी जाती है। मेंढे का सिर और दाहिना बाहु या बाजू मंडप पर चढ़ाया जाता है। घर के चारों ओर दूध और लस्सी की धारा गिराई जाती है बब्बरू फेंके जाते हैं। जोगी के लिए अमल पाणी लिया जाता है।

जोगी कटवाल और बटवाल को नियुक्त करता है। ये दोनों कामगर जोगी का रात भर काम-काज में हाथ बँटाते हैं।

चेला परंपरागत वेशभूषा में बैठता है। चोला-डोरा टोपी पहले चेला कमर में छड़ी और साँप की मूर्तियाँ रखता है। साँगल तथा कटार भी रखे रखता है। कुछ चेले पौंहल बजाते हैं।

जजमान हाथ जोड़े चेले के आगे खड़ा हो आयोजन के लिए स्वीकृति माँगता है। चेले में जब शिव की शक्ति भीतर संचारित होने लगती है तो जोगी जयकारा बुलाने लगता है। जोगी मणिमहेश, कैलास, भरमौर, केलांग वजीर, शेष नाग आदि की जै जनता से बुलवाता है।

इस जय-जयकार से चेला उत्तेजित हो उठता है और कमर तक नंगा हो जाता है। उसकी जटाएँ बिखर जाती हैं। कटार हाथ में लिए वह कमर, बाजू और जिह्वा पर चलाता है जिसका उस पर कोई असर नहीं होता। कुछ चेले नंगे नहीं होते और न ही कटार के साथ खेलते हैं। वे साँगल लेकर अपने को मारते हैं। कई जगह चेला आवेश में आकर भविष्यवाणियाँ भी करता है लोगों का जादू-टोने से उपचार करता है।

चेले में शक्ति का प्रवेश होने पर आवेश में आना 'घ्रिंगणा' कहलाता है। घ्रिंगणे पर चेले कटार, साँगल से खेलते हैं। बिच्छू बूटी खाते हैं। बलि पशु का खून पीते हैं, शराब पीते हैं।

चेलों के आवेश का दृश्य समाप्त होने पर भोग लगता है, आरती गाई जाती है। लोगों को भोज खिलाया जाता है। यह सब आधी रात तक पूरा हो पाता है।

इस सारे आयोजन में चार बंदों या गायकों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। चार गायक दो-दो की टोली में गाते हैं। पहले गाने वाले 'मूरही' कहलाते हैं जिनके पास ढोलक और कांसी होती है। दूसरे दो वाक्य दोहराते हैं। इनके पास नगाड़ा और थाल होता है। इन्हें 'पिच्छयाड़त' कहते हैं। ये लोग 'ऐंचली' गाते हैं जो शिव विवाह है। चेलों के नाच के बाद जब पुनः ऐंचली गाई जाती है तो उसमें चंदरौली नाचती है। प्रातः होने पर भ्यागड़ा गाया जाता है। आरती के बाद जोगी माला को आधी लपेटकर कैलास की जगह कुंभ रखकर वापस चला जाता है। यह आयोजन पूरी रात चलता है।

नुआले के गीत में मनुष्य के साथ ब्रह्मा के वार्तालाप का उल्लेख है।

ब्रह्मा ने पूछा—"मानव! तू अब क्या खाएगा, क्या कमाएगा और अपने जीवनदाता को क्या अर्पित करेगा।" इस पर मानव ने उत्तर दिया—"मैं बहुत कमाऊँगा और थोड़ा

खाऊँगा। कुछ आपके अर्पण भी करूँगा।" साढ़े तीन हाथ के मानव ने निचले प्रदेश का जोगी सिद्ध बुलाया, गज भर का मंडप बनाया। उसमें आटा, चावल, माश, बब्बरू आदि कच्चा पक्का अन्न भरा, गगन में फूल माला लटकाई। अंत में पशु बलि दी और प्रार्थना की कि हे स्वामी! मेरा पितृ ऋण स्वीकारो।

'ऐंचली' एक लंबा गीत या गाथा है। इसमें शिव विवाह, रामायण, महाभारत, गाए जाते हैं। कुछ धार्मिक आख्यान जैसे हरिश्चंद्र, गोपीचंद, मोरध्वज, नल- दमयंती के जीवन-चरित्र भी गाकर सुनाए जाते हैं।

शिव विवाह नुआले के समय केवल रात को गाया जाता है। भयागड़ा प्रातः काल का गायन है। रामायण रात या दिन दोनों समय गाई जा सकती है। महाभारत बारह बजे के बाद घर के बाहर या आँगन में गाई जाती है। नुआले के अवसर पर महिलाएँ घुरेई गाती हैं।

वाद्य

नाद

यह पशुओं के सींग से बना वाद्य है जिसे जोगी शिव के आह्वान के लिए बजाता है। जोगी या साधु सींग के इस वाद्य को साथ लिए चलते हैं। जिन जोगियों के पास नाद न हो वे अपने गले डमरू लटकाए रहते हैं। इस डमरू को नादी कहते हैं। नाद ब्रह्मा या शब्द का स्वरूप भी है।

दुबात्रा

दुबात्रा या दुपात्रा, जैसे कि नाम से स्पष्ट है, दो पात्रों वाला वाद्य है। इसे कींगरी भी कहते हैं जो वीणा का एक प्रकार है। एक लकड़ी पर तारें कसकर दो घिये या लौकी के खोल लगाए जाते हैं। लोककथा है कि पार्वती ने अपनी सौतन गंगा को शिव की जटा से बाहर निकालने के लिए शिव को नृत्य करने पर आकर्षित करने हेतु यह वाद्य बनाया। पार्वती ने अपनी बाँह को काटकर लकड़ी बनाई। बालों से तारें बनाईं। सफेद कौड़ी के जगह दाँत लगाए। स्तन काटकर पात्र बनाए।

काहल

ताँबे या पीतल का पाँच-छह फुट लंबा शहनाई के आकार यह वाद्य काहल कहलाता है। इस वाद्य का प्रयोग युद्ध के समय किया जाता था। अब यह जातर तथा अन्य धार्मिक उत्सवों में बजाया जाता है।

पौंहल

यह वाद्य डमरू के आकार का होता है। यह ढोलक की भाँति दोनों

ओर से चमड़े से मढ़ा जाता है किंतु बीच का भाग डमरू की भाँति पतला होता है। इसे ताँबे या पीतल से बनाया जाता है। जोगी इसे शिव पूजन के समय बजाते हैं।

नगाड़ा

नगाड़ा ताँबे या पीतल का होता है। इस क्षेत्र में कई जगह नगाड़ा मिट्टी से भी बनाया जाता है। नगाड़े दो होते हैं। जिनमें एक को 'ढग्गा' और दूसरे को 'टंणकणु' कहा जाता है। एक मोटा स्वर और दूसरा पतला स्वर निकालता है। इसे बजाने वाले को नगारची, ढाढी, ढौंसी कहते हैं। बजाने वाली छड़ियों को चोब कहते हैं।

घड़ा थाल

यह वाद्य मिट्टी का घड़ा और काँसे का थाल है जिसे संयुक्त रूप में बजाया जाता है। इसे एंचली गाते हुए पिछवाड़ गायक बजाते हैं। घड़ा थाली एक महत्त्वपूर्ण लोक वाद्य है।

कंसी

छोटे आकार की काँसे की मँजीरा या झाँझ को कंसी कहते हैं। इसका प्रयोग गाथा गायन के समय किया जाता है।

शहनाई

शहनाई आम शहनाई की तरह होती है किंतु यहाँ इसका आकार छोटा होता है। चंबा की ओर शहनाई अपेक्षाकृत मोटा स्वर निकालती है।

नुआले के अवसर पर गाथा गायन

न थीए धरणी न थीए गासा, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।
न थीए चन्द्र न थीए सूरज, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।
न थीए तारा न थीए ब्याहणु, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।
न थीए पौन न थीए पाणी, तां थीआ न्हेर गुवाऽऽरा न।

दैहणे अंगे रि सामी मैल कढ़ाइ ऐ, जिसा केरी धरणी बणाऽऽईन।
बौएं अंगे रि सामी मैल कढ़ाई ऐ, जिसा केरी मनसो बणाऽऽई न।
बरमा पुछदा बिष्णुए तांह ऐ, कुणी लैणे धरणी रे भाऽऽरे न?
बिष्णु बोलदा बरमे ताहं ऐ जिनी लैणे धरणी रे भाऽऽरे न।
नाज गुरु भछणा मनसो ब्याहणी तिनी लैणे धरणी रे भाऽऽरे न।

पहले धरती कि पहले गास ? पहले धरती पिचे होए गासा।
पहले चन्द्र कि पहले सूरज ? पहले चन्द्र पिचे होए सूरजा।

पहले तारा कि पहले ब्याहणु ? पहले तारा पिचे होए व्याहणु।
पहले पौन कि पहले पाणी ? पहल पौन पिचे होए पाणी।
पहले गुरु कि पहले चेला ? पहले गुरु पिचे होए चेला।

संझ-संझ होई काला बेला ए हां, डंगरा ढपाणे रा बेला ए हां।
संझ-संझ होई काला बेला ए हां, बच्छू जो पिआणे रा बेला ए हां।
संझ-संझ होई काला बेला ए हां, गौआं दुहाणे रा बेला ऐ हां।
संझ-संझ होई काला बेला ए हां, धूप-धूखाणे रा बेला ए हां।

परागबड़ी ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
धौलू बैला ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
बज्रसिला ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
बज्रबटुए ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
सेसनागा ता पर आया हो, धन साहेब मेरा।
सेसनागा लिपटाए हो, धन साहेब मेरा।

परागबड़ी पणमेसर बैंहदे, चौंह चक्के रूली जांदा पाऽऽणी न।
पराग बड़ी पणमेसर बैहंदे, मुनख उपाऽऽणा ला ऽऽ गया न।
सुन्ने रुप्पे रा बन्दा मुनख उपाया, भर बन्देआ हिंयुंगताऽऽर न।
नि बन्दा हिलदा न बन्दा जुलदा, नि बन्दे भरी हिंयुंगताऽऽर न।
... हिंयुंगताऽऽर न।

बामी मिट्‌टी रा बन्दा मुनख उपाया, जिनी बन्दे भरी हिंयुगताऽऽर न।
नौगजिया बन्दा मुनख उपाया बन्ह बन्देआ बो घर बाऽऽऽर न।
त्रै-सौ सठ बरहियां उम्बर थोड़ी, किहां बन्हणे घर बोऽऽर न।
रैईआं-कलैईं हत्था सोठियां लेन बसन हियुंआ लियां धाऽऽऽरन।
नौ गजिया बो बन्दा छपन करण्या, घ्रिठमुठलु रा पैहरा आ ऽऽ ऽऽ या न।
घ्रिठमुठलु बन्दे मुनख उपाये नै, जिन्हा कैसी रचना रचाऽऽऽई न।
धौलु धाये रि केरि बणण धणोईया, गुम्बरे रे बणी जान्दे काऽऽऽ ध्न न।
सिंहाण्डली बारे-पारे खेलण लड़ाइयां, मण्डियां दे लग जान्दे ठा ऽऽऽले न।
घ्रिठमुठलु बन्दे छपन कराए नै, साढ़ त्रैहत्था बन्दा उपाऽऽऽया न।

के-के खाला के बो कमाला के मेरे लेखे तू लाऽऽ ला न।
थोड़ा थोड़ा खाला मता कमाला, थोड़ा मैं तेरे लेखे लाऽऽला न।
साढ़ त्रै हत्था बन्दा मुनख उपाया, जिनी तेरा दितेभा नुआऽऽला न।
झिके बो देसे रा कोई सिद्दू जोगी आया, औंदे जोगी गजगंगाऽऽया न।।
गज भरी-भरी चौंका दुआया, आटे-कूटे वो लिखाऽऽया न।

चौले-माहे तेरा मण्डल भराया, बड़े बब्बरूये वो भराऽऽया न।।
धरणी पर तेरा मण्डल लिखाम, सुरगे टंगी फूल माऽऽला न।
पसुए घाए मुण्डी मण्डल चढ़ाई, लै सामी अपणा उघऽऽर न।।

घटा पिच्चे सोभदा सिदू जोगी।
घटा पिच्चे सोभदा दीआ-धूप।।
घटा पिच्चे सोभदा तांब्र पत्तर।
घटा पिच्चे सोभदे चार बन्दे।।

तां धामां पेई हो ऽऽ कैलास ऽऽ अप्पु सामी कर दे ऽऽ हास्श्रृंगार।
चोली लाई हो ऽऽ फिरकोली ऽऽ चिट्टा लांदा चोला ऽऽ काला डोरा।।
टोपी लाई ऐ हो ऽऽ कुक्ड़याली ऽऽ भौंर रथे री हो।।
उसबारी ऽऽ।।

अप्पु सामी आए हो ऽऽ मेरे जगा जो ऽऽ।
अप्पु सामी आए हो ऽऽ लम्मे गोहरे ऽऽ।।
फेरी घुमाई साईंयां ऽऽ तेरे जोड़े ऽऽ।
अप्पु सामी आए हो ऽऽ मेरे सरणा ऽऽ।।
फेरी घुमाई साईंयां ऽऽ कंगणा ऽऽ।।

झिके बो देसे रि चंगी मालण आई ऐ।
जिसा गूंदी ऐ फुल्लमा ऽऽऽ ला न।।
सुन्ने केरिए सूईए रुप्पड़े लाए धागे।
मच्छी कंडे माला गुन्दा ऽऽऽई न।।
कौडीए कलिए चुरासीए लड़िए।
मच्छी कंडे माला गुन्दा ऽऽऽ ई न।।
धरणी पर बो तेरा मण्डल लिखाया।
सुरगे टंगी को फुल्लमा ऽऽऽ ल न।।
पसुए घाए मुण्डी मण्डला चढाई।
लै साभी अपणा उधाड ऽऽ र न।।

गौरा पेटा मंह पीड़ पुकारी हो ऽऽ नच्चे धूडूआ करेआं मेरी कारी होऽऽ।
होर नचदे ते तू किनी नचदा ऽऽ किहां नचण नि बाजे बजे मेरे होऽऽ।।
गौरां बांह भन्नी बीण बणाई हो ऽऽ गौरा बीण त्रोड़ी तारां चढाई होऽऽ।
गौरां दंद भन्नी कौड़ी चढ़ाई हो ऽऽ गौरा मम्मे त्रोड़ी पत्र चढाए होऽऽ।
नच्चे धूडुआ बाजे बज्जे तेरे होऽऽ धूडू नचदा जटा वो खलारी होऽऽ।
गंगा जटा किच्छा बाहरा जो अहि ऽऽ गौरां पुच्छदी तू सौंकण मेरी होऽऽ।

गंगा-गौरा सरोसर लड़ी हो ऽऽ चुट्टे हार चुरासियां लड़ी हो ऽऽ।

घरा-भला घरा हण्डरा बो गुसा ऽऽऽ ई आं,
सिरा जट्टड़ियां दे या ऽऽ रे।
उसता घरा बो साहब मेरा भा ऽऽऽ या,
जिस घरा होन सुलच्छणियां ना ऽऽ रां।
उस ता घरा बो साहब मेरा आ ऽऽऽ या,
जिस घरा बालक खेलदा पसा ऽऽ री।
उस जा घरा बो साहब मेरा आ ऽऽऽ या,
जिस घरा दीपक बलदा पसा ऽऽ री।

पहली भला न्यूंदर दे मेरे बरमा ऽऽ हो ऽ।
धरतरीया कने गासा बो ताईं ऽऽ हो ऽ।
न्यूंदर पाई करी एहओ बोलणा ऽऽ हो ऽ।
तुसां भला जानी रा भरा थम्मणा ऽऽ हो।।
दुई भला न्यूंदर दे मेरे बरमा ऽऽ हो ऽ।
नौण-भला पाठीहारे बो ताईं ऽऽ हो ऽ।।
न्यूंदर पाई करी एहओ बोलणा ऽऽ हो ऽ।
तुसां मेरी जानी जो पाणी भरणा ऽऽ हो।।
सत्रवीं न्यूदर दे मेरे बरमा ऽऽ हो ऽ।
बाली-सुगरीव हणुमाना ताईं ऽऽ हो ऽ।
न्यूंदर पाई करी एहओ बोलणा ऽऽ हो ऽ।
तुसां भला जानी रे अग्गे चलणा ऽऽ हो ऽ।

पहला भला तेरा थान शिवजी कांसी ते दुआ कसमीरा हो।
त्रिआ भला तेरा थान सिवजी पधरेआ भरमौरा ऽऽऽ हो।
अप्पु बस्सदे कैलासा सारी दुनिया धंधे लाई ऐ हो।
केलंगा गदेटा मेरे आऽथहेड़ देउना बजीरा ऽऽ हो।
चिट्टा भला लान्दा चोला सामी काला बन्धा डोरा ऽऽ हो।
लकडुए बनधा दराट सामी भेडलिया ऽ चुगांदा ऽ हो।
भेडलियां चुगांरा सामी सियूहंडलियां से लांदा ऽ हो।
कुगती केरे जोता सामी लौहलिए से आये ऽ हो।
लौहले दे लौहेलियो ऽ देओ लौहले रा बसेख हो।
कुण-कुण भला राजी-बाजी कुण भला कुण बो मुए हो।
होर ता सब बो राजी-बाजी सुन्नी देही भोटली मुई ऐ हो।
तुंधे भला मुलखा मेरिओ भैंणो खाणा के खांदीऽहो।

धूड़ी केरे रोटलु भैंणे SS भंगी केरा साग SS हो।
तुधे भला मुलखा मेरिओ भैंणो लाणा के लांदी SS हो।
होच्छियां-होच्छियां भोटली भैंणो लम्मियां सरा दिया वीणा हो।

सिब मेरे वर्धी चले S वर्धी चलेSसिव वर्धे कैलासा सिव मेरे वर्धी चलेS।
खड़ा उठ घरे दे महोईया-शिव मेरे वर्धी चले S।
चिडुए चुर-भुर लाया-सिव मेरे वर्धी चले S।
फिरी बो कधाड़ी जो ईणा-सिव मेरे वर्धी चले S।
बरहे रोजे फिरी आई जाला-सिव मेरे वर्धी चले S।
भंगी लेऔ पुतरे रि जोड़ी-सिव मेरे वर्धी चले S।

हुकमता करो मेरे बरमा भाऊ जो हो SS।
अघु मेरे सामी हाजिर सदेआ SS।।
तुसां भला जाणा हट्टी-बजारा जो हो SS।
ब्याहु भला करे कपड़े अणणे SS।।
धौले भला मैले बलद खेददा हो हो SS।
हड़िडयां बो बजांरा जो आया हो SS।
खोल कराड़ा हटड़ी अपणी जो हो SS।
ब्याह भला केरी खरीद करणी हो SS।।
सार-उधारी मैं नहीं करदा हो हो SS।
रोक रुपैय्या नगद वे लैयो हो हो SS।।
धौले भला मैले बलद बदे हो हो SS।
हटी करी सामी रे मैहला जो आया SS।।

औलु-मसबें पाणी भरेया हो SS।
सुन रे तताहड़ ए पाणी तपेया हो SS।।
चनणे री चौकी अंगणुए डाही हो SS।
अप्पु मेरे सामी जो न्हौणा पेआ हो SS।।
सत सुहागिनी बुटणा मलदियां हो SS।
अप्पु मेरे सामी जो न्हौण पेआ हो SS।।
केसरी भाभो बुटणा मलदी है हो SS।
अंग मली-मली न्हाया राजेआ SS।।

गुरु अपणे केरी सेवा करला हो SS।
तां तिजो जनेउए मिलणा हो SS।।
माता-पिता केरी सेवा करला हो SS।

तां तिजो जनेउए मिलणा हो ऽऽ।।
सभ सभ तीर्थ न्हाला राजेआ हो ऽऽ।
तां तिजो जनेउए मिलणा होऽऽ।।
भुखे-भंगाली जो भोजन देला हो ऽऽ।
तां तिजो जनेउए मिलणा हो ऽऽ।।
नंगे-निर्वाणी जो कपड़े देला हो ऽऽ।
तां तिजो जनेउए मिलणा हो ऽऽ।।

माताः कुनां तिजो जोगा दित्तेआ ऽ हल्केआ जोगणुआ ऽ।
कुनी तेरा मुण्ड मुन्नेया ऽ कुनी तेरे कनडु छेदाए।
शिव : गुरु मेरे जोग दित्तेआ ऽ कातिए कनडु छेदाए।
माता : मरी बो जाओ गुरु तेरा ऽ हल्के जो जो जोग दित्तेआ।
शिव : गुरु मेरे गाली न देआं ऽ गुरु मेरा बुरा बुझदे।
माताः मरी बो जाओ गुरु तेरा ऽ हल्के रे कनडु छेदाए।
शिव :. गुरु मेरे गाली न देआं ऽ गुरू मेरा बुरा बुझदे।
माता : मरी बो जाओ गुरु तेरा ऽ हल्के जो जोग दित्तेआ।

दे ओ मेरी लोटकियां ऽ लोटकियां ऽ
वही तीर्थ नहाणे जो जाणा ऽ।
- गंगा-गया नहाणी ऽ।
- कृस्ना-कबेरी नहाणी ऽ।
- कासी-कसमीर न्हाणा ऽ।
- हटदे मट्टण न्हाणा ऽ।
- सिवकरोत्री नहाणी ऽ।
- नहाई-धोई पाप चुकाणा ऽ।
- सभ-सभ तीर्थ नहाणे ऽ।

गुलबंद ने केरी सुथण सोभि ऐ ऽऽ।
रेश्मियां दा नाड़ा राजेआ ऽऽ।
अप्पु मेरे सामी जो कपड़े निचढ़दे ऽऽ।
माता चोलु-घुलोलु दसेया ऽऽ।
वोसकिए केरा कुर्ता सोभेआ ऽऽ।
जरकासिए केरा जामा साजेआ ऽऽ।
बिजली भैण सेहरे सोभि ए ऽऽ।
चन्द कने सूरज मत्थे भखन ऽऽ।।

नौ लाख तारे जाये लगना ऽऽ।
सेस नाग जौंली लगना ऽऽ।।

केसरो भाभी कज़ला बाहेआ हो ऽऽ।
अप्पु भेरा सामी रुपे भरेआ हो ऽऽ।।
इक भला हाखी कज़ला बाहेआ हो ऽऽ।
दुई भला हाखी मटाका भारेआ हो ऽऽ।।
अप्पु मेरा सामी अरज करदा हो ऽऽ।
केसरो भाभी जो मनाणा लगेआ हो ऽऽ।।
कासी कसमीर देला देरणुआ हो ऽऽ।
तां दुई हाखी कज़ला बाहणा हो ऽऽ।।
बिजली भैण बात झुलाई ए हो ऽऽ।
बात झुलाई दे मेरेआ बीरा हो ऽऽ।।

एह फुल्ल केसर दा केसरदा ऽऽ।
वहीबसाख महीने राहेया एह फुल केसर दा ऽऽ।।
वहीजैठ महीने जमेया एह फुल केसर दा ऽऽ।
- *हाड़ महने फुलेआ एक फुल केसर दा ऽऽ।।*
- *सौण महीने पकेआ एह फुल केसर दा ऽऽ।*
- *भादरो महीने चुणेआ एह फुल केसर दा ऽऽ।।*
- *निरसे-निरसे धसेआ एह फुल केसर दा ऽऽ।*
- *लाड़े रे मत्थे पर लाया एह फुल केसर दा ऽऽ।।*

बाहर जाओ जिंदडों ऽऽ इन्दर राजे के कंम लाया ऽ।
धारा कंधारा भलाबो ऽऽ टल्ले-टल्ले बदलिआं छाईयां ऽ।।
नेला देसा भलाबो ऽऽ जिन्हा देसा पेआ घमघोरा ऽ।
धारा-कंधारा सामिआ ऽऽ रिमझिम बरखेआ लगी है ऽ।
नेला देसा भला बो ऽऽ फुही-फुही सीणा लगो रा ऽ।
रैंईआ-कलैई डूबिआं ऽऽ तोस डुबे सणे चोटी ऽ।

थोड़े जिन्दड़ तेरे थोड़े भला हिना दुधाधारी।
थोड़े जिन्दड़ तेरे थोड़े भला हिना मांसाहारी।
थोड़े जिन्दड़ तेरे थोड़े भला हिना धूंआधारी।
थोड़े जिन्दड़ तेरे थोड़े भला हिना निरवाणी।
थोड़े जिन्दड़ तेरे थोड़े भला हिना फलाहारी।
थोड़े जिन्दड़ तेरे थोड़े भला हिना गड़ाड़ी।

दुधाधारियो भाईयो; दुध बो पिओ चलो जानिआ ऽ दुधाधारियो भाईयो ऽ।
दुधाधारी रे ताई ऐ; सुरगे री सोरभा मंगाई हो ऽ दुधाधारी रे ताईं ऐं ऽऽ।।
मांसाहारियों भाईयो; मांस बो खाओ चलो जानिआ ऽ मासाहारियो भाईयो ऽ।
मासाहारी रे ताईं ऐ; कजली रे हिरण मंगाए हो ऽ मासाहरी रे ताईं ऐं ऽऽ।।

थोड़े भला जिंदडु रस्सिआं बटना ऽऽ।
थोड़े भला जिंदडु पूलां गुढना ऽऽ।।
थोड़े भला जिंदडु बगड़ बटना ऽऽ।
थोड़े भला जिंदडु जड़लां गुडना ऽऽ।।
अग्गे भला जिंदडु चोटी डूबना ऽऽ।
पिचे भला जिंदडु लक्का डूबना ऽऽ।।
अग्गे भला जिंदडु धूड़ रण के ऽऽ।
पिचे भला जिंदडु खिड़खिड़ हस्सना।।
पर्वत चढ़ी तेरी जानी ईसरा ऽऽ।
सुमुंदर कंढिआ अग्गे जो आई ऐ ऽऽ।।

हुकम ता करो सोसणुआ वीरा ऽऽ।
अप्पु मेरे सामी हाजर सरेआ ऽऽ।।
धाय-पल्यामा भूलिआं दौड़ियां ऽऽ।
अबे भला चेता सोसणु दा आया ऽऽ।।
समुंदर कंढिया जाणा बो बीरा ऽऽ।
इस भला कंभे हज़ार सदेआ ऽऽ।।
समुंदर राजे जो एह ओ बोलणा ऽऽ।
ढाई भला घड़िया लंघ छोड़णा ऽऽ।।
लम्मी छलांग भरिए सोसुआ ऽऽ।
समुंदर आगे जो आया सोसुआ ऽऽ।।
हत्थ भला जोड़ी अरज से लाई ए ऽऽ।
ढाई भला घड़िया लंघ छोड़णा ऽऽ।।
गर्बे भरेआ समुंदर राजेआ ऽऽ।
गर्ज गणूणें समुंदर भरे आ ऽऽ।।
गर्ब न कर मेरा समुंदर राजेआ ऽऽ।
गर्ब किता ऽ जिनी हासि ऐ ऽऽ।।
गर्ब किता ऽ राजे रामे बो ओ ऽऽ।
सिया भला राणी गई हुडबाली ऽऽ।।
गर्ब तां कित्ता लंका रावणेऽऽ।
सोनी देही लंका भसम कराई ऽऽ।।

गर्ब तां कित्ता पंज भाऊ पांडबे ऽऽ।
गली मुए ऽ धारा हिंयु आली ऽऽ।।
लूणे री फक्की सोसुए पाई ऐ ऽऽ।
पाणी-पाणी करदा सोसुआ ऽऽ।।
सुन्ने री दाठ सुरगा बो लाई ऽऽ।
रूप्पड़ी ऽ पिआला ऽ सोसुआ ऽऽ।।
इकी चणूणे सोसुणु ऐ बीरे ऽऽ।
समुंदर राजा पेटे भरे आं ऽऽ।।
भिंडुए मच्छे अरज कीत्ती ए ऽऽ।
समुंदर राजा छोडआं सोसुआं ऽऽ।।
नौ लख मच्छली अरज करंदी ऽऽ।
इक भला चुलु असां पाणी रादेआं ऽऽ।।
अगले जिदड़ चिक्कड़ चैहले बो ऽऽ।
पिच्चले जिंदड़ धूड़ रणके ऽऽ।।
समुंदर लंघी जानी पार होई ऐ ऽऽ।
समुंदर कंढिआ डेरे लगना ऽऽ।।
अरज सुणी सोसुएणुए बीरे ऽऽ।
मुत्रे रे रसते समुंदर कढेआ ऽऽ।।

जानी पर्वत चढ़ी हो तेरी साईआं ऽऽ।
जानी कुण-कुण आए हो तेरी साईआं ऽऽ।।
जानी दाता-विधाता तेरी साईआं ऽऽ।
जानी होर कुण आए हो तेरी साईआं ऽऽ।।
जानी ब्रह्मा ते विष्णु तेरी साईआं ऽऽ।
जानी होर कुण आए हो तेरी साईआं ऽऽ।।
जानी चन्द्र ते सूरजा तेरी साईआंऽऽ।
जानी होर कुण आए हो तेरी साईआं ऽऽ।।

गिरिजा : डऊं-डऊं बजदा के आया बापू आ ऽऽ ?
गजपति : डऊं-डऊं बजदे नगारे गौरजे ऽऽ।।
गिरिजा : जानी जो डेरा कुते देणा बापूआ ऽऽ?
गजपति : जानी जो डेरा सुके बागा गौरजे ऽऽ।।
गिरिजा : गौरा पुच्छदी बापु अपणे जो ऽऽ।
कुण देहा होला ब्याहु मेरा हो ऽऽ।।
गजपति : हिन्दु-मुगले री जानी आईयां हो ऽऽ।

चिट्टे साफे गुगले री जानी गौरजे ऽऽ।।
नीले रंगे ब्याहु तेरा लाडलिए ऽऽ।
सेस नारग जौंलिए सो भंदा हो ऽऽ।।
नौ लख तारा जिसरे जांमे हो ऽऽ।
सेईओ ब्याहु होला तेरा लाडलिए ऽऽ।।

हिमकुए छम-नैण रोई गौरजे ऽ गौरा पुच्छदी बापु अपणे जोड।
मुकी मुए परौली दे दरवाणे हो ऽ, कोढ़ी रे लड़ा किंजो लाई हो ऽऽ।
होर ता दित्ती नेड़े-नेड़े हो ऽ, हऊं कि दित्ती नदी पार हो ऽऽ ?
मुकी मुए डंगरे रेगवाला हो ऽ, कोढ़ी रे लड़ा किंजोलाई हो ऽ ?

होरता दित्ती नेड़े-नेड़े बापु गजपतिआ ऽ।
हऊं कि दित्ती नदी पारा बापु गजपतिआ ऽ।।
मुकी मूए घाई ते घराटी बापु गजपतिआ ऽ।
कोढ़ी मूए डंगर रे गवाल वापु गजपतिआ ऽ।।
मुकी मूए डंगर रे गवाल बापु गजपतिआ ऽ।
कोढ़ी रे लड़ किंजो लाई बापु गजपतिआ ऽ।।
काया भ ाला पलटी ईसरा सामीआ ऽऽ।
सेरणे सत्थे रा कोढ़ी बणेआ ऽऽ।।
लहुआ भला पागे री डोरा चलणा ऽऽ।
भाखरिआं केरे टल्ल गिरना ऽऽ।।

हत्था भला लेई ऐ बठाहे केरी डालिऐ ऽऽ।
गैहल ओई गैहल हण्डदा ईसरा ऽऽ।।
खादे-पीते री बूटी जाणदा ऽऽ।
लगे-लगाए रे मन्त्र जाणदा ऽऽ।।
गिरदा-फिरदा ईसर सामी आ ऽऽ।
गजपतिए केरे मैहला जो आया ऽऽ।।
पहली भली सांद बाही मेरे ईसरा ऽऽ।
गौरा भला राणीं तपत फीरी ऐ ऽऽ।।
चौथी भला सांद बाही मेरे ईसरा ऽऽ।
गौरा भला राणी गलड़ ए आई ऐ ऽऽ।।

फेरी ता घुमाई तेरी छैण काया जो ऽऽ।
अंग मिलाप कदुए ए हुणे ऽऽ।।
फेरी ता घुमाई तेरे छेण हत्था जो ऽऽ।

चल भलेआ हुडवाली ए जांदे SS।।
धर्मी मौले हो SS सांद लाई, रिखिहर पण्डते SS सांद पढी ऐ।
धर्मी मौले हो SS तेल सिंजेआ, रिखिहर पण्डते SS तेल पढ़ेआ।।
धर्मी चाचीए हो SS तेल सिंजेआ, रिखिहर पण्डते SS तेल पढ़ेआ।
धर्मी भाऊए हो SS तेल सिंजेआ, रिखिहर पण्डते SS तेल पढ़ेआ।।

ब्याहु तेरे लाए तिजो घाघरू, गौरा लांदी किना SS ?
ब्याहु रे दितोर जो लाई लेआं, होर जुड़णे कि ना SS ?
ब्याहु तेरे लाए तिजो झांझरा, गौरा लांदी कि ना SS ?
ब्याहु रे दितोर जो लाई लेआं ; होर जुड़णे कि ना SS ?

तुसां भला होली बड़े घरे धिउआ SS।
असां भला हिन बो धूड़ी रे गुसाईं SS।।
तुसां भला पान रेसम जरिआं SS।
असां भला मन मिरगाणी लाणा SS।।

मामा-मामा बो सामा तेरी मौले आ SS।
भाणज पले निनहाले मौले SS।।
मामा-मामा बो सामा तेरी मोलेआ SS।
मामी कने डंगरा चुगाली मौल SS।।

हाथी-औहदेतिजो दाज देला, सुआज देला।
ते सणे-माहौते जायां धीए चिड़ो लड़िए।।
छोहर-गोली तिजो दाज देला सुआज देला।
ते हंसदी-खेलदी जायां धिए चिड़ोलड़िए।।

जातरा

गद्दी जनजीवन में 'जातरा' एक धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सव है। सामूहिक भावना के कारण अधिकांश जातरा उत्सवों ने मेलों का रूप धारण कर लिया है। जातरा का अर्थ यात्रा या धार्मिक यात्रा है। धार्मिक भावना से की गई यात्रा में एक श्रद्धा की भावना रहती है। अतः दुर्गम और थका देने वाली यात्राएँ भी उत्साह व उमंग के साथ की जाती हैं। यात्रा अपने पूरे कुटुंब के साथ की जाती है, कई बार पूरा का पूरा गाँव साथ चलता है। पारंपरिक वेशभूषा, बाजे-गाजे के साथ यात्रा की जाती है।

जातरा दो प्रकार की है। एक तो जो निश्चित तिथि को मनाई जाती है। इस नियत जातरा में दूर-दूर से श्रद्धालु भाग लेते हैं। यह जातरा एक मेले का रूप धारण कर लेती है। यह जातरा दिन में भी होती है और रात को भी होती है। प्रायः झीलों में स्नान किया जाता है।

निश्चित जातरा में भरमौर जातरा, छतराड़ी जातरा, कुगति जातरा, आदि हैं। न्होण (स्नान) में मणिमहेश न्होण, त्रिलोचन महादेव न्होण प्रमुख, जातरा मुख्यतः देवी तथा नाग मंदिरों में है, न्हौण शिव के स्थानों में।

दूसरे प्रकार की जातरा स्वेच्छा से होती है। मनोकामना पूरी होने पर, कोई अनिष्ट टालने के लिए, मनोकामना माँगने के लिए यह धार्मिक आस्था वश जातरा की जाती है। यह जातरा भी दो प्रकार की है। दिन की जातरा और रात की जागरा (जागरण)। दिन की जातरा में लोग बंधु-बांधवों सहित जाते हैं। मंदिर या धार्मिक स्थान में कोई क्रिया की जाती है। रात की जातरा में वहीं रहकर जागरण किया जाता है और रात भर भजन-कीर्तन किया जाता है।

कुगति जातरा

मणिमहेश यात्रा के समय भरमौर से आठ मील दूर हड़सर से एक चढ़ाई मणिमहेश की ओर चढ़ती है तो दूसरी ओर कुगति को। हड़सर के कुगति आठ मील पर है। कुगति में नाग मंदिर है। इस नाग को केलंग या कालिहर नाग कहते हैं। यह नाग केलंग से मेढ़े से सिर पर कुगति पहुँचा था।

भरमौर जातरा

मणिमेहश यात्रा को जाने वाले यात्री भरमौर से होकर जाते हैं। उनका यह

प्रयत्न रहता है कि यात्रा के दौरान वे भरमौर में जातरा के समय ही पहुँचें। इस जातरा का प्रारंभ जन्माष्टमी से होता है। यह छह जातरा उत्सव मनाए जाते हैं। छठा उत्सव श्री हरिकृष्ण द्वारा आरंभ हुआ। इन नागा बाबा के समाधिस्थ होने पर यह जातरा आरंभ हुई।

जातरा के समय गद्दी लोग सफेद चोला, काला डोरा, कलगी वाला टोपा पहने नृत्य करते हैं। भद्रवाह से आने वाले यात्री भी इस जातरा में शामिल होते हैं। मणिमहेश की समाप्ति पर भरमोर के पास ब्रह्माणी देवी की जातरा भी प्रसिद्ध है। जो मणिमहेश जाते है वे ब्रह्माणी देवी के पास भी अवश्य जाते हैं।

मणिमहेश जातरा या न्होण

राधा अष्टमी तथा जन्माष्टमी को होने वाले इस न्होण का विवरण पहले दिया जा चुका है।

साहो जातरा

शिव मंदिर साहो में मणिमहेश न्होण के दिनों जागरण होता है। जागरण के बाद प्रातः ही स्नान के बाद लोग वापस जाते हैं।

त्रिलोचन महादेव न्होण

त्रिलोचन महादेव के मंदिर में भी न्होण होता है। दिन में उत्सव में भाग लेकर प्रातः स्नान किया जाता है।

धौलाधार तथा चंबा के ऊँचे पर्वत शिखरों में कई झीलें हैं। कई झीलों में पहुँच पाना भी कठिन हैं फिर भी कुछ लोग पहुँचते हैं और स्नान करते हैं। झीलों को यहाँ 'डल' कहा जाता है। लमडम, कालशर डल, नागेरा डल में स्नान पवित्र माना जाता है।

लमडल बलैण जोत के पास है जो तीन किलोमीटर लंबी है। क्वार्सी जोत पर नाग डल है। यह झील मणिमहेश झील के बराबर है। दियोल गाँव के ऊपर जोत में भी एक झील है।

झील को स्थानीय भाषा में 'डल' कहते हैं। इसलिए झील स्नान को 'डल न्होण' कहा जाता है।

मनोकामना पूरी होने हेतु 'सुक्खण' करने पर जातरा स्वेच्छा से की जाती है। जातरा के लिए रात को ही भोजन सामग्री तैयार की जाती है क्योंकि जातरा में लंबा रास्ता तय करना होता है। कई बार रात को भी वहीं रहना होता है यदि जागरा या जागरण हो। सुक्खण के प्रतीक रूप में यह स्मरण रखने के लिए कई बार मंदिर के त्रिशूल, घंटी पर खंभे में रस्सी बाँधी जाती है या कोई निशानी रखी जाती है जो जातरा पर आने पर ही खोली जाती है।

जातरा के साथ झंडियाँ, चाँदी का छत्र, चाँदी की जीभ या आँखें, सिंदूर, बलि पशु साथ लेकर पूरा कुटुंब चलता है। गाजे-बाजे का प्रबंध भी किया जाता है।

जातरा प्रायः मंगलवार या रविवार को होती है। गाय के दूध या घी की प्रथम धार नाग देवता को चढ़ाने, पुत्र उत्पन्न होने, मुंडन संस्कार करने, अनावृष्टि होने पर मनौती के लिए, अचानक लाभ या हानि होने पर सुख या दुःख की स्थिति जातरा की जाती है। विवाह के बाद जातरा श्रद्धा वा सामर्थ्य के अनुसार की जाती है।

जातरा या जागरण के अवसर पर पूरी रात मंदिर में रतजगा किया जाता है। भजन-कीर्तन के साथ अंचली गीत गाए जाते हैं, नृत्य होता है देवता का चेला काँपता है, लोगों को भविष्य बताता है। बलि किए बकरे या भेंड़े को वहीं रात भोजन में पकाया जाता है।

लोक नाट्य

हरण या हरणातर

हरण लोक नाट्य का आयोजन भरमौर में होली के दिन होता है। होली यहाँ रगों का त्यौहार नहीं है, 'हियूंद' या सर्दी को विदाई का त्यौहार है। होली के दिन सायंकाल एक बड़ा 'घियाना' जलाया जाता है। बहुत सी लकड़ियाँ इकट्ठी कर जलाई जाती हैं और एक दूसरे से बड़ा घियाना जलाने का प्रयास किया जाता है। भरमौर की पहाड़ी आग की रोशनी से चमक उठती है। सर्दी की लंबी ऋतु से तंग आकर लोग चिल्लाते हैं।

"हो ! हो ! हो ! हियूंद गो बसंद आ-सत फटा जुहेरी खांदा गो।"

आपस में गालियाँ भी बकी जाती हैं। सारी पहाड़ियाँ शोर-शराबे से गूँज उठती हैं।

इसके बाद लोग देवता के मंदिर के पास जाकर हरण बाँधना आरंभ करते हैं। लोग अपने-अपने अभियान के अनुसार, रुचि के अनुरूप स्वाँग रचते हैं।

हरण

मुख्य स्वाँग हरण का है। किसी पशु का चमड़ा शरीर में लपेटकर सिर में सींग लगाए जाते हैं। शरीर में डोरा बाँध लिया जाता है। हरण या हरिण बना व्यक्ति चौपाए की तरह चलता है। हरण जब चलता है तो कई कूदकर उस पर चढ़ जाते हैं।

खप्पर

खप्पर मुखौटे को कहा जाता है। खप्पर मुँह पर खप्पर या मुखौटा लगाते हैं। चोला-डोरा तथा सिर पर पगड़ी पहनी जाती है। खप्परों की संख्या दो, तीन, चार या अधिक भी हो सकती है। हाथ में डंडा लिए हुए खप्पर नाचते हैं। और हँसाने का उपक्रम करते हैं।

चंदौली

चंदौली या चंद्रावली भी आदमी ही बनता है। लुआंचड़ी, डोरा, आभूषण तथा चूड़ीदार पाजामा या सलवार पहने चंदौली तैयार होती है। चंदौली की संख्या भी खप्पर के बराबर होती है क्योंकि चंदौली खप्पर साथ नृत्य करती है।

गद्दी-गद्दण

गद्दी चोला-डोरा तथा सिर पर नोकदार टोपी पहनता है। सफेद दाढ़ी-मूँछ लगाता है। हाथ में त्रिशूल लिए यह शिव का चेला भी बन जाता है। वह कभी कभी चेला बनकर काँपने का अभिनय भी करता है। यह गद्दी ही 'रौलु' या विदूषक का काम भी करता है। एक व्यक्ति गद्दण की वेशभूषा पहन गद्दण बनता है। गद्दी-गद्दण उपस्थित जनसमूह को हँसाने का प्रयास करते हैं।

साहब

एक व्यक्ति सिर पर टोप पहने मुँह में आटा मलकर साहब बनता है।

इन सभी व्यक्तियों का पूरा टोला बाजदारों के पीछे चलता है। बाजदारों में ढोल, शहनाई वाले आगे-आगे चलते हुए देवता का जयकारा बोलते हुए घर घर जाते हैं। हर घर के आगे वे गाते हैं–

हरण आया हरणोटा रामे रामेरी प्रौली।
हरना दे सिंगड़ु सहोणे, जिह्यां मोती रे दाणे।।
डंक बजंदे डकडोंस राजे रामेरी प्रौली।
हरन आया हरनोटा, मंगदा बकरोटा।।

पूरी रात घर-घर जाकर माँगने के बाद प्रातः हरण का विसर्जन उसी मंदिर में होता है, जहाँ से चला था। घरों से एकत्रित अन्न धन से एक निश्चित दिन 'फगोल़' पर सहभोज किया जाता है।

कहीं-कहीं हरणात्र होली के साथ आठ-आठ दिन चला रहता है। यदि यह नाट्य अधिक दिन चले तो झाँकी कहा जाता है। झाँकी में भी रोज वही स्वाँग निकलते हैं जो हरण में होते हैं।

बांढा

भरमौर में बांढा असूज में मनाया जाता है। इस मास में गद्दी अपने परिवार सहित प्रवास की तैयारी में होते हैं। पुराने समय में तो प्रवास की यात्रा लंबी होती थी। आने वाले बच्चों तथा मवेशियों सहित कई दिन यात्रा करनी पड़ती थी। अतः जाने से पूर्व सगे संबंधियों से मिलना-जुलना होता था।

असूज की प्रथम तिथि या सैर से ही यह उत्सव आरंभ हो जाता है। उत्सव के दिन एक चील या देवदार का पेड़ काटा जाता है। किंतु सावधानी यह रखी जाती है कि वृक्ष का सिरा या कोई टहनी न टूटे। यदि सिरा टूट जाए तो दूसरा वृक्ष काटा जाता है। इस तरह रियासती समय में नौ वृक्ष तक काटने की स्वीकृति थी।

वृक्ष को सावधानी से काटने के बाद इसे रस्से की भाँति खींचने की प्रतियोगिता

होती है। खींचने के लिए एक दल एक गाँव का और दूसरा दूसरे गाँव का होता है।

वृक्ष खींचने की प्रतियोगिता के बाद मंदिर के प्रांगण में बांढे का आयोजन किया जाता है। पुराने समय में यह आयोजन लगातार नौ दिन तक होता था।

रात को मंदिर के प्रांगण में बड़ा घियाना लगाया जाता है। घियाने के साथ हर घर से प्रकाश के लिए 'जंगणी' का गट्ठा लाया जाता है। 'जंगणी' चील की लकड़ी होती है जिसमें बहुत-सा बिरोजा होता है और तेजी से जलती हुई प्रकाश फैलाती है।

बांढे में हरणातर की भाँति अलग-अलग स्वाँग किए जाते हैं। गद्दी-गद्दण, चंदौली आदि के स्वाँग दिखाए जाते हैं। इस नाट्य में कोई संवाद या स्वाँग निश्चित नहीं है। अवसर के अनुसार और अभिनेता की वाक्पटुता के अनुसार संवाद तुरंत बोलकर मनोरंजन किया जाता है।

बांढा अब एक रात होता है, पहले नौ दिन तक मनाया जाता था। चणहौता में प्रथम असूज के बाद क्वार्सी में बांढा होता है। शुटकर तथा दयोल गाँवों में भी बांढा किया जाता है।

लोक नृत्य

गद्दी लोग अपनी मस्ती और आनंद के लिए नाचते हैं। उनका नाच भीतर से प्रस्फुटित होता है अतः यह बहुत ही सहज और प्राकृतिक है। धीमी गति से जब गद्दी अपने चोले-डोरे कलगी युक्त टोपे में नाचता है तो पर्वत झूम उठते हैं। धीमी गति से नाचते हुए गद्दी बहुत देर तक नृत्य करते रहते हैं।

गद्दी समुदाय में पुरुष तथा महिलाएँ अलग-अलग नाचते हैं। आजकल प्रदर्शन के लिए किए जाने वाले नृत्यों में पुरुष महिला एक साथ भी नृत्य करते हैं किंतु मूलतः यह नृत्य पुरुष तथा महिलाओं द्वारा अलग-अलग नाचे जाते हैं।

डंडारस

डंडारस नृत्य गद्दी नृत्य परंपरा का एक अनूठा उदाहरण है। यह केवल पुरुषों द्वारा नाचा जाता है।

यह नृत्य खुले प्रांगण में किया जाता है। अवसर कोई भी हो, डंडारस अवश्य नाचा जाएगा। चाहे जातरा हो, विवाह हो या अन्य कोई पर्व, डंडारस नृत्य अवश्य होता है। बजंतरी या बाजदार प्रांगण में एक ओर बैठ जाता है। ढोल, नगारा, शहनाई बज उठती है। कभी-कभी गाना भी गाया जाता है। कभी नर्तक भी साथ-साथ गाते हैं।

नृत्य के प्रांगण को 'पिढ़' कहा जाता है। जिस प्रकार कुश्ती के अखाड़े को भी 'पिढ़' कहते हैं। पिढ़ में प्रवेश के लिए परंपरागत वेशभूषा का होना आवश्यक है। सफेद चोला, काला डोरा, सफेद चूड़ीदार पायजामा, कंधे पर गुलाबी गुलेबंद, सिर पर कलगी युक्त टोपा, गले में चाँदी की मालाएँ, हाथों में कँगन। इस वेशभूषा के साथ कई लोग एक गोल दायरे में नृत्य आरंभ करते हैं धीमे-धीमे। भरमौर में नर्तक पगड़ी पहनते हैं तो छतराड़ी में नोकदार टोपी।

एक दायरे में वाद्यों की धुन पर मंद गति का यह नृत्य नगारे की गति के साथ धीमे-धीमे गति पकड़ता है। बीच-बीच में नर्तक भी गाते हैं और सींऽ की ध्वनि निकालते हैं। गति बढ़ने के साथ चरम सीमा को नृत्य पहुँचता है। फिर धीरे-धीरे नर्तक दायरे से हटते जाते हैं और अंत में एक ही व्यक्ति रह जाता है। एक नृत्य इतना लंबा चलता है कि वह पूरे उत्सव या जातरा के लिए पर्याप्त होता है।

घुरैही

घुरैही महिलाओं का नृत्य है। इस अवसर पर महिलाएँ एक गोल दायरा बनाकर नाचती हैं। दो-तीन महिलाएँ घुरैही गीत गाती हैं, शेष उसे दोहराती हैं। ये गीत धार्मिक, प्रेम-विरह के हो सकते हैं। नृत्य के साथ-साथ गायन भी चलता है। अपनी परंपरागत वेशभूषा लुआंचड़ी, डोरा, सिर पर चक, गले में मालाएँ डाले हुए महिलाएँ नाचती हैं। डंडारस की भाँति यह नृत्य भी घंटों चला रहता है। इस नृत्य में यवुतियाँ तथा बूढ़ी औरतें सभी नाचती हैं। इस नृत्य में कोई वाद्य नहीं बजाया जाता।

भरमौर के प्रवासी क्षेत्र में इस नृत्य को 'डंगी' कहा जाता है।

नुआल़ा के समय नृत्य

नुआल़ा उत्सव के समय अंचली गाई जाती है जिस में 'बंदे' या गायक बारी-बारी से गाते हैं। दो गाते हैं तो दो उसे बाद में दोहराते हैं। वाद्य यंत्रों के साथ गाई जाने वाली अंचली में रामायण तथा शिवीण (शिव गाथा) गाई जाती है। इस गायन के समय एक या दो-दो व्यक्ति उठकर नाचना आरंभ कर देते हैं। नाचते हुए वे तरह-तरह की मुद्राएँ बनाते हैं। इस नृत्य में कोई वेशभूषा की आवश्यकता नहीं, जो जैसे बैठा है, एकाएक उठकर नाचने लगता है।

गिद्धा नृत्य

काँगड़ा की भाँति गिद्धा नृत्य भी इस क्षेत्र में प्रचलित हुआ है। अपनी पारंपरिक वेशभूषा तथा पारंपरिक रंग से गिद्धा नाचा जाता है।

भँवरे-सी दाढ़ी वाला भूंकू

सुन्नी-भूंकू भरमौर क्षेत्र की वह हृदयस्पर्शी गाथा है जो दो संस्कृतियों के मिलन के साथ एक मायावी और करुण संसार की रचना करती है। गर्मियाँ होते ही बर्फीले जोत रास्ता खोलते हैं। भरमौर के गद्दी अपनी भेड़-बकरियाँ लेकर दुर्गम बर्फ भरे जोतों को लाँघ लाहुल में प्रवेश करते हैं। लाहुल, जहाँ भोट लोग बसते हैं। भोट, जिन्हें 'भोटले' कहा जाता है, भिन्न वेशभूषा, भाषा और भिन्न संस्कृति के लोग हैं। किंतु गद्दियों के संपर्क में आने के कारण भिन्न भाषा-भाषी होते हुए भी एक दूसरे को करीब से समझते हैं। ऊँचे पर्वतों के एक ओर भोट तो दूसरी ओर गद्दी।

फुलमो-राँझू की तरह सुन्नी-भूंकू गाथा है एक कल्पना लोक के आदर्श प्रेम की, जो जब यथार्थ की धरती पर उतरी तो ज़माने की भूल ने उसका अंत कर दिया।

कैसा था भूंकू-छोटे कद का गठीला जवान जिसकी भँवरे-सी काली दाढ़ी थी। गीतकार ने उसका परिचय यूँ दिया है–

'छोटड़ा गदेटा मेरी भैण जी, काली भौंर दाहड़ी है।'

जब ये भँवरे-सी काली दाढ़ी वाला गद्दी गभरू सुन्नी के घर के आगे 'लाहुल में' गुजरता है तब–

'ओ बाहर जइयो निकियो छुकयो, कुत्ते कस जो लगे हो।'

भूंकू को गाँव के कुत्ते भौंकते हैं। सुन्नी बच्चों को बाहर भेजती है कि देखो कुत्ते किसे भौंक रहे हैं। बच्चे सुन्नी को बताते हैं कि बाहर भँवरे-सी दाढ़ी वाला गठीला जवान है।

सुन्नी बाहर आती है। आपस में बात होती है–

'कठी तेरे घर ओ मित्तरा कठी जो चलूरा हो।'

'भट्टी टिकरी घर वो माँहिए, लोहला जो चलूरा हो।'

तुम्हारा घर कहाँ है, कहाँ जा रहा है !'' मेरा घर भट्टी टिकरी में है, मैं लाहुल जा रहा हूँ।

सुन्नी उसे भीतर बिठा लेती है। उसे हुक्का पिलाती है।

इसके बाद का किस्सा मायावी है। भूंकू छह मास तक सुन्नी के घर में रहता है। छह मास बाद जब वह बाहर निकलता है तो पूछता है–

'कुण जिणी रित सुन्निए, कुण जिणा म्हीना है।'

सुन्नी कहती है–

'सैरकणी रित भूंकूआ, काति दा म्हीना है।'

कार्तिक महीना आ लगा है, सैर आ गई है। भूंकू हैरान रह जाता है। मेरी भेड़-बकरियाँ कहाँ गईं, मेरी कंठी कुतिया कहाँ गई।

सुन्नी बताती है तुम्हारी भेड़-बकरियाँ तो भटियात पहुँच गई हैं, कंठी कुतिया अभी यहीं है।

भूंकू डर जाता है। कार्तिक आ लगा है। जोत में फिर बर्फ गिरेगी। वह घर कैसे जाएगा। सुन्नी कहती है तू डर मत। जोत लाँघने के लिए अड़ोस-पड़ोस के व्यक्ति भेजूँगी, साथ में अपना भाई भेजूँगी। वे तुम्हें जोत पार करा देंगे।

सर्दियाँ बीतीं। पुनः बसंत आया। गद्दी लोग लाहौल जाने लगे। सुन्नी भूंकू के इंतजार में खड़ी हो जाती और आते हुए गद्दियों से भूंकू के बारे में पूछती। जब वह सबसे यही पूछने लगी तो एक दिन किसी मनचले गद्दी ने कह डाला—

'होर ता महणू राजी बाजी भूंकू गददी मुआ हो।'

—और तो सभी ठीक-ठाक है। भूंकू गद्दी मर गया है। जब वह पूछती है कि किस दुःख से मरा तो उत्तर मिला वह तेरे वियोग में मर गया है।

बस, यह सुन सुन्नी की मृत्यु हो गई।

कुछ समय बाद भूंकू वहाँ पहुँच गया और सुन्नी के बारे में पूछने लगा। किसी ने बताया—

'होर ता महणू राजी बाजी सुन्नी भोटली मुई हो।'

—और तो सब ठीक-ठाक है, सुन्नी भोटली मर चुकी है।

बस भूंकू भी वहीं ढेर हो गया।

गर्मियों में लाहुल घाटी जाते, जोत लाँघते हर गद्दी भूंकू लगता है। क्या कोई सुन्नी अब भी उसे मिलती होगी !

लोक में रचे-बसे लोक के गीत

भरमौर के लोकगीतों की अपनी एक अलग पहचान है। विरह प्रधान होने के कारण इन गीतों में जो एक कसक, एक वेदना है वह यहाँ की मोहक और मन को छू लेने वाली धुनों में और भी मुखर हो उठती है। गद्दी पुहाल को सदा चलते रहना है। उधर इनकी पत्नियाँ, परिवार अकेले रहते हैं। वियोग के क्षणों में किसी बहाने से बुलाना, न आने के बहाने और परदेस में पति के कारण वेदना इन गीतों में व्यक्त हुई है।

भरमौर के विवाह गीतों के काँगड़ा का प्रभाव है। भरमौर के गद्दी तथा परिवार सर्दियों में काँगड़ा की पालमपुर घाटी में रहते हैं। इस ओर भी युवक विवाह के बाद फौज में जाते हैं जहाँ वर्ष में एक बार छुट्टी मिलती है। अतः प्रवासी पति को बुलाने के लिए बहाने ढूँढ़े जाते हैं–

लिखि लिखि चिट्ठियाँ मैं भेजाँ, हाँ मैं भेजाँ
माता तम्हारी बीमार ढोला, घरे आई जाणा।
लिखि लिखि चिट्ठियाँ मैं भेजाँ, हाँ मैं भेजाँ।
भैण तम्हारी बीमार ढोला, घरे आई जाणा।

विवाह गीत, जिन्हें ब्याह-शादियों में या वैसे भी बैठकर औरतें गाती हैं, 'द्रुभड़ी' या 'द्रुएँ' कहा जाता है।

एक द्रुएँ गीत में दामाद अपनी विवाहिता को घर बुलाता है। सास बहाने लगाती है। कभी वह कहती है कि लड़की तो पाँव से नंगी है, कभी कहती है कमर से नंगी है, कभी कहती है सिर से। दामाद उसे जूते, घाघरा, चादर आदि देने का वचन देता है।

घुरैही वे लोकगीत हैं जो विवाह या अन्य अवसरों पर महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। और इनमें एक घेरे में नृत्य भी किया जाता है। कुछ महिलाएँ गाती हैं, शेष उन्हीं पंक्तियों को दोहराती हैं। विवाहादि अवसरों पर गद्दी भी गोलाकार धीमा नृत्य करते हैं जिसे डंडारस कहा जाता है।

सर्दियों के बाद गाए जाने वाले घुरैही गीतों में धार्मिक, शृंगारिक सभी प्रकार के होते हैं। घुरैही में 'सिया हरण' का प्रसंग बड़ा लोकप्रिय है–

राम ते लछमण चौपड़ खेले, सिया राणी कढंदी कसीदा हो।
इक बाजी बहिया, दूरी बाणे लाया पाणी केरी लंगदी प्यासा हो।।

कुण होला सुणंदा, कुण होला गुणंदा, कुण प्याला ठंडा पाणी हो।
सिआ होली सुणदी, सिआ होली गुणदी, सिया पियाली ठंडा पाणी हो।।
अते कठी भोला मेरा सीस घड़ोलू, कठी भोला नारियल बिन्ना हो।
घड़े री घड़याणी तेरा सीस घड़ोलू, कीलाणियां नारियल बिन्ना हो।।

सिया हरण के इस गीत में राम-लक्ष्मण द्वारा चौपड़ खेलना, राम को प्यास लगना, सीता द्वारा घड़े में पानी भरती बार नाक के लौंग का गुम जाना, स्वर्ग मृग देखना और राम द्वारा वन-वन मृग ढूँढ़ना आदि घटनाओं का वर्णन है।

अंचली या एंचली गीत

अंचली एक धार्मिक लोक गीत है जो 'नवाला' या 'नुआला' के अवसर पर चार पुरुष गायकों द्वारा गाया जाता है। ढोलक, नगारा और कुंभ पर रखी थाली बजाकर ये गीत गाए जाते हैं। नुआला शिव पूजा का उत्सव है। किसी अभीष्ट की प्राप्ति के लिंए शिवजी को नुआला की मनौती माँगी जाती है। आटे द्वारा मंडप बनाकर खानों में तिल, चावल, बबरू रखे जाते हैं। भेंड़े की बली दी जाती है जिसका सिर पूजा के लिए रात भर रखा जाता है।

सारी रात चलने वाले इस उत्सव में शिव स्तुति का गायन होता है जिसे 'शिवीण' कहते हैं। राम कथा का 'रामीण' कहते हैं।

शिवीण लंबा गीत है जो दक्षिण देश में सिद्ध योगी के आगमन से आरंभ होता है। इसमें पूरी पूजन विधि वर्णन के साथ दक्षिण देश में ही मालिन द्वारा हार गूँथने का वर्णन है। शिव बाग में मालिन से मिलते हैं। भँवरे द्वारा बाग उजाड़ने पर शिवजी भँवरे को कैद कर लेते हैं और मालिन के कहने पर छोड़ देते हैं।

शिव विवाह का वर्णन विस्तार से इस गीत में किया गया है–

गौरा पुछंदी माता रणसिंगा बजंदा कै आया
माता बोली "धिए तेरा बैहु लगना जो आया"
गौरां बोली "तैं कोढ़ी कलंकी रे लड़ै लाहे"
रोई रोई रोजना लाई
"मौलिया तुज्जो भाणजीरा दोष लगला
तैं भंगी सराबीरे लड़े लाई"
तां मौला बोले रूंए मत भाणजिए
तुजो दाज सुआज भरी देला"
तां फिरी गौरा बोली "भेड़ बकरी दाज नहीं लैणी
मैं हुंदी गदेटी तां भेड़-बकरी चारी लैंदी।"

चंबा में दरबारी गायकी भी प्रसिद्ध है जो केवल चंबा शहर में ही गाई जाती है।

पहले पंजाब से गायक राजदरबार में आया करते थे जो पंजाबी में गाते थे। आज भी ये गीत पंजाबी मिश्रित चंबयाली में गाए जाते हैं जो पक्के रागों पर आधारित हैं–

बागीं खिड़ रहे दो केले, रब्ब बिच्छड़याँ नुं मेले
तैनूं फट पबे तलवार दा
कदेआ फुलां वाली सेज ते कदेआ मौज बहार¨

जैसे गीत इसके उदाहरण हैं।

वास्तव में लोकगीतों की आत्मा बसती है उन गीतों में जो गद्दी अपनी बाँसुरी की टेर पर पहाड़ी दर पहाड़ी गाता फिरता है या जो गीत चरागाहों में, घाटियों में गाए जाते हैं, जिनमें सामज के दिलों की धड़कन बसती है।

ऐसे गीतों को 'फाटेहड़ू' कहा जाता है। जो गीत ऊँचे शिखरों, गहन घाटियों में मदमस्त होकर गाए जाते हैं, वही मन की गहराइयों से निकलते हैं। सुर (शराब) के नशे में डूबकर गाए जाने वाले गीतों में श्रृंगार हो या प्रेम, विरह या वेदना, चाहे अश्लीलता का पुट हो, ये गीत सबके मनों में बसे रहते हैं।

इन गीतों में अनाम गीतकारों ने गहन चिंतन के बाद आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जो काव्य की ऊँचाइयों को छूते हैं।

छिम्बी

छिम्बी हो छिम्बी पाणी जो गई हो
तेरड़े सौंह छिम्बी पाणी जो गई हो।
दन्द कदेई ऐस्सा छिम्बी दे जियाँ खिड़े खटनालू
दन्द हेरी मत भुलै राजा जी हाऊँ ता जाति री छिम्बी।।
हाखी कदेई ऐस्सा छिम्बी दी जियाँ सुरजे री लोई।।
हाखी हेरी मत भुल्ले राजा जी हाऊँ ता जाति री छिम्बी।
हाथ कदेई ऐस्सा छिम्बी दे जियाँ हलुए री डाली
हाथ हेरी मत भुलै राजा जी हाऊँ तां जाति री छिम्बी।।
होठ कदेई ऐस्सा छिम्बी दे जियाँ पाना रे पट्ठे
होठ हेरी मत भुलै राजा जी हाऊँ ता जाति री छिम्बी।।
इक लख दिता तिजो दो लख दिता जाति देयां बदलाई
नि बो लैणे लख दो लख जाति नी बदलाणी।।

पानी भरने के लिए जा रही छिम्बी के सौंदर्य का वर्णन इस लोकगीत का मर्म है। छिम्बी की दंत पंक्ति ऐसी है जैसे खटनालू के फूल खिले हों। उसकी आँखें सूरज की रोशनी की तरह दमक रही हैं। हाथ ऐसे कि जैसे हलुए (मेंहदी का पौधा) की डाली हो। होंठ जैसे पान के पत्ते।

छिम्बी अपने अंगों की प्रशंसा पर बार-बार कहती है कि हे राजा ! मेरे अंगों को

देखकर इस बात को मत भूल कि मैं जाति की छिम्बी हूँ। अंत में राजा कहता है कि मैंने तुझे एक लाख दिया, दो लाख दिया। तू अपनी जाति बदल दे। छिम्बी का उत्तर है कि मुझे नहीं चाहिए तुम्हारे लाख दो लाख, मैंने जाति नहीं बदलवानी।

राजा तेरे गोरखेयां ने लुटेया पहाड़
लुटेया पहाड़ गोरी दे मत्थे दा सिंगार।
तीसा लुटेया बैरा लुटया भांदल की हार
चाजु दी चुरैहणी लुटियां लुटी बांकी नार।।
सोना लुटया चांदी लुटेया लुटेया बाज़ार
सेजां सुत्तियां कामनी लुटियां लुटी बांकी नार।।
होठां दी मैं हटड़ी बणादियां दंदां दा बाजार
जुल्फां दी मैं त्रकड़ी बणादियां नैणा दा बाजार।।
नीले पीले बांस मंगानिया बंगला पुआनियां
बंगले दे बिच वही के सजणा तेरा जस गानियां।।

राजा तेरे गोरखों ने पहाड़ लूट लिया। पहाड़, जो गोरी के माथे के शृंगार की भाँति था। तीसा लूटा, बैरागढ़ भी लूटा, भाँदल की हार भी लूटी। चांजु की चुरैहणियाँ लूट लीं। सोना लूटा, चाँदी लूटा, पूरा बाजार का बाजार लूट लिया। सेज पर सोई हुई सुंदरियाँ लूट लीं।

होठों की मैं हटड़ी (छोटी दुकान) बनाती हूँ, दातों का बाज़ार। अपनी केशराशि का तराजू, नयनों का व्यापार। नीले-पीले रंग के बाँस मँगवाकर बँगला बनवाती हूँ। बँगले में बैठकर हे साजन! तुम्हारे यश के गुण गाती हूँ।

एतिहासिक घटना के साथ-साथ इस गीत में कवि ने अपनी कल्पना शक्ति का भी परिचय दिया है।

ब्रह्मी

चिट्टी चादर बछाणें पाणी ब्रह्मीये
ढकणे के लैणा हो।
तेरी दोहड़ बछाणें पाणी ब्रह्मीये
तेरी बांही रा सराहणा हो।
तेरी कणकां रा होया दाणा दाणा ब्रह्मीये
घरे, किहयां जाणा हो
तेरी चादरा री होई लीरा लीरा ब्रह्मीये
घरे किहयां जाणा हो।
रेढ़ी-रेढ़ी तां घरा जो नबेड़ी ब्रह्मीये
अबे कुनी छेड़ी हो।

तेरी मेरी तां ढिकलू री जोड़ी ब्रह्मीये
कुनी बेरिये बछौड़ी हो।

नायिका (ब्रह्मी) को संबोधित इस गीत में विभिन्नता के साथ-साथ शृंगार का मिश्रण अद्भुत है। नायक कहता है कि सफेद चादर तो बिस्तर में बिछा लेंगे किंतु ओढ़ने को क्या लेंगे। दोहड़ (पट्टू) बिछा लेंगे, सिरहाना तेरी बाँह का ही लेना होगा। पहाड़ी दर पहाड़ी तुझे घर भगाया, अब फिर किसने छेड़ दिया !

तुम्हारी कणक दाना दाना होकर बिखर गई, अब घर कैसे जाएँ! तेरी चादर टुकड़ा-टुकड़ा हो गई, अब घर कैसे जाएँ। तुम्हारी-मेरी ढिकलू (बकरी की तरह जानवर जो सदा हिरन की भाँति जोड़ी में रहता है) की जोड़ी है, यह किसी बैरी ने बिछोड़ दी।

गुड़क चमक भाउआ मेघा हो
बरह् चम्बियाली रे देसा हो।
किहां गुड़कां किहां चमका हो
अम्बर भरोरा घणे तारे हो।
कुत्थुए री आई काली बादली हो
कुत्थुएरा बरसेया मेघा हो
छातिए री आई काली बादली हो
नैणा रा बरसेया मेघा हो
रक्त थिया भाऊआ बक्त थिया
लागू थिए सब कोई हो
रक्त नि रेया भाऊआ वक्त नि रैया
बात नि पुछदा कोई हो।

हे मेरे भाई मेघ! घुमड़-घुमड़कर चंबे की रानी के देश में बरस। बादल कहता है, मैं कैसे घुमड़-घुमड़कर चमकूँ, अंबर तो तारों से भरा है। ये काली बदली कहाँ से आई ? कहाँ से मेघ बरसा ? ये काली बदली छाती से आई, आँखों से मेघ बरसा। इस प्रश्नोत्तर में चंबा की रानी की कथा है जो चंबा में पानी लाने के लिए बलि हुई।

गीतकार आगे की पंक्तियों में दार्शनिक हो कहता है–

जब शरीर में रक्त था, लाली थी तभी वक्त (समय) भी था। सब लोग उस समय चाहते थे। अब जब न लाली रही, न समय रहा, कोई बात नहीं पूछता।

नैणो

चिट्टे दंद खोड़े रा दंदासा हो मेरिये नैणो।
नैणो नैणो हांकां कुनी लाईयां हो मेरेया मेटा।।

नैणो बैठी धारगले री बाईं हो मेरेया मेटा।।
बुरे हुंदे गाड़ जंगलाती हो मेरिये मेटा।।
खुस्सी लेंदे हाथा री दराटी हो मेरेया मेटा।।
चिट्टे दंद खोड़े रा दंदासा हो मेरिये नैणो।
कुनी पाया दंदडू रा हासा हो मेरेया मेटा।।

मोतियों से सफेद दाँत हैं और उस पर अखरोट का दंदासा लगा रखा है। मेरे मेट! नैणो-नैणो करके आवाज कौन लगा रहा है ? नैणो तो धारगले की बावड़ी में बैठी हुई है।

जंगलात के गार्ड बहुत बुरे होते हैं। वे हाथ से दराती छीन लेते हैं। मोतियों से सफेद दाँत हैं जिन पर अखरोट का दंदासा लगा रखा है (जिससे होठ सुर्ख लाल हो गए हैं) किसने मेरे दाँतों की हँसी उड़ाई है।

सुरा केरे मघडू जो छेड़े रोआ करी गल्ला लाणी हों।
ओ सज्जण महणु घरे आए रिझ घड़ोलुआ।
त्रुड़ा मंजोलू ढिल्ली बाण दुंहीं जिहणा कियां सोणा हो।
किल्हे-किल्हे मेरिए जानी दुंही जिहणा किया सोणा हो।
गल्ला लाणी गल्ला लाणी मेरी जानी।

इस हृदयग्राही गीत में साजन के घर आने की बात है। सुर (सुरा) का मघडू (छोटा घड़ा) तैयार कर रो-रोकर बातें करनी हैं। साजन घर आए हैं। ए घड़ोलु जल्दी पककर तैयार हो जा। चारपाई टूटी हुई है, चारपाई का बाण ढीला है, इस पर दो जने कैसे सोएँगे! अकेले-अकेले कैसे सोएँ। आपसी बातचीत भी करनी है।

त्रुटि ता मेरे छिकणू री काछी बैरिया भाले हो
मुक्की ता तेरे खल्हडू री खरच बैरिया भाले हो
मुक्कु ता मेरे बिबडू रा पाणी बैरिया भाले हो
लिहसी जंघा जोत कियां लाणा बैरिया भाले हो।

कठिन जोत को लाँघने की मानसिकता इस गीत में है। दो साथी या प्रेमी जोत लाँघने के लिए सफर करते हैं। जोत में एक दूसरे का सहारा अवश्य चाहिए।

एक कहता है (या कहती है) कि मेरे छिकणु (पीठ के बोझे) की काछी (रस्सी) टूट गई है, मेरी प्रतीक्षा करना। मेरी खल्हडू (खाल का झोला) का अनाज समाप्त हो गया है, मेरी प्रतीक्षा करना। मेरी बीमारी से कमजोर टाँगें जोत कैसे लाँघ पाएँगी, वैरी! मेरी प्रतीक्षा करना।

ऊची ऊची रेढ़ी
ऊची ऊची रेढ़ी हो बंसरी बजांदा बो बैरिया।

बजदी सुणी मुरली हो रोई रोई भिजो बो बैरिया।।
हत्था तेरे छतरी हो जाति दा तू खतरी बो बैरिया।
घरे रे बहाने हो मिली करी जायां बो बैरिया।।
हत्था बो नरेलू हो चिलम तमाकू बो बैरिया।
अग्गी रे बहाने हो मिली करी जायां बो बैरिया।।
हत्था तेरे दराटी हो घरे तेरे चाची बो बैरिया।
घाए दे बहाने हो मिली करी जायां बैरिया।।

यह गीत ऊँची पहाड़ी पर बाँसुरी बजाते हुए जाते प्रेमी को समर्पित है। ऊँची पहाड़ी पर प्रेमी बाँसुरी बजा रहा है। मुरली बजते हुए सुनकर प्रेमिका रो-रोकर भीगी जा रही है। तुम्हारे हाथ में छतरी है, जाति के तुम खत्री हो, घर आने के बहाने मिलकर जाना। तुम्हारे हाथ में दराती है, घर में तुम्हारी चाची है। घास के बहाने मिलकर जाना बैरी।

मैहले दियां जातरां लोढ़ी रा पाणी।
किहला मत पींदा ढोला सराबिया।।
पहला डेरा लाया सरेई दे घराटा हो।
दूजा डेरा लाया चेरिये री कोठी हो।
त्रीजा डेरा लाणा लोढ़िये दे नाले हो।।
सीसे दा गलास मोतिया सराब।
किहला मत पींदा ढोला सराबिया।।

यह गीत मैहले की जातरा (धार्मिक यात्रा) या मेले पर जाने के निमित्त है। मैहले की जातर है और वहाँ बहते लोढ़ी नाले का पानी है। इस पानी को तू अकेले मत पीना मेरे प्रियतम!

पहला डेरा (पड़ाव) सरेई के घराट में लगा, दूसरा डेरा चेरिये की कोठी में और तीसरा लोढ़ी के नाले में। शीशे का गिलास है, मोतिया शराब है। मेरे प्रियतम! इसे अकेले मत पीना।

गद्दी भाषा

गद्दियों की भाषा को गादी, गदयारी या भरमौरी कहा जाता है। चंबा की चंबयाली, चुराह की चुराही और पंगवाल की पंगवाली कहलाती है।

गादी बोली भरमौर के अतिरिक्त छतराड़ी, बस्सु, लिल्ह, साहो, मेहला, कडेड, खजियार, भटियात में बोली जाती है। काँगड़ा तथा पालमपुर में धौलाधार की तलहटी में जहाँ गद्दी लोग रहते हैं, यह बोली बोली जाती है।

यह बोली सीधी संस्कृत के निकट है। क्योंकि गद्दी लोग अलग-थलग रहे हैं, अतः इनकी बोली आज तक अपने मूल रूप में सुरक्षित रही है। अंण (लाना), अंस (अंश), कन्या (कन्या), कंदमूल (कंदमूल), अंबर (आकाश) जैसे संस्कृत के शब्द आज भी प्रयोग किए जाते हैं।

मुख्य क्षेत्र

गादी का मुख्य क्षेत्र भरमौर है। तहसील भरमौर, छतराड़ी, कूंर, पियूहर, भटियात तथा काँगड़ा (पालमपुर) का गद्दी वासी क्षेत्र इस बोली को बोलता है। गद्दी लोग जब गधेरण से जाते हैं तो सर्दियों में काँगड़ा में बसते हैं। यहाँ भी इन्होंने भरमौर की भाँति गाँव के गाँव बसाए हैं। इन गाँवों के नाम भी वही रखे हैं जो भरमौर में हैं। जैसे पालमपुर के पास 'राख' गाँव है जहाँ बहुत-से गद्दी रहते हैं, बैजनाथ के ऊपर 'दयोल' गद्दियों का गाँव है। अतः यहाँ गद्दियों ने पूरा भरमौर ही बसा दिया है। साथ ही आई गादी भाषा।

गादी बोली का दूसरा क्षेत्र बेलज, गूं, बकानी, मैहला का ऊपरी भाग, कडेड है। तीसरा बस्सु और चौथा लिल्ह तथा साहो है। इन क्षेत्रों के गद्दी यहीं रहते हैं, कहीं प्रवास पर नहीं जाते। अधिकांश राठी लोग रहते हैं अतः बोली में थोड़ा अंतर आया है।

ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने 'ष' ध्वनि को इस बोली में असाधारण बताया है, 'ष' शब्द श, स, ख़ और ह भी ध्वनि देता है। चंबा में 'स', साहो तथा लिल्ह में इसे 'श' बोला जाता है। जैसे सांग (साग तथा शाग), सिंग (सिंग तथा शिंग), शंढ (संढ तथा शांढ)।

वेशभूषा

पुरुष वेशभूषा

गद्दी पुरुष की वेशभूषा पूर्णतया ऊनी कपड़े की बनी होती है। चाहे गर्मी हो, चाहे सर्दी, गद्दी लोग ऊनी कपड़ा नहीं उतारते। गर्मियों में कभी टाँगें नंगी रख लेते हैं किंतु ऊपर ऊनी चोला लगा रहता है जिसके भीतर दो-तीन नवजात बकरी या भेड़ के बच्चे झाँकते हैं।

पुरुष एक ऊनी चोला पहनते हैं जो अनसिला होता है या उसमें सिलाई नाम मात्र की होती है। गद्दी लोग सिलाई भी ऊनी धागे से करते हैं। चोले को कमर से काले डोरे में बाँधा जाता है जिसे गात्री भी कहते हैं। यह डोरा काली ऊन का एक लंबा रस्सा होता है जो कमर के गिर्द लपेटा जाता है। रस्से के कई लपेटे मारे जाते हैं। जिससे काफी मोटा भाग कमर के ऊपर बन जाता है। ऐसा करने से कमर के ऊपर के हिस्से में चोला एक कोख का रूप धारण कर लेता है। जिसे 'खोख' कहते हैं। इस खोख में बैग की भाँति आवश्यक वस्तुएँ रखी जाती हैं जैसे रुपए-पैसे तंबाकू का खल्हड़ू या चमड़े का थैलू। बहुत बार भेड़-बकरी के नवजात शिशु भी इस में रहते हैं। काले डोरे के साथ 'रूणका' तथा 'मंदुआ' लटका रहता है। रूणका लोहे का एक टुकड़ा होता है जिसे चकमक पत्थर के टकरा आग पैदा की जाती है। मंदुआ चमड़े का बटुआ होता है जिसमें 'भुजलु' नाम की घास होती है जो चकमक पत्थर से लगी आग पकड़ती है।

डोरे में बाँसुरी भी फँसाकर रखी जाती है ताकि कहीं अकेले में तान छेड़ी जा सके। डोरे के सथ ही 'नरेलू' या छोटा हुक्का भी लटका रहता है। जहाँ मन किया दम लगा लिया। युवा गद्दी लंबे बाल रखते हैं। शीशा, जो गोल-सा होता है खोख में रखा जाता है। कंघी भी साथ होती है। वृद्ध या अधेड़ सिर पर लंबा ऊनी टोपा पहनते हैं। डोरा पीठ पर उठाया बोझ भी अपने ऊपर टिका लेता है।

टाँगों में ऊनी या सूती सुथ्थण पहनी जाती है। गर्मी हुई तो नंगी टाँगें भी चला जाता है।

चोला-डोरा स्वयं ऊन से बनाया जाता है। स्वयं ही ऊनी धागे से सिया जाता है। कैंची स्थानीय लोहार बना देता है जिसे 'झुमणी' कहते हैं। बर्फ के दिनों बकरी के बालों से बना 'जड़लू' पहना जाता है।

महिला वेशभूषा

महिलाएँ एक घाघरानुमा 'लुआंचड़ी' पहनती हैं जो प्रायः प्रिंटेड होती है। इसका प्रिंट एक दूसरी से मिलता-जुलता होता है। ऊपर चोली पहनी जाती है जो नीचे के घाघरे में जुड़ी होती है। सिर पर लंबा-चौड़ा सूती दुपट्टा होता है। गले में कई तरह की मालाएँ पहनी जाती हैं। डोडमाला, जौमाला, कीमती पत्थरों की माला, चाँदी की ताबीत, सिर पर चाँदी का चक, चौकड़ी, माथे पर चाँदी का मानटिक्का। नाक में लौंग बलाक या बालू। कलाई में चाँदी के मोटे-मोटे कंगण पैरों में पाजेब। पैरों में देसी तिल्लेदार जूते। इन जूतों को 'मोछडू' कहा जाता है। कानों में बाली या काँटे पहने जाते हैं।

उत्सवों के समय वेशभूषा में विशेष सुधार किया जाता है। बहुत सज-धजकर पुरुष तथा स्त्रियाँ नृत्य करने के लिए निकलते हैं। पुरुष चोले के स्थान पर चोली पहनते हैं। यह चोली बढ़िया सफेद ऊन के तैयार की जाती है। चोले से यह लंबी होती है डोरा भी तिल्लेदार होता है। सिर पर सफेद साफा या लंबा ऊनी टोपा पहना जाता है जिस पर कलगी लगाई जाती है। गले में माला और कलाई में कंगण पहने जाते हैं। कानों में सोने की नंती पहनी जाती है। स्त्रियाँ भी ऐसे समय अच्छे कपड़े की लुआंचड़ी और तिल्लेदार दुपट्टा पहनती है।

गुज्जर

चंबा के ऊँचाई वाले जनजातीय तथा अन्य क्षेत्रों में गुज्जर बहुतायत में हैं। घने जंगल होने के कारण गुज्जरों को अपनी भैंसों के साथ इस ओर आना उपयोगी रहता है। ऊँचे शिखरों तथा जोतों पर ये लोग अपनी भैंसें ले जाते हैं और इनके लिए जंगल भी नियत किए हुए हैं। अधिकांश गुज्जर गर्मियों तथा बरसात में आते हैं और सर्दियाँ पड़ने से पहले चले जाते हैं। ये लोग प्रतिवर्ष मैदानों से आते हैं। कुछ गुज्जर यहाँ स्थायी रूप से भी बस गए हैं।

कनिंघम ने कहा है कि गुज्जर लोग अपने केंद्रीय स्थल गुजरात के अतिरिक्त उत्तरी पश्चिमी भारत में सिंधु नदी से गंगा तक पाए जाते हैं। जगाधरी, जम्मू, सहारनपुर आदि स्थानों में गुज्जर रहते हैं। ग्वालियर में एक गुज्जरगढ़ भी है। गुजरात में इनकी जनसंख्या अधिक है। दिल्ली के दक्षिण में रेवाड़ी के राजा गुज्जर हैं। कनिंघम ने उस समय गुजरात में कुल जनसंख्या का साढ़े तेरह प्रतिशत गुज्जर बताए हैं। जम्मू तथा होशियारपुर ज़िलों को छोड़ शेष सभी गुज्जर मुस्लिम हैं।

गुज्जर लोग जाटों की तरह लंबे और हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इनका सामाजिक स्तर भी जाट का है। जाट, अहीर, गुज्जरों का नाम साथ लिया जाता है।

ये लोग जमीन नहीं बोते। गद्दी यदि भेड़-बकरियाँ पालते हैं तो गुज्जर भैंसें रखते हैं। दूध, घी, बेचकर ये अपना गुजारा करते हैं। गुज्जर लोग भैंसों के साथ रहते हैं तो महिलाएँ दूध-घी बेचती हैं।

यूँ तो हिमाचल के लगभग हर भाग में गुज्जर रहते हैं। मंडी, ज्वालामुखी, नादौन, काँगड़ा, में ये लोग रहते हैं। भैंसें लिए हुए ये चंबा के अतिरिक्त शिमला के ऊपरी भागों में भी जाते हैं जहाँ जंगल हैं। चंबा में जंगलों की बहुतायत के कारण ये लोग अधिक हैं।

गुज्जर का मूल गूर्जर राज्य था। मथुरा के गूर्जरों से भी इनका मूल जोड़ा जाता है। गुज्जरों की चौरासी शाखाएँ बताई जाती हैं।

चंबा के क्षेत्र में दो तरह के गूजर हैं। एक तो वे जिनके वहाँ घर हैं, खेत और जमीन है। वे आसपास भैंसें चराकर भी गुजारा करते हैं। कुछ ऐसे हैं जिनके घर जम्मू, सहारनपुर, पठानकोट आदि मैदानी इलाकों में हैं। वे गर्मियों या बरसात तक यहाँ भैंसें चराते हैं। सर्दियों में वापस लौट जाते हैं। ऐसे गुज्जर मुस्लिम हैं।

चंबा राज्य : कुछ तथ्य

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग (उत्तरी वृत्त) के अधीक्षक के नाते जे०पी०एच० वोगल ने तत्कालीन राजा भूरिसिंह के सहयोग से सन् 1902 में 1908 तक चंबा की यात्रा कर एक सौ तीस शिलालेख ढूँढ़ निकाले।

वोगल ने अपनी भूमिका में चंबा को तीन-चौथाई सदी पहले तक 'अज्ञात' और अन्वेषित माना है। राजा भूरिसिंह को समर्पित वोगल द्वारा लिखित भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा सन् 1911 में प्रकाशित 'एंटीक्वीटीज़ ऑफ चंबा स्टेट' न्यू इंपीरियल सीरीज़ खंड 36 है जो पुरातात्त्विक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जिसे आज तक एक मानक अध्ययन के रूप में उद्धृत किया जाता है।

वोगल द्वारा सन् 1911 में चंबा को तीन चौथाई सदी पहले तक 'अज्ञात' कहना इस दृष्टि में तर्कसंगत है कि गुलाम देश के गुलाम इलाके अपनी अद्वितीय पुरा संपदा के होते हुए भी अजाने रहे क्योंकि कोई उन्हें सामने नहीं ला सका सिवाय यूरोपियनों के।

हमने अपने को विदेशियों की आँख से देखा है। उन्होंने कहा कि हमारी सभ्यता अतिप्राचीन है, तभी हमें अहसास हुआ। ऐसी स्थिति में हम वोगल जैसे विद्वानों पर यह कटाक्ष नहीं कर सकते कि यूरोपीय यात्रियों के 'उल्लेख' से पूर्व चंबा जैसे ऐतिहासिक स्थान था ही नहीं।

वोगल कहते हैं कि इस क्षेत्र का सबसे पहले उल्लेख यूरोपीय यात्री जॉर्ज फॉर्स्टर ने किया जिन्होंने 1783 में पंजाब हिल्ज की यात्रा के समय नूरपुर, बसोहली, जम्मू होते हुए चंबा की पश्चिमी सीमा को मात्र छुआ था। इनके बाद विलियम मूरक्राफ्ट ने जुलाई 1820 में काँगड़ा यात्रा के दौरान रावी के बारे में लिखा जो सही नहीं था क्योंकि वे स्वयं चंबा नहीं आ पाए।

वास्तव में चंबा आने वाले प्रथम यूरोपियन विगने थे जो फरवरी 1839 में चंबा आए। इन्होंने राजधानी चंबा का ही वर्णन किया है, राज्य के अंदरूनी भागों में ये नहीं गए। चंबा की पुरातात्त्विक संपदा को अलेक्जेंडर कनिंघम ने ही सर्वप्रथम सामने लाया जो 1839 में ऊपरी रावी घाटी तक आए और पहली बार पुरातन राजधानी भरमौर और उसके मंदिरों का वर्णन किया।

पश्चिमी हिमालय में स्थित चंबा राज्य तीन पर्वत शृंखलाओं में विभक्त है। तीस से साठ मील लंबी ये शृंखलायें एक-दूसरे के समानांतर स्थित हैं। बाहरी शृंखला

धौलाधार है जो 15000 से 18000 फुट तक ऊँची हैं। इसमें 8000 से 15000 तक ऊँचे दर्रे हैं जिसमें से गद्दी लोग आते-जाते हैं। यह चंबा को दो भागों में विभक्त करती है। तीसरी श्रृंखला जंस्कर है जो 18000 से 20000 फुट तक है। भीतरी हिमालय की यह श्रृंखला उत्तर-पश्चिम दिशा में चलती हुई लद्दाख को लाहुल-स्पिति से अलग करती है और चंबा-लाहुल को छूती है। पांगी घाटी से भी ऊँचाई वाली ये श्रृंखला स्थायी ग्लेशियर लिए हुए है।

चंबा राज्य की स्थिति के बारे में वोगल तथा चंबा गैजेटियर में दिए अंश कुछ भिन्नता लिए हुए हैं। चम्बा गैजेटियर में चंबा राज्य उत्तर में 32^0 10′ तथा 33^0 13′ तक उत्तर में 75^0 45′ तथा 71^0 31′ में स्थित बताया गया है। वोगल तथा गैजेटियर दोनों में ही इसका क्षेत्रफल 3216 वर्गमील माना है। ताजा सैटलमेंट के अनुसार (चंबा गैजेटियर : 1963) क्षेत्रफल 2647 वर्गमील है। 1961 की जनगणना में कुल जनसंख्या 2,10,579 थी, वोगल के समय (1911) 1,27,834 थी। 1991 की जनगणना के अनुसार चंबा की जनसंख्या 3,93,286 है। 2001 की जनगणना के अनुसार 4,60,887 है जिसमें 2,35,218 पुरुष तथा 2,52,669 महिलाएँ हैं। क्षेत्रफल 6,528 वर्ग किलोमीटर है।

चंबा राज्य की पाँच बजारतों में से भरमौर या गद्दियों का क्षेत्र गधेरन मुख्य और केंद्रीय वजारत रही है। तीन वजारतें रावी घाटी में हैं, चौथी सीमांत क्षेत्र व्यास घाटी में पाँचवीं चंद्रभागा में।

भरमौर वजारत पुरातन राजधानी भरमौर के नाम पर है जो बुड़ढल नदी के बाएँ किनारे पर स्थित है। घाटी का निचला क्षेत्र भरमौर में लगभग दसवीं शताब्दी में जोड़ा गया। भरमौर के अतिरिक्त चंबा और चुराह वजारत रावी घाटी में आती है। हाथीधार और धौलाधार के बीच व्यास घाटी में भटियात को क्षेत्र है। यह क्षेत्र बहुत उपजाऊ और घनी आबादी वाला है।

चंद्रभागा घाटी में पांगी और जंस्कर श्रृंखलाओं के बीच लगभग पैंतीस वर्गमील का क्षेत्र चंद्रभागा के साथ-साथ लाहुल की ओर थरोट नाला और जम्मू की ओर संसारी नाला तक चलता है। इस क्षेत्र को जंस्कर श्रृंखला दो भागों में बाँटती है। लगभग 21000 ऊँची श्रृंखलाएँ दक्षिण-पश्चिम में सेचू और मियाड़ नाले के बीच चलती हुई तिंदी तक जाती हैं। उत्तर-पश्चिम में रौहली से गनौर नाले तक पांगी है, दक्षिण-पूर्व में रौहली में थरोट तक चंबा-लाहुल है। चंद्रभागा वजारत में पांगी और चंबा-लाहुल आते हैं।

राहुल जी ने लिखा है–

1948 ई० में हिमाचल प्रदेश में विलीन चंबा रियासत 32^0 $11^0$30′-33^0 13.86′ उत्तरी अक्षांश और $75^0$49′ 0-$77^0$3.30′ देशांतर में अवस्थित थी, जो अब चंबा जिले

के नाम से मशहूर है। इसकी सीमाएँ पश्चिमोत्तर और पश्चिम में जम्मू से, उत्तर-पूर्व और पूर्व से लद्दाख, काँगड़े के लाहुल और बड़ा-बनगाहल से, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में काँगड़ा और गुरदासपुर के जिलों में मिलती हैं। इसका क्षेत्रफल 3135 वर्गमील, और आबादी 1901 ई० में 127834, 1951 में 1,76,050 थी। चंबा नगर रावी नदी के दाहिने किनारे पर डलहौजी से 18 मील पर अवस्थित है। रावी शाहपुर में पहाड़ों से नीचे उतरती है, जो यहाँ से 50 मील पर अवस्थित है। यह जिला दक्षिण-पश्चिम से पूर्व-उत्तर को 70 मील लंबा और दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम में प्रायः 50 मील चौड़ा है। इसके भीतर रावी-उपत्यका एवं व्यास-उपत्यका और चनाब-उपत्यका के कुछ भाग हैं। रावी-उपत्यका में चंबा का इलाका पड़ता है, और चनाब (चंद्रभागा) उपत्यका में पांगी और चंबा का लाहुल। सारा जिला दो हज़ार से 21000 फुट ऊँचे पहाड़ों के भीतर है, और यहाँ से कोई-कोई गाँव 10000 फुट की ऊँचाई पर बसे हैं। हाथीधार और धौलाधार के बीच का चंबा का अधिक भाग व्यास-उपत्यका में पड़ता है। इसे और निम्न रावी-उपत्यका के कुछ थोड़े-से भाग को मिलाकर चंबा की सबसे उर्वर तथा घनी आबादी वाली भटियात बजारत (तहसील) है। इसका दक्षिणी भाग बलुवा पत्थर का है, अर्थात् यहाँ के पर्वत शिवालिक के अंग हैं, जिसका सबूत वहाँ के वनस्पति भी देते है। यहाँ बाँस, पीपल, आम जैसे वृक्ष होते हैं। साल में जौ-गेहूँ और चावल-मक्की की दो फसलें होती हैं। धौलाधार और पांगी श्रेणी के बीच में उन ऊँचे पहाड़ों से घिरी रावी की उपत्यका है, जिनसे कितनी ही नदियाँ निकलकर रावी में मिलती हैं। इनमें सबसे बड़ी सिउल नदी है, जो चंबा-उपत्यका के उत्तर-पश्चिमी भाग के पानी को बहाती है।

चंबा पाँच वजारतों में बँटी हुई है, जिनमें से तीन की अपनी प्राकृतिक सीमाएँ है। चंबा (सदर-वजारत) तुंदा पर्वतश्रेणी और चिरचिंद नाला से धौलाधार तक फैली हुई है।

भरमौर में महत्त्वपूर्ण शिलालेख

चंबा की प्राचीन राजधानी ब्रह्मपुर (भरमौर) में लक्षणा देवी, गणेश तथा शिवमंदिर के प्रांगण में खड़े नंदी के आधार में महत्त्वपूर्ण शिलालेख हैं। जे०पी०एच० वोगल ने इन शिलालेखों का विस्तृत वर्णन किया है।

भद्रकाली लक्षणा देवी

लक्षणा देवी की अद्वितीय मूर्ति महिषासुर मर्दिनी के रूप में है। मूर्ति 3'4" है और इसका आधार 9"। देवी का दायाँ पाँव महिषासुर को दबाए हुए है। दाएँ हाथ से इसका सिर त्रिशूल से दबा रखा है जबकि बाएँ हाथ से महिषासुर की पूँछ उठा रखी है जिससे उसका धड़ ऊपर उठा हुआ है। तीसरे दाएँ हाथ में तलवार है और चौथे बाएँ हाथ में घंटी।

त्रिशूल जो शिव का शस्त्र है, देवी का भी। यह इन्द्र के वज्र के समान है। गधेरन में देवी के मंदिरों में त्रिशूल चढ़ाया जाता है। घंटी शत्रुओं को भयभीत करने का प्रतीक है।

लेख

मूर्ति के आधार का लेख 18$^{1/2}$ तथा 17$^{1/4}$ लंबी दो पंक्तियों में हैं। अक्षरों का आकार लगभग 3'8" से 1'2" है। उत्कीर्ण व्यवस्थित ढंग से किया गया है। यह कार्य मेरु वर्मन के आदेश से कारीगर गुग्गा द्वारा किया गया है।

मूलपाठ

ऊँ।। मोषूणस्वगोत्रादित्यवंशसंभूत, श्रीआदित्यवर्मनदेव, पौत्रै श्रीवलवर्मनदेव पौत्र, श्रीदिवाकरवर्मनदेवपुत्रेण।। श्रीमेरुवर्मनणा।। आत्मपुण्यवष्डये लक्षणादेव्यार्च्च X कारापिताः।। 0।। कर्म्मीण गुग्गेण।।

शुद्धपाठ

ओम्।। मोषूणस्वगोत्त्रादित्यवंशसंभूत–श्रीमदादित्यवर्मदेवप्रपौत्र–श्रीबलवमदिवपौत्र-श्रीदिवाकरवर्मदेवपुत्रेण (1.2) श्रीमेरुवर्मणात्मपुण्यवष्डये लक्षणादेव्या अर्चा X कारिता। कर्मिणा गुग्गेन।।

TRANSLATION

Born from the own-house (gotra) of Mosiuna and from the Solar race, the great-grandson of the illustrious lord Aditya Varman, the grandson of the illustrious lord Bala-varman, the son of the illustrious lord Divakara-varman, (1.2) the illustrious lord Meruvarman, for the increase of his spiritual merit, has caused the holy image of the goddess Laksana to be made by the workman Gugga.

अनुवाद

ऊँ मोषूणगोत्रोद्भव सूर्यवंशी श्री आदित्य वर्मदेव के प्रपौत्र श्री बलवर्म देव के पौत्र तथा श्री दिवाकर वर्म देव के पुत्र श्री मेरु वर्मा ने पुण्य वृद्धि हेतु लक्षणा देवी जी की मूर्ति का गुग्गा मिस्त्री से निर्माण करवाया।

गणेश

गणेश की मूर्ति 3′ है और आधार $14.^{1/2''}$। मूर्ति की दोनों टाँगें टूट चुकी हैं। किंतु आधार में कमल दल के अवशेष अभी भी हैं। कमर में बाघ चर्म और शरीर में सर्प धारण किए हुए गणेश की तीन आँखें और चार हाथ हैं। आधार में सिंहासन के प्रतीक एक जोड़ी-सिंह है। बीच में हाथी के कानों वाली आकृति है जिस के ऊपर लेख है।

गणेश की यह मूर्ति कलाकार गुग्गा की अद्वितीय कृति है जिसमें गणेश की अद्भुत छवि दिखाई गई है।

लेख

मूर्ति के आधार में चार पंक्तियों का लेख है। पंक्तियों की लंबाई बराबर न हो कर 13" से $5^{3.4''}$ तक है। चौथी पंक्ति दो भागों में है। अक्षर 1/4" से 3/8" तक हैं। लिखावट साफ-सुथरी है। लेख की सामग्री लगभग वही है जो लक्षणा देवी लेख में है।

मूलपाठ

ऊँ नमः गणपतये।। मूषूस्वगोत्रादित्यवंशसंभूत-श्री आदित्यवर्मनदेव-पंपौत्त्र (1.2) श्रीवलवर्मनदेवानुपोत्र-श्रीदिवाकरवर्मनदेव-सूनुना।। (1.3) महाराजाधिराज-श्रीमेरुवर्मनणा कारापितेदेव-धर्मनो यं ।। (1.4) कर्म्मीण गुग्गेण।।

शुद्ध पाठ

ऊँ नमो गणपतये।। मूषूणस्वगोत्रा दित्यवंशसंभूत-श्रीमदादित्यवर्मदेवप्रपौत्र-(1.2) श्रीबलवर्मदेवपौत्र-श्रीदिवाकरवर्मदेवसूनुना (1.3) महाराजाधिराज-श्रीमेरुवर्मणा

कारितो देय धर्मोऽयं (1.4) कर्मिणा गुग्गेन।।

TRANSLATION

Adoration to Ganapati. Born from the own-house of Musuna and from the Solar race, the great-grandson of the illustrious lord Aditya-varman, the grandson of the illustrious lord Bala-varman, the son of the illustrious lord Divakara-varman, the king of kings, the illustrious Meru-varman had caused this pious gift to be made by the workman Gugga.

अनुवाद

ऊँ गणपति जी को प्रणाम। मूषणगोत्रोद्भव आदित्यवंशी श्रीमान् आदित्यवर्म देव के प्रपौत्र श्री बलवर्म देव के पौत्र और श्री दिवाकर वर्म देव के पुत्र महाराजाधिराज श्री मेरु वर्मन ने कार्मिक गुग्गा के द्वारा इस पवित्र उपहार का निर्माण करवाया।

नन्दी

मणिमहेश मंदिर भरमौर के प्रांगण में खड़े नंदी की ऊँचाई 5′ है और इसका आधार 13′ है। नंदी की पूंछ, कान और घंटी क्षतिग्रस्त है। लोकास्था है कि यह क्षति बाहरी आक्रमणकारियों द्वारा की गई किंतु इन आक्रमणों की पुष्टि नहीं होती। आक्रमणकारी मुसलमान न होकर यारकंद से आए बताए जाते हैं। मेरु वर्मन के पौत्र लक्ष्मी वर्मन के समय कीरों के आक्रमण की बात वंशावली में है जिसमें राजा की मृत्यु हो गई थी। इस आक्रमण का संबंध मूर्तियों की क्षति से जोड़ना युक्तिसंगत नहीं है।

लेख

लेख 3′2″ लंबी दो पंक्तियों में हैं। तीसरी पंक्ति में कलाकार का नाम है। अक्षर लगभग 1/2″ आकार में हैं। लेख लि .ने वाले ने कलाकार की तुलना में कम संतोषजनक कार्य किया है क्योंकि लेखक को संस्कृत का पूरा ज्ञान नहीं था। व्याकरण का अल्प ज्ञान होने से इसे समझ पाना भी आसान नहीं है। लेख से पता चलता है कि मेरु वर्मन ने मंदिर का निर्माण करवाया जो मेरू पर्वत के समान था। यह निश्चित नहीं है कि यह शिखर शैली का मंदिर मेरु वर्मन ने बनवाया। संभव है यह मंदिर पहले लक्षणा देवी मंदिर की शैली में ही रहा हो, बाद में इसे शिखर शैली में पुनर्निर्मित किया गया।

मूलपाठ

ऊँ प्रासाद मेरुसदृशं हिमवन्तमूर्ध्निः कृत्वा स्वयं प्रवर-कर्म्मशुभैरनेकैः

तच्चनद्रषालरचितं नवनाभ नाम प्राग्ग्रीवकैर्व्विविधमणडपनैः क्वचित्रैः ।। (1.2) तस्याग्रतो वृषभ पोन-कपोलकायः संश्लिष्ट-वक्षककुदोन्नतदेवयानः श्रीमेरुवर्मन चतुरोदधि-कीर्तितरेषाः मातापितः सततमात्मफलानुवृडैः ।। (1.3) कृतं कर्म्मीण गुग्गेनः ।।

शुद्धपाठ

ऊँ ।। प्रासादं मेरुदृशं हिमवन्मूर्ध्नि कृत्वा स्वयं प्रवर-कर्मशुभैरनेकैः । तच्चन्द्रशाला रचिता नयनाभिरामा प्राग्ग्रीवकै विविधैर्मण्दपैर्नैकचित्रैः ।। (1.2) तस्याग्रतो (स्थापितो) वृषभः पीन-कपोलकायः संक्ष्लिष्टवक्षःककुद उन्नतदेवयानं । श्रीमेरुवर्मणश्चतुरुदधि (समतिक्रान्त) कीर्तिरेषा मातापित्रोररात्मनश्च सततफलाभिवृङौ ।। (1.3) कृतं कर्मिणा गुग्गेन ।।

TRANSLATION

After that he had himself built a temple like unto Mount Meru on the top of the himavant through the manifold bliss of [his] good works, an upper chamber (candrasala) delightful to the eye, was added to it with various poraches (mandapa) and numerous ornaments (citra) turned towoards the east, 2 in front of it [was set this bull fat of cheeks and body, compact of breast and hump, the exalted vehicle of the god (Siva). This is the glorious work of the illustrious Meruvarman [famous] over the four oceans, [tending] continually to increase the [spiritual] fruit of his parents and himself. Made by the workman Gugga.

अनुवाद

ऊँ ! अपने अनेक शुभ कर्मों के साथ-साथ हिमालय के ऊपर मेरु पर्वत के समान एक ऊँचे प्रासाद (देव मंदिर / राजभवन) का निर्माण किया। इसमें एक नयनाभिराम चंद्रशाला का भी निर्माण कराया गया जो पूर्व दिशा की ओर थी तथा अनेक मंडपों से वह सुसज्जित थी एवं अनेक चित्रों से शोभित।

उसके आगे एक सुंदर नंदी (बैल) की मूर्ति की स्थापना की गई। यह वृषभ पुष्ट देह, ऊँची ककुद और स्थूल भरे हुए मुंह वाला जो भगवान् शंकर का् वाहन है। अपने माता-पिता तथा अपने आध्यात्मिक लाभ हेतु चारों समुद्रों तक जिनकी कीर्ति फैली हुई है उन श्री मेरु वर्मन ने इसका निर्माण कराया शिल्पी गुग्गा के द्वारा।

युगाकरवर्मन का भरमौर ताम्रपत्र लेख

यह ताम्र पत्र 13.1 / 2" चौड़ा 8.1 / 4" ऊँचा है और अक्षरों का औसत आकार

3 / 16" है। ताम्रपत्र के चारों कोने टूटे हुए हैं जिसमें कुछ अक्षर मिटे हैं। निचले कोनों में अंतिम दो पंक्तियों के पहले चार अक्षर मिटे हैं। चौदहवीं पंक्ति के अक्षर और उन्नीसवीं के नौ अक्षर मिटे हैं।

ताम्रपत्र का आरम्भ शिव स्तुति से होता है। आगामी पंक्तियों में युगाकार वर्मन और उनके माता पिता साहिल और नीना का नाम है। जिस पंक्ति में दान या अनुदान का उल्लेख है, वह स्पष्ट नहीं है।

ताम्रपत्र में 'ब्रह्मपुर' का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। 'चम्पक' वाणि तथा अन्य गाँवों के नाम भी ध्यान आकर्षित करते हैं।

ताम्रपत्र की भाषा अशुद्ध है। अधिकतर अशुद्धियाँ संभवतः उत्कीर्ण करती बार हुई होंगी। उत्कीर्णकार ने कुछ अक्षर छोड़ दिए या गलत लिखे।

मूलपाठ

स्वस्तिः ओं गणपतये नमः।। अ.....सलिल-वह्नि-व्योम-वायवान्तरात्म....(1.2) पुराण स्वाङ्ग् संभूत-योने। हर तव शिव शर्व त्र्यम्बकेशान रुद्र त्रिणयन वृषभाङ्क्। (1.3) नन्तमूंर्ते नमस्ते।। श्रो-चण्पका-वासात्परमब्रह्मण्यदेव-द्विज-गुरु-भक्त- परमभटारक-म (1.4) हाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमत्साहिल-देव-पादानुध्यातपरमभटारिका-महाराज्ञी-श्री-नेन्ना-देव्योदर-समुत्प (1.5) न्नोएकारातिचक्रनिर्मूलन-महादान-सलिलसेतु-समभिर्धित-यश-पादप।। परमभटारक-महाराजा-(1.6) धिराज-परमेश्वर श्रीमद्यगाकरवर्म-देव कुशलीस्वशास्यमान-ब्रह्मपुर-मण्डल प्रतिबद्ध-विडविका (1.7) ग्राम-प्रतिबद्ध-पूर्वे खणी-मठस्य कोल्हिक-सत्क-भू 2 एषां मध्या हरिहल्ल-रांकिल स्वतस्य-सुतस्य प्रविष्टिं शब्दबग्ग (1.8) नाम श्रेत्रं तस्यपरिवर्ते दत्तं ग्रिम-ग्रामे चन्दि आकुटनागविक-सत्क-रहङ्क्-सुत-गण-भुच्यमाना-कुटिका-वाप्ये (1.9) य-धानापिटकमेक दत्तम् (?) तथा खणी-मठस्य सन्निकृष्ट-यमलिका शाकवाटिका तत्र वाप्ये पिटक-द्वय (1.10) मङ्क्तः 2।। उभौ कुटिका-सहित पि 3 तथा धारूवाटिकार्धंच। सर्वानेव नियोगस्थांन् राज-राजानक-राजस्थानी-(1.11) यसर्व-सवासा बोधयत्यस्तु वः संविदितं प्रतिवासि-जनपदानां भगिकादीनां साष्टादश-प्रकृत्यादीनां महा-(1.12) राज्ञी-श्री- त्रिभुवनरेखा-देव्या प्रतिष्ठित-नर सिंहस्य योमलकंतस्या प्रतिग्रहेणाग्रहारत्वेति प्रतिपादितम् (1.13) विदित्वा कीर्तिता 'नु' कीर्तितैः सर्वैः राजपुरुषैरउमन्तव्यं यतोस्म्नत्प्रदत्त-शासन-प्रामाण्यावसतुवसाप-(1.14) यतु भागेन प्रयछ नकेन चित्परिपन्थना कार्या।। अम्मि वंशे समुत्पन्ने य X कश्चि न्रृपतिर्भवे। तस्याहं ह (स्त-) (1.15) लग्नेस्मिन शाशनं मा व्यतिक्रमे।। पालनात्परमो धर्म पालनात्परमं तपः। पालनात्परमः स्वर्गो गरीयस्ते-(1.16) न पालना।। यत्किं चित्कुरुते पापं जन्म-प्रभृति मानवः। एतगोचर्म-मात्रेण भूमिहर्ता न शुध्यते।। फाकृष्टां- (1.17) त्वा सबीजां ससा मालिणी। यावत्सूर्य-कृता लोकेतावत्स्वर्गे

महीयते। तडागानां सहस्त्रेण (1.18) कोटि-प्रदानेन भूमि-हर्ता न शुध्यते।। अनुदकेषु रने शुष्क-कोटर-वासिशु। कृष्ण-(1.19) ये।। संवत 10 वैशाख वति 10।। दूतो न्रक्षपटिक-श्री-विवख लखित कायस्थ-जाटि (1.20) द्यगाकरवर्म- देव-स्वहस्तः।।

शुद्धपाठ

ऊँ स्वस्तिः।। ओं गणपतये नमः।। अवनि-सलिल-वह्नि-व्योम-वायवन्तरात्म¨ (1.2) पुराण स्वाङ्ग-संभूत-योने। हर भव शिव शर्व त्र्यम्बकेशान रुद्र त्रिनयन वृषभाङ्का (1.3) नन्तमूर्ते नमस्ते।। श्री-चणपका-वासात्परमब्रह्मण्य-देव-द्विज-गुरु- भक्त-परमपभट्टारक-म (1.4) महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमत्साहिल-देव- पादानुध्यात-परमभट्टारिका-महाराज्ञी-श्री-नेन्ना-देव्युदर-समुत्प-(1.5) न्नोऽने काराति-चक्र निर्मूलन-महामान-सलिल-सेतु-समभिवर्धित-यश पादपः परमभट्टारक-महाराजा-(1.6) धिराज-परमेश्वर-श्रीमद्यगाकरवर्म-देव X कुशली स्वशास्यमान-ब्रह्मपुर मण्डल-प्रतिबद्ध-विडविका (1.7) ग्राम-प्रतिबद्ध-पूर्वे खणी-मठस्य कोल्हिक-सत्क-भू 2 एषां मध्याद्धरिहल्ल-रांकिल-सुतस्य प्रविष्टिं शब्दबग्ग- (1.8) नाम क्षेत्रं तस्य परिवर्ते दत्तं ग्रिम-ग्रामे चापि (?) आकुटनागविक-सत्क-रहङ्क- सुत-गण-भुज्यमान- कुटिका-वाप्ये (1.9) य-धाना-पिटक-मेकं दत्तम् तथा खणी-मठस्य संनिकृष्ट-यमलिका शाकवाटिका तत्र वाप्ये पिटक-द्वय- (1.10) मङ्कतः 2।। उभौ कुटिका-सहितं पि 3 तथा शाक (?) वाटिकार्ध च। सर्वानेव नियोगस्थान् राज-राजानक-राजस्थानो-(1.11) यान्सर्व-सवासान् बोधयत्यस्तु वः संविदितं प्रतिवासि-जनपदानां भोगिकादीनां साष्टदश-प्रकृत्यादीनां महा- (1.12) राज्ञी-श्री-त्रिभुवनरेखा-देव्या प्रतिष्ठापित- नरसिंहस्य योमलकंतस्य प्रतिग्रहेणाग्रहारत्व इति प्रतिपादितम् (1.13) विदित्वा कीर्तिता कीर्तितैः सर्वैः राजपुरुषैरनुमन्तव्यं यतोऽस्मत्प्रदत्त-शासन-प्रामाण्याद्वसतु वास- (1.14) यतु भाग-न प्रयच्छतु न केन चित्परिपन्थना कार्या।। अस्मिन्वंशे समुत्पन्नो य X कश्चिन्नृपतिर्भवेत्। तस्याहं हस्त- (1.15) लग्नोऽस्मि शासनं मा व्यातिक्रमेत्।। पालनात्परमो धर्मः पालनात्परमं तपः। पालनात्परमः स्वर्गो गरीयस्ते- (1.16) न पालनम् ।। यत्किं चित्कुरुते पापं जन्म-प्रभृति मानवः। एतद्गोचर्म-मात्रेण भूमि-दानेन शुध्यते।। फाल-कृष्टां मही द- (1.17) त्त्वा सबीजां सस्य मालिनीम्। यावत्सूर्य-कृता लोकास्तावत्स्वर्गे महीयते।। तडागानां 3 सहस्त्रेण चाश्वमेध-शते (1.18) न च। गवां कोटि-प्रदानेन भूमि-हर्ता न शुध्यते।। अनुदकेषु 4 वनेषु शुष्क-कोटर-वासिनः। कृष्ण-सर्पा हि जायन्ते भूमि-(1. 19) दायं हरन्ति ये।। संवत 10 वैशाख वृति 10।। दूतो ऽत्राक्षपटलिक-श्री-विवख (लः?)।। लिखितं कायस्थ-जास (टेन।।?) 5 (1.20) श्रीमद्यगाकरवर्म-देव-स्वहस्तः।।

TRANSLATION

Hail ! Reverence to Ganapati. O Thou that art the soul of the earth. the water, the fire, the aether and the air...ancient and selfcreated ! Hara, Bhava, Siva, Sarva, Tryambaka (three-eyed). Isana (Lord), Rudra, Trinayana (three-eyed), Vrsabhanka (bull-marked), O Thou whose shape is endless, reverence to Thee.

(L.3) From [his] residence at the glorious canpaka, he who reverently remembers (lit. is meditating at the feet of 6) the very devout worshipper of the deities, the twice-born (the Brahmans) and the spiritual preceptors; [him] the supreme prince, the king of kings, the supreme Lord,7 the illustrious and divine Sahila, and who was born from the womb of the supreme princess and queen, the illustrious and divine Nenna, he, the tree of whose glory is increased by damming back the great wave of pride8 [arising from] the uprooting of the host of manifold foes, he, the supreme prince, the king of kings, the supreme lord, the illustrious and divine Yaga karavarman, the prosperous one-grants:

(L.7) -2 bhu of kohli land of the khani hospice in the purva (?) belonging to the village of Vida vika belonging to the Brahmapura district of his domain. Out of these a field, Sabdabagga by name, which was enjoyed (lit. centered) by the son of Harihalla Rankila, is given in exchang. Also in the village of Grima one pitaka of rice is given from the vapya land of Kutika which was [previously] enjoyed by the sons of Rahanka collectively and belong to the Akutanagavika. Further in the vicinity of the khani hospice is the Yamalika kitchen-garden, out of the vapya land there, two in figures, pitakas [are given]. [These] together with that of kutika [make] three pi. And [further] half the kitchen-garden.

(L.10) He [the king] informs all officials, every raja, rana, chief-justice and all house-owners. Be it known unto you, neighbouring country people, landholders and others, who are the eighteen elements of the State. On [the temple of] Narasimha founded by the queen, the illustrious and divine Tribhuvanarekha, is by a formal libation of water (?) this grant bestowed. Having understood [this], let all servants of the king, named and unnamed, observe it, so that on the authourity of the charter issued by us, he (the grantee) should live and cause (his tenants) to live, without paying a tithe [to the Raja]. Let no one offer obstruction.

(1.14) Whosoever, born of this race, may be king, I enjoin on him not to transgress [this] order. By [its] observance the highest religious merit, by [its] observance the highest heaven [will be attained], [its] observance, therefore, is very important. Whatsoever sin, from his birth onwords, a man commits, it will be cleansed by a gift of land, be it only the size of a cow-hide. He, who gives land, tilled with the plough, provided with seed-corn and fertile (lit. wreathed with grain) he will be blessed in Heaven as long as light is produced by the sun. He who takes away [the land] is not cleansed by [the digging of a thousand tanks], by a hundred horse oblations, and by a gift of ten million cows. Those who confiscate a grant of land are born as black serpents dwelling in the hollows of withered up trees, in waterless forests.

(1.19) In the year 10, [the month of] Vaisakha, the dark fortnight, the lunar day 10. The messenger on this occasion was the Recordkeeper, the illustrious Vivakha (la)

Written by the writer of legal documents Ja [sata?] Own sign-manual of the illustrious and divine Yagakara.

ऊँ कल्याण हो! श्री गणपति जी को प्रणाम। पञ्चभूतों के स्वामी, हे त्र्यंबक, त्रिनयन, वृषभांक, अनंत मूर्ति भगवान् शंकर आपके चरणों में प्रणाम।

परब्रह्मस्वरूप देवद्विज और गुरुओं के प्रति अति श्रद्धा भाव रखने वाले महाराजाधिराज साहिल देववर्मा के चरणों का ध्यान करने वाली महारानी नैनादेवी के गर्भ से जन्म लेने वाले परम पराक्रमी, शत्रुओं का विनाश करने वाले, महाराजाधिराज युगाकरवर्मदेव अपने चंपकनिवास से अपने राज्य के अंतर्गत ब्रह्मपुर मंडल में स्थित विडविका ग्राम के साथ लगी, पूर्व दिशा की ओर खणी मंठ की कूहल लगने वाली अच्छी भूमि के भागों में से सब्ज़बाग नामक खेत, जिससे हरिहालशंकिला का पुत्र लाभान्वित हो रहा था उसको परिवर्तन करके उसे अलग भूमि देता हूँ। ग्रिम नामक ग्राम में भी अपकुट नागरिक-सत्क-रहंक आदि के पुत्रों द्वारा जिसका उपयोग किया जाता था कुटिका की भूमि में से बावड़ी वाले स्थान से धान का एक पिटक दिया गया। खणी मठ की बाही हुई ज़मीन में यमलिका नाम सब्जी का बगीचा आधा भी दिया। इन सबको मिलाकर तीन स्थान हुए।

वही राजाधिराज युगाकरवर्मनदेव सभी अधिकारियों, सभी राजा-राणाओं को मुख्य न्यायाधीश को और सभी निवासियों को सूचित या आज्ञापित करते हैं। आप सभी जो पड़ोस के निवासी हैं। भूमि के मालिक हैं और जो अन्य भी हैं राज्य के साथ जो भी संबद्ध हैं वे भी इस बात को जानें कि रानी श्री त्रिभुवन रेखा देवी द्वारा प्रतिमित

नरसिंह के मंदिर के लिए ये समर्पित हैं। इस बात को जानकर हमारी आज्ञा और आदेश के कारण कोई भी राजा का अधिकारी इसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं डालेगा। आदेश से किसी भी शत्रु से इसकी रक्षा की जाए। हमारे कुल में कोई भी राज्या हो वह हमारे हस्ताक्षरित इस आदेश का पालन करेगा।

क्योंकि दान का पालन करना ही परम तप है। इसमें स्वर्ग की प्राप्ति होती है। न पालने से नरक। जन्म भर में मनुष्य जो भी पाप करता है वह व्यर्थ मात्र भूमि दान से शुद्ध हो जाता है। बाही हुई ज़मीन को खेती सहित जो देता है वह जब तक सूर्यादिग्रह हैं तब तक स्वर्ग में निवास करता है। सौ तालाब बनाने और सौ अश्वमेध यज्ञ करने से तथा कोटि गोदान करने से भी दान की हुई भूमि का अपहर्ता शुद्ध नहीं होता। जलविहीन वनों में सूखे वृक्षों की कोटर में काले सर्प बनकर जीवन यापन करते हैं। वे जो किसी के हिस्से को खा जाते हैं या हरते हैं। संवत्-10, वैशाख तिथि 10, संदेशवाहक व कागजात रखने वाला विवाखा। इस कानूनी पत्र को लिखने वाला जसट। युगाकर महाराज के निजी हस्ताक्षर।

भरमौर शिलालेख

भरमौर से लगभग दो किलोमीटर पीछे जहाँ ब्रह्माणी नाला सड़क से होकर नीचे उतरता है, एक ओर चट्टान को काटकर शिवलिंग, देवी-देवताओं के चित्र खुदे हैं। नंदी के आगे खड़े शिव, गणेश, महिषासुर मर्दिनी के रूप में चतुर्भुजी देवी की मूर्तियाँ चट्टान उकेर कर बनाई गई हैं।

चट्टान में खुदी तीनों मूर्तियाँ वही हैं जो मेरु वर्मन द्वारा भरमौर में 700 ई० के लगभग बनवाई गईं। शिव लिंग भी भरमौर में स्थापित शिवलिंग की भाँति है। केवल नृसिंह प्रतिमा यहाँ नहीं है। भरमौर में भी नृसिंह प्रतिमा न होने के आधार पर वोगल ने इस शिला प्रतिमाओं (Rock-cut-figures) को 700 से 950 ई० के बीच माना है।

इन शिला प्रतिमाओं के ऊपर वाली चट्टान में, जो एक दरार से विभाजित है, तिब्बती भाषा में शिलालेख है। तीन फुट दस इंच लंबी पंक्ति में मोटे अक्षरों में लिखे इस लेख को ए०एच० फ्रैंके ने "गरुड़ भगवान् का महिमामय अनुज राजकुमार" पढ़ा। फ्रैंके के अनुसार यह लेख प्राचीनतम लेखों में एक हो सकता है जो 700 से 900 ई० का रहा होगा। तिब्बत के राजकुमार का उल्लेख भरमौर पर तिब्बत की विजय के समय से जोड़ा जाता है। राजा लक्ष्मी वर्मन के समय कीरों द्वारा विजय को तिब्बत द्वारा विजय से संबंधित मान फ्रैंके ने इसे उस समय के होने की संभावना प्रकट की है।

छतराड़ी के लेख

शक्ति देवी छतराड़ी

शक्ति देवी छतराड़ी की चतुर्भुजी मूर्ति 4'6" है। लक्षणा देवी की तरह मुख आयुद्ध त्रिशूल न हो कर 'शक्ति' है। दूसरे दाएँ हाथ में कमल दल है। दोनों बाएँ हाथों में घंटी तथा साँप है। देवी कमल के ऊपर खड़ी है जिसमें लेख का उत्कीर्ण हुआ है।

लेख

मूर्ति के आधार में 13" लंबी दो पंक्तियों में लेख है। कलाकार का नाम 3" की अलग पंक्ति में दिया गया है। लिखावट का उत्कीर्ण भरमौर के लेख से निम्न कोटि का है। अक्षरों का आकार 3/8" से 1/2" है। नंदी (भरमौर) के लेख की भाँति इस में भी व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं।

मूलपाठ

ओं आमो गिशुडकुलधुर्यवाहो श्री देवमर्नेति प्रसिडकीर्त्तिर्तस्यसुतः सर्व्वगुणातिरामः श्रीमेरु-वर्मना प्रधिथत प्रिथिव्याः।। (1.2) मातापितः पुण्यनिमित्तपूर्व्व। कारापिता भक्तिता एव (?) शक्ति जित्वा रिपूं दुर्जयदुग्गेसंस्था कीर्त्तिर्यशोर्धर्मन- विवृध्यतायुः।। (1.3) कृतं कम्मर्नीण गुग्गेण।।

शुद्धपाठ

ओम्।। आमीद्दिशुङकुलधुर्यवाहः श्रीदेववर्मेति प्रसिद्धकीर्तिः। तस्य सुतः सर्वगुणाभिरामः श्रीमेरुवर्मा प्रथित (यशाः) पृथिव्याम्।। (1.2) मातापितष्पुण्यनिमित्तं पूर्व कारिता भक्तित एवं शक्तिः जित्वा रिपून्दुर्जयदुर्गसंस्थाङ्कीर्तियशोधर्मविवर्धितायुः।। (1.3) कृतं कर्मिणा गुग्गेन।।

TRANSLATION

There was an eminent chief of a pure race, the illustrious Devavarman of celebrated fame. His son, charming by every virtue, (is) the illustrious Meru-verman, renowned on the earth. First, for the sake of the spiritual merit of his parents, he, out of devotion, caused the image of Sakti to be made, after having conquered (his) focs in their invincible strongholds, he who has prolonged his life by glory, fame and religious merit.

अनुवाद

विशुद्ध कुल प्रसूतों में अग्रणी श्री देव वर्मा की कीर्ति सर्वत्र फैली थी। उनके पुत्र

श्री मेरु वर्मा सर्वगुण संपन्न तथा पृथ्वी पर प्रख्यात थे। उन्होंने अपने माता-पिता की तृप्ति के लिए तथा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के बाद अपनी भक्ति को माँ शक्ति के चरणों में प्रकट करने के लिए जिनकी कृपा से उन्हें विजय मिली-गुग्गा कार्मिक के द्वारा माता की मूर्ति का निर्माण करवाया।

गूं शिला लेख

चंबा से लगभग तीस किलोमीटर रावी के दाएँ किनारे गूं कोठी है। पुराने भरमौर मार्ग पर (अब सड़क से ऊपर) तीन किलोमीटर चढ़ाई पर स्थित इस स्थान में देवी का मंदिर है। मंदिर के चारों ओर अनेक शिवलिंग हैं जो एक सौ एक माने जाते हैं। यहाँ एक शिला, जो संभवतः शिवलिंग के साथ की रही होगी, में एक शिलालेख है। शिला 3'2" लंबी और 9" ऊँची है। पंद्रह से अट्ठारह इंच लंबी चार पंक्तियों के लेख में 3 / 8" से 1½ तक अक्षर हैं।

यह शिलालेख मेरु वर्मन के समय के शिलालेखों से भी पुराना माना जाता है। इसके अक्षरों की बनावट गुप्त काल के प्रारंभिक काल से मिलती है। अतः आठवीं की अपेक्षा सातवीं शताब्दी का समझा जाता है। वोगल ने इस लेख को मेरु वर्मन के समय के साथ जोड़ा है। लेख आषाढ़देव का है जो मेरु वर्मन का सामंत था। आषाढ़देव ने शिवपुर के मध्य में 'संकलीश' का मंदिर बनवाया।

मूलपाठ

ओं मोषीणादित्यवंग) (परम शिवनतो क्षत्रमादयात्तशुंग।
(1.2) श्री मेरोवर्म्मदेव कमलकिसलयाशत्य देवस्य पादा।
(1.3) सामन्त "आषाढ़देव सुतपितरजनो ब्रंण्डसेवाप्रसादा।
(1.4) कृत्वोयं देवधर्म्म शिवपुरमाधिक षंकलीशस्य हम्मर्य।।

शुद्ध पाठ

ओम।। मोषीणादित्यवंश (संभूत)-परम शिवनत---शुंग
(1.2) श्री मेरु वर्मनदेव-पादकमल किसलया श्रितेन
(1.3) सामन्ताषाढ़-देवेन सुरपितष्जनवृन्दसेवा-प्रसादात्
(1.4) कृतो यं देयधर्मः शिवपुरमध्यंग षंकलीशस्य हर्म्यम्

शिव भक्त, मूषण तथा आदित्य वंशी मेरु वर्मन के चरण कमलों में नत होकर सामंत आषाढ़ देव ने शिवपुरी के मध्य में षंकलीश के मंदिर का निर्माण कर अपने पितरों और देवताओं की सेवा की।

लेख की चारों पंक्तियाँ स्पष्ट अर्थ नहीं देतीं। तथापि इन में मेरु वर्मन के सामंत आषाढ़ देव द्वारा शिवपुरी के मध्य में षंकलीश के मंदिर बनवाए जाने का उल्लेख है।

शिलालेख से सिद्ध होता है कि मेरु वर्मन का राज्य रावी के निचले क्षेत्र में लगभग चंबा तक फैल गया था क्योंकि आषाढ़देव मेरु वर्मन का सामंत था।

षंकलीश की मूर्ति कहाँ है? यह अब ज्ञात नहीं है। यहाँ दूसरा आकर्षण है सूर्य

प्रतिमाओं का। एक-सी दो सूर्य मूर्तियों में एक अब भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में है। हरमन गोट्ज ने रावी घाटी की इस मूर्ति को ससेनियन (ईरानी) वेशभूषा में और गुप्त शैली व तकनीक की माना है। सात घोड़ों पर सवार सूर्य की यह प्रतिमा हिमाचल तो क्या पूरे उत्तर भारत में एक अनूठी प्रतिमा है। सूर्य की मानवाकार मूर्ति बजौरा (कुल्लू) में शिव मंदिर में भी मिली है जो मंदिर के बाहर बँधी पड़ी है। राज्य संग्रहालय शिमला द्वारा इसे ले जाया जा रहा था किंतु स्थानीय लोगों की आपत्ति पर ऐसा नहीं हो पाया। यह मूर्ति भी आठवीं शताब्दी की मानी जाती है।

पांगी

पर्वत से पर्वत तक : यात्रा

बैरागढ़

चंबा से पंचानवें किलोमीटर दूर बैरागढ़। कई पर्वतों को लाँघ एक ऊँचे शिखर पर प्रकट होता है। कमल के फूल की भाँति उगे पर्वतों में घिर जाने पर यह पता नहीं चलता कि कौन-सा ऊँचा है कौन-सा नीचा। जिस पर्वत पर खड़े हो जाओ, वह दूसरे से ऊँचा लगता है। बर्फ से ढके पर्वत बिना बर्फ के पर्वतों के नीचे लगते हैं। जैसे आँख के आगे हाथ कर लो, सूरज छिप जाता है। बैरागढ़ से साथ वाला पहाड़ साच दर्रे से कहीं ऊँचा लगता है जहाँ बर्फ जमी है।

शिखर से ऊँचा शिखर। पर्वत से ऊँचा पर्वत—कोई अंत नहीं है। कितने पर्वत, कितने शिखर, कितने दर्रे हैं चंबा में, यह कह पाना कठिन है।

चंबा शहर से पहले पुल के इधर ही सड़क रावी के पार जाती है। पुल के पार एक सड़क ऊपर जाती है साहो के लिए तो दूसरी नीचे बैरागढ़। कुछ दूर आगे जाने पर ऊँची सड़क के नीचे सुरगाणी बाँध दिखता है। उससे आगे लगभग आधा रास्ता तय करने पर ऊँचे स्थान पर तीसा का पुराना गाँव पहले नजर आता है। दूर से देखने पर गाँव में एक छोटा किला या बड़ी दीवार वाला मकान दिखता है। इसी जगह सड़क के किनारे 'तीसा' बोर्ड लगा है। तीसा का नया मुख्यालय ऊपर है। ऊँची पहाड़ी के सिरे पर छोटा-सा बाजार, एस०डी०एम० कार्यालय तथा अन्य सरकारी कार्यालय हैं। एक ओर शिव मंदिर है। तीसा पूरे चुराह क्षेत्र का मुख्यालय है।

चितौड़गढ़, मानगढ़ जैसा नाम होने के कारण बैरागढ़ किसी पुराने किले-सा आभास देता है किंतु अभी यह एक छोटा-सा गाँव है। घुमावदार सड़क की चढ़ाई चढ़ने के बाद। यहीं देवी कोठी का प्रसिद्ध मंदिर है जो गाँव से लगभग सात किलोमीटर है पैदल। गाँव के सिरे पर बर्फानी चोटियों की ओर देखता खड़ा है रैस्ट हाऊस। लगभग आठ हजार फुट की ऊँचाई पर बने इस रेस्ट हाऊस से ऊपर की ओर बर्फ भरी चोटियों का घेरा दिखाई पड़ता है। इसी घेरे में पहले है जम्मू जाने का पहला जोत। यहाँ से गूजर लोग आते-जाते हैं। कभी कभार इसी रास्ते जम्मू के डोडा से आतंकवादी भी आते हैं जो इन ऊँचे पहाड़ों और घने जंगलों में छिपे रहते हैं। आगे साच जोत है जो रेस्ट हाउस से दिखाई नहीं देता। बीच में एक ऊँचा पहाड़ है। साच जोत या पास पांगी के लिए यहाँ से एकमात्र प्रवेश मार्ग है। चंबा से होकर पांगी जाना हो तो साच पास पार करना ही होगा।

रेस्ट हाउस का चौकीदार शेरसिंह और उसका हेल्पर दोनों पांगी के थे। तीसा में तैनात एस०डी०ओ० लोकनिर्माण विभाग भी आज शाम यहीं थे। इनके पास आजकल बैरागढ़ मंडल का चार्ज भी था। संयोग से वे भी पांगी के थे। रेस्ट हाऊस में सभी पांगी वासियों के बीच लगा, सच ही ये पांगी का पहला पड़ाव है। पांगी के बहुत से लोग चुराह में आ बसे हैं। शेरसिंह ने भी चुराह में जमीन ले रखी थी और वहीं बस गया था।

जोत पर अकेले नहीं आते

हमारे पांगी जाने के इरादे पर सभी हैरान हुए। हम बहुत जल्दी जा रहे थे, उन्होंने बताया। जून में जाना जल्दी होता है। क्योंकि अभी बहुत बर्फ जमी रहती है जोत में। यही बात एस०डी०एम० चंबा ने भी बताई थी। हमारे अकेले जाने पर भी वे हैरान हुए। हम केवल दो ही थे। चंबा में ही उन्होंने हमें किसी को साथ ले जाने की सलाह दी थी।

रात शेरसिंह ने रास्ते की कठिनाइयों और खतरों के बारे में हमें बेहद डरा दिया। दरअसल दो दिन पहले यहाँ चंडीगढ़ से कुछ सैलानी आए थे। चंडीगढ़ की वह गाड़ी हमें रास्ते में वापस जाती मिली थी। वे अपने लड़के और लड़की के साथ पिछली शाम सतरुंडी गए थे। सतरुंडी साच पास के चढ़ाई के लिए निचला पड़ाव है। उनकी लड़की, जो चंडीगढ़ में डाक्टर थी, रास्ते में ग्लेशियर में फिसलकर गिर गई। खुशकिस्मती से वह बीच में फँस गई और सतरुंडी के चौकीदार ने, जो उसके साथ था, कठिनाई से उसे ऊपर खींचा। "उसकी जान बड़ी मुश्किल से बची साहब। अगले दिन जब वे वापस आए तो सभी रो रहे थे। माँ कह रही थी कि हमारा बच्चा हमारी आँखों से सामने गिर रहा था और हम कुछ नहीं कर पाए।" पिछली रात सतरुंडी में बर्फ गिरी। वे गए तो घूमने कि वापस आ जाएँगे, किंतु बर्फ गिरने से वहीं फँस गए और रात वहीं रुकना पड़ा। बाद में सतरुंडी के चौकीदार ने बताया कि किस तरह उसने ग्लेशियर में फँसी लड़की को बाहर खींचा। सतरुंडी में खूब आग जलाकर उन्हें तपाया और ढाँढ़स बँधाकर रात काटी।

"अभी कुछ दिन पहले जोत में एक आदमी मर गया। वह तो पांगी का ही रहने वाला था। जोरों का तूफान आने पर साथी उसे जोत में ही छोड़ आए और वह भटक गया।" शेरसिंह ने बताया।

शेरसिंह की इन बातों ने हमें गीदड़ बना दिया। रात सोते समय ऐसा विचार भी आया कि यहीं से वापस चलें। हालाँकि मैंने लापरवाही से कहा कि भई हम तो बर्फ के बीच रहने वाले हैं, मैदानों से नहीं आए। एस०डी०ओ० साहब ने भी सतरुंडी से चौकीदार या डाक ले जाने वाले को साथ ले जाने की बात दोहराई और रास्ते के लिए लोहे की फॉल, बड़ा लंबा डंडा दिया।

यह बातें कितनी सच थीं, यह आगे जाकर पता पड़ा। वह डंडा हमारे लिए

कितना उपयोगी हुआ कि यदि डंडा न होता तो हमें वापस लौटना पड़ता। बिना सोचे-समझे और रास्ता जाने हमने आने की कितनी बड़ी गलती की थी, वह आभास बाद में हुआ। हमें कोई दैवी शक्ति ही गंतव्य तक पहुँचा गई, अन्यथा कभी न पहुँच पाते।

जोत लाँघने की एक साइकोलोजी है। जोत लाँघते हुए कभी न रुकते हुए गिरते-मरते साथी को छोड़ना पड़ता है इसका बहुत ही यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण महाभारत में हुआ है।

द्रौपदी सहित सभी पांडव महागिरि हिमालय में गलने आए। चाहते तो अकेले युधिष्ठिर ही आते किंतु वे सभी भाइयों और द्रौपदी को भी साथ लाए। बर्फीला पर्वत चढ़ती बार सबसे पहले द्रौपदी गिरी। द्रौपदी गिरी किंतु युधिष्ठिर नहीं रुके। उन्होंने कहा इसका अर्जुन से विशेष स्नेह था, इसलिए गिरी। यदि वे रुक जाते, दूसरे भाई भी रुकते, तो निःसंदेह मरते। इसी तरह एक-एक कर सभी भाई गिरते गए। युधिष्ठिर नहीं रुके। संभवतः उन्हें भी किसी अनुभवी व्यक्ति ने कहा कि जोत पर रुकना मत। रुकोगे तो मरोगे। इसी कारण उन्होंने प्रिय भाइयों को तूफान में गिरने-मरने दिया। केवल अकेले ही उन्होंने जोत पार किया और जीवित रहे। अतः स्वर्ग पहुँचे। दूसरे लोक में जब इन्द्र के रथ पर सवार हुए तब शोक संतप्त हुए और गिरे हुए भाइयों का स्मरण किया। जब भाई गिर रहे थे तो उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। बिना देखे ही दोष लगाते रहे। यह जोत पार करने का यथार्थवादी मनोविज्ञान है।

वास्तव में ट्रेकिंग की जिस किताब में दिए रूट पर हम चले थे, उसमें सारी सूचना गलत दी थी। इस बात का पता हमें एस०डी०एम० उदयपुर से लगा कि ट्रेकिंग की इस किताब का वह लेखक कभी इन जगहों में नहीं गया। उसने गद्दियों से पूछ-पाछकर ही किताब लिखी है। किताब में दिए गए रूट में बैरागढ़ से सतरुंडी, जो पांगी के लिए जाने की चढ़ाई का आधार था, तेरह किलोमीटर बताया था। और सतरुंडी तक जीप योग्य सड़क बताई थी। वास्तव में बैरागढ़ से सतरुंडी की दूरी बीस किलोमीटर थी। यह बात रेस्ट हाउस में जूनियर इंजीनियर ने दो बार पूछने पर बताई। वहाँ तक जीप भी दो साल से नहीं जाती थी। रास्ते में जगह-जगह पहाड़ गिरे थे। पिछले ही साल बहुत बर्फ गिरने के कारण रास्ते के दो बड़े ग्लेशियर साफ नहीं हो सके थे। अब सभी लोग बैरागढ़ से नीचे तरेला से सीधे पैदल चढ़ते हैं। बैरागढ़ अब कोई नहीं आता।

कुछ बातें चौकीदार ने बहुत पते की बताईं जो रास्ते में उपयोगी सिद्ध हुईं। उसने कहा था, रात सतरुंडी में ही ठहरना, यदि लेट हो जाओ। अकेले जोत न लाँघना। सतरुंडी में हमारे रेस्ट हाउस का चौकीदार है, उसे जरूर साथ ले जाना। रास्ते में लाठी या बल्लम जरूर साथ रखना। सतरुंडी में खाना खाओ तो दही न खाना आदि।

रंग-बिरंगे फूलों से सुसज्जित धरती

सुबह छह बजे हम तैयार हो गए। चौकीदार ने एक बल्लम हमें ला दिया। बैरागढ़ से लगभग तीन किलोमीटर तक हम जीप में जा पाए। आगे सड़क बंद थी। वहाँ से हम पैदल चल दिए।

यदि सड़क जीप योग्य होती तो रास्ता सुगम रहता। पार सामने बर्फीली चोटियाँ दिख रही थीं। कुछ दूर आगे जाकर दो ऊँचे शिखरों के बीच एक चौड़ा रास्ता दिखा। निश्चित ही यह जोत होगा, हमने सोचा।

रास्ते में कुछ पशु और भैंसें चरती नजर आईं। गूजरों के कुछ डेरे भी थे। हाथ में दराट लिए एक गूजर लड़का हमें मिला। उसका नाम मुहम्मद सिद्दीक था। वह पंजाब का रहने वाला था। आजकल ये लोग भैंसे लेकर यहाँ चले आते है। यहाँ इनके लिए 'चरान' हैं जो इनके नाम हैं।

गद्दी और गूजर ये दो ऐसे जनजातीय कबीले हिमाचल में, जो घुमक्कड़ हैं और बारह महीने चलते रहते हैं। सर्दियों में ये लोग निचले क्षेत्रों में चले जाते हैं और गर्मियों में वापस पहाड़ों की ओर। गद्दियों के नाम प्रदेश के निचले क्षेत्रों में 'चरान' हैं तो गूजरों के ऊपरी क्षेत्रों में।

मुहम्मद सिद्दीक ने बताया वह पंजाब में मदरसे में पढ़ता है। आजकल छुट्टियाँ हैं, इसलिए यहाँ आया है। उसने सामने साच पास दिखाया। यह वही था, जो हमने पीछे से देखा था। दोनों ओर ऊँचे कंगूरे, बीच में रास्ता। दूर से ही उसमें काफी बर्फ नजर आ रही थी। साच पास के साथ वाले दर्रे में बर्फ कम थी जो जम्मू जाने का रास्ता था। "आप तीन बजे तक लाँघ जाएँगे बड़े आराम से, उसने कहा तो हमारा हौंसला बढ़ा।

कुछ दूर आगे एक और गूजर लड़का मिला। उसका नाम भी मुहम्मद था। अपनी भैंसें लेकर वह उन्हें चराने जा रहा था।

यहाँ से भोजवृक्ष के वन आरंभ हो गए। जगह-जगह भोजवृक्षों की छाल बिखरी पड़ी थी।

शेरसिंह ने बताया था, आगे दो ग्लेशियर आएँगे—एक छोटा, एक बड़ा। दो छोटे ग्लेशियर हमने आसानी से पार कर लिए। ग्लेशियर सीधे सपाट थे अतः पार काने से कोई दिक्कत नहीं हुई। हमने सोचा बस यही ग्लेशियर होंगे और इसी पहाड़ के कोने में सतरुंडी होगा।

आगे जाकर कुछ बड़ा ग्लेशियर आया। यह काफी लंबा था किंतु था लगभग साठ के कोण में। अतः थोड़ी सावधानी से चलकर पार कर लिया। हमने समझा बड़ा ग्लेशियर जिसे काला ग्लेशियर बताया था, वह भी पार हुआ।

बैरागढ़ से कहीं भी बिना रुके चले हुए लगभग दो घंटे हो गए थे। पहाड़ के जिस कोने में हम सतरुंडी समझ रहे थे वह आने में नहीं आ रहा था। जिस उत्साह से

हम आगे बढ़ रहे थे, वह सामने लेटे पर्वताकार ग्लेशियर को देख ठंडा पड़ गया। यह दो फर्लांग से भी लंबा ग्लेशियर था, अस्सी के कोण पर लेटा हुआ। लगभग सीधे खड़े ग्लेशियर में कहीं भी पाँव टिकाया नहीं जा सकता था। पर्वत के ऊपर से नीचे नाले तक दैत्याकार लेटा यह काला ग्लेशियर था जो एक सीधी फिसलने वाली चट्टान के समान था। इस पर एक पाँव रखना भी खतरे से खाली नहीं था।

हम बैठ गए। ग्लेशियर के पार रास्ता था जो सतरुंडी वाले पहाड़ को जा रहा था। निश्चित था सतरुंडी पार के पहाड़ में है, इस कोने में नहीं। कुछ देर सुस्ताने के बाद हम असमंजस में बैठे रहे कि यदि अब वापस जाते हैं तो बेइज्जती होगी। यदि पार जाएँ तो कैसे !

आखिर शेरसिंह का दिया बल्लम काम आया। बल्लम से खोदकर पाँव टिकाने लायक जगह बनती तो एक पाँव टिका आगे खोदते। आधे रास्ते मैंने बल्लम से खोदकर रास्ता बनाया तो आधे रास्ते मेरे साथी ने। बीच में खड़े-खड़े ही आराम किया। उस सीधे ग्लेशियर में पाँव फिसलता तो नीचे नाले से पहले टिकने की कोई जगह नहीं थी।

इस ग्लेशियर को पार करने में कम से कम एक घंटा लग गया। एक छोटा ग्लेशियर आगे भी था जो उतना सीधा न था। इसे पार करने पर यह बिलकुल साफ हो गया कि सतरुंडी पार के पर्वत में है जहाँ हमें दूर से एक घर-सा दिखाई दे रहा था।

यदि बल्लम न होता तो हम कभी भी इस ग्लेशियर को पार नहीं कर पाते और हमें वापस लौटना पड़ता।

पार के इस पर्वत के आरंभ में ही रंग-बिरंगे फूल खिले थे जमीन पर। कोई पेड़ नहीं था यहाँ। जाहिर है यह साच दर्रे का पर्वत था जो ऊँचाई में अधिक था। यहाँ सारी धरती रंग-बिरंगे फूलों में भरी थी। ये फूल बर्फ पिघलने पर खिलते हैं। पार कुछ भेड़ें चर रही थीं।

सतरुंडी में एक बड़ी चट्टान थी जो दूर से हमें एक घर जैसी दिख रही थी। इसी चट्टान के नीचे लोक निर्माण विभाग के हट बने थे। ऊपर गोरखों के दो ढाबे थे। वहाँ हमने एक ढाबे में खाना खाया। वहां सतरुंडी के रेस्ट हाउस या हट का चौकीदार और डाकिया बैठे थे।

डाक ले जाना यहाँ का आदिम तरीका है। सतरुंडी वाला डाकिया डाक लेकर जोत तक ले जाता है। बैरागढ़ से दूसरा आदमी सतरुंडी तक डाक लाता है। जोत से दूसरी ओर बगोटू, बिंद्राबनी—इन ठिकानों से अलग-अलग हरकारों द्वारा ले जाई जाती है। इन सभी जगहों में हमने डाक के थैले पड़े देखे।

डाकिये से हमने जोत तक जाने को कहा किंतु जब तक हम खाना खाकर हटे, वह वहाँ से खिसक गया। चौकीदार ने बताया उसका पेट खराब है। हमने उसे दवाई

देने के बात कही और बैरागढ़ के एम०डी०ओ० का जिक्र किया तो वह साथ चलने को तैयार हो गया।

कभी अपने आप ही सब अच्छा होता जाता है। यह भी अच्छा हुआ कि हमने चौकीदार साथ ले लिया नहीं तो हम कभी ऊपर नहीं पहुँचते। वैसे भी बारह तो नीचे ही बज गए। एक के बाद जोत पर ठंडी हवाएँ चलने लगती हैं और बादल आ जाते हैं। बादलों के बीच कुछ दिखाई नहीं देता। हम तो सब दिखाई देने पर भी ऊपर नहीं पहुँचते क्योंकि वहाँ रास्ता नहीं था। कहीं किसी के पाँव के निशान नहीं। पिछली रात ही तो ताजी बर्फ गिरी थी। हम सीधा चढ़ने की सोच रहे थे, रास्ता घूमकर था। ढाबे के साथ ही जोत के नीचे बर्फ शुरू हो गई। पार की चढ़ाई चढ़ने से पहले पानी का एक नाला पार किया जहाँ जूते उतारने पड़े। छोटे से नाले को पार करते-करते ही ठंडे पानी में पाँव दर्द शुरू हो गई।

जोत में नीचे से ऊपर तक कोई रास्ता नहीं लगा था। अब इस रास्ते में लोग आते-जाते भी कम हैं। लाहुल, उदयपुर से होकर पैदल कम चलना पड़ता है। जोत भी नहीं है। रोहतांग है, वह बस द्वारा पार हो जाता है। इसीलिए अधिकतर लोग लाहुल से जाते हैं। अभी जल्दी भी थी। अभी यहाँ से बहुत कम लोग आए क्योंकि रोज बर्फ गिर रही थी।

जोत लाँघने का उपयुक्त समय दोपहर से पहले का है। जब हम चले, उस समय हमें ऊपर होना चाहिए था। आज सुबह भी सतरुंडी रात ठहरकर चार-पाँच आदमी गए थे। दोपहर बाद बादल छा जाते हैं, तेज हवाएँ चलती हैं।

पर्वत ही पर्वत

साच पास (14,400′) रोहतांग से ज्यादा ऊँचा है। हवाएँ रोहतांग की अधिक खतरनाक हैं। वहाँ दोपहर बाद सूं-सूं आवाज करती इतनी तेज हवाएँ चलती हैं कि आदमी एक जगह टिककर खड़ा नहीं हो सकता। रोहतांग ज्यादा चौड़ा भी है, इसलिए यात्री भटक जाते हैं। साच पास कम चौड़ा है। दोनों ओर खड़े कंगूरों से मर्यादित हुआ है। रोहतांग की बर्फ जब लगभग खतम हो जाती है, यहाँ दोनों ओर पाँच किलोमीटर तक बर्फ जमी रहती है।

सतरुंडी से पाँच किलोमीटर चढ़ाई में नाला पार करने के बाद थोड़ा टेढ़ा-टेढ़ा चढ़ने के बाद एकदम सीधी चढ़ाई है। चारों ओर बर्फ ही बर्फ। यदि रुककर साँस लेनी हो या बैठना हो तो कोई जगह नहीं। बस खड़े-खड़े ही चढ़ी हुई साँस को कुछ संतुलित करो, फिर चलना शुरू करो। लाठी के सहारे दो घड़ी खड़े होना ही यहाँ आराम करना है। कहीं भी ज्यादा खड़े होने या बैठने के लिए सावधान किया था शेरसिंह ने। बैठना ठीक नहीं, बस धीरे-धीरे चढ़ते रहो।

इस सीधी चढ़ाई में कम से कम दो बार लाठी के सहारे खड़े-खड़े दम लेना

पड़ा। ऊपर जाकर कुछ समतल-सी जगह थी जिसके आगे जोत के कंगूरे सामने दिख रहे थे।

आखिर तीन घंटे में हम जोत के ऊपर पहुँच गए लगभग तीन बजे। बादल अभी आ रहे थे फिर भी धुंध नहीं थी। जोत पर बने देवता के स्थान को प्रणाम कर हम चाय की दुकान में बैठ गए। यह दुकान चुराह के एक व्यक्ति की थी। यहाँ बैठने और चाय पीने पर हमारी सारी थकान मिट गई। सतरुंडी का चौकीदार दीवान समतल रास्ता आने पर हमें जोत के कुछ पीछे छोड़ गया क्योंकि बादल घिरने का भय था।

जोत से नीचे उतराई में चाय वाला दुकानदार हमें कुछ दूरी तक छोड़ गया। आगे सीधी उतराई थी और खच्चरों के खुरों के निशान भी बने थे। इस ओर भी पूरा रास्ता बर्फ से भरा हुआ था। आसपास सब जगह बर्फ ही बर्फ।

दूसरी ओर नीचे पहुँचने पर कुछ सुस्ताने के बाद पुनः चले तो नीचे पूरा का पूरा दरिया बर्फ बना हुआ था। बीच-बीच में कहीं-कहीं पानी दिखता, आगे बर्फ कहीं पानी छिप जाता कहीं प्रकट हो जाता। आगे जाकर दरिया पूरा का पूरा छिप गया, ग्लेशियर की ठोस चट्टान के नीचे यहाँ पता नहीं लग रहा था कि नीचे कहीं पानी भी वह रहा होगा।

शेरपाओं की मेहमानी

पहाड़ी के नीचे लगभग छह किलोमीटर चलकर एक ढाबा नजर आया। यह बगोटू था। दूसरी ओर पहला पड़ाव बगोटू आता है। यह सुना और पढ़ा था। नाम जगह से होता है। कोई गाँव हो, बस्ती हो तभी नाम पड़ता है। यहाँ कोई गाँव नहीं, बस्ती नहीं। ऐसा ही सतरुंडी में भी था।

बगोटू न गाँव न बस्ती। सिर्फ एक ढाबा था। एक शेरपा इसे चलाता है। जिसका नाम था ग्यामज़ों शेरपा। उसकी पत्नी और लगभग चार साल का लड़का साथ रहता है। इस बर्फ के रेगिस्तान में जहाँ दोनों ओर पाँच-पाँच किलोमीटर तक ग्लेशियर हैं। एक ओर जोत है। पानी का नाम नहीं, बस बर्फ पिघलाकर गुजारा चलता है।

शेरपा और गोरखे बर्फ के रेगिस्तान में मीठे झरने समान हैं। इतनी हिम्मत से यहाँ रहते हैं और यात्रियों को इतने सस्ते दामों में खाना मुहैय्या करते हैं। मौत के इस सफर में जोत के दोनों ओर ये लोग संजीवनी की तरह हैं। इनकी हिम्मत की दाद देनी पड़ती हैं जो ऐसे मौसम में यहाँ आते हैं और हर संभव सुख-सुविधाएँ थके यात्रियों को उपलब्ध करवाते हैं।

शेरपा ने गर्म पानी नमक डालकर दिया जिससे पैर धोकर सारी थकान जाती रही। उस रात शेरपा के हम ही मेहमान थे। ढाबे के साथ एक टेंट में सरकारी रेस्ट हाऊस भी था जिस में दो बिस्तर लगे थे। हमें सरकारी जान उसने टेंट में सुलाया।

वहीं खाना भी खिलाया। इस रेस्ट हाउस का चौकीदार भी यही शेरपा था।

रात ठीक से नींद नहीं आई। तेज हवा से जैसे टेंट उड़ा जा रहा था। आँखें बंद करने पर बर्फ और पहाड़ ही पहाड़ घूमते रहे।

सुबह ही हम हाथ-मुँह धोकर तैयार हुए तो नीचे ग्लेशियर के ऊपर तीन-चार बिंदु से दिखाई दिए जो हमारे चाय पीते-पीते नज़र की पहुँच में आ गए। तीन खच्चरें और कुछ लोग आ रहे थे। चंबा जाने के लिए तड़के ही अगले पड़ाव दुनई या बिंद्रावणी से चलना पड़ता है। बगोटू सात-आठ बजे तक पहुँच जाओ तो जोत चढ़ा जा सकता है। अधिकांश लोग जोत चढ़ने के लिए बगोटू से ही चलते हैं।

ये लोग जम्मू के थे जो खच्चरें लिए अब जम्मू वापस जा रहे थे। यहाँ बैठ उन्होंने अपने साथ लाई रोटी खाई और चल दिए।

हमें शेरपा दुनई तक छोड़ने आया। हमारा सामान भी उसने उठा लिया। दुनई तक पूरा रास्ता ग्लेशियर के ऊपर था। रास्ते में उसने हमें एक जगह बताई जहाँ पिछले साल ग्लेशियर में खच्चरें और दो आदमी डूब गए थे। एक आदमी शाम को देर से चला और मर गया। सवेरे उसकी ठंडी लाश मिली।

यहाँ लाल भालू होते हैं, शेरपा ने बताया। एक जगह उसने ग्लेशियर के बीच कस्तूरी मृग के भूरे बाल दिखाए। पिछले साल यहाँ कस्तूरी मृग मरा था। उसकी भूरी खाल अभी भी बर्फ में दबी थी।

"यहां साल भर ग्लेशियर बना रहता है। ज्यादातर जगहें ऐसी हैं जहाँ हमने जमीं नहीं देखी बाबू जी''पिछले साल ऊपर से ग्लेशियर आया तो सारा ढाबा दब गया। हम तो बच गए किसी तरह''।" शेरपा ने बताया। "कितना कमा लेते हो''" मैंने पूछा। "बाबू पाँच-सात हजार।"

दुनई के करीब वह लकड़ियाँ लेने चला गया। हम लकड़ी के पुल से नाला पार कर एक और ढाबे के पास पहुँच गए। यहाँ ग्लेशियर के पेट से पानी भयंकर गति से बाहर आ रहा था।

दुनई का तथाकथित रेस्ट हाउस खस्ता हाल में था। रेस्ट हाऊस क्या दो खुले कमरे भर थे। जहाँ बीच में लकड़ी की आग जलाई थी यात्रियों ने।

चौकीदार कोई नहीं था। रेस्ट हाऊस के आगे एक ढाबा था जहाँ कुछ आदमी बैठे ताश खेल रहे थे। कुछ देर यहाँ आराम कर चाय पी।

नाले के इस ओर यह पुराना रास्ता था। सामने पार सड़क दिख रही थी जो टूटी-फूटी तो थी, पैदल चलने के लिए आसान हो सकती थी किंतु दुकान वालों ने हमें यही रास्ता बताया।

कुछ दूर जाने पर एक ग्लेशियर मिला। था तो छोटा किंतु था बिलकुल सीधा। ऊपर नीचे कोई आसान रास्ता नजर नहीं आया। हमारा एकमात्र बल्लम नीचे से टूट गया था। मेरे साथी के पास चाकू था। जिससे उसे नीचे से छीलकर फिर तैयार

किया। यहाँ भी एक-एक कदम के लिए खोदकर रास्ता बनाना पड़ा।

दोपहर को हम बिंद्रावणी पहुँचे। बिंद्रावणी एक सुंदर स्थान है अच्छा रेस्ट हाउस । एक-दो ढाबे। गाँव यहाँ भी कोई न था। अलबत्ता बिंद्रावणी के ऊपर इस ओर एक पहला गाँव था।

यहाँ हम नहाए। ढाबे में खाना खाया। बिंद्रावणी नाले के पार सड़क थी। जीप योग्य यह सड़क कभी दुनई तक बनी थी जो अब बीच-बीच में खराब हो गई थी। इस समतल सड़क से चलते हुए हम आराम से चंद्रभागा नदी के पास पहुँच गए जहाँ एक होटल में चाय पी।

चंद्रभागा के पार किलाड़ के लिए चढ़ाई बड़ी जानलेवा थी। रास्ता तो लंबा नहीं था, चढ़ाई भी उतनी नहीं, लगभग तीन बजे की तीखी धूप काट रही थी। जिससे ऊपर पहुँचते-पहुँचते पसीना-पसीना हो गए।

छोटी चढ़ाई चढ़ने के बाद रास्ता टेढ़ा हो गया। यहीं पांगी की ओर का पहला गाँव आया। पहले गाँव प्रेगाम से आगे बड़ा गाँव था प्रघुआल जहाँ हमने पानी पिया।

हम ऊपर पहुँच गए थे। चंद्रभागा नीचे रह गई। यहाँ आकर ऐसा लगा कि चंद्रभागा में जितना पानी है, उतना हिमाचल की किसी नदी में नहीं है और ये भी कि जितने पहाड़ चंबा में हैं, उतने कहीं नहीं और पहाड़ भी वृक्ष वनस्पति से भरे।

यहाँ से चंद्रभागा के पार भी कुछ आबादी दिखाई दे रही थी। एक गाँव पार के पहाड़ के तल में था।

पांगी के मुख्यालय किलाड़ पहुँचने पर एक उत्साह हुआ और थकान जाती रही। बैरागढ़ से सतरुंडी बीस किलोमीटर, सतरुंडी से जोत पाँच किलोमीटर जोत से पहला पड़ाव बगोटू छह किलोमीटर। बगोटू से बिंद्रावणी तेरह किलोमीटर, बिंद्रावणी से किलाड़ ग्यारह किलोमीटर। सफर तो बहुत लंबा था। रेस्ट हाऊस में गर्म पानी में नमक डाल पैर धोए। मालिश की और सुबह तरोताजा हो गए।

पुराना गाँव कोठी और किलाड़

किलाड़ लगभग आठ हज़ार पाँच सौ फुट ऊँचे पहाड़ पर बसा है। रेस्ट हाऊस, रेजीडेंट कमिश्नर तथा अन्य कार्यालय एक जगह हैं। पुराना कोठी गाँव कुछ दुकानों के आगे पार की ओर है। यदि उदयपुर की ओर से आएँ तो कोठी गाँव में पहले पहुँचेंगे।

कोठी राजाओं के समय का गाँव है। पुराने घर, पुरानी दुकानें, पुराना मंदिर। देवी का मंदिर छत के ऊपर बना हुआ है। आसपास का मंदिर परिसर सिमटता जा रहा है। पुराने गाँव का लगभग आधा आधुनिकता की चपेट में आ गया है। अस्पताल के बाहर एक छोटे-से मैदान में दीवारों के अवशेष हैं। नया अस्पताल और दुकानें बनने से अब पुराने गाँव का स्वरूप नज़र नहीं आता।

अस्पताल में पांगी के निवासी डाक्टर से भेंट हुई। यह जानकर बड़ी तसल्ली हुई कि वहाँ का एक डॉक्टर अपनी भूमि में सेवा कर रहा था। अन्यथा जनजातीय लोग जो अफसर बन जाते हैं, अपने दुर्गम क्षेत्र में नौकरी नहीं करते। सभी अच्छे स्टेशन चाहते हैं। अच्छी जगहों मे बस जाते हैं जहाँ कुछ वर्षों बाद उनका नाता प्रदेश के मुख्यालय या जिला मुख्यालय से हो जाता है। इन डॉक्टर का जिक्र बैरागढ़ में एस०डी०ओ० ने किया था। उन्होंने ने बताया था कि अब तक आठ-दस ही 'अफसर' की श्रेणी में पहुँचे हैं। हाल ही में एक युवक आई०ए०एस० में भी आया है। हिमाचल के जनजातीय क्षेत्र किन्नौर तथा लाहुल स्पिति की अपेक्षा पांगी से सरकारी सेवा में कम लोग हैं। लाहुल के एक ही गाँव के कई आई०ए०एस० व प्रथम श्रेणी अधिकारी हैं। इसका कारण यही है कि चंबा के जनजातीय क्षेत्र के गद्दी घुमंतु हैं। इन्हें भेड़-बकरियों के साथ रहना पड़ता है एक जगह न टिक पाने के कारण पढ़ाई नहीं हो पाती। पांगी तो और भी दुर्गम और कटा हुआ क्षेत्र है।

वन विभाग के कार्यालय के नीचे देवदार के जंगल में नाग मंदिर है। नाग मंदिर के द्वार पर कलात्मक काष्ठकला हुई है। यहाँ के सभी मंदिर एक ही शैली के हैं। ढलवाँ छत। सामने के द्वार तथा लकड़ी की दीवार पर नक्काशी। भीतर लकड़ी की या दूसरी मूर्तियाँ। यह शैली मृकुला देवी तक चली गई। कोठी की देवी, मिंधल की देवी, किलाड़ के मंदिर सभी एक ही शैली के हैं। काष्ठकला का उत्कृष्ट उदाहरण मृकुला देवी का मंदिर है। जैसे शनैः-शनैः काष्ठकला का विकास होता गया और उदयपुर में चरम सीमा पर पहुँचा। या फिर मृकुलादेवी से होता हुआ यहाँ पहुँचता-पहुँचता कम होता गया।

पांगी : एक पुरातन क्षेत्र

पांगी में अभी भी कुछ आदि या पुरातन तरीकों का प्रयोग होता है। जैसे छत में भोजपत्र का प्रयोग किया जाता है। मिट्टी के घरों में केवल पशु बाँधे जाते हैं तो दूसरी ओर खुद रहने के लिए प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं लकड़ी से उस कमरे का विभाजन भी किया जाता है। रहने के साथ वहीं चूल्हा, वहीं रसोई। कोई फर्नीचर नहीं, कोई ज्यादा सामान नहीं। पशुओं के वहीं बँधे होने के कारण सर्दियों में घर गर्म रहते हैं।

सात हजार से इक्कीस हजार फुट की ऊँचाई पर आबाद पांगी में बारह हजार फुट तक आबादी है। जम्मू के किश्तवाड़ से पांगी का पहला गुल्हाड़ इकतीस किलोमीटर है। दो दिन का पैदल रास्ता। हिमाचल का आखिरी नाला संसारी नाला है, पार जम्मू। पांगी का अधिकांश सामान जम्मू से ही आता है। साच-पास जून अंत तक पैदल आने काबिल बनता है। रोहतांग भी इन्हीं दिनों खुलता है। दोनों जोत अक्तूबर में अंत तक बंद हो जाते हैं। ऐसे में जम्मू ही रह जाता हैं जहां से सामान खच्चरों पर लाया जा सकता है।

पांगी का क्षेत्रफल 1,58,198 हेक्टेयर है जिसमें 1,10,300 हेक्टेयर जंगल है। कृषि योग्य भूमि कुल 2,123 हैक्टेयर है। 1991 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 15,635 है। 2001 की जनसंख्या के अनुसार पांगी की जनसंख्या 17,598 है। जिसमें 9,259 पुरुष तथा 8,339 स्त्रियाँ हैं।

धरवास, करयास, किलाड़, सेरी भटवास, साच, सेहली, सेचू, पुरथी आठ पटवार सर्कल हैं, जिसमें 54 गाँव है। एक सीनियर सेकेंडरी स्कूल, छह हाई स्कूल, पाँच प्रोजेक्ट स्कूल, तीन मिडिल स्कूल और अड़तालीस प्राइमरी स्कूल हैं। तथापि साक्षरता बत्तीस प्रतिशत है।

किलाड़ के साथ दोनों ओर सुंदर गाँव तथा घाटियाँ हैं। जिनमें सुराल घाटी, सबसे सुंदर है। पहाड़ों में ऊँचाईयों पर बौद्ध बिहार हैं। जहाँ भोट लोग रहते हैं। इन्हें 'भटोरी' कहा जाता है। जहाँ शिखरों पर यह रहते हैं उन्हें 'गाहर' कहते हैं।

प्रमुख खेती जौ, गेहूँ, आलू है। कुछ जड़ी-बूटियाँ जैसे रत्नजोत, कुठ, बन ककड़ी, मीठी पतीश, कड़वी पतीश, काला जीरा, धूप आदि हैं। भेड़-बकरी पालन भी मुख्य धंधा है।

कौन लोग बसते हैं यहाँ !

"पहले बहुत गरीबी थी यहाँ", एक ग्रामीण ने बताया, 'हम लोग कंगीली घास जो ऊँचे पहाड़ों पर होती है, खाकर पेट भरते थे। राजाओं के समय चुराह से राशन आता था यहाँ।'

पंगवाल सिर में टोपी लगाते हैं जो कैदियों की तरह की होती है। इसलिए कहा जाता है, पांगी राजा चंबा का कैदखाना था। लोगों को यहाँ देश निकाला कर कैद के तौर पर रखा जाता था। कुछ लोगों का मानना है कि पंगवाल जम्मू-कश्मीर से आए। मुगल आक्रमणकारियों से तंग आकर भद्रवाह के लोग अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए यहाँ आ बसे।

पंगवालों की आकृति, कदकाठी गद्दियों से भिन्न है। न ही ये लाहुलवासियों से मिलते हैं। एक अलग विशिष्टता है इनमें। बोली भी भिन्न है, गादी से या भोटी से। पुरुषों की वेशभूषा में पाजामा तथा घर में बुना और बनाया कोट है। स्त्रियाँ रंगदार पट्टू, चुस्त पाजामा पहनती हैं। सिर पर छोटी टोपी, जिसे जोजी कहा जाता है। पट्टू ऊन से बनाया जाता है। चाँदी के गहने पहनने का स्त्रियों को शौक है।

1985 में पांगी को हिमाचल सरकार द्वारा एकल प्रशासन प्रणाली (सिंगल लाइन एडमिनिस्ट्रेशन) के अंतर्गत लाया गया। कई सरकारी सुविधाएँ प्रदान की गईं। सरकारी अधिकारियों ने बताया कि सरकारी सहुलियतों और सब्सिडी से लोग निकम्मे और निठल्ले हो गए हैं। हर कोई अब लोक निर्माण विभाग से मजदूरी माँगता है। मुफ्त का राशन चाहते हैं। काम कोई नहीं करना चाहता। ऐसा कई जगह हुआ है। अधिक सुविधाओं और सबसिडी ने लोगों को निकम्मा बनाया है।

अधिक जातियाँ न होना यहाँ की विशेषता है। राजपूत, ठाकुर, ब्राह्मण, लुहार, चिनाल—यही जातियाँ हैं। चिनाल हरिजन हैं। राजपूत या ठाकुर एक ही हुए। अतः आदिम संस्कृति के परिचायक राजा (राजपूत-ठाकुर), ब्राह्मण, लुहार तथा चिनाल—इन वर्गों का होना महत्त्वपूर्ण है।

भटोरियों के बासी भोट अलग हैं। जिन्हें ये लोग घर के अंदर नहीं मानते है। इन्हें लुहार ओर चिनाल की श्रेणी का माना जाता है।

क्यों रहते हैं लोग यहाँ !

"आप यहाँ क्यों रहते हैं ?" यह सवाल अजीब-सा है जिसका तुरंत जवाब नहीं सूझता। कुछ प्रश्नों का जवाब नहीं होता¨जैसे आप पांगी में क्यों पैदा हुए। शिमला, दिल्ली या स्विटजरलैंड में क्यों नहीं। ऐसा ही सवाल एक लाहुलवासी से पूछा था कि जब लाहुल साल में चार महीने के लिए शेष संसार से जुड़ता है। तो आप यहाँ क्यों रहते हैं! छोड़ क्यों नहीं देते इस जगह को। जहाँ इतनी बड़ी जगह खाली पड़ी है, बिना रहने वालों के, वहाँ और सही।

हाँ, बहुत लोगों ने अपनी जगह छोड़ी भी है। जैसे अधिकांश लाहुलवासी अब मनाली, कुल्लू में आ बसे हैं। पांगी के कुछ लोग चंबा के चुराह में चले गए हैं। बहुतेरे गद्दी लोग पालमपुर आ बसे हैं। जो सर्विस में आ गए, उन्होंने घर बसा लिए। किंतु ये लोग कितने हैं ?

ऐसा ही एक सवाल पांगीवासी से पूछा। वह खामोश रहा। उसकी नजर घर-गाँव की ओर गई। जैसे एकदम उसे जकड़ लिया हो गाँव के परिवेश ने। अपने रिश्ते-नातों ने, जो सदा सुख-दुख में साथ रहे हैं¨अपनी जमीन भी छोड़ता है कोई ? जवाब उसने नहीं दिया, मेरा ही था। कोई जवाब नहीं था इस सवाल का उसके पास। सवाल कुछ ऐसा ही था कि कोई पूछे आप इस टपकते घर में क्यों रह रहे हैं ? या आप उस बिस्तर पर क्यों सोते हैं जिस पर आपके पिता, दादा या परदादा की मृत्यु हुई।

चैरी : सुरम्य स्थान

बाईस जून (1993) का दिन किलाड़ में ही बिताया। अगले दिन वहाँ रहने के बजाय एक रात्रि चैरी और दूसरी पुरथी में बिताने का निश्चय किया ताकि रास्ते की कुछ जगहें विशेषकर मिंधल माता का मंदिर देखा जा सके।

रेजीडेंट कमिश्नर श्री धीमान ने लोक निर्माण विभाग के अधिकारी से कहकर हमें एक आदमी दिला दिया जो हमारा सामान लेकर हमें चैरी रेस्ट हाऊस में छोड़ता। अवतारचन्द नाम था उस आदमी का जो हमें दिया गया। वह किलाड़ में ऊपर क्वास का रहने वाला था।

किलाड़ से चैरी तेरह किलोमीटर है। रास्ता चंद्रभागा के ऊपर-ऊपर बिलकुल समतल क्योंकि यह सड़क मार्ग था। सड़क का काफी काम पूरा हो गया था। किलाड़ में सेना के अधिकारियों से बात हुई थी। उन्होंने बताया कि चैरी से आगे लगभग दस-बारह किलोमीटर सड़क बनने को शेष है जो इसी साल के अंत तक बन जाएगी। अगले साल उदयपुर से किलाड़ तक जीप चल सकेगी।

इस समय घाटी में कोई गाड़ी नहीं चलती है। रेजीडेंट कमिश्नर की जीप उदयपुर खड़ी रहती है। लोक निर्माण विभाग की एक जीप हेलीकाप्टर से लाई गई थी। जो अब खराब है। गाड़ी न चलने से सड़कें उपयोगी नहीं रहीं। आगमन अब घोड़ों-खच्चरों पर होता है।

सड़क से ऊपर साच गाँव के पास गणपत नाले के पार चैरी का रेस्ट हाऊस है। देवदारूओं से घिरा सुंदर स्थान। साथ में तेजी से गिरते गणपत नाले कर शोर रेस्ट हाऊस तक सुनाई पड़ता है।

अवतारचन्द से रास्ते में और रेस्ट हाउस में बातें होती रहीं। धीरे-धीरे वह बातें करता हुआ खुलने लगा।

विवाह परम्परा

पांगी में संयुक्त परिवार प्रथा है। लड़की का विवाह बारह साल और लड़के का पंद्रह साल की उम्र में कर दिया जाता है। विवाह अपनी जाति में होता है।

विवाह परंपरा में मँगनी वाले विवाह को 'मंगवाली' कहा जाता है। मंगवाली करवाने वाले को दीवान कहते हैं। मंगवाली या मँगनीवाले विवाह में लड़के का पिता कुछ भाई-बंधुओं सहित लड़की से पिता के घर जाता है और बात पक्की करता है। कभी लड़के द्वारा लड़की पसंद कर ली जाती है और वह पिता को लड़की के घर भेजता है। यदि लड़की वालों को मंजूर हो तो बातचीत के लिए दिन निश्चित किया जाता है। निश्चित दिन लड़का अपने साथियों के साथ 'राक' या जौ की शराब की दो-तीन बोतलें लेकर जाता है। इस अवसर पर वह कुछ जेवर भी लड़की को भेंट करता है, जिसे 'बँधा' कहते हैं। इस रस्म को 'पिलम' कहा जाता है।

पिलम के बाद लड़का-लड़की के घर रह सकता है और जब चाहे आ सकता है। इसके बाद 'फक्की' रस्म होती है, जिसमें लड़का और दीवान लड़की के घर आते हैं। यदि पिलम के पास कोई जेवर न दिया हो तो जेवर भी साथ लाया जाता है। पचास-साठ बोतलें राक और हलवा भी वे साथ ले जाते हैं। इस अवसर पर खूब खाना-पीना होता है और 'छक्की' का दिन निश्चित किया जाता है।

छक्की ही वास्तविक विवाह है जिसमें दूल्हा सज-धजकर बारात या 'जानी' लेकर जाता है। बारात में तीन व्यक्ति जाते हैं। मामा, पट महाराज और दीवान। पट महाराज मामा या चाचा का लड़का होता है। लड़की के घर में विवाह संस्कार होता हैं

और खूब खाना-पीना किया जाता है। बारात को राक पिलाई जाती है और सत्तू खिलाए जाते हैं। लड़की को सुआज (दहेज) के रूप में गहने कपड़े भी दिए जाते हैं। दहेज प्रथा नहीं है। कुछ जगह लड़के के माता-पिता को कुछ वस्तुएँ भेंट स्वरूप दी जाती हैं।

फक्की के बाद विवाह नहीं होता। एक साल बाद या कुछ सालों बाद वास्तविक विवाह होता है किंतु लड़के का आना-जाना बना रहता है। इस बीच पिता के घर लड़की के बच्चे भी हो जाते हैं। अवतारचन्द ने बताया कि उनके गाँव में एक लड़की के विवाह से पहले दो लड़के हो गए जिन्हें विवाह के बाद साथ ले जाया गया।

यदि फक्की के बाद हुए बच्चों को ले जाने या बाद में विवाह करने से कोई मुकर जाए तो"? इस पर उसने बताया कि ऐसी स्थिति में यदि पंचायत माने तभी बच्चे पिता के माने जाएँगे और उन्हें पिता से हक मिलेगा अन्यथा नहीं।

तालाक या 'खरफती' भी आसान हैं। सिर पर एक लकड़ी तोड़ दी जाती है। तलाक हो गया। अलबत्ता लड़के या लड़की को पैसे देने पड़ते हैं। दोनों के लिखित समझौते पर पंचायत फैसला करती है।

अवतारचन्द ने बताया सौ में से कम से कम बीस शादियों में खरफती हो जाती है। पुनर्विवाह की स्थिति में बच्चे पिता के होते हैं। कई बार सात-सात बच्चे छोड़कर भी दूसरा विवाह हुआ है। चाचा, मामा, बुआ की लड़की से विवाह नहीं होता। विधवा विवाह संभव है। लड़के का जन्म अच्छा माना जाता है।

"किलाड़ से कुछ लड़कियाँ सरकारी कर्मचारियों से विवाह कर बाहर गई हैं," अवतार ने बताया, "उन्हें पेट भर खाना मिले, अच्छा पहनने को मिले, इसलिए बाहर के लोगों से भी शादी कर दी जाती है।"

जब एक महिला अपने पति को छोड़ दूसरे प्रेमी के साथ भाग जाती है। या विवाह करती है तो इस विवाह को 'मुदयाली' विवाह कहा जाता है। एक लकड़ी तोड़ संबंध विच्छेद हो जाता है और नए पति द्वारा पहले पति को कुछ मुआवजा देना पड़ता है।

कुछ लड़के लड़कियाँ माता-पिता की मर्जी से विरुद्ध या अपनी मर्जी से मंदिर या कचहरी में भी विवाह कर लेते हैं।

लड़के द्वारा अपनी मनपसंद लड़की का उठाकर ले जाना और विवाह करना 'पिठचुक' विवाह है। यदि उठाई गई लड़की के घर या किसी गुप्त स्थान में जहाँ उसे रखा गया है, खाना खा ले तो रजामंदी समझी जाती है। यदि लड़की की रजामंदी न हो तो वह पुनः पिता के घर भाग जाती है। किंतु अधिकतर ऐसे विवाह जबरदस्ती किए जाते हैं और झगड़े व पुलिस तक की नौबत आ जाती है।

विधवा विवाह में 'टोपी देणा' की परंपरा है जिसमें मृत पति का छोटा भाई

विधवा भाभी को जोजी या टोपी भेंट करता है और साधारण ढंग से विवाह कर लेता है।

पांगी में सर्दियों में 'सिहूल' नाम से त्यौहार मनाया जाता है। दूसरा मुख्य त्यौहार जुकारो है। जुकारो या जुकारू फरवरी में अमावस्या को आरंभ होता है और बारह दिन तक चलता है। अमावस्या की रात राजा बलि की आटे की प्रतिमा बनाई जाती है। समय-समय पर मंदिरों में जातर भी होती है।

रात के समय अवतारचन्द खिड़की खटखटा रहा था। जब हमने उसे कहा कि भीतर आकर बात करो तो वह नहीं आया। खिड़की से ही फुसफुसाया, "राक चाहिए"! राक क्या ? जब पूछा जो उसने कहा, "जिसे बाबू लोग शराब कहते हैं, और हम राक या चाटकी कहते हैं। यहाँ हर जगह बनती है।"

मिंधल माता

चौबीस जून की सुबह हम मिंधल माता गए। मिंधल माता का मंदिर चैरी के पार चढाई चढ़कर है।

पांगी में नाग मंदिर और देवी मंदिर हैं। करयास में नाग देवता का मंदिर है। जहाँ गाय का पहला मक्खन चढ़ाया जाता है। विलीनवासिनी देवी के पच्चीस चेले हैं। इसका मंदिर भी करयास में है। भगवती के प्रसन्न होने पर वर्षा होती है। नहीं तो महीना-महीना भर वर्षा नहीं होती।

चयोण में चामुंडा देवी का मंदिर हैं जिसमें देवी की लड़की की मूर्ति है। मिंधल माता का बीच का मंदिर पुराना हैं साथ में दो मंदिर उसी शैली के नए बनाए गए हैं। ऊपर कलश हैं जिसमें चारों ओर घंटियाँ हैं। मुख्य द्वार पर सुंदर नक्काशी हुई हैं और यहाँ भी घंटियाँ ही घंटियाँ लटकी हैं।

भीतर लगभग एक फुट ऊँची पाषाण प्रतिमा है देवी की जिसमें दोनों ओर त्रिशूल हैं।

मंदिर के सामने पहले एक सराय थी जिसे अस्पताल में बदल दिया गया है।

मंदिर के दो पुजारी हैं श्रीराम और जयदास जो एक ही खानदान के हैं। दो चेले हैं, लेखीराम मिंधल से और दिलाराम फिणधार से। पहले देवी मिंजर में जाती थी। देवी का त्रिशूल और छोटी मूर्ति मिंजर मेले में ले जाई जाती थी।

मंदिर में दो जातरें होती हैं। पहली असूज या भादों की पूर्णमासी को दूसरी कार्तिक में। जातर में धूणा जगाया जाता है। चेले खेलते हैं। भेड़ें काटते हैं। देवी के मंदिर में एक पुराना ढोल है जिसे लेकर चेला नाचता है।

नए मंदिर में काष्ठ कला स्थानीय मिस्त्री भीमा जो गाँव घिस्सल, साच का रहने वाला है, ने की है।

पुरथी में भी इसी शैली का मलासनी मंदिर है। जिसमें उसी तरह लकड़ी की नक्काशी है। भीतर देवी का पाषाण प्रतिमा है। देवी के तीन पुजारी केसरचन्द,

श्रीकंठ और मोती हैं। चेले कई हैं। यहाँ सितंबर तथा फरवरी-मार्च में मेला लगता है।

पुरथी

चैरी से पुरथी तेरह किलोमीटर है। यहाँ चैरी के पास ही हमें चंद्रभागा के पार होना पड़ा क्योंकि इसी बीच वह सड़क थी जो अभी निर्माणाधीन थी। पुरथी रेस्ट हाऊस चंद्रभागा के किनारे समतल जगह पर है। एकांत जगह पेड़ों के बीच लकड़ी से निर्मित रेस्ट हाऊस जिसमें दो कमरे अतिरिक्त जोड़े गए हैं। प्रदेश में या सब जगह ही वन विभाग सबसे पुराना विभाग है। हिमाचल में तो वन विभाग के पुराने कार्यालय हैं, रेस्ट हाऊस हैं।

पुरथी का रेस्ट हाऊस भी 1869 में टड कोल द्वारा बनवाया गया। किलाड़ में रेंज आफिस 1869 में बना।

पुरथी के रेंज ऑफीसर ने हमें बड़ा सम्मान दिया और आदर सत्कार किया। वे जिला मंडी के रहने वाले थे। रिटायरमेंट को पहुँचे थे किंतु किन्हीं कारणों से यहाँ भेज दिए गए थे। उनकी मानसिक स्थिति कुछ सही नहीं लग रही थी।

किलाड़ तथा अन्य स्थानों की तरह यहाँ भी रोशनी का साधन सोलर सिस्टम या जेनेटर ही था। आठ बजे के लगभग उन्होंने जेनेरेटर चलवा दिया जिससे चारों ओर रोशनी ही रोशनी हो गई। किसी आधुनिक जगह की तरह बिजली की रोशनी में डाईनिंग टेबुल पर हमने खाना खाया।

रोहली नाला

पुरथी तक उदयपुर से बस आती थी। हम ऊपर चले गए किंतु बहुत इंतजार के बाद भी बस नहीं आई। पता चला बीच-बीच में नाले आते हैं, हो सकता है सड़क खराब हो गई हो।

पुरथी से हम पुनः पैदल चल दिए कि जहाँ बस मिलेगी, बैठ जाएँगे। पुरथी से चलते-चलते छह किलोमीटर पर पांगी का अंतिम गाँव शौर आ गया। बस नहीं आई। उसके बाद शुकलास। कड्डु नाला पार किया। सड़क के किनारे यहाँ जगह-जगह छोटे-छोटे मंदिर बने थे जिसमें त्रिशूल रखे हुए थे। अंत में हम रौहली नाला पहुँच गए जहाँ पहुँचते ही बस मिल गई। सफर करने के बाद बस में बैठना बड़ा सुखद लगा। सौ किलोमीटर से ऊपर सफर बहुत अरसे बाद किया।

उदयपुर में भी एस०डी०एम० जानने वाले थे। उनसे बातचीत के बाद हम रेस्ट हाऊस में ठहर गए। अगले दिन सुबह बस से रोहतांग होते हुए कुल्लू पहुँचना था।

कई शिखरों का क्षेत्र है चंबा का जनजातीय क्षेत्र। 14400 फुट पर साच दर्रा। इसके साथ भरमौर में कई दर्रे लाहुल, काँगड़ा निकलते हैं। बैरागढ़ के पीछे चैणी दर्रा, तिंदी के पास मढे दर्रा, हड़सर में काली छो, कुगती दर्रा थरोट से आगे।

रोहतांग दर्रा साच से कम ऊँचा है। जितनी जल्दी रोहतांग अपवित्र हुआ, जितनी जल्दी लोगों के लिए सुगम बना, यह हैरानी की बात है। 1983 तक जब मैं कुल्लू में था, रोहतांग आतंक बना रहता था। गर्मियों में, जून में बाद यह पास खुल जाता, ऊपर एक होटल वाला बड़ी हिम्मत कर रहता था। जुलाई से अक्तूबर के बीच वहाँ जाकर बस कुछ ही मिनट रुकने को मन होता। बस चाय मिली तो पी, नहीं तो वापस।

आज 1993 में दस बरस बाद ही यहाँ का पूरा नक्शा बदला हुआ था। साच पास जहाँ दोनों ओर बर्फ से भरा हुआ था, रोहतांग के ऊपर बर्फ का नाम नहीं था। वहाँ भी तो गाड़ियाँ ही गाड़ियाँ, जीपें, कारें सैंकड़ों की संख्या में। कई घोड़े वाले, स्लेज वाले, कुल्लू ड्रेस लिए फोटोग्राफर। कई होटल, चाय, कॉफी, खाने के। कोई फिल्मी दल आया था जो शूटिंग कर रहा था। रोहतांग, जिसे लाशों का ढेर कहते थे, देश की कई जगहों से आए सैलानियों का ढेर बना था। चारों ओर लिफाफों, पॉलिथिन की थैलियों, गंदगी के ढेर। ऐसे मौन शिखर पर पश्चिमी संगीत का शोर।

रोहतांग से कुल्लू आती बार मनाली तक पहुँचते हुए हमें सैकड़ों टैक्सियाँ मिलीं। सुनसान जगहों में हर मोड़ पर होटल बने थे। सैलानियों के दल मौज मस्ती मना रहे थे।

राहुल जी ने पांगी वजारत के विषय में यूँ लिखा है—चंबा के पांगी वजारत के रहने वाले लोग पंगवाल कहे जाते हैं। इनमें भी ब्राह्मण, राजपूत, ठाकुर, राठी, बड़ी जाति वाले तथा छोटी जातिवाले हाली, लोहार, मेघ और डाकी मिलते हैं। पांगी इलाके में थोड़े-से तिब्बती भाषा-भाषी हैं, जिन्हें भोट कहते हैं। बड़ी जाति वाले आपस में खुलकर रोटी-बेटी करते हैं, लेकिन वह ऐसा संबंध छोटी जाति वालों या भोट लोगों से नहीं करते। पंगवालों की परंपरा बतलाती है, कि वह पहाड़ की भिन्न-भिन्न जगहों—निम्न-चनाब, रावी-उपत्यका, लाहुल और कुल्लू से आकर यहाँ बस गए। ऊँची जातियों में माँ की पाँच पीढ़ियों और बाप की दस पीढ़ियों तक ब्याह करना निषिद्ध है। ब्याह की रस्में चुराही लोगों की तरह ही सीधी-सादी हैं। एक रुपया देकर कन्या के पिता से 'फखीदिती' (अनुमति-दान) लिया जाता है। विवाह के पक्का करने के लिए वर का पिता कन्या के घर जाकर 'चकखानी' (भोजनखाना) करता है। फिर लड़का कुछ लोगों के साथ कन्या के घर जाकर लड़की के लिए एक जोड़ा बालू (कुंडल) और कंगन देता है, जिसे 'बंधा' देना कहते हैं। कन्या के पिता को वह 12 रुपया 'सिदियाली' और माता को 3 रुपया 'गुआमी' या खिलौल के तौर पर देता है। इसके बाद लूचियाँ (भोजपत्र में लिपटी रोटियाँ) लोगों में बाँटी जाती हैं। इसके साथ मँगनी पक्की हो जाती है। यदि लड़का इस संबंध को तोड़े, तो उसे छह रुपया, दंड देना पड़ता है, यदि लड़की की ओर से इंकार हो, तो लड़के वालों को हरजाना मिलता है।

विवाह विधि—पंगवालों में दो प्रकार के ब्याह हैं, जिनमें से एक को 'जांजी' या 'जानी' कहते हैं। यह साच परगने में तिंदी तक पाया जाता है। इसके अनुसार किसी इतवार, मंगल या बृहस्पति के दिन लड़का कन्या के घर जा मंगल, बुध या शुक्रवार को लड़की को अपने घर में लाता है। ब्याह करने के लिए वैशाख, हाड़ (आषाढ़), काती (कातिक), मघेर (मार्गशीर्ष या पूस), माघ और फागुन के महीने शुभ माने जाते हैं। लड़के का मामा कन्या के घर में जाकर ब्याह का दिन निश्चित करता है। उस दिन बरात कन्या के घर जाती है। वर-कन्या एक-दूसरे की बगल में बैठते हैं, और उनके मामा उनकी बगल में। लड़की का मामा आटे में सत्तू घोलता है। वह सत्तू के सात-या अधिक तातू (नोंकदार पिंडियाँ) बनाकर मक्खन मलकर उन्हें लकड़ी में लगा देता है। इसके बाद वह धूपदानी में धूप तथा एक दीया जलाता है। धूपदानी को अपने बाएँ हाथ में लेकर तोतू के सिरे का थोड़ा-सा भाग दाहिने हाथ में ले उससे अग्नि-स्थान के पिछले भाग को छूता है। अग्नि स्थान पूर्व की ओर होता है। इसके बाद वह कमरे की दीवारों को पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर से क्रमशः छूकर दरवाजे के चौखट के ऊपरी भाग को छूता है। इसके बाद लड़की का मामा धूपदानी को जमीन पर रखकर बैठ जाता है। फिर लड़की की मां सारे तोतुओं को एक बरतन में जमा कर उसकी उतनी छोटी-छोटी पिंडियां बनाती है, जितने आदमी वहाँ उपस्थित होते हैं। कम हो तो उसमें और सत्तू मिलाती है। हरेक आदमी की हथेली में एक-एक पिंडी दी जाती है, जिस पर उसका पति घी डालता है। सत्तू की पिंडी पहले लड़की के मामा को दी जाती है। वर-कन्या को दी जाती है, मामा पिंडियों को अपने दोनों हाथों की अँगुलियों के सिरे पर रखकर हाथ को एक-दूसरे के ऊपर करके वर-कन्या के पास जाता है। वर-कन्या में जो पहले एक पिंडी को लेकर चख लेता है, उसे ज्यादा होशियार समझा जाता है। इसके बाद भोज और फिर खूब गाना-नाचना होता है। अगले दिन सबेरे कन्या वाले अपने लड़की को आभूषण, बरतन आदि के साथ सुआज (दहेज) देते हैं। इसके बाद वर-कन्या धूपदानी में धूप डालकर अपने पिता-माता के सामने दंडवत् करते हैं—कन्या पहले करती है। इसे 'पैर बंदन' कहते हैं। इसके बाद बरात लड़के के घर चली जाती है। लड़के को कन्या का मामा अपनी पीठ पर ले चलता है, और लड़की को वर का मामा। दरवाजे पर जाकर वह उतर जाते हैं, जहाँ लड़के की माँ वर-कन्या के सिर पर तीन बार एक भेड़ को घुमाकर वारना (न्यौछावर) देती है। देहली के भीतर पैर रखते ही विवाह-विधि पूरी हो जाती है। यहाँ फिर लड़के के माँ-बाप 'तोतू' की विधि पूरा करते हैं। उस दिन और अगले दिन भोज दिया जाता है, 'तंबोल' और 'लाग' प्रदान की जाती हैं एक महीने के भीतर 'फिरन्नी' होती है, जबकि कन्या पति के साथ अपने पिता के घर जाती है, और कुछ दिन रहकर फिर दोनों अपने घर ला सकता है। पंगवालों में एक तरह का विवाह 'टोपीलानी' है, जो विधवा के या तलाक दी हुई और औरत के साथ किया जाता है।

पति की मृत्यु के एक साल बीतने के बाद ही 'टोपीलानी' की रस्म अदा की जा सकती है। विधवा को ब्याहने का सबसे पहले अधिकार मृत-पति के भाइयों या भतीजों को होता है। दो प्रतिष्ठित आदमियों के सामने भावी पति नई ऊन की पुछल्ले वाली एक टोपी विधवा का देता है। विधवा के उसे ले लेने पर विवाह-विधि पूरी हो जाती हैं अगर बाहर का कोई आदमी विधवा से ब्याह करना चाहे, तो विधवा के माता-पिता की अनुमति लेने के लिए उन्हें कुछ पैसा देना पड़ता है, जिसे 'रंडीरखीलाई' कहते हैं। पंगवालों में विवाह के पहले स्त्रियाँ स्वतंत्र होती हैं, और विवाह के बाद किसी समय भी वह पति को छोड़ सकती हैं। तलाक के लिए पति अपनी पत्नी को छह रुपया 'मान' के तौर पर देकर उसके सिर पर एक सूखी लकड़ी के दो टुकड़े कर देता है। दूसरा प्रकार है, जब कि पति स्त्री से संबंध-विच्छेद करने के लिए उसके माता-पिता या प्रेमी से कुछ पैसा लेकर रुपए के ऊपर या पत्नी के सिर पर लकड़ी तोड़ देता है। इसके बाद स्त्री दूसरे से ब्याह करने के लिए स्वतंत्र है। पंगवालों में सभी वैध लड़कों को समान दायभाग मिलता है, लेकिन हल्लर (अवैध पुत्र) का कोई अधिकार नहीं है। संतान न होने पर गोद भी लिया जा सकता है।

पंगवाल लोग देवी, नाग और शिव की पूजा करते हैं। उनकी मुख्य देवी 'मिंधाल-बासन' देवी मिंधाल में है, जो एक बड़ा तीर्थस्थान है। मलासन, सीतलादेवी और देवनाग के मंदिर भी प्रसिद्ध हैं। सूर्य की पूजा किसी दिन भी हो सकती है, लेकिन रविवार, देवी और नाग शिव की पूजा का प्रधान दिन है। देवी और नाग की पूजा रविवार, मंगली और सनीचर को होती है, और सिद्धों की शुक्रवार को। भेड़ और बकरे बलि-पशु हैं, जिनका सिर मारने वालों को मिलता है, बाकी पुजारी और यजमान आपस में बाँट लेते हैं। भादों, आश्विन और जेठ की पूर्णिमा को लोग इन मंदिरों में विशेष तौर से जाते हैं।"

मृकुला देवी मंदिर

चंबा लाहुल के अंतिम छोर पर मियाड़ नाला और चंद्रभागा के संगम पर उदयपुर स्थित है। इस समय यह जिला लाहुल-स्पिति का उपमंडल मुख्यालय है। उपमंडलाधिकारी कार्यालय के साथ लोक निर्माण विभाग का आवासगृह है। उदयपुर का बाजार पहले आता है। छोटे-से बाजार में कुछ होटल हैं जिनमें अब पाश्चात्य संगीत की धुनें गूँजती हैं।

मृकुला देवी मंदिर बाजार के साथ ही ऊपर की ओर है। कहते हैं इस गाँव का नाम भी मरगुल, मारूल या मृकुला ही था। चंबा के राजा उदयसिंह (1690-1720) ने लगभग सन् 1695 में इसका नाम उदयपुर रखा।

देवी का लकड़ी का मंदिर बाहर से बिलकुल साधारण-सा दिखता है। किंतु इसके भीतर हुई काष्ठकला बहुत पुरानी और अद्‌भुत है। चंबा गजेटियर में इस काष्ठकला के दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के होने की बात लिखी है। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस काष्ठकला का काल निर्धारण अलग-अलग किया है। कुछ कलाकृतियाँ अति प्राचीन हैं, कुछ बाद में जोड़ी गईं। लोगों की यह भी आस्था है कि मनाली का हिडिंबा मंदिर और मृकुला देवी मंदिर एक ही कलाकार ने बनाए। ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि हिडिंबा मंदिर कुल्लू के राजा बहादुर सिंह के समय सन् 1559 में बना।

जब हम मंदिर में पहुँचे तो शाम होने वाली थी फिर भी कलाकृतियाँ देखने के लिए पर्याप्त उजाला था। पुजारी ने हमें भीतर बिठा लिया।

मंदिर के भीतर नई पुरानी काष्ठकृतियाँ आसानी से अलग-अलग पहचानी जा सकती हैं। मंडप, मंडप में लगे चार स्तंभ पुराने हैं। दोनों ओर खिड़कियों के पैनल, दो नए स्तंभ और दो आदमकद द्वारपाल नए हैं। जिस खिड़की में हम बैठे थे उसमें कृतियाँ बनी थीं, जो स्पष्टतः नई दिखती थीं।

मंडप

मंडप की छत में नौ पैनल हैं। लक्षणा और शक्तिदेवी की भाँति इनमें से भीतरी पैनल कीर्तिमुख बनाते हुए उच्च श्रेणी के उत्कीर्ण लिए हुए हैं। बीच में कमल दल हैं। कमल दल की पंक्तियाँ सुंदर ढंग से सजाई गई हैं। चारों ओर चौकोर पैनलों में उड़ते हुए गंधर्व युगल बनाए गए हैं जो बड़े कमल दलों पर आसीन हैं। गंधर्वों के बाएँ घुटनों पर अप्सराएँ विराजमान हैं। चतुर्भुजी गंधर्वों के बाएँ घुटनों पर अप्सराएँ

विराजमान हैं। चतुर्भुजी गंधर्वों के हाथों में मुकुट, हार, जवाहररात, चंबर हैं। दक्षिण की ओर के गंधर्वों की छह भुजाएँ हैं। ये शिवलिंग पर घी चढ़ाते हुए, चंबर झुलाते, धूप देते हुए दिखाए गए हैं। इनके साथ भी अप्सराएँ खड़ी हैं। कुछ गंधर्व वाद्य यंत्र बजा रहे हैं। जिनमें वीणा प्रमुख है। कुछ भरतनाट्यम कर रहे हैं। दूसरी और शिव और उनके गण नृत्य मुद्रा में हैं। पार्वती की मुद्रा भी नृत्य की है। इनके साथ शिव परिवार, वीरभद्र, गणेश, कार्तिकेय भी चित्रित हैं।

तीसरी ओर महात्मा बुद्ध बज्रासन पर बैठे हैं। दोनों ओर दो कन्याएँ बुद्ध को प्रलोभन दे रही हैं। सामने चार दैत्य आसन को गिराने के प्रयास में हैं। कुछ ने हाथ में साँप पकड़ रखे हैं। इसके साथ कुछ मनुष्य, कुछ पशुओं के सिर वाली आकृतियाँ हैं।

मंदिर के मुख्य द्वार में यक्ष, किन्नर चित्रित हैं। बाईं ओर गंगा तथा दाईं ओर यमुना है। ऊपर कीर्तिमुख बने हैं। इनके साथ चार भुजाओं की आकृतियाँ दोनों ओर बनी हैं जिन्होंने हाथ में घट, कमल आदि ले रखे हैं।

कुछ द्वारों पर विष्णु के अवतार (मस्त्य, नृसिंह, बामन, वाराह, कूर्म, परशुराम, कृष्ण, कल्कि अवतार) आदि अंकित हैं। राम धनुष बाण सहित, कल्कि घोड़े पर दर्शाए गए हैं। नीचे अप्सराएँ हैं। कलश, अमालक, यक्ष और हंस आदि कई स्थानों पर उकेरे गए हैं।

मंडप तथा द्वार के अतिरिक्त अन्य कलाकृतियाँ कम पुरानी समझी जाती हैं। यद्यपि यह भी कला भी दृष्टि से कम उत्कृष्ट नहीं हैं। इनमें से कुछ दृश्य निम्न प्रकार से हैं–

रामायण दृश्य

राम-लक्ष्मण धनुष बाण लिए हुए वानरों सहित बैठे हैं। हुनमान समुद्र लाँघते हुए दिखाए गए हैं। संजीवनी बूटी लाते हनुमान, अशोक वाटिका में हनुमान, हनुमान सीता संवाद, हनुमान द्वारा लंका दहन, हनुमान रावण संवाद आदि प्रमुख दृश्य हैं।

महाभारत के दृश्य

द्रौपदी स्वयंवर में राजा द्रुपद रानी सहित बैठे हैं। दोनों ओर पांडव खड़े हैं। दूसरे दृश्य में राजा द्रुपद सिंहासन पर बैठे हैं। उनके सामने द्रौपदी खड़ी है। एक दृश्य में अर्जुन घूम रही मछली पर निशाना साध रहे हैं। अगले में अर्जुन कृष्ण के सामने झुके हुए हैं। एक दृश्य में अर्जुन रथ पर सवार युद्ध कर रहे हैं।

विष्णु अवतार

पूर्व की ओर की खिड़की में विष्णु के अवतार चित्रित हैं। त्रिविक्रम विष्णु, वामन अवतार, वामन-बलि प्रसंग, का विस्तृत चित्रण है। पश्चिमी खिड़की में समुद्र मंथन,

अमृत कलश आदि के साथ शिव पार्वती, कार्तिकेय खुदे हैं।

मृकुला देवी : मूर्ति तथा लेख

अद्‌भुत काष्ठ कला से अलंकृत मृकुला देवी मंदिर में देवी प्रतिमा उतनी अच्छी नहीं है। छतराड़ी तथा भरमौर की देवी मूर्तियों की तुलना में यह कहीं नहीं बैठती। लगभग दो फुट ऊँची कांस्य (या अष्टधातु) प्रतिमा में चाँदी की आँखें हैं। देवी महिषासुरमर्दिनी के रूप में हैं जिसमें त्रिशूल से महिषासुर को दबाया हुआ है। महिषासुर के नीचे भी असुरों के सिर हैं। देवी की आठ भुजाएँ हैं। दो हाथों में त्रिशूल और चक्र हैं। तीसरा वरदहस्त है। चौथे से महिषासुर की पूँछ पकड़ रखी है। अन्य हाथों में गदा, वज्र पाश शंख हैं।

मूर्ति के आधार में छह पंक्तियों में लेख है। तीसरी पंक्ति में मात्र छह ही अक्षर हैं। अंतिम दो पंक्तियाँ सावधानी से लिखी गई हैं। वोगल के अनुसार यह दो पंक्तियाँ ही मूल पंक्तियाँ हैं और ऊपर की चार पंक्तियाँ बाद में जोड़ी गईं।

लेख में सबसे पहले ठाकुर हिमपाल का नाम आता है, जिसने यह मूर्ति बनवाई होगी। यह त्रिलोकीनाथ के ठाकुरों का पूर्वज रहा होगा। पाँचवीं पंक्ति के अंत में 4645 आता है। इसी पंक्ति में 'मूल्य' भी है। अतः यह या तो मूल्य के लिए है या सन् संवत् के लिए। अंतिम पंक्ति में भद्रावकाषापुरी (भद्रवाह) के वासी पंजमाणक का नाम है।

लेख में शुद्ध संस्कृत न होने के कारण पढ़ने या समझने में कठिनाई आती हैं।

मूलपाठ

ओं ठकुर-महश्री-हीमपालन। श्री-महादेवि-मर्कुल उदी ।1.2। पित्रुः पुत्र-पौत्रेण सर्वकाल तिष्ठति देव-श्रीयो भवति। ।1.3। तं म शुभ कृत्र ।1.4। श्री-कश्मीर यदवन्त। मार निरह्‌ल मर्कुलदेवि उपनि ।1.5। ओं स्वस्तिः।। अस्य देवतीरीरि मूल्या घटापने दी सहस 4645 ।1.6। सोमडिराष्य भद्रावकाषापुरीः पंजमाणक-जीणकेन घटिता।

मृकुला देवी स्लेट लेख

मृकुला में 1997 में मिस जे०इ० डंकन ने एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक लेख ढूँढ़ा। यह लेख स्लेट पत्थर में है। इस लेख में मास्कुल मठ का उल्लेख है। जिससे सिद्ध होता है कि किसी समय वहाँ बौद्ध मठ था। ए०एच० फ्रैंके के अनुसार यह लेख तीन सौ वर्ष से पुराना नहीं है।

मूलपाठ

(གྱོན)

1. ༄༅། ཨོཾ་སྭ་སྟི། ལྷ་རྒྱོན་ (གྱོན) གྱིས་ (ཀྱི) གོས་སྨྱུ་ར་དོག་དཀར། རྫོགས་སངས་རྒྱས་
2. ཀྱིས་དབུ་ལ་ (རྒྱན)། ཐུགས་རྗེ་སྤྱན་གྱིས་འགྲོ་ལ་གཟིགས། སྤྱན་རས་གཟིགས་ལ་
3. ཕྱག་ད་ཙལ་ལོ།། དྲི་མེད་རྒྱོན་ (བྲལ) པ་ཛ་འི་གདན་ལ་བཞུགས། ཞལ་གཅིག
4. ཕྱག་དྲུག་རྐང་ས......(སྐོངས) མཛད། འགྲོ་དྲུག་འཁོར་བའི་གནས་འདྲེན་མཛད་པའི་
5. རང་འབྱུང་འཕགས་པའི་སྐུ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་མ་རྡོ་རྗེ་ཕག་མོའི་
6. འཕགས་མ་ (པའི) དུས་གསུམ་རྒྱལ་བའི་ཡུམ་མཆོག་དྲག་མོའི་གཟུགས་ཅན་མ། ཐུགས་རྗེ་རིངས་
7. ཅིད་རྟོས་ཅིད་དགའ་ལ་རྣ་རྒྱལ་བའི་དངོས་གྲུབ་རྣ་གཉིས་རྩོ་ལ་ཕྱག་འཚལ་བསྟོད།
8. ཀླུང་.................................དགེ་ལ་སྐབ་ཕྱིར་........................
9. གཙུ་མ་ཏི་སྟོང་ལྷག་གསུམ། མི་འགྱུར་རྡོ་ལ་བརྐངས་ཡོད། ཡི་ས་དེ། གཞན་ཡང་
10. རེ་ཕག་དཔགས་པ་མར་སྐུ་ལ་གཉིས་ཀའི་བསྐོར་......མ་ཏིའི་འཁོར་ལོ......
11. ....བཞེངས། མར་སྐུ་ལ་དགོན་པར་དགོན་པ་གསར་དུ་བཏངས།།
12. དགེ་འདིས་འགྲོ་ཀུན་སངས་རྒྱས་བྱུར་ཐོབ
13. རྫོགས་བཀྲ་ཤིས།།

NOTES

1.3. *rgyon*, instead of classical *gyon*; 1.2. the instrumental wrongly instead of the genitive case; 2. *spyan*, instead of ordinary *can*; 7. *rsto* instead of classical *giso*; 11. *Rephag*, the name of the Triloknath temple, means 'high hope.'

No exact date can be given to this inscription; but it may be said for certain that it cannot be more than three centuries old.

TRANSLATION

1. Hail! The peacock vestments of the gods are of white colour... Perfecton is
2. the head ornament of Buddha. Look mercifully on [all] creatures! Reverence to
3. Avalokita! Clothed in purity, he sits on the lotus throne, one face,
4. six hands…feet…Reverence to the image of the august [Avalokita] which arose of itself,
5. and which draws upwards to heaven the six kinds of creatures which are still performing the circuit [of transmigration]. – To

the victorious Vajravarahi,

6. the august great mother, the conqueress of the three times, of fierce form, to the lady
7. who gives two-fold relief to all the dull, solitary, and insane be reverence and praise!
8. …as an opportunity for virtue…
9. nine thousand *mani (Om mani padme hum)* were raised (carved) on unchangeable stone. Well, besides, these,
10. at the august Re-pnag (Triloknath), and at Mar-skul, at both …Mani wheel…
11. …raised. At the monastery of Mar-skul a new monastery was raised (or 'was raised anew,' renovated).
12. May all beings obtain Budhahood quickly throngh this virtue!
13. Hail!

त्रिलोकीनाथ

लगभग तेइस बरस पहले जब त्रिलोकीनाथ गया था, थरोट से त्रिलोकीनाथ तक पैदल मार्ग था। केलांग से थरोट तक बस में आकर कुछ दूर आगे पुल पार किया था रस्सों का। उसके आगे चढ़ाई के बाद त्रिलोकीनाथ पहुँचे थे। सितंबर मास में मंदिर के बाहर बर्फ से ठंडे पानी के नालू में स्नान कर मंदिर में दर्शन किए थे।

अब त्रिलोकीनाथ तक बस सुलभ है। लगभग 2760 मीटर की ऊँचाई पर त्रिलोकीनाथ धाम हिंदू और बौद्ध दोनों के लिए एक समान का धाम है।

चंद्रभागा के बाएँ किनारे शिखर शैली का यह मंदिर, चार धामों में से एक माना जाता है। चंद्रभागा घाटी में एकमात्र शिखर शैली के इस मंदिर की ड्योढ़ी में सुंदर काष्ठकला हुई है। भीतर सफेद संगमरमर की लगभग नब्बे सेंटीमीटर की शिव प्रतिमा है। आसन मुद्रा में स्थित शिव की बोधिसत्व अवलोकितेश्वर माना जाता है। बोधिसत्व का एक वरद हस्त है तो दूसरे में कमल है। सिर पर अमिताभ की छोटी मूर्ति है। छह भुजाओं वाली इस आकर्षक मूर्ति को श्रद्धालु बोधिसत्व और शिव दोनों ही मानते हैं।

मंदिर का पुजारी बौद्ध है जो त्रिलोकी नाथ के राणा द्वारा नियुक्त किया गया था।

मंदिर के निर्माण के बाद पुनर्निर्माण भी होता रहा है। ऐसा भी विश्वास है कि मूल रूप से यह हिंदू मंदिर था जिसे आठवीं शताब्दी में पद्मसंभव द्वारा बौद्धमठ में बदल दिया। गर्भगृह के बाहर बौद्ध मंदिरों की भाँति परिक्रमा पथ में धर्मचक्र लगे हैं। लामा लोग इन्हें घुमाना पुण्य समझते हैं। बौद्ध लोग अपनी परंपरा के अनुसार देसी घी के असंख्य दीपक जलाते हैं। यहाँ पौरी उत्सव भी मनाया जाता है।

मंदिर के प्रवेश द्वार में दोनों ओर स्तंभ हैं जिनके बीच से गुज़रना पापी-धर्मात्मा का निर्णायक माना जाता है। धर्मात्मा व्यक्ति इससे सुगमता से निकल जाएगा, अधर्मी फँस जाएगा, ऐसी धारणा है।

कुछ शिलालेख

चामुंडा (देवी री कोठी) लेख

बैरागढ़ के समीप 7,705 फुट की ऊंचाई पर चामुण्डा देवी के मंदिर में सुंदर काष्ठकला के अतिरिक्त टाकरी में लेख है। मंदिर राजा उमेदसिंह द्वारा सन् 1754 में बनाया गया।

मूलपाठ

सं० 30 भद्रो प्र० 21 नगअत अथ जे स्री-माहरजे उमेद सींघे स्री-देवी चमुंडा दा देहार पाय देहारे दा सीरदार स्री-मीअ बीसन सीघ हाजरी नील्हेडी घया सुगलाल झगड त्रखण गुदेव झड़ा बटेहेड हेतु देबु गठीर द्यल पोह प्र 21 सबत लीख्य सुभ।

शुद्ध पाठ

सं० 30 भाद्रो प्र 21 लगायत अथ जे श्री-महाराजे उमेद सिंघे श्री-देवी चामुंडा दा देहरा पया। देहरे दा सरदार श्री-मियाँ बिसन सिंघ। हाजरी निल्हेड़ी छंयां सुगलाल झगड़ु। त्रखाण गुरदेव झंडा। बटेहड़ा हैलु देबु गठीर द्याल पोह प्र० 21 संवत् लिख्या। शुभ।।

TRANSLATION

In the year 30 (the month of) Bhadro 21, on that date the illustrasion Maharaja Umed Singh has built the temple of the goddess Chamunda. The Superintendent (Sardar) of the temple the illustrious Miyan Bisan Singh, the stewards, Ghamyam the Nilheri and Jhagru of Sungal, the carpenter Gurdev and Jhanda, the stone masions Debu of Hail and cela! (Dyal. Written on the 21^{th} of Poh. Bliss!.

मिंधल माता लेख

साच परगने में चंद्रभागा नदी के बाएँ किनारे स्थित मिंधल माता मंदिर का लेख भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में है। यह लेख साढ़े सात इंच लंबा और साढ़े दस इंच चौड़ा है जिसमें तख़्ती सा हैंडल भी लगा हुआ है। लेख के बाएँ किनारे ऊपर की ओर 'सही' लिखा हुआ है जो देवनागरी में है। लेख में कुल इक्कीस पंक्तियाँ हैं। ये कुछ संस्कृत में और कुछ चंबयाली में लिखा हुआ है। लिखने वाले का नाम

लक्ष्मीकांत है।

वैशाख शुक्ल अष्टमी विक्रमी संवत् 1698 का लिखा यह लेख 8 अप्रैल, 1641 का बैठता है। इसके अनुसार राजा पृथ्वीसिंह ने मिंधल गाँव प्रजा सहित देवी चामुंडा को दे दिया।

वोगल का मानना है कि पृथ्वीसिंह ने कुल्लू से आते हुए देवी की पूजा अर्चना की और यह भूमि दान की। संभवतः राजा पृथ्वीसिंह कुल्लू से चंबा जा रहा था। पृथ्वीसिंह, जो मंडी में था, कुल्लू होता हुआ रोहतांग से पांगी और चुराह के रास्ते चंबा पहुँचा। यहाँ 1641 की गर्मियों में नूरपुर के अधिकारियों को निकाल राज्य सँभाला।

मूलपाठ

सही

ऊँ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः।। श्रीमद्विक्रमार्कसंवत्सरे 1698 (11.2-4) वैशाखमासे शुक्लपक्षे तिथौ व ष्टम्यां श्रीरामराम आदि (1.5)... श्री पृथ्वीसिंहवर्मण (1.6) पाङीमंडल मध्यतो मिंधलाख्यो ग्रामस्सीमः प्रजासहितः श्रीभग-(1.7) वतीचामुंडाप्रीतये संप्रदत्तस्तदेनेन ससंतानेनाचन्द्रसूर्यध्रुव (1.8) ब्रह्मांडस्थिति-पर्यंतमुपभुंजीयो यः कश्चिन्मम वंशयों वा अन्यो (1.9) वापहर्ता स्यात्स दंड्यो वद्धयो नरकपाती स्यात्।। अथ भाषा। ग्राम (1. 10) इक मिंधल सीमाये प्रजे समेत श्री चामुंडा की श्रीमहाराजे पृ०-(1.11) श्वीसिंहे कुलूरे चामुंडाये दे वैशाख प्र 21 आइ पूजी संकल्प करी दिता (1.12) एह श्री राजे दा धर्म श्री राजे तथा दे पुत्रे पौत्रे अगे पालणा (1.13) मिंधले दे प्रजकने बंधेज शाख श्रीपाले डन दथर अ इ दे गां (11.14-15) धे धारे दा होढा देणा। साधारोयं आदि (1.16) दयोड़ बाजे री (1.17) वजीरी मंझ शासण दिता लिखित पंडित ल (क्ष्मी) कांतेन।। (1.18) शस्त्रसंवत्।। (1.19) 17–(1.20) सुवर्णकार अर्ज- (1.21) ण जीवनशुत।।

TRANSLATION

Approved.

(L.1) Om. Hail! Obeisance to the holy Ganesa! In the year 1698 of the illustrious Vikramarka, the month of Vaisakha, the bright fortnight, on the 8th day, the illustrious P.M. Prithvisimha has donated the village called Mimdhala, with its (fixed) boundaries, together with its inhabitants, in the Pangi *mandala,* to the holy divinity Chamunda, on the 21st day of Vaisakha when he came from Kulu to (the temple of) Chamunda out of devotion to her.

(L.7) That is to be enjoyed, etc. (as usual).

(L.10) Now the *bhasha:*One village (*called*) Mimdhala, with its

(fixed) boundaries, together with its inhabitants, has been donated by the illustrious king Prithvisimha, with libation of water, to Chamunda, and worshipped her.

(L.12) This pious gift of the illustrious king is in future to be preserved by the illustrious king as well as by the sons and grandsons of the king.

(L.13) The people of Mimdhala are pledged to...A ram is to be given as dues *(for grazing sheep and cattle)* on the Gandha Dhar.

(L.14) (Here follows one customary verse).

(L.16) This grant has been given in the *Vijiri* of Dayoda Baje.

(L.17) *(This)* has been written by Pandit Lakshmi kanta.

(L.18) The Saastra Year 17.

(L.19) The goldsmith Arjans, son of–Jivana (has engraved this)

अनुवाद

ऊँ कल्याण हो ! श्री गणेश जी को प्रणाम। 1698 विक्रमी के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन सुपुत्र श्री पृथ्वीसिंह वर्मा ने पांगी जिला के मध्य से मिंधल ग्राम की जितनी सीमा है उसे प्रजा सहित श्री भगवती चामुंडा जी के लिए प्रदान किया। जब तक सूर्य चंद्र सूर्य और ध्रुव तारा हैं तथा जब तक ब्रह्मांड की स्थिति है तब तक चामुंडा के उपयोगार्थ है, मेरा कोई भी वंशज अथवा अन्य कोई भी इसका उपभोग या अपहरण करेगा तो वह दंडनीय होगा, वध्य होगा और नरकगामी होगा।

लुज पनघट शिलालेख

धरवास (पांगी) से लगभग दो किलोमीटर दूर लुज गाँव का पनघट शिलालेख चार फुट ऊँची और छह फुट चौड़ी शिला के बीच खुदे कमलदल के नीचे है। शिला के एक ओर गणेश और दूसरी ओर संभवतः वरुण की प्रतिमाएँ हैं। दोनों ओर नाग भी अंकित हैं। लेख में चौदह इंच लंबी पाँच पंक्तियाँ हैं। एक छोटी पंक्ति तीन इंच है। अक्षरों का आकार आधे से पौना इंच है। लेख की भाषा अशुद्ध संस्कृत और स्थानीय है।

यह शिलालेख 'भाटलौ' व 'भटागिरी' के पुत्र नागरा द्वारा बनवाया गया। लोकश्रुति है कि यह धरवास के एक राजस्व अधिकारी जो ब्राह्मण था, ने बनवाया। भाटलौ, राजा पृथ्वीसिंह (1671) की धाय का पुत्र भी हो सकता है। लेख में महत्त्वपूर्ण वह तिथि है जिससे राजा 'जासठ' के राज्यारोहण तिथि का पता चलता है।

मूलपाठ

ऊँ स्वस्तिः (सं० 81) श्री-महाराजा-जासठ-प्रथम-वर्ष (1.2) थापित। तत्र काले भाटलौ-भटगिरि-सुत। नागरा । म-1.3 हपुजा। पलौकार्ये वरुण-देव थापितं। इदं

भोग्या नाना भो-(1.4) कण समुत्पन्य। पोश-मासे थापितं इति शुभं।। बाढ़ाई कंलोणे (1.5) सतधर देव-पुत्र-देव। महाप्रभा। जोदं धातिंकं समुत्पन्य। 1.6 मुल द्र 20 (या 30)

अनुवाद

Hail ! Evected in the year 81, in the first year of illustrious Maharaja Jasata. At that time Nagara, the son of Bhatalau and Bhatagiri (and the) people (of the village?) (have) arected a fountain stone (lit.God Varuna) for the sake of the next world. This is to be used (or useful?) various enjoyments (or foods?) have been provided (?) Erected in the month of Posa (Skn Pausa) Thus (May it be) blessed! The carpenter Kamlone, the stone mason Deva, the son of Deva, (and the) people (of the village) grain (?) has been supplied (?) price 20 (or 30) Drammas.

सेहली पनघट शिलालेख

विभिन्न देवी-देवताओं की अनुकृतियों से अलंकृत सेहली (पांगी) का पनघट शिलालेख वोगल के अनुसार अपनी तरह का सबसे बड़ा शिलालेख है। साच से लगभग दस किलोमीटर सेहली की यह शिला छह फुट छह इंच ऊँची और सात फुट चौड़ी है। इस पनघट शिला में आकर्षक मूर्तियाँ तीन पंक्तियों में हैं। सबसे नीचे की पंक्ति में चार, ऊपर की दो पंक्तियों में पाँच मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। पनघट शिला का पानी का स्रोत अब सूख गया है। ग्लेशियर के गिरने से इसका निचला भाग टूट गया है और ऊपर का दायाँ कोना भी टूटा हुआ है। वोगल द्वारा टूटे टुकड़ों का ढूँढ़कर शिला में ही सहारा देने हेतु लगाए जाने का उल्लेख है।

शिलालेख में अलग-अलग प्रकोष्ठों में अलग सुंदर मूर्तियाँ उकेरी हैं और शिला के अतिरिक्त प्रत्येक मूर्ति के नीचे भी इसका नाम लिखा गया है। सबसे ऊपर की पंक्ति में सभी मूर्तियाँ चतुर्भुजी हैं और बैठी हुई मुद्रा में हैं। ललितासन में बैठे देवताओं के वाहन के चरणों में हैं।

ऊपर की पंक्ति में सबसे पहले गणेश विराजमान हैं। गणेश अपने वाहन चूहे पर विराजमान न होकर सिंह पर बैठे हैं। इनके हाथों में पुष्प, परसा है। एक हाथ में मिठाई है जिसे वे सूँड से खा रहे हैं। नीचे गणाधिपति लिखा है जिसका 'ग' टूट गया है। अंत में शिव के दूसरे पुत्र स्कंद कार्तिकेय हैं। यह अपने वाहन मोर के ऊपर विराजमान हैं। इसके हाथों में त्रिशूल, पुष्प आदि हैं।

बीच में शिव हैं, नंदी पर विराजमान। त्रिमुखी शिव का चार भुजाओं में त्रिशूल, पुष्प आदि हैं। नीचे 'लोकपाल ईशान' लिखा है। शिव के दोनों ओर लोकपाल वरुण तथा लोकपाल देवराज इंद्र हैं। वरुण घोड़े पर सवार हैं और हाथों में अंकुश, पद्म, गदा और शंख लिए हुए हैं। चतुर्भुजी इंद्र के हाथों में वज्र तलवार आदि हैं।

दूसरी पंक्ति के बीच की मूर्ति आसपास की मूर्तियों से बड़ी है जो विष्णु प्रतिमा है। शेष नाग का फन नमस्कार मुद्रा में है, शेष शरीर सर्प का है। विष्णु के तीन मुख हैं। चतुर्भुजी विष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा, पदम हैं। विष्णु के सामने लक्ष्मी चँवर झुला रही हैं। मूर्ति में 'शेष शय्या' लिखा है।

विष्णु के दोनों और दो-दो नारी प्रतिमाएँ हैं। एक के हाथ में घट कलश और दूसरी में कमल दल। ये चारों आकृतियाँ एक-सी हैं। किंतु इनके साथ अलग-अलग पशु दिखाए हैं। दूसरी देवियाँ वितस्ता तथा सिंधु हैं।

तीसरी पंक्ति के देवता आधे टूट चुके हैं। जिसकी आकृतियाँ ऊपर वाली से छोटी हैं। एक लेख में 'व्यास' है दूसरी में शतद्रु। बीच की आकृतियाँ पूरी टूट चुकी हैं। संभवतः ये रावी और चंद्रभागा हो सकती हैं।

इन जल देवियों से 'पंचनद' की भूमि का स्मरण हो जाता है। जल स्रोत के साथ इन नदियों का स्मरण एक विशाल दृष्टिकोण का परिचय देता है। पनघट शिला के सभी पत्थर बेहतरीन घड़े हुए हैं और गांधार की बौद्ध कला के स्तूपों की भाँति है।

शिलालेख की दो पंक्तियाँ पूरी शिला में फैली हुई हैं और छह फुट साढ़े छह इंच हैं। तीसरी पंक्ति पाँच फुट साढ़े सात इंच है। अक्षरों का आकार आधा इंच है। शिलालेख की भाषा अशुद्ध है। दूसरी पंक्ति में शिलालेख की तिथि है।

स्तुति के बाद दूसरी पंक्ति के पहले भाग में तिथि-ललित वर्मन के राज्यकाल के संवत् 27 और शास्त्र संवत् 46 है। ललित वर्मन का कार्यकाल सन् 1143 माना गया है। अतः इस लेख का समय सन् 1170 माना गया है। दूसरी पंक्ति के दूसरे भाग में स्थानीय अधिकारियों के नाम दिए गए हैं। अधिकारियों में से दो को 'शेगाण' कहा गया है। जो संभवतः तिब्बती मूल का शब्द है। पहला शेगाण कालू है जिसे 'पांगती' या पांगी का भी कहा गया है। दूसरा अधिकारी प्रतिहार नेणकु है। इसके बाद दंडवासिक कुतुक है और अंतिम शेगाण शिरिक।

शेगाण को ए०एच० फ्रैंके ने कस्टम अधिकारी या कर अधिकारी माना जो तिब्बती सोगंपा के करीब है। दंडवासिक पुलिस अधिकारी हो सकता है।

अंतिम पंक्ति में जलस्रोत की स्थापना राणा लुद्रपाल की पत्नी रानी देल्ही द्वारा करवाए जाने का उल्लेख है। जलस्रोत स्तुति के बाद कायस्थ सेख और दो मूर्तिकारों सहज.और गग्ग के नाम हैं।

मूलपाठ

ऊँ स्वस्तिः। ऊँ जयति भुवण-कारणं। स्वयंभुर्जयति पुरनंद-पुरारीः जयति शीसुता-निरुङ देहोः दुरिताभय-पहारों हरश्व देवाः नमस्तुङ्गशिर-शुम्बिः चन्द्र-चामर-चारवेः त्रैलौक्यानगरा-रंम्भ मूलः (स्त) भ्भामप शभवे। नमस्ययाकाल कालदेहमहातुः

अपान-दह-पीठायः सिवाम व्यक्तीसुत्तमसः परम-भ (1.2) टारक-महाराज- परमेश्वर-श्रीमल्ललित-वर्म-देव-विजय-राज्येः संवत् 27 शास्त्रोय-संवत् 46 श्रा शु ति 13 रविदिनेः मूल-नक्षत्रेः तिथि त्रयोदश्यांः पाङग्त्याम् शोगाण-श्रीकालुक वर्तमाने। प्रतिहार-श्रीनेणुकः दंण्डवासिक श्छिकुतुकः कोष्ठिक-सत्क-सेगाण-शिरिकः सल्हि-वासित् राजानक-महाश्री-लुद्रपाल-सत्क-(1.3) मर्या। राज्ञी-श्री देल्हेन। शिव-लोकार्थे विष्णु-परलोक-आरधाणे सर्गलोक-क्रीडार्थे वरुण-देव स्थापतिं: सरावण-जलं श्रेष्ठ-निर्मल-शीतलः जश-कीर्ति-शतार्थे इति शुभम् लिखितसिदं कायस्थ-सेखेनः सूत्रधार-सहजा तथा गगेन स्थापितंम् सत्यमेव स्थापंतः।

शुद्धपाठ

ऊँ स्वस्तिः। ऊँ जयति भुवन-कारणं स्वयंभूर्जयति पुरन्दर-नन्दनो मुरारिः। जयति गिरि सुता-निरुङ-देहो दुरित-भयापहरो हरश्व देवः।। नमसतुङगशिरश्चुम्बि-चन्द्र-चामर-चारवे। त्रैलोक्य-नगरारम्भ-मूल-स्तम्भाय शम्भवे।। नमस्तरम्भै कलाधर्त्रे काल-देह-प्रहारिणे। अपानदेश-पीठाय शिवाय व्यक्ति-सूतये।। परमभ-(1.2) ट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमल्ललितवर्म-देव-विजय-राज्ये संवत् 27 शास्त्रोक्त-संवत् 46 श्रा. शु. ति. 13 रविदिने मूल-नक्षत्रे तिथौ त्रयोदश्यां पाङगत्यां शेगाण-श्री-कालुके वर्तमाने प्रतीहार-श्री नेणुके दण्डवासिक-श्री कुतुके कोष्ठिक-सत्क सेगाण-शिरिके साल्ही-वासि-राजानक-महाश्री-लुद्रपाल-सल्क (1.3) भार्यया राज्ञो-श्री-देल्हयां शिवलोकार्थे विष्णु परलोकाराधनाय स्वर्ग-लोक-क्रीडार्थे वरुण-देवः स्थापितः। स्रवण-जलं श्रेष्ठ-निर्मल-शीतं यशः कीर्ति-शुभार्थं। इति शुभम्। लिखितमिदं कायस्थ-सेखेन। सूत्रधार-सहजेन तथा गग्गेन स्थापितम् सत्यमेव स्थापितम्।।

TRANSLATION

Hail! Victorious is the Cause of the World, The Self-existent (Brahma). Victorious is the son of the Destroyer of castles (Siva or Indra), the enemy of Mura (Krsna). Victorious is He whose body is held by the Mountain-daughter (Durga), He who removes distress and danger-Hara, the god.

Reverence to Sambhu, the beautiful, whose lofty head is touched (lit.kissed) by the moon as by a chowrie, [and] who is the beginning, the root and the support of the town of the Universe.

Reverence to Him, the crescent-carrier, who strikes the body of Kala [and] whose seat is the region of Apana-Siva, the creator of the manifested world.

In the year 27 in the reign of victory of the supreme prince, the king

of kings, the supreme lord, the illustrious Lalita-varman of divine descent, in the Sastra year 46 [the month of] Sravana, the bright fortnight, the lunar day 13 on Sunday, at [the conjunction of the moon with] the lunar mansion Mula, on the thirteenth lunar day when in Pangati there was the segana the illustrious Kalu (ka) the pratihara, the illustrious Nenu (ka) the dandavasika the illustrious Kutu (ka) and Segana Siri (ka) in charge of the kothi [at that time] the wife of the Rana, the very illustrious ludra-pala of Salhi, the queen, the illustrious Delha has created a fountain slab (lit. Varunadeva) for the sake of Siva's heaven, in order to gain the other heaven of Visnu [and] for the sake of the joy of paradise.

(This) flowing water (is) excellent, pure and cool (and) causes glory, fame and grace. Thus may it be blessed. This is written by the writer of legal documents Sekha. It was set up by the stonemason Sahaja and by Gagga-truly set up.

अनुवाद

ऊँ स्वस्ति। समस्त संसार के कारणभूत स्वयं जन्म लेने वाले भगवान् श्री कृष्ण मुर राक्षस को मारने वाले की जय हो। भगवान् शंकर-जो अर्धनारीश्वर रूप हैं, पाप के डर से त्राण देने वाले हैं, उनकी भी जय हो।

जिनके सिर पर चंद्रकला विराजमान हैं, त्रिलोक रूपी महानगर के जो आधार स्तंभ हैं, काल के भी जो काल हैं, उन्हें अर्थात् शिवजी को प्रणाम है।

आज महाराजाधिराज श्रीमान ललित वर्मन देव के राज्य विजय संवत् 27 तदनुसार शास्त्र संवत् 46 श्रावण शुक्ल त्रयोदशी के दिन मूल नक्षत्र में रविवार को पांगती में, जहाँ शेगाण श्री कालू, प्रतिहार श्री नेणुक, दंडवासिक श्री कुतुक, कोष्ठिक श्री शेगाणा शिरिक कोठी के जो अध्यक्ष हैं, इन सब अधिकारियों की उपस्थिति में साल्ही निवासी श्री लुद्रपाल की पत्नी रानी श्रीमती देल्ही ने शिवलोक एवं विष्णुलोक की प्राप्ति हेतु स्वर्ग के सभी सुखों के उपभोगार्थ वरुण देव की स्थापना की। यह कायस्थ सेख के द्वारा लिखा गया है। सूत्रधार सहज और गग्ग ने इसकी स्थापना की। सत्य ही स्थापना है।

लोकगीत

पांगी में बिलकुल नए लोकगीत सुनने को मिले। नए यानी कुछ ही समय पहले बने हुए। चंबा की तरह ये गीत सदियों पुराने नहीं हैं। साज-बाज भी ज्यादा प्रयोग में नहीं लाए जाते। बस एक बाँसुरी और एक ढोल। इन्हीं साजों पर लोग अपने-अपने ढंग से मदमस्त नाचते हैं। कोई सुव्यवस्थित या निश्चित स्टेप्स के साथ नृत्य नहीं होता।

एक ताज़ा गीत, जो हमने सुना, उसमें पांगी में तैनात सरकारी कर्मचारियों की मनोस्थिति का सुंदर चित्रण हुआ है–

पांगी दे बाबू उदास बाबू उदास
जहाजां दिया सैलां तोपंदे।
पांगी दे बाबू उदास बाबू उदास
बीबी बच्चे साथ तोपंदे।
पांगी दे बाबू उदास बाबू उदास
जीरा कनैं ठांगी तोपंदे।
पांगी दें बाबू उदास बाबू उदास
सात सोआ सीए तोपंदे।

पांगी के बाबू उदास हैं। वे जहाज की सैर ढूँढ़ते हैं। अर्थात् घर जाने के लिए उतावले रहते हैं। पांगी के बाबू उदास हैं, वे अपनी बीबी, बच्चे साथ चाहते हैं। वे जीरा और ठांगी ढूँढ़ते हैं। वे उदास हैं क्योंकि वे सात सौ सी०ए० चाहते हैं। (पांगी में कर्मचारियों का सी०ए० अर्थात् प्रतिपूर्ति भत्ता अधिक मिलता है)। इस गीत में सरकारी बाबुओं की मानसिकता का एक सटीक चित्रण किया गया है।

पांगी में मन रम जाने का एक गीत भी बहुत प्रचलित है–

पांगी दे देशा तिलमिल पाणी मेरा मन लगा पांगी हो
पांगी पक्की ठांगी लौहल पक्का जीरा मेरा मन लगा पांगी हो।
पांगी रे देशा भोटली रा नाचा
मेरा मन लगा पांगी हो।
पांगी रे देशा भले-भले माहणू
मेरा मन लगा पांगी हो।
पांगी रे देशा एलौं शराबा

मेरा मन लगा पांगी हो।
पांगी दे देशा जहांजां दी सैलां
मेरा मन लागा पांगी हो।

गीत में पांगी की विशेषताओं का गुणगान है। पांगी में मन रमता है। क्योंकि वहाँ झिलमिल पानी है, भोटली का नाच है, यहाँ के आदमी भले हैं। यहाँ स्थानीय शराब है और सबसे बड़ी बात जहाज की सैर उपलब्ध है। सर्दियों में पांगी के लिए विशेष हेलिकॉप्टर सेवा लगाई जाती है। जिसमें का उल्लेख गीतों में बार-बार हुआ है।

प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के पहले दौरे की चर्चा पांगी के लोक गीतों में आज भी की जाती है। जब किलाड़ में श्रीमती इन्दिरा गाँधी आई तो दो-दो फ्लाइटें इकट्ठी चलीं। इन्दिरा गाँधी के गले में ठांगी की माला डाली गई। पैरों में पांगी की पूलें डाली गईं। लोगों ने कुछ माँगें रखीं जो सभी 'पास' हो गईं। पहली माँग चैहणी से सुरंग निकालने की थी, दूसरी ग्रिफ की सड़क, तीसरी घर-घर में बिजली।

इन्दिरा गाँधी को धोखे से मारने की पंक्तियाँ भी बाद में जोड़ी गईं। किस प्रकार प्रधानमंत्री को धोखे से मारा, जिससे पब्लिक रोने लगी।

कठी चली हो कठी चली
दो दो फ्लाइटां कठी चली।
पहला टूरा हो, पहला टूरा
पांगी किलाड़ा पहला टूरा।
गले पाई हो गले पाई
ठांगी केरी माता गले पाई।
सजी गई हो सजी गई
ठांगी केरी माला सजी गई।।
पैरे लाए हो पैर लाए
पांगी केरी पूलां पैरे लाए।।
सजी गए हो सजी गए
पांगी केरे पूलां सजी गए।।
पहली मांगा हो पहली मांगा
चैहणी के सुरंगा पहली मांगा।।
पास किया हो पास किया
चैहणी के सुरंगा पास किया।।
दूजी मांगा हो दूजी मांगा
ग्रिफ दी सड़का दूजी मांगा।।
तीजी मांगा हो तीजी मांगा
घर घर बिजली तीजी मांगा।।

पास किया हो पास किया
घर घर बिजली पास किया।।
धोखे मारी हो धोखे मारी
इन्दिरा गांधी धोखे मारी
रूणा लगी हो रूणा लगी
सारी बो पब्लिका रूणा लगी।।
लोहा लगे हो लोहा लगे
इन्हा बो गद्दारा लोहा लगे।
धोखे मारी हो धोखे मारी
भारत माता धोखे मारी।।

'प्यारी भोटली' को संबोधित एक मधुर गीत भोटली (लाहुली कन्या) और मधु गार्ड की प्रेम कथा का गीत है। जिसमें भोटली के लिए जोत पास पर एक सुंदर बँगला बनवाने, उसकी खिड़कियों में शीशे लगवाने के बात कही गई है। थकी टाँगों से जोत न लाँघकर पालकी मँगवाने का आश्वासन दिया जाता है। मधु गार्ड को भोटली के बिना संसार सूना लगता है तो भोटली प्रेमी के लिए अपने माँ-बाप को छोड़ देती है–

प्यारी भोटलिये जोता पर बंगलू पुआणा हो
मधु गाडा हो बंगलू जो ताकी लुआणी हो
प्यारी भोटलिये ताकी जो शीशे लुआणे हो।।
मधु गाडा हो लिसी जंगे जोता कियां लाणा हो।
प्यारी भोटलिये जोता हेठ पालकी मगेला हो।।
प्यारी भोटलिए तेरे बिना मुलख नमाणा हो
मधु गाडा हो तेरे पिछे छडे अम्मा बापू हो।।
दीनेनाथा नीलमें व्योपारी हो
दीनेनाथ नीलमें व्योपारी हो दीनेनाथा हो।
अंदरूणी नीलमें री खाना हो दीनेनाथा हो।।
अम्मां बापू खलड़ी खिलयादें हो दीनेनाथा हो।
मत कर नीलमें व्योपारा हो दीनेनाथा हो।
दीनेनाथा मंजणेंरी नेई हो दीनेनाथा हो।
खानपुर पैहरा लगोरा हो दीनेनाथा हो।
पंज किलो नीलम चुराया हो दीनेनाथा हो।
पुल़े पुर पैहरा लगोरा हो दीनेनाथा हो।।
पुल़े जोड़ी पुलिसा हो दीने नाथा हो।
बुरा हुंदा नीलमें व्यापारा हो दीने नाथा हो।।

लोकगीत शुगली

लड़की : *दुआरे अगे फुलेया गुलाबा हो।*
देयां मेरा गल्ले रा जुबाबा हो।।
लड़का : *कियां बो देणां गल्लेरा जुबाबा हो।*
आज मेरी हालत खराबा हो।
लड़की : *जोतां पर बदले री लैसा हो।*
प्यारू मेरा दूर परदेसा हो।
लड़का : *किजो बो देंदी प्यारीये तू लेयेरा हो।*
छपी बो छपी फोटो मेरी हेरा हो।।
लड़की : *जियां सुका सपड़ेरा घासा हो।*
तियां सुका जिंदड़िरा मासा हो।।
लड़का : *दिले हो दिले गम मत केरा है।*
गमे हो गमे होले गम गोड़े हो।।
लड़की : *नाले बों नाले उड़रिये भंवीरी हो।*
मेरा कि कसूर तेरे भागा है।।
लड़की : *नाले नाले कडुआ पतीसा हो।*
क्या तेरा नाम जगदीसा हो।।
लड़का : *निकी बो निकी बरखा लगोरी हो।*
प्यारी मेरी छतरी तड़ोरी हो।।
लड़की : *हाथे लाई सोने री चैना हो।*
तेरा मेरा दिले रा परेमा हो।।
लड़का : *सुकी बो सपड़ा ता सैल्ली डाली हो।*
तैं तां मेरी छाती छड़ी जाली हो।।
लड़की : *चिट्ठी लिखणी ते पैन छोटा हो।*
यारी रखणी ते दिल मोटा हो।।
लड़का : *जिस बो नाले कैएमलि पकोरी हो।*
उस बो नाले भाल रख मेरी हो।।
लड़की : *बंदा मेरा शिमले बकीला हो।*
तेरा मेरा झगड़ा तसीला हो।।
लड़का : *जोता पुर पछी लेई ढेली हो।*
आगे परमात्मा बेली हो।।

चुराह क्षेत्र में शिलालेख

चंबा का चुराह क्षेत्र एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है यद्यपि यह जनजातीय नहीं है। किंतु यहाँ की संस्कृति जनजातीय है और अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण पनघट शिलाएँ तथा शिलालेख मिले हैं जिनका संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक हो जाता है–

डडवाड़ पनघट लेख

चुराह वज़ारत के तीसा परगना में तीसा से अढ़ाई मील उत्तर में डडवाल गाँव स्थित है। यहाँ सन् 1905 में तीन टुकड़े हुआ पनघट स्लैब मिला। इस समय यह भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में है। स्लैव 5′ 9″ चौड़ा और 3″ ऊँचा है। इसके बीच में कमल के फूल के ऊपर वरुण है जिसके चारों ओर आकर्षक उत्कीर्ण हुआ है। वरुण के नीचे पानी के निकास के लिए वर्गाकार स्थान है। इनके चारों ओर सर्पयुगल का बार्डर लगा हुआ है।

इसमें पाँच पंक्तियों का लेख है। अक्षर 1 / 2″ से 3 / 4″ हैं। यद्यपि अक्षरों की बनावट सुंदर नहीं है। तथापि ये पढ़े जा सकते हैं। ऊपर की पंक्ति में संवत् 17 श्रीमत्रैलो लिखा है जिसे वोगल ने 'संवत् 17 श्रीम (त) त्रैलोक्यदेव-राज्य-संबत पढ़ा है। उनके अनुसार शास्त्र संवत् सन् 941,1041, 1141 या 1241 हो सकता है। इन चारों वर्षों में 'ज्येष्ठ बदी 12', अप्रैल 26 सोमवार, अप्रैल 30 वीरवार, मई 5 सोमवार, मई 9 वीरवार हो सकता है। अतः संभव तिथि 30 अप्रैल, 1041 हो सकती है जिसमें रेवती नक्षत्र है।

इस लेख में त्रैलोक्यदेव की तिथि निर्धारण के अतिरिक्त कुछ और विशेष नहीं है।

मूल पाठ

संवत् 17 श्रीमत्रैलो (क्यदेव-राज्य-संवत्)

(1.2) ऊँ स्वस्तिः।। संव (त्) 17 ज्येष्ठबति 12 बृहस्पतिवारे रेवती-नक्षत्रे। ब्राह्मणा-सैहिल-पुत्र-भोग (गेन) वरुण-देव (;*) स्थापित (;*)। संसार-भय-भीतेन। स्वर्गे कृत रेखा।। इति शुभं भवति।। इति भट्टं।।

अनुवाद

In the year 17 [in the year? Of the reign of] the illustrious Trailo [kyasdeva]

Hail! In the year 17, [the month] Jyestha, the dark fortnight, the lunar day 12, on Thursday, at [the conjunction of the moon with] the lunar mansion Revati, has [this] fountain-stone (lit. god Varuna) been erected by Bhoga, the son of the Brahman Saihila fearing with the fear of existence. A line made in heaven. Thus will it be blessed. Thus [will it be] fortunate.

त्रैलोक्यदेव के समय का भाकुंड लेख

तीसा कोठी के उत्तर पूर्व में भाकुंड नाले के साथ लगभग पाँच किलोमीटर दूर भाकुंड गाँव स्थित है। सन् 1904 में एक घर की ऊपरी दीवार में 4′ 9″ लंबा, 1′10″ चौड़ा और 2″ मोटा पत्थर मिला जिसमें लेख है। यह अब चंबा संग्रहालय में है।

यह लेख 4′, 4′4″ तथा 1′6″ लंबी तीन पंक्तियों में है। पत्थर का बायाँ कोना टूट गया है। जिससे कम से कम आठ अक्षर अलग हो गए हैं। पहली पंक्ति का 'ओम' भी टूट गया है। अक्षर 1″ से 2″ के हैं।

लेख की भाषा कम अशुद्ध है। जिस व्यक्ति ने भाकुंड का पत्थर लगाया, वह राणा न होकर ब्राह्मण था। उसके पिता का नाम 'शर्मा' से समाप्त होता है। त्रैलोक्यदेव ग्यारहवीं शताब्दी का 28 वाँ 29 वाँ वर्ष हो सकता है।

मूल पाठ

स्वस्तिः।। ऊँ नमो वरुण-देवाय नमः। संवत् शास्त्रोये 8 श्रोम-चैलोक्यदेव-र... (1.2) शुक्कदिने उतरफलगुणो-नक्षत्रें भोशर्म-पुत्र-परिपूर्णोन संसार-भय-भो...(1.3) स्थापितः इति श्शुभम्।।

CORRECTED READING

(ओं) स्वस्तिः ओं नमो वरुण-देवाय नमः। संवत् शास्त्रोक्ते 8 श्रीमत्रैलोक्यदेव-रा (ज्य-) (1.2) शुक्रदिन उत्तरफाल्गुनी-नक्षत्रे भोशर्म-पुत्र-परिपूर्णेन संसार-भय-भी (वरुणा-देव) (1.3) स्थापितः। इति शुभम्।।

अनुवाद

Hail! Adoration to the god Varuna, adoration! In the Sastra year 8, in the reign of the illustrious Trailokya-deva...on Friday, at [the conjunction of the moon with] the lunar mansion Uttaraphalguni, has this fountain-stone (lit. god Varuna) been erected by Paripurna, the son of Bhosarman, fearing with the fear of existence. Blessed be it!

नघाई पनघट लेख

चुराह में साई कोठी से दक्षिण में दो मील दूर नघाई गाँव के नीचे जंगल में सन्

1895 में कुछ पनघट शिलाएँ दबी मिली थीं। इनमें सबसे बड़ी 5'2" ऊँची और 6'7" चौड़ी है। इसका ऊपरी भाग पाँच पेनलों में विभक्त है जिनमें प्रत्येक में कलाकृति है। बीच में वरुण है, दोनों ओर दो-दो अलग प्रतिमाएँ हैं।

लेख की पहली पंक्ति 5' 3" लंबी है। जब कि दूसरी 10'। अक्षर 1/2" से 5/8" के हैं। लेख में उल्लेख है कि वरुण देव की यह प्रतिमा देवप्रसाद सुपुत्र राणा नाग प्रसाद सुपुत्र नागुका ने रानी मेखला के परलोक के लिए बनाया। रानी मेखला देव प्रसाद की रानी ही होगी जिसे वरुण के साथ दिखाया गया है।

TEXT

(ऊँ स्वस्तिः।। परमभट्टारक) महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीम (त्रै) लोक्य-देव-राज्य-संवत् श्रावण-बति-चंद्रदिने धनिष्ठा-नक्षत्रे स्थापितं। महाश्रो-नागुकपौचेणा राजानक-श्री-नागप्रसाद-पुचेन थो-देवाप्रसादेन राज्ञो-श्री-मेखलाया (;*) परलोकार्थ व (1.2) रूणा-देव (;*) स्थापितम् (तः।) इति शुभम् (।।*)

TRANSLATION

Hail ! In the 3rd (?) year of the reign of the supreme prince, the king of kings the supreme lord, the illustrious and divine Trailokya, in [the month of] Sravana, the dark fortnight, the lunar day, on Monday, at [the conjunction of the moon with] the lunar mansion Dhanistha [was this stone] erected. By the grandson of the very illustrious Nagu(ka), by the son of the Rana the illustrious Nagaprasada, by the illustrious Deva-prasada was this fountain-stone (lit. god Varuna) erected for the sake of [the bliss in] the next world of the Rani, the illustrious Mekhala. Blessed be it!

लोह टिकरी परगने में बाहोंता पनघट लेख

मूल पाठ

(न च वरुणात्मकं धर्म न च रुणात्परं तपं।) न च वरु (णात्प) रं देवं तृशु लोकेशु वि (श्रुतं।।)

(1.2) (ऊँ स्वस्तिः। शास्त्र-संवत ̈) आ शति 15 मौरीदिने अश्विनी-नक्षत्रे प(रम-)

(1.3) (भट्टारक महाराजा)धिराज–प(रमेश)र–श्री मत्सौमवर्म–देव–रा (ज्य–)

(1.4) (संवत् ̈) पिचोणां (माचीनां ̈) य परलोका(र्थं)

(1.5) (वरुणादेवः स्थापितः। ̈तेन शरो (रेणा ̈) च भवो न वस–।

(1.6) ̈– –(आसो) लोको हि शाश्वितः (;') गवां (कोटि–प्रदानेन)

(1.7) (ग्रह्णा सोमस्मूर्ययो। स) म–तुल्य–फलं देवो वरुणां य) (प्रतिष्ठयेत्)

(1.8) ̈बणाइ। धणा सचैइ ̈

(1.9) ̈खणि जइ।। श्री ̈

अनुवाद

No higher religious merit than [the erection of] a Varuna [slab]. No higher ascetic merit than [the erection of] a varuna slab. No higher god than Varuna is known in the three worlds.

Hail! In the Sastra-year…[in the month of] A, on the 15th day of the bright fornight, on Saturday, at [the conjunction of the moon with] the lunar mansion Asvini. In the year…of the reign of the supreme prince, the king of kings, the supreme lord, the illustrious Soma-varman of divine descent…for the sake of [the bliss in] the next world of the deceased ancestors, male and female,… [this] fountain-stone (literally god Varuna) has been erected…by the body…the eternal world is gained. By a gift of ten million cows at an ectlpse of the sun or moon an equal merit [is attained as by him] who erects [an image of] Devi of Varuna…

सिया दुधर पनघट लेख (लोह टिकरी)

मूल पाठ

भट्ट-लुद्रौक-पौच-ध-(1.2) णासोह्न¨पुच-फि.(1.3) रि-गोग-देव-सीह भ्रात-(1.4) त्थाग तस्यार्थे वरु (णा;*) कृ (1.5) तं संसार-भय-भीतेन व- (1.6) रुण-देव स्थापितं (1.7) इति शुंभं।।

शुद्ध पाठ

भट्ट-लुद्रौक-पौत्र-ध- (1.2) णासोह्न¨ पुच-फि-(1.3) रि-गोग-देव-सोहै भ्रात-(1.4) त्यागस्यार्थे वरुणाः कृ (1.5) तः संसार-भ-तैर्व (1.6) रुण-देवः स्थापितः। (1.7) इति शुभम्।।

अनुवाद

Phiri, Goga, Deva, and Siha, the sons of Dhanasiha, the grandson (s) of Bhatta Ludrauka have made [this] fountain-stone (lit. Varuna) for the sake of their brother Tyaga, fearing with the fear of existence, they have erected [this] fountainstone (lit. god Varuna). Blessed be it.

मंगलोआ पनघट लेख (लोह टिकरी)

TEXT

कृ व (?)कृ (1.2) कृ (अ)स्थिरं जीवित कृ (1.3) अस्थिर धणा-जौवणां अस्थि-(1.4) रं पुत्र-दाराणां धर्म-कीर्ति-जश (1.5) स्थिरं।। गवां कोटि-प्रदक्षणा (1.6) ग्रहणो सूर्य-सोमयो समतुल (1.7) फलं देवो वरुणां ये प्रतिष्ठित

TRANSLATION

Unstable are life and...; unstable are wealth and youth; unstable is the [possession] of son and wife. Only the fame and glory of piety is stable. By a gift of ten millions of cows at an eclipse of the sun or moon an equal merit [is attained, as by him] who erects who erects [an image of Devi or Varuna].

सोमवर्मन का कुलैट ताम्रपत्र

मूल पाठ

(ऊँ ख) स्तिः।। ऊँ नमो शिवाय।। जयति भुवन-कारणां स्वयंभू जयति पुरंदर-नन्दनो मुरारिः (।*) जयति गिरिसुता-निरुङ्-देहो (1.2) (दु) रित-भयापहरों हरश्च देवः।। श्री-चणपका-वासकात्परम-ब्रह्मणयो ललाट-तट-घटित-विकट- भ्रुकुटि-पक- (1.3) ट-कुटि (ट्टि) त-कटक-सौमटिक-कृतसानाध्य-दर्गरिश्वर-समोर- सन्धुक्षित-कीर-बल-बलवद्दवा शुशुक्षणि-क्षणा-क्षपणा- (1.4) नव-जलधरस्य। दणडोपजत-त्रिगर्ताधिपनुनय-प्रार्थित-सन्धानस्य। सेवा-विधि-व्यग्र-खकुल्य-कुलूतेश्वर- कर्म व्यतिह्वा- (1.5) र-प्रार्थ्यमान- राज्यार्पणा-प्रसादस्य। कुरुक्षेत्रे (क्षेत्रे) राहूपराग- समय-समर्थि (र्पि) त-मद-गन्ध-लुब्ध-मधुकर-कुलाकुल-कपोल फ (1.6) लक-करि-घटा-दान-प्रीति-प्रसन्न-मानस-भगवड्भास्कराभि नन्दित-निजान्वय- प्रसूति-परम्परा-सार-करिवर्षाभिधानाभ्यु (1.7) दयस्य तत्काल-मिलित-निखिल महीपाल-सुख-मशो (षी) कूर्चिका (कीर्ति) सुरभित-सप्त-भुवनाभोगस्य। निरतिशय-शौर्यौदार्य-धै (1.8) र्यागाध-गाम्भीर्य-मार्यादा-दया-दाक्षिण्य-वैलक्षण्य- जर्जरित-जामदग्न्य-शिवि-कर्णा-युधिष्ठिरादि- प्रवर-प्रसिडैः दर्शन-सफलि (1.9) त-लोक-लोचन-मनोरम-मूर्ति (र्ते) भगवच्छो-शूद्रक-स्वामि-देव-प्रख्याप्यमानानन्य- सामान्य-स्फार-स्फुरदुर (रू)-महिम्न्न समर स- (1.10) हस्र-सम्विधान-कार्यित (कोपार्जित) साहसाङ्ग-निश्शङगमल्ल-मटमट त्सिंहा (त्सिंहा) द्यपर-पयार्यस्य। पौ (मौ) षणा-वै (वं) शभूषण-महामणिः (1.11) श्रीमत्साहिल्ल देवस्य।। निर्मले कुले तिलक-मूतः तिरवद्यः विद्या-विनोदरस-रसिकः अशेष-शास्त्र-परिमलाधि (वासित) (1.12) मानसः अगणित-विमल-गुण-गणालंकृतमूर्तिः विवेकैक-वसतिः देव-द्विज-गुरु- पूजा-निरत-मतिरतिशय (यि) (1.13) त-शौटोर्य-शालिस्पृहणीय-विक्रमः क्रम- परिपापालित (परिपालित)-चातुवर्णा (चातुर्वणार्य) व्यवस्थाः दुर्वार-वैरि-बल- विपुल-दर्प दलन-व्य (1.14) ग्रोग्र-करवाल-वला (न) दक्षिणा-दोर्दण्डः प्रचण्ड-प्रतापोत्खात-प्रतिरा-(रो) पितानिक नरनाथ-प्रथित-प्रौढ-प्रभु-शक्तिः (1.15) वांछित-वस्तु-विस्तर- परिपूरित-सकल-प्रणिजि (णायि) जन-मनोरथः शशधर-कर-निकरावदात यश-प्रसर प्रकाशित (1.16) सर्वाशः

सकल-कला-केलि-पैशल-विलासः उद्य-शे (शै) लो मिच-मणडलस्य उन्पा (त्पा) त-केतुरहित-जनस्य। असाधा- (1.17) रणा-शौर्याजि (र्जि)त-यशो-राशि-प्रकाशिताशेश (ष) विस्व (श्रव)-प्रदेशः पौ(मौ) षणान्म (ज्व)-योभ (डभ) वत्पित-मात-भक्ति-विनिर्जित-राम-चरित (1.18) परममाहेश्वरः परमवैष्णवः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमत्सालवाहन-देव-पादानुध्यात-प- (1.19) रमभट्टारिका-महाराज्ञी- श्री-रर्ढा-देवो-कुक्षि- क्षीरनीरनिधि- मुधादीधिति-परमभट्टारक- महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्री- (1.20) मत्योमवर्म-देव X कुशली स्व-सा(शा)स्यमान- विघट्टक-मण्डल-प्रतिबड-कुलिकगोष्ठे रङुक-सुत-रणादित्य-सत्क एतत्पुच-उद्य (1.21) -स्थि तामी (*दु) भूरेकाङग्तः रङगुक-सुत- मङक(त्क)-भू 1 एवं स्व सीमा-चि (तृ) णा-गोयूथी (गव्यूति)-गोचर-पर्यन्तं स- खिलोपखिलं स-वनस्प- (1.22) (त्युदकं स) निर्गम-प्रवेशं। आराम-विश्राम- सहितमा-चन्द्रार्क। ब्रा। काश(श्य)प- गोचागाय (गोत्राय)। चिप्रवराय। वाजिस्नेय (बाजसनेय)-शाखाय। (1.23)¨ पोचाय। ब्रह्म-पुचाय। भट्ट-रहशाय। सूर्य-ग्रहण-निमित्ते अग्रहारत्वेति-प्रतिपादितं इत ऊर्ध(र्धू)मा-चन्द्रार्क पुच-पौ- (1.24) (च)यो(र्) भोक्तव्यम् (*1) प्रवर्धमान- कल्याण-विजय-राज्ये संवत् 7 भा शुति 3 दूतो च महामात्य-राजा- नक-श्री-रोहिलः महाज्ञपटलिक- (1.25) राजनक-श्री-काहिलः आ ¨(1.26) ल्हुथुकः (*1) लिखितं का. दे (वनेन)

(श्री) मत्सोमवर्म-देव-स्वहस्तः।। Original subscription (श्री) मत्सालवाहन-देव-स्वहस्तः।।

लोह टिकरी पनघट लेख (सन् 1114)

मूल पाठ

ऊँ स्वस्तिः।। संवत् (1.2) प(र*) म भटा (ट्टा) रक-महाराजा- (1.3) धिराज-परमेश्वर- (1.4) श्रीमद् (ज्)-जासट्ट (ट)-देव (1.5) राज्ये कुशलो ज्येष्ठ (1.6) बति हरदश्यां सूर्यदि (1.7) ने रेवत्यां नक्षत्रे (।*) गवां (1.8) कोटि-पदाणोन ग्रह (णो*) (1.9) सो (म*) सूर्ययो (:।*) तुल्य-फ (1.10) (लं) देवो वरुणां यो प्र (1.11) तिष्ठितं (।।*) इति शुभं (।।*) (1.12) भट्ट-श्री-ज्जज-पौच- (1.13) कोन-सुत-मुशु (णा)¨ (1.14) धुन्वतेन¨ (1.15) तु चनिक-पुच (श)¨ (1.16) स्य परलोका (र्थ वरुणा) (1.17) देव (:*) स्था (पितः संसा) (1.18) र-भय-(भीतेन)

अनुवाद

Hail! In the year 9, in the reign of the supreme prince, the king of kings, the supreme lord, the illustrious Jasta, of divine descent; in [the month of] Jyestha, the dark fortnight, the lunar day 12, on Sunday at [the

conjunction of the moon with] the lunar mansion Revati. By a gift of ten million cows at an eclipse of the sun or moon an equal merit [is attained as by him] who erects [an image of] Devi or Varuna. Musunu the son of – kona, and grandson of the Bhatt, the illustrious Raja, together with his wife (?) has created [this] fountain-stone (literally god Varuna) for the sake of [the bliss in] the next worked of S..., the son of Canika and grandson (?)... While fearing with the fear of existence.

देवी कोठी लेख

TEXT

सं० 30 भद्रो प्र 21 नगअत अथ जे स्रो-माहरजे उमेद सीधे स्रो-देवो चमुंडा दा देहार पाय देहारे दा सोरदार स्रो-मीअ बीसन सीध हजारी नील्हेडी घया सुगलाल झगडु चखणा गुदेव झडा बटेहेड हेलु देबु गठीर द्यल पेह प्र 29 सवत लीख्य सुभ

शुद्ध पाठ

सं० 30 भाद्री प्र 21 लगायत अथ जे श्री-महाराजे उमेद सिंघे श्री-देवी चामुंडा दा देहरा पया। देहरे दा सरदार श्री-मियां बिसन सिंघ। हाज़री निल्हेड़ी घंयां सुगलाल झगडु। चखाणा गुरुदेव झंडा। बटेहड़ा हैलु देबु गठोर द्याल। पोह प्र 29 संवत् लिख्या। शुभ।।

TRANSLATION

"In the year 30 [the month of] Bhadro 21, on that date the illustrious Maharaja Umed Singh has built the temple of the goddess Camunda. The Superintendent (sardar) of the temple the illustrious Miyan Bisan Singh; the stewards, Ghamyam the Nilheri and Jhagru of Sungal ; the carpenters Gurdev and Jhanda, the stone masons Debu of Hail and the cela (?) Dyal. Written on the 29th of Poh. Bliss!"

राजनक नागपाल नारायण प्रतिमा लेख

मूल पाठ

ॐ स्वस्ति राजानक-महाश्री-नगपालेन नारायणा-देव घटापिता सूच- (1.2) (धार)-उद-सुत-सभगेणा घटितं इति शुभः

शुद्ध पाठ

ॐ स्वस्ति। राजानक-महाश्री-नागपालेन नारायणां-देवः घाटितः सूच (1.2) धारोदसुत-सभगेन घटितः। इति शुभम्।

अनुवाद

Hail! By the Rana, the very illustrious Naga-pala [this image of] god Narayana [was] caused to be made ; [it was] made by the artisan Sabhaga, the son of Uda.

राणा पाल लेख

मूल पाठ

ओं स्वस्ति। परमभट्टारक-महा- (1.2) राजाधिराज-परमेश्वरः श्रोमद्रणा- (1.3) पाल-देव-विजय-राज्ये। वर्तमाणे (1.4) संवत् 2 आश्र्व वति 8 बुधदिणेः

शुद्ध पाठ

ऊँ स्वस्ति। परमभट्टारक-महा (1.2) राजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमद्रणा- पाल-देव-विजय-राज्ये वर्तमान-संवत् 2 अश्विन बति 8 बुधदिने।।

अनुवाद

Hail ! In the victorious reign of the supreme prince, the king of Kings, the supreme lord, the illustrious Rana-pala of divine descent, in the current year 2 [the month of] Asvina the dark fortnight, the lunar day 8, on Wednesday.

ललित वर्मन (1159-61) के समय का
राजनक नागपाल पनघट शिला लेख

मूल पाठ

(1.2) याश्चाटुकविधिं विधातुं वा तस्या (प (1.3) रिमितगिरोलं गुणानिधेः ।।10।। (1.4) तस्यामभूदस्य शुभैकशालो गुणै- (1.5) र्विशालो रिपुलोक-कालः (।*) धर्म्यक्रियोत्पुंसि (1.6) त-पापजल्प श्श्रोनागपालो रणासोम्न्यबालः (।।11।।) (1.7) (पितरि पर) मुपेते लोकमस्तोकशोकस्त्पदि पतिवियोगा- (1.8) (न्मूर्छितां मातरं) खाम् (।*) अनुगमन-विधानाहारयामास कृच्छात्स नय- (1.9) (विनयशाली बाल) केनानुजेन ।।12।। संज्ञामवाप्य सततं नि- (1.10) (यतोपवा) स-तीव्रव्रजैर्निज-तनुं तनुतां नयन्तो। वृद्धिं नि- (1.11) (नाय व) रदानमसौ मुतौ च दोने दयां च मुरवेरिणि (1.12) (चैव) भक्तिम् तं नागपालं ललित-क्षितोशश्चकार (1.13) (राजानक) शब्दवाच्यम् (।*) अकाणड-चञचद्यमदणड- चणड-दोर्द (1.14) (णड-काला) सि-विखण्डितारिम्।।14।।

पांगी कुछ आँकड़े (1993)

कुल क्षेत्रफल	:	1,58,198 हैक्टेयर
वनों के अधीन क्षेत्र	:	1,10,300 हैक्टेयर
कृषि के अधीन क्षेत्र	:	2,133 हैक्टेयर
जनसंख्या (1981)	:	12,256
जनसंख्या (1991)	:	15,635
ग्राम्य जनसंख्या	:	15,635
कुल परिवार	:	2,599
आई, आर०डी०पी० परिवार	:	1,356 (जनजाति-1148 अनुसूचित जनजाति -208)
अंत्योदय परिवार	:	352
पंचायतों की संख्या	:	15 (सभी पिछड़ी)
जनगणना ग्राम	:	54
राजस्व ग्राम	:	106
बिना जनबस्ती ग्राम	:	52
सबसे कम ऊँचाई का ग्राम (लुज)	:	2,424 मीटर
सबसे अधिक ऊँचाई का ग्राम (चस्सक भटोरी)	:	3,922 मीटर
तहसील	:	1
उपतहसील	:	-
विकास खंड (पांगी)	:	1
शहर	:	-
नगरपालिका	:	-
बैंक (भारतीय स्टेट बैंक)	:	1
सस्ते डिपू	:	15
सहकारी सभाएँ	:	13
तारघर	:	1

सहकारी विभाग : वन विभाग

किलाड़ खंड	:	1. किलाड़ वन परिक्षेत्र
		2. बिंद्रावणी वन परिक्षेत्र
		3. धरवास वन परिक्षेत्र
साच खंड	:	1. साच वन परिक्षेत्र
		2. सेचू वन परिक्षेत्र
पुरथी खंड	:	1. अजोग वन परिक्षेत्र
		2. पुरथी वन परिक्षेत्र

(3 खंडों में 7 परिक्षेत्र और 22 उपक्षेत्र हैं)

राजस्व विभाग

सर्कल का नाम		कुल गाँव
धरवास	:	7
करयास	:	6
किलाड़	:	8
सेरी भटवास	:	5
साच	:	10
सेहली	:	8
सेचू	:	4
पुरथी	:	6

चिकित्सा विभाग

संस्था का नाम		स्थान
ग्रामीण अस्पताल		
प्राथमिक चिकित्सा	:	1. धरवास
		2. पुरथी
		3. सेचूनाला
आयुर्वेदिक डिस्पेंसरी	:	1. सुराल
		2. धरवास
		3. साच
		4. मिंधल
स्थायी शीतकालीन चिकित्सा चौकी	:	1. करयूणी
		2. हिलौर
		3. चसक

उपकेंद्र :

1. सुराल
2. चलोली
3. लुज
4. प्रेगां
5. करयास
6. हुडाण
7. फिंडरू
8. कुलाल
9. रेई
10. शौर
11. कुमार
12. सेहली
13. उदीण
14. पुंटो

शिक्षा विभाग साक्षरता : 32%

संस्था का नाम	संख्या	स्थान
सीनियर सेकेंडरी स्कूल	1	किलाड़
हाई स्कूल	6	1. सुराल 2. धरवास 3. करयूणी 4. साच 5. सेचू 6. पुरथी
प्रोजेक्ट	5	1. कुठाह 2. लुज 3. पुंटो 4. सागलवास 5. खजियार
मिडिल स्कूल	3	1. लुज 2. रेई 3. शौर
प्राइमरी स्कूल	48	
कॉलेज	—	

प्रौढ़ शिक्षा केंद्र	—	
औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र	—	
प्रौढ़ शिक्षा केंद्र	33	
खाद्य एवं आपूर्ति विभाग कुल गोदाम	6	1. किलाड़ 2. धरवास 3. साच 4. रोहली 5. पुरथी 6. शौर
कुल राशन कार्ड	3053	15893

जनसंख्या के लिए

पी०डी०एस०		
अंत्योदय परिवार	350	
गंदम की माँग	20500 क्विंटल	

पशुपालन विभाग

अस्पताल	4	1. किलाड़ 2. धरवास 3. साच 4. पुरथी
डिस्पेंसरी	10	

कल्याण विभाग

बुढापा पेंशन भोगी	381	
विधवा पेंशन भोगी	224	
अपंग पेंशन भोगी	22	
उपरोजगार केंद्र	1	किलाड़
डाकघर	1	किलाड़
उपडाकघर	14	
अस्थायी चैक पोस्ट	1	पूंटो

घाटी में पशु

जर्सी गाय	1035
देसी गाय	3745

चूरू-चूरी	8515
भेड़-बकरी	22500
खच्चरें	150
मुर्गियाँ	2500

1991 की जनगणना में अनुसूचित जाति के 1,445 तथा अनुसूचित जनजाति के 12,730 लोग दिखाए हैं।

2001 की जनगणना के अनुसार पांगी की जनसंख्या 17,598 है। जिसमें 9,259 पुरुष तथा 8,339 महिलाएँ हैं।

जिला चंबा : कुछ आँकड़े

क्षेत्रफल	:	6,528 वर्ग किलोमीटर
जनसंख्या	:	3,93,286 (जनगणना 1991), 4,60,887 (जनगणना 2001)
ग्रामीण घर	:	65.030, शहरी घर : 6,724 (1991)
		79,618 7,411 (2001)
ग्रामीण परिवार	:	67,025 शहरी परिवार : 6,758
उपमंडल	:	चंबा, चुराह, पांगी, भरमौर, डलहौजी, चुवाड़ी
तहसील	:	चंबा, चुराह, पांगी, भरमौर, भटियात, सलूणी, डलहौजी
उपतहसील	:	होली, सिंहूता, भलेई

जनसंख्या

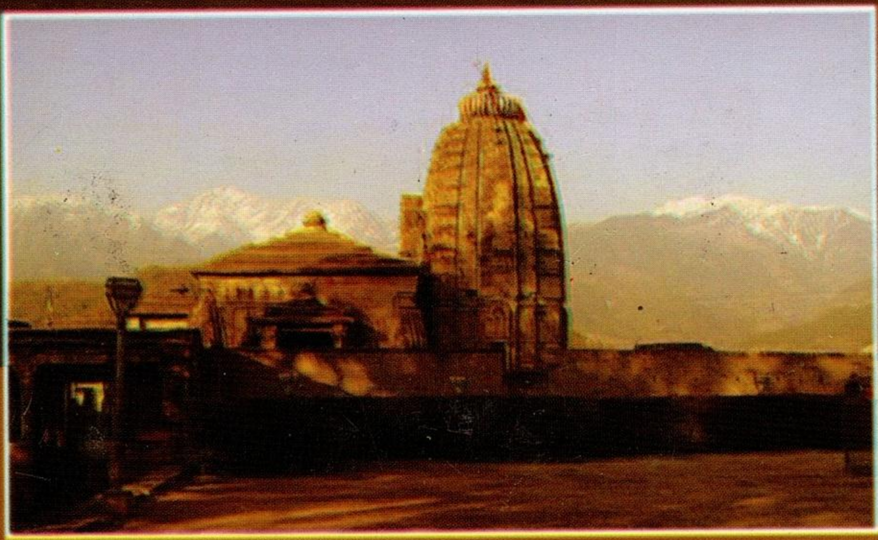
ज़िला / तहसील	व्यक्ति	पुरुष	स्त्रियाँ	स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरुष
जिला चंबा (1991)	3,93,286	2,01,759	1,91,527	949
(2001)	4,60,887	2,35,218	2,52,669	1,003

साक्षरता दर (2001)

कुल : 62.9 पुरुष : 76.4 स्त्रियाँ : 48.8

(साक्षरता दर प्रदेश के सब जिलों से कम है।)

●●



सुहानी बुक्स